# पट्टमहादेवी शान्तला

## भाग : दो


मूल कन्नड़

सी० के० नागराजराव

हिन्दी रूपान्तर

पण्डित पी० वेंकटाचल शर्मा


भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
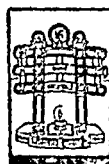
लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक 445

पट्टमहादेवी शान्तला : भाग दो
(उपन्यास)

सी. के. नागराजराव

प्रथम संस्करण : 1985

मूल्य : 55/-

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोधी रोड,
नयी दिल्ली-110003

मुद्रक
अंकित प्रिंटिंग प्रेस
शाहदरा, दिल्ली-110032



आवरण शिल्पी : हरिपाल त्यागी

PATTA-MAHADEVI SHANTALA : (Novel) Part II, by C.K. Nagaraja Rao. Translated by Pt. P. Venkatachal Sharma. Published by Bharatiya Jnanpith, 18, Institutional Area, Lodhi Road, New Delhi. 110003-Printed at Ankit Printing Press, Shahdara, Delhi. First Edition 1985. Rs. 55/-

# पट्टमहादेवी शान्तला

भाग : दो

युवरानीजी के एकाएक प्रस्थान का कार्यक्रम बन जाने के कारण बलिपुर में कोई विदाई-समारोह आयोजित नहीं हो सका। लेकिन मन्दिर, वसति, विहारों में युवराज की कुशलता और युवरानी जी की सुखमय यात्रा की कामना करते हुए पूजा-अर्चा आदि की व्यवस्था की गयी थी। यात्रा को सुविधाजनक बनाने के लिए रास्ते में जगह-जगह रुकने और घोड़ों के बदलने आदि की व्यवस्था के लिए एक टोली पहले ही निकल चुकी थी। वर्तमान स्थिति में जितनी जल्दी हो सके उन्हें दोरसमुद्र पहुँचना ही था, इसलिए ठीक-ठीक व्यवस्था के लिए स्वयं हेग्गड़े मारसिंगय्या साथ निकले। रक्षा दल की निगरानी करने के लिए मायण उनके साथ था।

किसी तरह की औपचारिक बातों के लिए मौक़ा ही नहीं मिल सका था, इसलिए एक-दूसरे के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ मौन भाव से ही की गयीं। युवरानी ने हेग्गड़ती को और हेग्गड़ती ने युवरानी को विदा किया। दोनों की आत्मीयतापूर्ण प्रीति देखते ही बनती थी। शान्तला और बिट्टिदेव तथा रेविमय्या और शान्तला की परस्पर विदाई भी एक अपूर्व आत्मीयता के साथ मौन ही मौन हुई। जो बात परस्पर सम्भाषण से भी असम्भव थी, इस मौन ने कह दिया था।

बलिपुर से रवाना होकर राज-परिवार निश्चित समय से बहुत पहले ही दोरसमुद्र पहुँच गया। आदेशानुसार उनके आगमन की कोई पूर्व सूचना नहीं दी गयी थी। इसलिए राजमहल पहुँचने पर वहाँ किसी तरह के स्वागत समारोह की व्यवस्था नहीं हो पायी। सो, दण्डनायिका भी सजधज के साथ अपनी बेटियों को लेकर उनके स्वागत के लिए वहाँ उपस्थित नहीं हो सकी। अवसर ही कहाँ मिला? फिर दण्डनायिका को जो परेशानी हो सकती थी, उससे भी वह बच गयी। मन-ही-मन उसने महावीर स्वामी को बार-बार प्रणाम किया। वास्तव में वह इस बात से परेशान थी कि अब युवरानी को वह मुँह दिखाये तो कैसे। उसके भाई ने कहा भी था, "तुम

ऐसा बरताव करो जैसे कुछ हुआ ही नहीं। यदि ख़ुद बात छेड़ें तो साफ़ बता देना, दुराव-छिपाव की ज़रूरत नहीं है। तुम स्वयं बात मत छेड़ना।" परन्तु उसके भीतर तो आग जल रही थी। बात यहाँ तक बढ़ेगी उसने सपने में भी नहीं सोचा था। उसने समझा था कि उसके सिवाय और इसे कोई नहीं जानता। अब उसे अहसास हो रहा था कि उसका ऐसा समझना गलत था। अपने भाई ने ही गुप्तचर लगा दिया यानी वह अपने भाई का विश्वास भी खो बैठी है। यह सब वह अच्छी तरह जान चुकी थी : "मैंने कैसा काम किया? मेरी विवेकबुद्धि तब कहाँ खो गयी थी? मैं किसी को अपने बराबर की नहीं मानती थी, इतराती थी। अब शरम से सिर झुकाकर चलना पड़ा न! इस सबका कारण है यह हेग्गड़े परिवार। मेरे पर्वजन्म के शत्रु हैं ये। यह तो मेरा भाग्य ही कहो कि युवराज को देखने का बहाना बनाकर हेग्गड़ती और उसकी लड़की यहाँ नहीं आयी। युवरानी के मन को मेरे खिलाफ भरने वाला फिलहाल कोई नहीं। उस वामशक्ति पण्डित ने जो कालावधि बतायी थी, वह भी अब पूरी हो गयी। इस 'सर्वतोभद्र' यन्त्र के प्रभाव से शायद आगे योग्य फल मिले! अपने भीतर के भय को दूर करके भाई के कहे अनुसार चलने का प्रयत्न करना चाहिए। यों तो मेरे ख़्याल में उनकी भी सहानुभूति है। और फिर, युद्ध भूमि से लौटने के बाद पद्मला को देखने के लिए राजकुमार आयेंगे ही। तब स्थिति समझकर आगे का कार्यक्रम निश्चित करना होगा। इस बीच कुछ साहस करके एक बार युवरानी को देख आने की रस्म भी पूरी कर लूंगी। और, तब चामला से कहकर छोटे अप्पाजी के द्वारा कुछ बातें जानने का प्रयत्न करूँगी।...युवरानी से मिलने जाऊँगी तो तीनों बेटियों को साथ लेकर ही जाना ठीक रहेगा। अकेली जाऊँगी तो पता नहीं, बात कहाँ से कहाँ पहुँच जायेगी। ऐसा मौक़ा ही क्यों दूं। दण्डनायक के राजमहल से लौटने के बाद इस बात का निर्णय करेंगे कि कब युवरानी से मिलने जायें..." उस तरह पता नहीं, दण्डनायिका चामव्वे ने क्या-क्या सोच रखा था?

परन्तु युवराज के दर्शन हुए बिना युवरानीजी किसी से नहीं मिलेंगी—इस बात की सूचना मिलने के कारण चामव्वे को राजमहल जाने का अवसर ही नहीं मिला। उसने सोचा कि क्यों न किसी तरह से कवि नागचन्द्र को बुलवाकर उनसे वहाँ की बातों का कुछ पता लगाया जाये! उसके भाई ने यद्यपि स्पष्ट कहा था कि ज़्यादा मीन-मेख में नहीं पड़ना, शान्त रहना फिर भी भला वह कैसे शान्त रह सकती थी! मालकिन की आज्ञा पाते ही सेवक दडिगा कवि को बुलाने चला गया।

कवि नागचन्द्र बुलावा पाते ही चले आये। दण्डनायक परिवार का नमक खाया है, यह बात वह कभी नहीं भूल पाते थे। यूँ दण्डनायक से उनकी मुलाकात हो चुकी थी। लेकिन उन्होंने घर पर आने के बारे में कुछ नहीं कहा था, इस-

लिए दण्डनायिका चामव्वे के इस बुलावे से कविराजजी कुछ परेशान हुए। जैसे दोरसमुद्र अचानक छोड़कर चले आने के कारण, वह दण्डनायिका से नहीं मिल सके थे। अब कुछ भी हो, जाकर दण्डनायिका से मिलना कर्त्तव्य समझकर बुलावा आते ही वह चले आये। जब वह आये तो दण्डनायकजी घर पर नहीं थे। राजमहल गये थे। बच्चों का शिक्षण कार्य चल रहा था।

दडिगा ने कविराज को उचित आसन पर बैठाकर दण्डनायिका को ख़बर भिजवा दी। दण्डनायिका आयी।

कवि ने उठकर प्रणाम किया।

"बैठिए, सब कुशल तो है?" दण्ड नायिका चामव्वे ने पूछा।

"सब कुशल पूर्वक हैं। आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है क्या? कुछ थकी-थकी सी दिखायी पड़ रही हैं। तबीयत कैसी है?" कवि नागचन्द्र ने औपचारिकता पूरी की।

"कुछ नहीं, सब ठीक है आप बैठिए, खड़े क्यों हैं।" कवि नागचन्द्र बैठ गये। चामव्वे ने भी आसन ले लिया। फिर कुछ क्षणों का मौन। बातचीत कौन शुरू करे? जिन्होंने बुलवाया उन्हीं को आरम्भ करना चाहिए न? कविजी इसी प्रतीक्षा में बैठे रहे। चामव्वे को जब कुछ समझ में नहीं आया तो कवि से कुछ न कहकर नौकरानी देकव्वे को आदेश दिया, "देखो, कविजी आये हैं, गरम-गरम दूध लाओ इनके लिए!"

'आपने बुलाया था' कहकर बात शुरू करने के लिए कवि ने एक बार सोचा भी लेकिन एकाएक फिर मन बदल गया। चुप रहना ही उचित समझा।

देकव्वे जल्दी से दूध रखकर चली गयी।

चामव्वे ने कहा, "लीजिए, दूध लीजिए!"

दूध का कटोरा हाथ में लेकर कवि ने कुछ संकोच के साथ इधर-उधर देखा।

"क्यों क्या चाहिए था?" दण्डनायिका ने पूछा।

"कुछ नहीं, आपके लिए नहीं आया, इसलिए..."

"अभी-अभी ही लिया है मैंने, आप लें।"

कवि झिझकते हुए दूध पीने लगे।

"बलिपुर कैसा है, कविजी?"

"क्यों, दण्डनायिकाजी ने बलिपुर नहीं देखा है?"

"अगर देखा होता तो आपसे क्यों पूछती?"

"बहुत ही अच्छी जगह है। शिल्प कला का तो जन्मस्थान है। और फिर वहाँ के लोग बहुत अच्छे लगे मुझे। छोटे से लेकर बड़े से बड़े, हेग्गड़े तक—सभी बहुत ही सुसंस्कृत, बहुत ही अच्छे लगे हैं। वहाँ की परम्परा ही शायद ऐसी है।

विद्या के लिए वहाँ प्रथम स्थान है। विहारों में, मठ-मन्दिरों में विद्यार्जन की पर्याप्त सुविधाएँ हैं। मुझे बहुत ही पसन्द आया वह स्थान। वहाँ का छिपाव-दुराव रहित खुला सरल जीवन और वहाँ के लोगों में आपस का विश्वास! ऐसा निष्कल्मष जीवन अन्यत्र देखते नहीं मिलता। हेग्गड़तीजी का दण्डनायिकाजी के लिए वैयक्तिक रूप से एक निवेदन भी है कि आप सब एकबार बलिपुर पधारने की कृपा करें। दण्डनायिकाजी के पास निमन्त्रण भेजने की उन्होंने सोची भी थी, परन्तु प्रस्तुत संदर्भ में ऐसा करना उचित नहीं होगा—यह सोचकर मुझसे यह विनती आप तक पहुँचाने को कहा है। 'युवराज के लौटने पर सब तरह से यहाँ की व्यवस्था कर लेने के बाद, या अगली बार तारा भगवती के उत्सव के अवसर पर आप लोग यहाँ अवश्य पधारें'—यह उनकी आकांक्षा है। और हाँ, हेग्गड़ेजी भी स्वयं दण्डनायकजी से निवेदन करेंगे।

"देखेंगे, दण्डनायकजी का सहारा मिले तभी कुछ सम्भव होगा। उनके बिना मन-मरजी जहाँ कहीं जाना-आना नहीं हो सकेगा, कविजी। और फिर महाराज··· वह भी तो दण्डनायकजी को अपनी आँखों के सामने ही रखे रहना चाहेंगे, कहीं दूर नहीं जाने देंगे।"

"महाराज की ऐसी चाह—यह भी तो महाभाग्य ही है, दण्डनायिकाजी।"

"सो तो ठीक है। ऐसा न होता तो दण्डनायकजी तो अब तक···"

"उनकी निष्ठा और विश्वास ने ही उन्हें इस पद पर पहुँचाया है, दण्डनायिकाजी। बड़ी महारानीजी का इतना स्नेह अन्य किसी पर क्यों नहीं हुआ?"

"सो तो ठीक है, पोय्सल वंश के प्रति मेरे मायकेवाले और दण्डनायकजी के घरानेवाले सदा ही निष्ठावान् रहे हैं।"

"आप सबके ही कारण इस राजघराने की यत्किंचित् सेवा करने का मुझे भी अवसर प्राप्त हुआ—हालांकि आपके सामने ही ऐसा कहना ठीक नहीं जँचता, आपके तथा दण्डनायकजी के प्रति मैं बहुत ऋणी हूँ।" कवि ने कृतज्ञता के स्वर में कहा।

"ठीक है। अब आपको चाहिए कि इस ऋण को राजकुमारों की प्रगति के लिए परिश्रम करके चुका दें।"

"यथाशक्ति मैं यही प्रयत्न कर रहा हूँ।"

"ठीक है। बलिपुर आपको पसन्द आया फिर भी वहाँ बेचारी युवरानीजी को बहुत तकलीफ हुई होगी। हुई होगी न?"

"जहाँ तक मैं जानता हूँ, ऐसा कुछ नहीं हुआ है। फिर भीतरी बातें कौन जाने!"

"बड़े स्थानों में रहनेवालों के लिए जैसी व्यवस्था होनी चाहिए वह छोटी जगहों पर नहीं हो सकती। सब तरह से व्यवस्था करने की प्रबल इच्छा होने

पर भी वैसा नहीं हो पाता।"

"वहाँ ऐसी स्थिति का अनुभव ही नहीं हुआ, दण्डनायिकाजी। इतना ही नहीं, सुनते हैं कि पहले वहाँ चालुक्य पिरियरसीजी भी रहीं। सो ऐसे अवसर पर क्या और कैसी व्यवस्था होनी चाहिए इसकी उन्हें जानकारी भी है।"

"चालुक्य पिरियरसी वहाँ पिरियरसी बनकर नहीं, वरन् एक साधारण अधिकारी की गृहिणी की तरह रहीं हैं। हेग्गड़े वग़ैरह को तो श्रीमान् युवराज के वहाँ पहुँचने के बाद ही मालूम हुआ कि वे चालुक्य पिरियरसी हैं।"

"मुझे ये सब बातें मालूम नहीं।"

"ऐसी बातों को कहेगा भी कौन? बड़े लोगों का नाम ही बार-बार लिया जाता है क्योंकि इससे उन्हें फायदा होता है।"

"हो सकता है। जब तक हम रहे शायद एकाध बार कभी उनकी बात उठी हो, बस।"

"आश्चर्य है! तब तो यही सोचना होगा कि युवराज और बड़े राजकुमार के युद्ध में जाने की बात शायद ही होती हो!"

"यह बात रोज तो नहीं उठती थी, फिर भी कभी-कभी किसी प्रसंग को लेकर चर्चा आ जाती थी। खासकर बड़े राजकुमार के युद्ध में जाने से सबको किसी-न-किसी तरह की चिन्ता तो रहती ही थी।"

"राजकुमार के युद्ध में जाने से युवरानीजी का चिन्तित होना स्वाभाविक ही है।"

"सन्निधान से भी अधिक चिन्ता हेग्गड़े दम्पती को रही। युद्ध शिविर से जैसे ही पत्र-वाहक आता, वे सबसे पहले राजकुमार के ही बारे में दर्याफ़्त करते, बाद में युवराज के बारे में पूछते।"

"जन्म देनेवालों से अधिक इन्हें चिन्ता?"

"उनकी ऐसी आत्मीयता वास्तव में अन्यत्र दुर्लभ है।"

"मालूम पड़ता है, लोगों को अपना बनाने में यह हेग्गड़े परिवार सिद्धहस्त है।"

"उनका व्यवहार ही ऐसा है, दण्डनायिकाजी। हर किसी को उनसे अपनापन हो जाता है।"

"सच है, कवि जी। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं स्वभाव से ही किसी से ज़्यादा मेल-मिलाप नहीं रख पाती। फिर भी उन्हें अपने घर बुलाकर उनका आदर-सत्कार करने की इच्छा है।"

"हेग्गड़तीजी आपके प्रेमपूर्ण आतिथ्य को आज तक नहीं भूलीं। आपने जो उपहार दिया था, उसपर उन्हें बड़ा ही गौरव है।"

"यह सब आपको कैसे मालूम?"

"उस दिन ओंकारेश्वर के मन्दिर में कार्तिक दीपोत्सव का आयोजन था। इस अवसर पर युवराज और राजकुमार और···और डाकरस—इन सबकी कुशल-कामना के लिए विशेष पूजा-अर्चा की व्यवस्था की गयी थी। हम सब वहाँ गये थे। उस दिन वे और उनकी बेटी, दोनों ने उन्हीं वस्त्रों को धारण किया था जिन्हें आपने भेंट किया था। उस समय हेग्गड़ती ने युवरानीजी को बड़े उत्साह के साथ बताया था कि वह पीताम्बर दण्डनायिकाजी की आत्मीयतापूर्ण विदाई की भेंट है।"

"ऐसा है! आश्चर्य!"

"मुझे ऐसा नहीं लगता। इस तरह का कृतज्ञता ज्ञापन तो उनका सहज स्वभाव है।"

"आप उनके निकट रहे। आपको उनके स्वभाव का अच्छा परिचय है। मेरी तो उनसे एकाध ही बार भेंट हुई, सो भी तब जब वे बड़े राजकुमार के उपनयन में यहाँ आयी थीं। तब एक बार मैंने उन्हें देखा था। दूसरी बार जब आयी थीं तब हमारी चामला और उनकी बेटी के बीच विशेष परिचय हुआ था, और तभी कुछ अधिक निकट से उन्हें देखने का मौक़ा मिला था।'

"हाँ, एक बार नाट्यम् के बारे में बात उठी तो उस समय उनकी बेटी ने आपकी बेटियों के गुरु उत्कल के नाट्याचार्य के मृदंग-वादन के बारे में बहुत प्रशंसा की थी और कहा था कि पैरों के गति-विन्यास को वैखरी प्राप्त करनी हो तो मृदंग का वादन उस स्तर का होना चाहिए। मृदंग-वादन की बहुत प्रशंसा कर रही थीं वह।"

"दण्डनायकजी साधारण व्यक्ति को बुलवाकर कहीं बेटियों को शिक्षा दिलायेंगे? ऐसा हो सकता है? और हाँ, अब बेटियों को साहित्य, व्याकरण, नाटक और अलंकार की शिक्षा देने के लिए हमने एक कवयित्री को भी नियुक्त किया है।"

"वे कहाँ की···?"

"वह इस बारे में कुछ भी नहीं बतातीं। शायद उनके अपना कोई नहीं। आश्रय की खोज में यहाँ आयी थीं। लड़कियों को पढ़ाने लायक कोई वृद्ध पण्डित तो मिले नहीं। चढ़ती उमर की लड़कियों को पढ़ाने के लिए कोई महिला ही हो, यह सोचकर दण्डनायकजी ने अच्छा समझकर उन्हीं को नियुक्त किया है। उन्हें तो बस अपने काम से काम है। लोगों से विशेष मिलती-जुलती भी नहीं। बड़े ही गम्भीर स्वभाव की हैं।"

"बहुत अच्छा। बेटियों को उच्च शिक्षा मिलनी ही चाहिए।

"वह हम कैसे जान सकेंगे? आप ही कहें उनसे।"

"बालिकाओं की पढ़ने में रुचि बढ़ती है तो समझ लेना चाहिए कि गुरु अच्छे

हैं। बच्चियाँ क्या कहतीं हैं ?"

"वे तो उन्हें छोड़ती ही नहीं, उनसे लगी ही रहती हैं।"

"तब तो समझना चाहिए कि शिक्षण संतोषजनक ढँग से चल रहा है।"

"दण्डनायकजी भी यही कहते हैं, फिर भी आप कभी एक बार दर्याफ़्त करें तो उत्तम होगा।"

"अपरिचितों के कार्य के विषय में हस्तक्षेप करना अच्छा नहीं, दण्डनायिका-जी। वह भी ऐसी हालत में जबकि उनका स्वभाव ही किसी से मिलने-जुलने का नहीं।" कविराज ने कहा।

"मैं परिचय करा दूँगी। बाद में सब सहज भाव से आप ज्ञात कर लेंगे।"

"यदि उनकी ऐसी इच्छा बनती है तो इससे दोनों का लाभ हो सकेगा। वास्तव में, इस बार बलिपुर हो आने से, वहाँ के कवि बोकिमय्या, स्थापत्यकार दासौज, शिल्पी नाट्याचार्य गंगाचारी आदि के साथ विचार संगोष्ठी से अपनी ज्ञान सम्पदा को बढ़ाने में मुझे बहुत सहयोग मिला। इसलिए साहित्य-सेवियों से परिचित होने से मिलने वाले लाभ को मैं समझता हूँ। कृपया पूछ लें, यदि वार्ता की उनकी इच्छा हो तो मैं तैयार हूँ।"

"मैं दर्याफ़्त करूँगी। अच्छा, यह तो बताइये कि युवरानी जी के साथ हेग्गड़े-जी के परिवार के लोग क्यों नहीं आये ? उन्हें आना चाहिए था न ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"शायद लड़की के विवाह का प्रसंग रहा होगा।"

"ऐसी कोई भी बात सुनने में तो नहीं आयी। ऐसा कोई समाचार दण्ड-नायिकाजी को सुनने में आया है क्या ?"

"नहीं, कुछ नहीं। लड़की व्याह के योग्य हो गयी है, इकलौती बेटी है, कहीं किसी अच्छे, योग्य वर को देख रखा होगा ऐसा मुझे लगता है।"

"ऐसा कुछ होता तो मालूम न पड़ता ?"

"अच्छा वर मिल जाय तब तो। मैंने कई बार सोचा है, कोई योग्य वर हमारी नज़र में आये तो उन्हें सूचित करें। परन्तु पहले से ही यदि उन्होंने कहीं निश्चय कर लिया हो तो···।"

"जहाँ तक मैं समझता हूँ, वे अभी विवाह की बात पर विचार ही नहीं कर रहे हैं। फिर भी, दण्डनायिकाजी अगर बतायें तो वे स्वीकार भी करेंगे।"

"भई उसमें क्या ! कोशिश करेंगे। बड़ी अक़्लमंद लड़की है। हर कोई यही चाहेगा कि ऐसी लड़की को कोई अच्छा वर मिले।"

"वह लड़की केवल अक्लमंद ही नहीं, विरल भी है, दण्डनायिकाजी। बहुत प्रतिभाशाली है। बहुत तेज़ बुद्धि है उसकी। किसी भी विद्या को वह यों ही सीख लेती है। संगीत-साहित्य ही क्या, अब तो वह शस्त्र-विद्या में भी बड़ी

निपुण हो गयी है।"

सुनकर दण्डनायिका चामव्वे जोर से हँस पड़ी।

कवि नागचन्द्र को बात का रुख कुछ बदला-सा मालूम पड़ा। बातों की गति ज़ोर पकड़ रही थी इसलिए उन्होंने बोलना बन्द करके दण्डनायिका की ओर देखा।

"बड़े अच्छे कवि हैं आप! कहते हैं कि लड़की शस्त्र-विद्या में बड़ी निपुण है। अरे भाई उसके बाप ने इकलौती बेटी समझकर उसके हाथ में तलवार पकड़ा दी होगी। बस इतने से ही वह निपुण हो गयी। फिर वह तो कोमल स्वभाववाली लड़की है। आमतौर पर स्त्रियाँ कोमल ही होती हैं। शस्त्र-विद्या की उन्हें क्या जरूरत? क्या उसे कहीं युद्ध करने जाना है, बड़ी-बड़ी मूछोंवाले इन पुरुषों के होते हुए?"

"आपकी बात सच है। नारी को युद्ध में जाने का मौक़ा ही कम मिलता है। परन्तु हेग्गड़ेजी की लड़की के बारे में मैंने जो कहा वह सोलह आने सच है, इसमें अतिशयोक्ति नहीं।"

"कविजी, मुझे तो आपकी बात पर विश्वास नहीं होता।"

"छोटे अप्पाजी के बारे में आपके क्या विचार हैं?" कवि ने पूछा।

"सुना है वे बहुत तेज़ बुद्धिवाले हैं। ख़ुद दण्डनायकजी उनके हस्तकौशल की बड़ी प्रशंसा करते हैं।

"उन्हीं को अगर इस लड़की ने हरा दिया हो तो?"

"एँ, ऐसा! वे दोनों भला क्यों लड़ पड़े?"

"वह एक स्पर्धा थी।" और कवि नागचन्द्र को उस स्पर्धा के बारे में जो कुछ मालूम था, उसे बड़े ही दिलचस्प ढंग से सुना दिया। सुनकर चामव्वे दंग रह गयी।

कुछ क्षण के लिए खामोशी-सी छा गयी। बात बन्द होने पर कवि को कहने के लिए कुछ सूझा नहीं। अपने चल देने की इच्छा को कैसे प्रकट करें यही सोच रहे थे। इधर-उधर देखा। अपना उत्तरीय उठाया और धीरे से बोले, "दण्ड-नायिकाजी का बहुत समय मैंने ले लिया। अब आज्ञा हो···"

"कुछ नहीं। वाकई यह आश्चर्य की बात है। मेरी अक्ल को कुछ सूझता नहीं, कविजी। अच्छा यह बताइए कविजी, नारी के लिए सचमुच यह सब चाहिए क्या? क्या हेग्गड़ेजी की अक्ल मारी गयी है जो उस लड़की को शस्त्र विद्या सिखा रहे हैं?"

"दण्डनायिकाजी, मैं इस बारे में क्या कह सकता हूँ।"

"जिस विद्या का उपयोग कर नहीं सकते उसे सीखकर भी क्या? हमारे देश में शस्त्र-विद्या सीखकर पहले कभी कोई नारी युद्धभूमि में नहीं उतरी। ऐसी

कोई घटना आपको याद है ?"

"पौराणिक कथा-गाथाओं में यत्र-तत्र ऐसा उल्लेख मिलता है। परन्तु जहाँ तक मैं जानता हूँ, अब तक के इतिहास में किसी नारी के युद्धभूमि में उतरने की बात नहीं है। आप शायद ठीक ही कहती हैं कि जिस विद्या का उपयोग नहीं, उसे सीखने का भला क्या प्रयोजन !"

"तब फिर इस विद्या के सिखाने में यह दिलचस्पी क्यों ?"

"मुझे भी नहीं मालूम, दण्डनायिकाजी।"

"मेरी भी समझ में कुछ नहीं आ रहा। किसी लक्ष्य के बिना कोई इस तरह के काम में व्यर्थ ही अपना समय नष्ट नहीं करता। अच्छा कविजी, आपको कष्ट दिया। आप जाना चाह रहे हैं।"

"कष्ट किस बात का ? यहाँ आना मेरा कर्त्तव्य था। अच्छा चलता हूँ।"

कवि नागचन्द्र के चले जाने पर चामव्वे वहाँ से उठी और अन्दर की ओर के बड़े प्रकोष्ठ में जाकर झूले पर बैठ, हल्के-हल्के पैंग भरती, कवि की बातों को मन-ही-मन दुहराती गम्भीर हो गयी। उसके दिमाग़ में उन हेग्गड़े दम्पती की ही बातें उमड़-घुमड़ रही थीं। उसे लगा वे शतरंज का खेल खेल रहे हैं। वे लोग ज़रूर किसी बड़े लक्ष्य को साधने के लिए ही यह सब चाल चल रहे हैं। कितनी रहस्यमय गति है इन लोगों की ! शस्त्र-विद्या का यह शिक्षण···राजकुमार को हरा देना···निश्चित ही किसी भावी घटना के बीज छिपे हैं। जो भी हो, यह रहस्य खुलना ही चाहिए। इसका पता न लगा लूँ तो मैं भी दण्डनायिका चामव्वे नहीं।

विचारों में वह इतनी डूब गयी थी कि उसे कुछ ध्यान ही नहीं रहा। वह तब सचेत हुई जब दण्डनायक के आने की किसी ने सूचना दी।

झूले से उतर कर वह दण्डनायक के कक्ष की ओर चल पड़ी। दरवाज़े तक पहुँची ही थी कि दण्डनायक राजमहल के परिधान उतारकर हाथ-मुँह धोने के लिए स्नानगृह की तरफ जाते दिखाई दिये।

पत्नी को देखते ही पूछा, "क्या कुछ कहना था ?"

"कुछ नहीं। स्वामी के आने की ख़बर मिली तो चली आयी।"

"मालूम हुआ कि कवि नागचन्द्रजी यहाँ आये थे ! कुछ ख़ास बात रही होगी।" दण्डनायक ने पूछा।

दण्डनायिका को बड़ा आश्चर्य हुआ—इन्हें कवि के आने की बात मालूम हो गयी। फिर भी सहज ढंग से बोली, "हाँ, आये तो थे। मैंने ही कहला भेजा था। अकारण ही मैंने उनके बारे में कुछ कटु आलोचना की थी न! उस कटुता को दूर करने के उद्देश्य से बुलवाकर कुशल समाचार पूछ लिया।"

"मैंने कवि को देखा तो उन्हें बुलाना चाहा, परन्तु मेरा बुलाना तुम्हें ठीक लगेगा या नहीं यह सोचकर चुप रह गया। दडिगा कहाँ है?"

"क्यों?"

"बलिपुर के हेग्गड़ेजी को बुलाया है। वे जब आवें, आदर के साथ उन्हें अन्दर लिवा लावे। यही कहना है।"

दण्डनायिका ने कुछ नहीं कहा।

"क्यों, क्या बात है? हेग्गड़ेजी का आना तुम्हें पसन्द नहीं?" दण्डनायक ने पूछा।

"आपके राजकार्य क्या होते हैं, मैं क्या जानूँ? मेरा उसके साथ क्या सम्बन्ध···"

"राजकार्य होता तो घर पर नहीं बुलाते। इधर तुमने जो दरार पैदा की है उसे पाटना ही होगा। तुम्हारे भाई की सलाह के अनुसार ही हम यह कर रहे हैं। तुम्हें भी···"

"मैं उनके कहे अनुसार ही तो चलती रही हूँ। हेग्गड़ेजी के लिए विशेष आतिथ्य की तैयारी करनी होगी?"

"नहीं, यह आतिथ्य का समय नहीं। घर पर कोई अतिथि आवे तो सदा की तरह सहज व्यवहार ही उसके साथ होना चाहिए। इसमें किसी दिखावट की ज़रूरत ही क्या है?"

"ठीक, मैं दडिगा से कह दूंगी। आप स्नान कीजिए।"

दण्डनायक चले गये। दडिगा पिछवाड़े में काम पर जुटा था। चामव्वे ने नौकरानी सावियव्वे को उसे बुला लाने के लिए कहकर ख़ुद रसोई में चली गयी।

स्नानगृह से दण्डनायकजी बाहर निकले तो दडिगा सामने था। उसने अभिवादन करते हुए पूछा, "मालिक ने बुलाया है?"

"बलिपुर के हेग्गड़ेजी आयेंगे। उन्हें आदरपूर्वक अन्दर लाकर बारहदरी में बैठाकर मुझे ख़बर कर देना। उनके साथ सम्मानजनक व्यवहार होना चाहिए। वे दूसरे हेग्गड़े लोगों के जैसे नहीं। वे कुछ ख़ास व्यक्ति हैं। हमारे युवराज के बहुत आत्मीय हैं वे। समझे!"

"समझ गया, मालिक।" कहकर वह चला गया।

रसोई से चामव्वे आयी और पूछने लगी, "मालिक का नाश्ता अभी होगा

या हेग्गड़ेजी के साथ ?"

"कैसा करना ठीक होगा ?"

"न न, मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहूँगी। आप हैं, आपके हेग्गड़े हैं। जैसी आपकी आज्ञा होगी, वैसा ही करना मेरा काम है।"

"ऐसी बात है तो जब हेग्गड़ेजी आवें तब साथ बैठकर सहज भाव से कुशल-क्षेम पूछने और बातचीत करने में तुम्हें भी हाथ बटाना होगा।"

"आप दोनों पुरुषों के बीच में मैं···?"

"तो यह नहीं होगा, यही कहना चाहती हो ?"

"ऐसा नहीं, यों ही मैं बीच में क्यों रहूँ ? इसलिए कहा।"

"यही तो तुम गलत सोचती हो। छोटे अप्पाजी के उपनयन के निमन्त्रण-पत्र का जो प्रसंग उठ खड़ा हुआ है, उस बारे में विचार होते वक़्त तुम्हारा उपस्थित रहना अच्छा होगा क्योंकि इस प्रसंग का कितना ब्योरा हेग्गड़ेजी जानते हैं वह अब हमें भी मालूम होना चाहिए। वह मालूम हो जाये तो आगे के लिए कुछ रास्ता निकल आयेगा। अनायास यह मौक़ा मिला है। वह भी इसलिए कि हेग्गड़ेजी युवरानीजी के सुरक्षा-कार्य पर यहाँ आये हैं। समझीं !"

"हूँ, मैं भी उपस्थित होऊँगी, आप दोनों के उपाहार के बाद।"

"वैसा ही करो," कहकर दण्डनायकजी अपने कमरे की ओर चले गये।

चामव्वे भी अपनी कोठरी की ओर चली गयी। वह ख़ुद को इस अनाकांक्षित मुलाकात के लिए पहले से तैयार कर लेना चाहती थी।

निश्चित समय पर हेग्गड़े मारसिंगय्या आ पहुंचे। दडिगा ने मालिक की आज्ञा के अनुसार उन्हें बैठाकर आने की ख़बर भेज दी।

दण्डनायक आये। हेग्गड़े जी ने उठकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया। 'बैठिए हेग्गड़ेजी' कहते हुए दण्डनायकजी हेग्गड़े के पास बगल में बैठ गये। हेग्गड़े दो कदम पीछे हटकर थोड़ी दूर पर जा बैठे। दण्डनायकजी ने तकिये का सहारा ले लिया। हेग्गड़ेजी तकिये से कुछ आगे पाल्थी मारकर बैठ गये थे।

यहाँ किसी तरह के संकोच की जरूरत नहीं, हेग्गड़ेजी। यह घर है। आप मेरे आमन्त्रित अतिथि हैं। मैं दण्डनायक हूँ और आप हेग्गड़े—इसे कम-से-कम यहाँ घर पर तो भूल जाइये।"

"घर हो या बाहर, आप पोय्सल साम्राज्य के महादण्डनायक हैं। मैं कहीं भी रहूँ, आखिर हूँ तो एक साधारण हेग्गड़े ही। और आप, कहीं भी रहें, आपको यथोचित गौरव तो मिलना ही चाहिए। इसे मेरा संकोच न समझें।" विनीत होकर हेग्गड़े ने कहा। उनके कहने में पूरी सहजता थी।

रसोइन देकव्वे एक परात में पानी का लोटा और उपाहार सामग्री ले आयी थी। वहाँ से वह लौट ही नहीं पायी थी कि दण्डनायिका आ पहुंची। आते ही

पूछा, "आपकी बेटी और हेग्गड़जी कुशल तो हैं न ?"

"सब भगवान् की कृपा और आप जैसों का आशीर्वाद है। सब कुशल हैं।"

"लीजिए हेग्गड़ेजी", कहते हुए दण्डनायक ने परात की ओर हाथ बढ़ाया। हेग्गड़े ने भी उनका अनुसरण किया। नाश्ता होने लगा।

दण्डनायिका ने कहा, "हमारे कवि नागचन्द्रजी आप सबकी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे।"

"वह उनकी उदारता है। वे आपके कृपापात्र हैं, राजघराने के गुरु हैं। वास्तव में जो नहीं भी है उसकी कल्पना कर बड़े ही आकर्षक ढँग से चित्रित कर सकनेवाले प्रतिभावान् कवि हैं वे। उनका ऐसा कहना उनके हृदय की विशालता का सूचक है। उनकी इस कृपा के लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।" हेग्गड़े ने कहा।

"वे यों ही किसी की प्रशंसा करनेवाले नहीं। वास्तव में उनकी ऐसी धारणा है, अन्यथा वे कहते ही नहीं। आपकी बेटी की तो वे बहुत ही प्रशंसा कर रहे थे।" दण्डनायिका बोली।

"यों प्रशंसित होना भी भाग्य की बात है, दण्डनायिका जी। यह सब उसे शिक्षा देनेवाले गुरुओं की कृपा है। उनकी शिक्षण कुशलता का ही परिचायक है।"

"फिर भी बलिपुर जैसे छोटे गाँव में भी अच्छे गुरु मिल गये। भाग्य की ही बात है!"

"दण्डनायिका जी, एक बार बलिपुर पधारें और देखें। तब आपको मालूम होगा कि बलिपुर ऐसा छोटा गाँव नहीं। वह कदम्ब राजाओं की दूसरी राजधानी रहा है, इसलिए वहाँ की एक भव्य परम्परा है।"

"कविजी ने भी यही बात कही थी। साथ ही आपके इस आमन्त्रण का भी जिक्र किया था।"

"वह हमारे लिए बड़े सौभाग्य का दिन होगा।"

"हम भी यही समझते हैं। वास्तव में शस्त्र-विद्या पारंगत आपकी इकलौती बेटी के हस्तकौशल को देखने की भी आकांक्षा है", कहते हुए चामव्वे ने अपने पति की ओर देखा।

"क्या कहा, इनकी पुत्री शस्त्र-विद्या पारंगत! दण्डनायिकाजी ने एक नयी बात सुनायी न! यह सच है क्या हेग्गड़ेजी ?" दण्डनायक ने पूछा। उन्हें सचमुच आश्चर्य हुआ था और कुतूहल भी।

"कवि जी झूठ क्यों बोलेंगे। कहा कि एक दिन छोटे अप्पाजी और इनकी बेटी में स्पर्धा चली तो छोटे अप्पाजी करीब-करीब हार ही गये थे। युवरानीजी को समाचार मिला तो दोनों को ताकीद कर दी कि फिर कभी ऐसी स्पर्धा न हो।" दण्डनायिका के कहने के इस ढँग में कुछ ख़ास संकेत था।

"सो तो ठीक है हेग्गड़ेजी, आपने अपनी बेटी को शस्त्र-विद्या सिखाने की बात क्यों सोची ? भला नारियों के लिए यह शस्त्र-विद्या क्यों ?" दण्डनायक ने सहज ही पूछा।

"वह छुटपन में ही सीख लेना चाहती थी। नारी के लिए इस विद्या की ज़रूरत नहीं समझकर ही मैं उसे स्थगित किये रहा। परन्तु एक दिन उसकी इच्छा को पूरा करना ही पड़ा।" हेग्गड़े बोले।

"तो क्या आपकी लड़की आपकी बात को मानती नहीं?" दण्डनायक ने पूछा।

"नहीं, ऐसा नहीं। बल्कि उसके इस विचार को अस्वीकार नहीं किया जा सकता था।"

"ऐसी कौन-सी बात थी ? पहले किसी नारी ने हाथ में तलवार लेकर युद्ध-क्षेत्र में डटकर युद्ध किया हो और ऐसी बात उसे भा गयी हो तब तो शायद ऐसे विचार मन में आते, परन्तु हमने तो ऐसी बात सुनी नहीं !"

"दण्डनायकजी ठीक ही सोचते हैं। ऐसी एक कथा जानकर ही उसने इस विद्या के सीखने के लिए ज़ोर डाला था, इसलिए स्वीकार करना पड़ा।"

"स्त्री के युद्ध करने की बात !" दण्डनायिका ने विस्मित होकर कहा।

"हाँ दण्डनायिकाजी, मुझे मालूम नहीं था। उसी ने बताया।" हेग्गड़े बड़े आश्वस्त होकर बोले।

"वह कौन-सी घटना है ? किसने कही ?" दण्डनायिका ने पूछा।

"कही तो किसी ने नहीं। हाँ, एक शिलालेख की कथा पढ़ी थी उसने।"

"तो यह किस्सा शिलालेख का है। कहाँ का शिलालेख है वह ? किस राजा के समय का है ?" दण्डनायक ने प्रश्न किया।

बेलगोल में सुनते हैं कि यह शिलालेख है। गंगवंशी राजा राचमल्ल के समय का। वह शिलालेख हमारे इस दोरसमुद्र के तालाब को बनवानेवाले 'दोरा' नामक व्यक्ति की बहू सावियब्बे के बारे में है। दोरा के बेटे लोकविद्याधर की पत्नी थी वह। उसका बाप गंगराजाओं का एक महान् योद्धा ख्यातनामा 'बायिक' था। सावियब्बे अपने पति से अपार प्रेम करती थी, इसलिए युद्ध में शस्त्र धारण कर पति की सहधर्मिणी बन युद्ध करती हुई 'बगियूर' नामक स्थान पर उसने अपने पति के साथ ही वीरगति पायी। इस वीरगति के पाने के उपलक्ष्य में विस्तृत विवरण के साथ प्रस्तर पर उत्कीर्ण एक आलेख है वहाँ। सावियब्बे का चित्र भी उत्कीर्ण है उस पर। सावियब्बे घोड़े पर सवार है और हाथ में तलवार है। हाथी पर बैठा कोई शत्रु उस पर शस्त्र वार कर रहा है। यह केवल दो सौ वर्ष पुरानी बात है। कर्नाटक की वीर नारी की वीरगति पाने की रोमांचकारी कथा है यह। इसे ही पढ़कर उसने शस्त्र-विद्या सीखने की हठ की। मैंने भी अनुमति दे दी।

हमारा घराना और उसकी माँ का घराना दोनों योद्धाओं के ही घराने हैं। कल अगर उसकी शादी होगी तो किसी योद्धा के साथ ही होगी, इसलिए उसमें भी सावियब्बे की तरह अपने पति के साथ-साथ रहकर युद्ध करने में समर्थ बनने की इच्छा होना अनुचित नहीं। इसलिए सिखाया। मेरे लिए तो बेटी और बेटा दोनों वही है इसलिए जहाँ तक मुझसे बन सकता है, उसकी इच्छा मैं पूरी करता हूँ।"

"सच है। इकलौती पुत्री होने के कारण आपको ऐसा ही करना चाहिए। मुझे बहुत खुशी हुई यह जानकर। आपकी बेटी की इच्छा के अनुसार ही उसे वीर योद्धा पति मिले, भगवान् ऐसा ही अनुग्रह करें। मेरे दोनों बेटों का विवाह हो चुका है, अन्यथा मैं ही आपकी लड़की को बहू बना लेता।" दण्डनायक ने कहा। दण्डनायिका ने होंठ काट लिया।

"आपकी इस कृपा के लिए मैं कृतज्ञ हूँ। अब तक तो उसका पाणिग्रहण करने वाला भी कहीं-न-कहीं पैदा हो ही गया होगा। और फिर आप ही कहिए, भगवान् की मरजी के आगे हम अपनी चलानेवाले कौन होते हैं?"

"सच है। फिर भी हमें प्रयत्न तो करना ही चाहिए न! कहीं उसके योग्य वर की खोज की है?" दण्डनायक ने प्रश्न किया।

"नहीं, अभी कोई कोशिश नहीं की।"

"यदि आप स्वीकार करेंगे तो हम किसी योग्य सम्बन्ध का पता आपकी तरफ से लगाने की कोशिश करेंगे।"

आपकी कृपा ही हमारे लिए बहुत बड़ी चीज़ है, दण्डनायकजी। चालुक्य पिरियरसीजी ने यही बात कही। उसके सम्बन्ध में सबकी ऐसी सदिच्छा का होना हम अपना सौभाग्य मानते हैं।"

बात न जाने इसी तरह कब तक चलती रहती, कि इतने में दडिगा ने आकर निवेदन किया, "प्रधानजी ने तुरन्त बुलवाया है।"

बात वहीं रुक गयी। हेग्गड़े आज्ञा लेकर चले गये। दण्डनायक भी राजमहल का लिबास पहनकर प्रधानजी के निवास की ओर रवाना हो गये।

दण्डनायिका चामब्बे अकेली बैठी सोचने लगी : कितना घमण्ड! कहता है कि कि पिरियरसी जी इसकी लड़की के लिए योग्य वर की खोज करेंगी। कहावत ही है—'चोर का गवाह गिरहकटा'। किसी वीर-स्मारक का बहाना करके वह किस्सा सुनाने लग गया! इस सबके पीछे निश्चित ही कोई षडयन्त्र है। सम्भवतः उस हेग्गड़ती ने पिरियरसी को भी कुछ करके अपने वश में कर लिया हो। उनको मध्यस्थ कर अपना उद्देश्य साध लेगी। बड़ी चंट औरत है, ऊपर से ही मासूम-सी लगती है। उसके इस वशीकरण मन्त्र का प्रतिकार करना ही होगा। दूसरा कोई चारा नहीं। चामब्बे न जाने कब तक यही सब सोचती रही।

हेग्गड़े मारसिंगय्या अपने मुकाम पर पहुँचे ही थे कि उन्हें युवरानीजी का बुलावा मिल गया। वह सीधे राजमहल की ओर चले गये। रेविमय्या ने हेग्गड़ेजी के आने की ख़बर युवरानीजी को दी और आदेशानुसार अन्दर ले गया।

अन्दर आते ही मारसिंगय्या ने कहा, "क्षमाप्रार्थी हूँ। सन्निधान का जब बुलावा आया था तब मैं अपने मुकाम पर नहीं था इसलिए देरी हुई। दण्डनायकजी के बुलावे पर उनके यहाँ चला गया था। कोई ज़रूरी काम रहा हो और मुझसे देरी हो गयी हो तो माफ़ करेंगी।"

"नहीं, नहीं—ऐसा कोई ज़रूरी काम नहीं था। आज शाम तक युवराज के राजधानी पहुँचने की ख़बर आयी है। उनके यहाँ आने तक आप यहीं रहें। इसलिए कहला भेजा था। इतना ही।"

"शायद इसीलिए प्रधानजी ने भी दण्डनायकजी को बुलावा भेजा था।"

"हो सकता है। फिर यह ख़बर भी है कि प्रभु की तबीयत ठीक नहीं, इसलिए उनकी अगवानी के लिए विशेष समारम्भ न हो, यह आदेश दिया गया है। उनके आगमन के समय की भी सार्वजनिक सूचना न देने का निर्णय किया गया है। फिर भी राजमहल के अन्दर राजकुल की रीति के अनुसार जयमाला पहनाकर तो उनका स्वागत करना ही चाहिए! इस मौक़े पर आप राजधानी में रहकर भी अनुपस्थित रहे तो प्रभु को अच्छा नहीं लगेगा इसलिए प्रभु के पधारने तक आप यहाँ से कहीं न जावें।"

"जैसी आपकी आज्ञा" मारसिंगय्या ने युवरानी को विनम्र जवाब दिया।

"राजकुमारों का पठन-पाठ समाप्त होते ही कविजी को भी यहीं भिजवा दूँगी। नहीं तो अकेले-अकेले ऊब जायेंगे।" कहकर युवरानी चली गयीं। मारसिंगय्या ने उन्हें जाते देखकर उठकर प्रणाम किया। उनके चले जाने के बाद ही यह बैठे। थोड़ी देर में तभी बोम्मला आयी और बोली, "आपको पाठशाला में ही

आने के लिए बुलाया है, कविजी वहीं हैं।"

"अभी राजकुमारों का अध्यापन चल रहा है, बोम्मने ?"

"नहीं, कविजी किसी ग्रन्थ का अवलोकन कर रहे थे।"

"ठीक", कहकर मारसिंगय्या पाठशाला जा पहुँचे।

उन्हें आते देख कवि नागचन्द्र खड़े हो गये और प्रणाम करके बोले, "पधारिए, यूं तो मुझको ही वहां आना चाहिए था। आपको ही यहां बुलवा लिया, क्षमा करें। बैठिए।"

"मुझे प्रतीक्षा करनी है। इसलिए चाहे यहां रहूं या वहां, सब बराबर है। आप बैठिए।" कहकर हेग्गड़े भी बैठ गये।

"कौन-सा ग्रन्थ है यह ?"

"शिवकोटिजी का 'वड्ढाराधने'।"

"जैन-धर्म का ग्रन्थ है ?"

"काव्य-कृतियों में धर्म का संस्कार जुड़ा ही रहता है। जीवन के अनुभव के साथ धर्म की शिक्षा देने पर व्यक्ति के मन पर कहीं अधिक और जल्दी प्रभाव पड़ता है। 'वड्ढाराधने' सुन्दर गद्य में लिखित कन्नड़ ग्रन्थ है। कन्नड़ महाकाव्यों में स्थान पाने योग्य यह एक उल्लेखनीय गद्य कृति है। और यह दूसरा है 'चामुण्डरायपुराण'।"

"इस ग्रन्थ के बारे में, कभी सुना हो ऐसा स्मरण नहीं। हां, चामुण्डराय-पुराण के विषय में हमारी अम्माजी (बेटी शान्तला) को उसके गुरुजी ने बहुत कुछ बताया था।"

"कवि बोकिमय्याजी ने शायद ही इस ग्रन्थ को देखा हो !"

"तो क्या आप सोचते हैं कि अम्माजी को इस ग्रन्थ के विषय में कुछ भी मालूम नहीं ?"

"हाँ। कवि बोकिमय्याजी जो भी विषय जानते हैं उसे अम्माजी को बताये बिना नहीं रहते।"

"यह तो उसका सौभाग्य है। यदि यह ग्रन्थ मिल सके तो इसकी प्रति कराकर इसे आपके पास सुरक्षित वापस भिजवा दूंगा -"

"एक ही प्रति है यह।" कवि नागचन्द्र बोले।

"अगर वापस न आयी तो क्या होगा, शायद कविजी को ऐसी आशंका है !"

"आपके बारे में ऐसी धारणा भला कैसे बना सकता हूँ ?"

"तो फिर ?"

"कल से इसका अध्ययन आरम्भ करने का विचार था।"

"ऐसी बात है तो अभी न दें।"

"फिर आपके लिए···?"

"देखेंगे, अन्यत्र कहीं एक प्रति मिल जाये !"

"इतनी आसानी से नहीं मिलेगी। एक काम किया जा सकता है !"

"क्या ?"

"मैं स्वयं जल्दी से जल्दी इसकी प्रति तैयार कर दूँगा। पर आपके पास वह पहुँचेगी कैसे ?"

"हरकारे तो आते-जाते ही रहते हैं।"

"तब तो अगले माह ही इसकी प्रति आपके हाथ में पहुँच जायेगी।"

"इतनी जल्दी भी क्या है ! आपको जब जैसा अवकाश मिले और जितना हो सके, उसकी प्रतिलिपि करते जायें। इसमें विशेष परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं।"

"परिश्रम निरर्थक नहीं जायेगा, हेग्गड़ेजी। खैर, यह बात मेरे ऊपर ही छोड़ दीजिए।" कहकर कवि नागचन्द्र उस ताडपत्रीय ग्रन्थ को बाँधकर बगल में सरकाते हुए बैठ गये।

दोनों थोड़ी देर तक तो मौन बैठे रहे लेकिन दो आत्मीय जन कितनी देर तक ऐसे बैठे रह सकते थे ? कवि नागचन्द्र ने ही बात शुरू की। कहा, "श्रीमान् ! सुनते हैं, युवराज और राजकुमार आज ही आनेवाले हैं। इसलिए युवरानीजी ने कहला भेजा है कि अध्यापन समाप्त होने पर भी आप यहीं रहें।...इस समय दूसरा कोई कार्य नहीं था इसलिए इस ग्रन्थ को खोलकर पढ़ने बैठ गया।"

"मुझे भी इस बात का पता नहीं था। राजमहल में पहुँचते ही मुझे इसकी सूचना मिली। यह सोचकर कि अकेले बैठे रहने से ऊब जाऊँगा युवरानी ने मुझे आपके पास भेज दिया। मेरे यहाँ आने से आपके अध्ययन में बाधा पड़ी।" मारसिंगय्या ने कहा।

"बाधा पड़ने का सवाल ही नहीं उठता। आपको आश्चर्य होगा, मैंने पता नहीं, कितनी बार इस ग्रन्थ को पढ़ा है। महाकवियों की उत्तम कृतियों को आप चाहे जितनी बार पढ़ें, हर बार आपको उसमें कोई न कोई नयी बात अवश्य मिल जायेगी। इसीलिए पम्प, रन्न, पोन्न और दुर्गासिंह जैसे रचनाकारों की कृतियों को आप चाहे सैकड़ों बार पढ़ें, ऊबेंगे नहीं।" नागचन्द्र ने कहा।

"हमें तो इन बातों की कोई जानकारी रहती नहीं। हाँ, आप जैसे ज्ञानी अगर समझायेंगे तो थोड़ा-बहुत समझ सकते हैं। मुझे बचपन में सीखने का बड़ा चाव था। परन्तु हमारे जीवन का विधान ही कुछ और हो गया जिसके कारण अध्ययन की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाया। इसलिए आप काव्य में रस, ध्वनि आदि के बारे में कुछ बतायेंगे तो हमारी समझ में कुछ नहीं आयेगा। भैंस के आगे बीन बजाने जैसा होगा।"

"वही, जैसे शस्त्रास्त्र चालन में आपने कुशलता पायी, वैसे ही...।"

"मुझमें और आपमें अन्तर है। आप युद्ध न भी करें तो भी आप युद्ध का ऐसा सजीव चित्रण कर सकते हैं जैसे आँखों के सामने ही युद्ध चल रहा हो। ऐसे काव्य की रचना आप कर सकते हैं। परन्तु हम जैसों को तो समझाने पर ही वह समझ में आ सकेगा।"

"यह आपका मात्र भ्रम है। आप समय की कमी के कारण पर्याप्त काव्य पठन नहीं कर पाये हैं। लेकिन आप जब पढ़ने बैठेंगे तो अपने अनुभव के आधार पर भी कविकल्पना की व्याख्या करने लगेंगे।"

"शायद। मगर हम इस तरह का प्रयोग कर नहीं सकते। इसीलिए इस तरह के सभी प्रयोगों की ज़िम्मेदारी आप जैसे मेधावी विद्वानों पर छोड़कर ही तो हम अपने इस लौकिक व्यवहार में पड़े हैं।"

"आप कुछ भी कहिए, हेग्गड़ेजी। यदि आप काव्य-पठन में आज भी लग जायें तो बहुत जल्दी ही इसमें निष्णात हो सकते हैं।"

मारसिंगय्या ज़ोर से हंस पड़े।

"क्या आपको विश्वास नहीं ?"

"मुझे हँसी इसलिए आयी कि आपने कालज्ञानी भविष्यवक्ता की तरह यह बात कह दी। क्या मैं नहीं जानता कि मेरी शक्ति की सीमा क्या है, कितनी है? वाह !"

"मैंने बस यूँ ही कहा था। कालज्ञानी की तरह कोई भविष्यवाणी नहीं की। माता-पिता की समस्त सहज शक्तियाँ, युक्तियाँ, गुण, व्यवहार, इच्छाएँ, अनिच्छाएं बच्चों में संक्रमित होकर रूपायित होते हैं। यदि आपमें काव्य रसास्वादन की शक्ति न होती तो अम्माजी में यह सब कहाँ से आया? हेग्गड़ती-जी केवल पढ़ना मात्र जानती हैं न? यदि उन्होंने अम्माजी की भाँति संगीत सीखा होता तो वे अम्माजी से भी अधिक श्रेष्ठ कलाकार बनी होतीं। ऐसे ही, आप भी साहित्य में निष्णात होते। आप दोनों की सम्मिलित शक्ति अम्माजी हैं। आप दोनों में पृथक्-पृथक् प्रद्योतित होनेवाली सारी विद्याएँ अम्माजी में केन्द्रित होकर प्रकट होनेवाली हैं। फिर उनके अपने पूर्वार्जित संस्कार भी तो हैं। इसीलिए वह शस्त्र-विद्या में भी प्रवीण है।"

"ठीक है। फिर भी कुछ लोग मुझे खब्ती कहते हैं। ऐसे लोगों को समझाना कठिन काम है।"

"तो क्या आप महादण्डनायकजी के यहाँ से होकर यहाँ आये हैं ?"

मारसिंगय्या कुछ बोले बिना प्रश्नवाचक दृष्टि से कवि नागचन्द्रजी की ओर देखने लगे।

"क्यों हेग्गड़ेजी, इस तरह क्यों देख रहे हैं? मुझे मालूम है कि एक वही जगह है जहाँ ऐसी बात हो सकती है। इसीलिए मैंने कहा। अन्यत्र कहीं ऐसी बात

हो तो…"

"आपके इस तरह सोचने का क्या कारण है?" बीच में ही हेग्गड़ेजी ने पूछा।

कवि नागचन्द्र ने वह सारा वृतान्त कह सुनाया जो दण्डनायकजी के यहाँ दण्डनायिका से बातचीत के दौरान चला था। हेग्गड़ेजी ने भी वे सारी बातें बतायीं जो दण्डनायक और दण्डनायिका के साथ बातचीत के दौरान चली थीं।

"तो मतलब यह कि अम्माजी का शस्त्र-विद्या में पारंगत होना दण्डनायिका को पसन्द नहीं। यही समझना चाहिए?"

"न, न, हम क्यों ऐसा सोचने लगे? जानने का सहज कुतूहल भर है। जिसे हमने नहीं किया उसे दूसरे लोग करें तो यह ग़लत है, ऐसा कुछ लोग सोच सकते हैं। इसका कारण वह वातावरण है जिसमें वे पले-बढ़े हैं। उनका आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक है। हेग्गड़े की बेटी को शस्त्र-विद्या से क्या मतलब? कौन नारी इस सब का अभ्यास करती है? नारी के लिए यह सब क्यों? गाना, चौक पूरना, पढ़ना आदि ये सब घर से बाहर की विद्याएँ नहीं। परन्तु शस्त्र-विद्या ऐसी नहीं। सो भी मर्दों के साथ उछल-कूद नारी के लिए अनुचित कार्य है, नारी के गम्भीरोचित स्वभाव को यह शोभा नहीं देता है। जब सबके दिमाग़ में ऐसे विचार जड़ जमाये हुए हैं तब उनके प्रति किसी तरह की प्रतिक्रिया न कर चुप रहना ही बेहतर है।"

"आपका कहना भी एक तरह से सही है। हम हर बात में और बात के कहने के तरीके में अनेक तरह की विचारधाराएँ बनाते हैं। इसलिए बात करनेवालों की ध्वनि के अनुसार उनके अन्तरंग को भी समझ लेते हैं। मुझे जो लगा मैंने कहा।"

"इस सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह सकता। जहाँ तक मैं समझता हूँ उसमें कोई ख़ास बात मुझे नहीं दीखती।"

शायद बात और आगे बढ़ सकती थी कि इसी बीच नगाड़े बज उठे। तुरही की आवाज़ सुन पड़ी। इधर रेविमय्या भागा-भागा आया और कहने लगा, "प्रभुजी पधार रहे हैं।" दोनों जल्दी-जल्दी राजमहल के महाद्वार की तरफ़ चल दिये।

राजमहल की स्थिति दोरसमुद्र के दक्षिण-पश्चिम की ओर थी। इसलिए नगर के विभिन्न भागों से गुजरने की जहमत से बचाने के लिए राजकुमार बल्लाल और डाकरस दण्डनाथ के संरक्षण में सोये हुए एरेयंग प्रभु का रथ नगर के दक्षिण द्वार से प्रविष्ट हुआ। शेष सेना ने पश्चिमोत्तर से होते हुए उत्तर द्वार से प्रवेश किया। सेनाओं के पहुँचने पर ही लोगों को मालूम हो सका कि विजयी युवराज और राजकुमार लौट रहे हैं। यों तो विजयी युवराज के लौट आने की

ख़बर शहर में पहले ही फैल चुकी थी लेकिन कब और कैसे आयेंगे इसका पता नहीं था। सेनाओं के नगर-प्रवेश से पहले ही युवराज का रथ राजमहल के प्राचीर में पहुँच चुका था। राजमहल के पूर्वद्वार पर युवरानी और प्रधान गंगराज की पत्नी लक्कलदेवी ने उनकी आरती उतारी। राजकुमार और युवराज को जय-माला पहनाकर प्रासाद के अन्दर ले जाया गया। युवराज सहारा लेकर धीरे-धीरे कदमों से ही चल पा रहे थे। युद्धशिविर में चारुकीर्ति पण्डित साथ रहे इसलिए युवराज की चिकित्सा तभी आरम्भ हो गयी थी और इस कारण आराम से युवराज को राजधानी पहुँचने में सुविधा हो गयी थी।

सहारा लेते, धीमी गति से युवराज महाराज के कक्ष की ओर बढ़ चले। उनके वहाँ में पहुँचने से पहले ही बल्लालदेव अन्दर जाकर महाराज को युवराज के आने का समाचार सुनाकर, उन्हें प्रणाम कर, आशीर्वाद पा, उनके साथ बाहर की बारहदरी में आ चुके थे। बिट्टिदेव, उदयादित्य, युवरानीजी युवराज के साथ-साथ आये। प्रधान गंगराज और उनकी पत्नी लक्कलदेवी, दण्डनायक मरियाने और डाकरस आदि उनके पीछे चल रहे थे। मारसिंगय्या और कवि नागचन्द्र ने युवराज को देखते ही झुककर प्रणाम किया और प्रभु से सन्तोषपूर्ण भंगिमा पाकर दण्डनायक आदि के पीछे धीरे-धीरे चलने लगे।

महाराज ने युवराज को छाती से लगाया, आँखों से दो-चार बूंदें गिरीं। धीरे से बोले, "भगवान् बड़े दयालु हैं।"

सब लोग जहाँ के तहाँ खड़े रहे। पिता-पुत्र परस्पर आलिंगन में, पुर्नमिलन की ख़ुशी में एक हो गये। युवराज को सहारा देकर वहाँ तक लाने वाला रेविमय्या भी वहाँ से कुछ दूर हटकर खड़ा हो गया था। यह दृश्य देख उसने अपनी आँखें बन्द कीं, हाथ जोड़े और ऊपर की ओर मुँह करके प्रणाम किया।

कुछ देर गम्भीर मौन वहाँ छाया रहा कि तभी महाराज विनयादित्य ने कहा, "युवराज अब आराम करें। कोई उन्हें अब तकलीफ न दे। क्या सब बीता, इसे हम डाकरस और अप्पाजी से जान लेंगे। सभी मन्दिर और बसतियों में पूजा-पाठ की व्यवस्था हो। कल राजमहल की ओर से राजधानी की सारी जनता को भोजन के लिए आमन्त्रित किया जाए।" कहकर युवराज के पास से कुछ पीछे हटकर बोले, "रेविमय्या यहाँ आओ, युवराज को शयनागार में ले जाओ। हम ख़ुद वहाँ आयेंगे।"

रेविमय्या युवराज को सहारा देने पास आया। युवरानीजी, बिट्टिदेव, उदयादित्य भी उनके साथ-साथ अन्तःपुर की ओर चले गये।

बल्लाल ने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी और फिर दूर पर खड़े मारसिंगय्या और कवि नागचन्द्र को देखा। पास आकर नम्रता से पूछा, "सब कुशल तो हैं?"

दोनों ने सिर झुकाकर इशारे से 'हाँ' जताया। "हेग्गड़तीजी और आपकी

पुत्री आयी हैं न ?" राजकुमार ने पूछा।

"नहीं, मैं युवरानीजी और राजकुमारों के साथ आया। दूसरों के भरोसे इस दायित्व को छोड़ देने की मेरे मन ने स्वीकृति नहीं दी।"

"आप लोग कब आये ?"

"दो दिन हुए।"

"रहेंगे न ?"

"ज्यादा दिन नहीं ठहर सकता। प्रभु की आज्ञा मिलते ही लौटने का विचार है। अचानक ही आना पड़ा। यद्यपि वहाँ सिंगिमय्या है, इसलिए विशेष चिन्ता नहीं। फिर भी···"

"प्रभु ने कई बार कहा है कि वे बहुत दक्ष व्यक्ति हैं। वे रहें तो आपके रहने के बराबर ही है।"

"फिर भी सीमाप्रान्त है, बहुत सावधान रहना पड़ता है।"

"सो तो सच है। इस बार युद्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें मालूम हुईं। प्रभु के साथ युद्धभूमि में रहना भी एक बड़ा सुयोग है। युद्ध का विषय ही नहीं, सभी राजनैतिक बातों का तथा इससे सम्बन्धित बड़े-बड़े लोगों से लेकर छोटे लोगों तक सबके बारे में साही बातें मेरे दिमाग़ में स्पष्ट हो गयीं। बहुत-सी बातों की जानकारी प्राप्त करने में सहूलियत हुई। राजधानी में रह जाता तो यह सब कैसे समझ पाता।"

"चलो, अच्छा ही हुआ। राजकुमार शरीर से भले ही बलिष्ठ न दिखें, पर हैं बड़े धैर्यवान इतना तो कहना ही पड़ेगा, क्योंकि जब हमने सुना कि प्रभुजी राजकुमार को युद्धक्षेत्र में ले गये तो हम सब बहुत चिन्तित हो उठे थे। युवरानीजी के बलिपुर में आने पर, समाचार सुनने के बाद ही हमें कुछ धीरज बँधा। जब हमें यह ख़बर मिली कि राजकुमार ही प्रभु के प्राणरक्षक रहे तो हमारी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। हममें एक विश्वास पैदा हो गया कि अब पोय्सल राज्य बेरोकटोक बढ़ेगा।" हेग्गड़े मारसिंगय्या ने कहा।

बात बल्लाल की प्रशंसा की चलने लगी तो उन्हें संकोच हुआ। सो उन्होंने कहा, "भगवान् की जैसी मर्जी होगी वैसा ही चलेगा न! सब भगवदिच्छा है। वास्तव में यह राज्य, इस सिंहासन की उन्नति—यह सब राज्य के प्रति निष्ठावान् और समर्पित संचालक वर्ग के ही बल पर आधारित है, यह बात भी प्रभु ने मेरे भीतर बहुत अच्छी तरह उतार दी है।"

बल्लाल की बात पूरी हुई कि तभी रेविमय्या ने आकर निवेदन किया, "अप्पाजी, युवरानीजी आपको बुला रही हैं।"

"क्या वे प्रभुजी के पास हैं ?"

"नहीं, वे अपने विश्राम कक्ष में हैं।"

"साथ कौन हैं ?"

"कोई नहीं।"

"कोई नहीं ? दण्डनायिका दिखाई नहीं पड़ीं, मुझे तो लगा कि वहाँ वे ज़रूर होंगी।"

"नहीं, वे नहीं आयीं।" रेविमय्या बोला।

"अच्छा चलता हूँ गुरुजी, कल से पढ़ने आऊँगा। आज मुझे विश्राम कर लेने की अनुमति प्रदान करें।"

अब तक इस सारे सम्भाषण को कवि नागचन्द्र मौन ही सुन रहे थे। बोले, "वैसा ही कीजिए।"

बल्लाल अन्तःपुर की ओर बढ़ चला।

बाद में, रेविमय्या ने आगे बढ़कर कहा, "हेग्गड़ेजी ! आपको और कविजी को प्रभु ने बुला लाने का आदेश दिया है।"

और तब वे दोनों भी उसके पीछे चले गये। युवराज के विश्राम-गृह में प्रवेश कर दोनों ने झुककर प्रणाम किया। पलंग पर पैर पसारे तकिये के सहारे बैठे प्रभु ने उन्हें बैठने का इशारा किया। दोनों बैठ गये।

"पोयसल वंश आप दोनों का कृतज्ञ है।" एरेयंग प्रभु ने कहा।

सुनकर दोनों उनकी ओर देखते रह गये।

"हमारी अनुपस्थिति में राजपरिवार की उन्नति एवं सुरक्षा हेतु आप लोगों ने जो श्रद्धा, निष्ठा, आत्मीयता तथा रुचि दिखायी, युवरानीजी ने संक्षेप में ही उसे ठीक और सही ढंग से मुझे बताया है। सामने अपने को अच्छे होने का दिखावा करके पीछे से छुरा भोंकनेवाले लोगों को भी हमने देखा है। हमारी अनुपस्थिति में आप लोगों ने जैसा सुसंगत व्यवहार किया, सुनकर हमें बड़ा गर्व हो रहा है। ख़ासकर इस प्रसंग में कविजी के बारे में एक विशेष बात कहना चाहूँगा। बल्लाल के गुरु होकर उसे आपने इस पोय्सल वंश के योग्य बनाया है। इससे बढ़कर हम और क्या चाहेंगे ? अगर वह आपके हाथ नहीं लगता तो उसका रास्ता ही शायद कुछ का कुछ हो जाता। आपके इस महत्त्वपूर्ण कार्य को मापने का कोई मापदण्ड हमारे पास नहीं है। हमने कभी राजकुमार के बारे में सीधे कोई बात नहीं पूछी। युवरानीजी ही मुझे इस सम्बन्ध में समय-समय पर बताती रही हैं। हमारे हेग्गड़ेजी जैसे इस पोय्सल वंश के निष्ठावान् हैं, वैसे ही आपको सदा सर्वदा इस राजवंश के ही आश्रय में रहना चाहिए। इस बार के युद्ध में हमने विजय पायी। अप्पाजी ने हमारे प्राणों की रक्षा की। पण्डित चारुकीर्ति ने युद्ध-भूमि में साथ रहकर आसन्न मृत्यु से बचाकर हमें यहाँ तक आने में समर्थ बनाया है। पता नहीं अभी और कितने दिन तक हमें इस अशक्त दशा में रहना होगा। भगवान् की जैसी मर्ज़ी ! अब तो हमारे वंश के इन अंकुरों की रक्षा का दायित्व

आप ही लोगों पर है। हम चाहे जीवित रहें या न रहें, आप लोगों से हमें यह आश्वासन मिलना चाहिए कि आप सब इस दायित्व को निभायेंगे।" प्रभु ने कहा।

"हम आश्वासन देते हैं। हम अपना दायित्व अब तक निभाते रहे हैं और जीवन पर्यन्त निभाते रहेंगे। परन्तु प्रभु आज जिस ढँग से कह रहे हैं, यह हमें अच्छा नहीं लग रहा है। हमें इस बात का पूरा विश्वास है कि दीर्घकाल तक हमें प्रभु का मार्गदर्शन मिलता रहेगा। इसलिए प्रभु ऐसा न कहें, यही हमारी प्रार्थना है।" मारसिंगय्या ने कहा।

"यों ही मन में आया कह दिया। अब आगे नहीं कहूँगा।"

"प्रभुजी को अब विश्राम करना चाहिए। आज्ञा हो तो हम चलें।" धीरे से नागचन्द्र ने कहा।

"अच्छा कविजी, शिष्य से भेंट हुई थी?"

"हाँ हुई थी। राजकुमार अब साँचे में ढलकर निखरे सोने की तरह वन गये हैं।"

"इतनी जल्दी आपने सब समझ लिया? वैसे हमें आपसे यह वात सुनकर बड़ा हर्ष हो रहा है।"

युवराज की अनुमति पाकर नागचन्द्र उठ खड़े हुए। हेग्गड़े ने भी उठकर युवराज की ओर देखा।

"अच्छा हेग्गड़ेजी, आपके लौटने के बारे में कल निश्चय करेंगे। युवरानी ने भी कहा है। अब आप भी आराम करें।" प्रभु एरेयंग ने कहा।

दोनों प्रणाम करके चले गये।

रेविमय्या ने अन्दर प्रवेश किया तो प्रभु का आदेश हुआ, "युवरानी को बुला ला।" रेविमय्या के जाने के बाद प्रभु तकिये के सहारे लेट गये और छत की ओर ताकते रहे। थोड़ी ही देर में युवरानी एचलदेवी आयीं और पलंग पर अपने पतिदेव के पास वगल में बैठ गयीं।

"अप्पाजी महाराज के पास गया है?"

"नहीं, अभी तक मेरे पास ही वैठा था।"

"साथ में छोटे अप्पाजी और उदय भी थे?"

"नहीं, वह अकेला ही मिलना चाहता था।"

"मिला?"

"मिला। देखा प्रभु, भगवान् कितने दयालु हैं!"

"ओह, भूल गया, युवरानी वेटे को युद्ध में भेजते वक़्त डर गयी थीं न? सकुशल वहाँ से लौटने पर मातृहृदय को शान्ति जो मिली होगी।"

"ये सव वातें मेरे दिमाग़ में थी ही नहीं। भेजने के पहले कुछ घवराहट तो हुई थी परन्तु वह एक माँ के हृदय की दुर्वलता मात्र थी। अव मुझे एक योग्य

ज्येष्ठ पुत्र मिल गया। इसीलिए कहा कि भगवान् दयालु हैं।"

"माने ?"

"माने यह कि अब वंश के लिए एक योग्य बड़ा पुत्र है और पोय्सल राजा बनने योग्य है। मुझमें जो डर था, यही कि वह योग्य राजा नहीं बन सकेगा, अब दूर हो गया। अब मैं निश्चिन्त हूँ।"

"इतने ही में तुमने अपने लड़के को परख लिया !"

"रोशनी का पता बड़ी आसानी से लग जाता है। प्रभु के साथ इस युद्धक्षेत्र में जो समय उसने व्यतीत किया, इससे उसका बहुत बड़ा उपकार हुआ है। अगर वह हमारे साथ बलिपुर आ गया होता तो आज का अप्पाजी नहीं बन पाता।"

"तो छोटे अप्पाजी में अवांछित परिवर्तन हुआ है क्या ?"

"न, न, ऐसा कुछ नहीं है।"

"तब तो बलिपुर हमारे लिए अनुकूल ही रहा !"

"वह तो ठीक है, परन्तु प्रभु ने जैसा कहा, परिवर्तित वातावरण की ज़रूरत थी। बलिपुर जाते तो जिस परिवर्तन की आवश्यकता थी वह कहाँ से हो पाता !"

"अच्छा, यह बात है। हाँ, दण्डनायिका और उनकी बेटियाँ नहीं दिखाई दीं।"

"प्रभु-दर्शन किये बिना किसी से न मिलने का अपना इरादा मैंने बताया था, इसलिए शायद वे नहीं आयीं। आजकल वे बहुत कम मिलती-जुलती हैं।"

"अप्पाजी ने उनके बारे में पूछताछ नहीं की ?"

"नहीं।"

तभी घण्टी की धीमी आवाज़ सुन पड़ी।

"कौन !" एरेयंग प्रभु ने परदे की ओर देखा। परदा सरकाकर रेविमय्या भीतर आया और बोला, "अप्पाजी दर्शन करना चाहते हैं।"

"बुलाओ।"

रेविमय्या परदा उठाकर बाहर खड़ा हो गया। बल्लाल अन्दर आया और माँ के पास बगल में पलंग पर बैठ गया।

"वे लोग कहाँ हैं ?"—एचलदेवी ने पूछा।

"वे दोनों अभ्यास कर रहे हैं। आज मैंने छुट्टी माँग ली है।"

"ठीक ही किया। आज तुम्हें पूरा आराम करना चाहिए। अच्छा कुछ पूछना था ?"

"हाँ"—लेकिन आगे कुछ कहने से वह हिचकिचाया।

"क्यों ? क्या बात है, कहो !" युवरानी ने पूछा।

"जबसे दोरसमुद्र आये तभी से मेरे मन में एक प्रश्न उठ रहा है। परन्तु उस

सम्बन्ध में किसी से दर्याफ़्त करने की इच्छा नहीं हो रही है। आपसे भी पूछूँ या नहीं—इस पर बहुत विचार किया। बिना पूछे मेरे मन को समाधान भी तो नहीं मिल रहा है, इसलिए···" और बल्लाल कुछ कहते-कहते रुक गया।

"हमसे कहने में संकोच किस बात का, अप्पाजी ?" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"कुछ सहज साधारण बातें कई बार अन्यथा भी समझ ली जा सकती हैं।"

"हम विश्वास योग्य हैं तो अन्यथा समझने का अवसर ही कहाँ ?"

"फिर भी बड़ों के विषय में पूछना···"

"विषय ही प्रधान होता है, बड़ा-छोटा नहीं।"

"माँ और बेटे के इस सम्भाषण को युवराज एरेयंग सुन रहे थे। उन्हें अचानक कुछ सूझ पड़ा। मुँह पर एक हँसी की रेखा खिंच गयी। "समझ गया अप्पाजी, तुम्हारे आने से कुछ ही पहले हमने ही युवरानी से पूछा था"—उन्होंने कहा।

"क्या ?" बल्लाल को आश्चर्य हुआ।

"वही जो तुम्हारे मन में है। राजमहल के सभी कार्यों में जिन्हें सदा उपस्थित रहने की हम सोचते हैं, यदि वे दिखाई न दें तो जो प्रश्न उठ सकता है वही। ठीक है न ?" एरेयंग ने कहा।

बल्लाल उत्तर दिये बिना चुप बैठा रहा।

"अप्पाजी, उनके न आने का कारण हमें मालूम नहीं। हम ही स्वयं इस सम्बन्ध में कुछ दर्याफ़्त करें, यह भी ठीक नहीं। इसलिए तुम्हें स्वयं जाकर सीधे दर्याफ़्त कर लेना होगा।" एचलदेवी ने समझाया।

"इन सब बातों को दर्याफ़्त करने जाना कुछ ठीक नहीं जँचता। होगा कोई उचित कारण इसलिए शायद नहीं आये। धीरे-धीरे अपने आप मालूम हो जायेगा। अच्छा मैं चलूँ !" बल्लाल उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा, अप्पाजी।" एरेयंग बोले।

बल्लाल चला गया।

"देखा ! पहले का अप्पाजी होता तो कहता 'अभी जाता हूँ।' यह संयम उसके लिए बहुत ही अच्छा है। इससे उसकी भलाई होगी। प्रभु अब विश्राम करें। पण्डितजी सूर्यास्त से कुछ पहले आयेंगे—कह गये हैं।" एचलदेवी ने कहा।

"हाँ, ठीक है। एक खास विषय पर विचार-विनिमय करने के लिए बुलवाया था। सिंगिमय्या दक्ष कार्यकर्ता हैं। उन्हीं को बलिपुर क्षेत्र का हेग्गड़े बना दिया जाय और मारसिंगय्या को राजधानी में ही रखें—आज की परिस्थितियों में यह आवश्यक लगता है। युवरानी की क्या राय है ?"

"प्रभु को यदि आवश्यक लगता है तो ऐसा ही करें। मेरे लिए तो यह बहुत

ही सन्तोष की बात है। लेकिन उन्हें बुलवा लिया गया तो किस-किस के मन में क्या-क्या बात उठेगी—इस पर भी ध्यान देना होगा। कभी एकाध बार आये-गये तो उसी पर व्याख्याएँ होने लगीं। हम वहाँ गये, सुनती हूँ इस पर बहुत टीका-टिप्पणी हो रही है।"

"हम पर?"

"ऐसा होता तो एक बार उसके प्रति उदासीन भी रह सकते थे। लेकिन इसके लिए बेचारी हेग्गड़ती को दोषी बनाकर पता नहीं क्या-क्या बातें राजधानी में चल पड़ी हैं।"

"हमसे कहती हो तो कहें।"

"प्रभु से छिपा रखने की बात क्या है? पर आज ही क्यों? धीरे-धीरे सब कुछ बता दूँगी।"

"क्या आप सोचती हैं कि हेग्गड़े को यहाँ बुलवा लेने से भी बातें उठ सकती हैं, टीका-टिप्पणी हो सकती है?"

"अब तक जो हुआ है, इससे तो ऐसा ही लगता है।"

"तो क्या करना चाहिए?"

"सिंगिमय्या वहाँ हेग्गड़े के सहायक बनकर रहें। हेग्गड़े भी वहीं रहें। जब हेग्गड़ेजी यहाँ से लौटने लगें तब उन्हें बता दें कि वहाँ के कार्य निर्वहण के लिए सिंगिमय्या को विधिवत् तैयार करें। तब उन्हें यह बात सूझेगी ही कि शायद स्थान परिवर्तन होना सम्भव है। और, तब तक यहाँ की परिस्थिति का भी अध्ययन कर लिया जाय। इसके बाद प्रभु स्वयं निर्णय कर सकते हैं। अब आइन्दा कुछ भी करना हो, उसके औचित्य के बारे में पहले अप्पाजी को भी समझा दिया करें, ऐसा मुझे लगता है।" युवरानी ने कहा।

"ठीक है। युवरानी की सलाह मान्य है।"

"अब प्रभु आराम करें। मुझे आज्ञा दें।" कहकर एचलदेवी उठ खड़ी हुईं। एरेयंग ने स्वीकृति दे दी। एचलदेवी वहाँ से बाहर निकल आयीं।

"हे भगवान्, मुझे अपने भीतर के भय को किसी से स्पष्ट कहना भी दुस्साध्य हो रहा है! तेरी मर्ज़ी।" यों एरेयंग प्रभु अपने आपसे कहते हुए छाती पर हाथ रख आँखें मूँदें लेटे रहे।

राजकुमार बिट्टिदेव में नया उत्साह, नयी स्फूर्ति आयी थी। अब उसे मालूम हो गया था कि उसका भाई पूरी तरह बदल गया है। इस कारण से उन दोनों में सुप्त भ्रातृप्रेम अब प्रकट रूप से व्यक्त हो उठा था। उनमें आत्मीयता, परस्पर विश्वास की भावना जड़ पकड़ने लगी थी। भैया से बड़े विस्तार से युद्ध के प्रसंगों को वह बड़ी तन्मयता से सुन रहा था। वहाँ की बातें जानकर और भैया के कार्यों का विवरण सुनकर उसके मन में भाई के प्रति आत्मगौरव बढ़ गया।

वास्तव में उसके लिए भाई एक स्वाभिमान का प्रतीक बन गया था। उसे जो आनन्द हुआ उसे उसने छिपाया नहीं, खुलकर व्यक्त किया। छोटे भाई के इस अभिमान की बात बल्लाल को भी अच्छी लगी थी। उसने जान लिया था कि उसका छोटा भैया उससे भी ज़्यादा होशियार है। पहले-पहले एक तरह से घमण्ड था—सो वह भी उसे स्मरण था, परन्तु अब दूसरों के बराबर अपने ही बल पर सिर उठाने की आत्मशक्ति उसमें आ गयी थी। इसलिए अपने छोटे भाई बिट्टिदेव की ग्रहणशक्ति का मूल्य दे सकता था। अपना किस्सा सुना चुकने के बाद उसने छोटे भैया से बलिपुर की बात पूछी—बलिपुर के बारे में, हेग्गड़ेजी के बारे में, हेग्गड़तीजी और उनकी बेटी के बारे में। इस बार बिट्टिदेव को बल्लाल का पूछना सहज ही लगा, उसमें पहले जैसा व्यंग्य नहीं था। वहाँ आज एक अपनापन दिखाई दे रहा था। उसने प्रकारान्तर से अपनी यह इच्छा भी प्रकट की कि ख़ुद एक बार बलिपुर जाना चाहिए। बिट्टिदेव से वहाँ की बातें और विचार सुनकर उसकी यह इच्छा हुई थी।

बिट्टिदेव ने बल्लाल से कहा, "भैया, सुना है कि हेग्गड़ेजी ने महादण्डनायक-जी को और उनके परिवार को बलिपुर आने का आमन्त्रण दिया है। युवराज और माताजी से हेग्गड़ेजी ने इस बात का निवेदन किया है। यदि वे जायेंगे तो आप भी, चाहें तो उनके साथ हो आ सकते हैं?"

"उनके साथ क्यों जायें! क्या स्वयं नहीं जा सकूँगा?"

"क्यों नहीं। लेकिन तब पद्मलादेवी का साथ नहीं रहेगा।"

यह सुन बल्लाल हँस पड़ा। कुछ क्षण बाद बोला, "हाँ, अब मालूम हुआ कि बलिपुर तुम्हें क्यों सुन्दर लगा।" कहते हुए एक नटखटपन की हँसी हँस दी बल्लाल ने।

"तो मतलब हुआ, पद्मलादेवी के साथ जाने की आपकी इच्छा है, यह बात मानते हैं न?" कहकर उसने भैया की तरफ एक परीक्षक की दृष्टि से देखा और पूछा, "माँ से कहूँ?"

"अरे, अब ऐसा काम मत करो। यह सब तो प्रसंग आने पर देखा जायेगा। इसके लिए कुछ अलग से करना उचित नहीं।"

"हाँ तो, बलिपुर के हेग्गड़ेजी ने आपको बुलाया नहीं?"

"बुलाया ज़रूर। जब आप सब लोग वहाँ थे तब, सुना है, उन्हें और उनके सभी परिवार वालों को मेरी ही चिन्ता रही।"

"सो तो सच है। माँ से भी अधिक वे चिन्तित थे। एक बार उन्होंने कहा भी कि तुम्हें युद्धक्षेत्र में भेजने की सम्मति देकर माँ ने ठीक नहीं किया। कहते थे, 'शरीर से दुर्बल हैं तो इससे क्या, आखिर हैं तो राजकुमार, कल सिंहासन पर बैठनेवाले हैं। उन्हें पूर्णायु होकर हमारे बीच रहना चाहिए। अभी युद्ध विषयक

बातों में कम जानकारी रखनेवाले, दुर्बल बालक को युद्धक्षेत्र में खड़ा करना उचित नहीं, आदि-आदि।' माँ ही ने उनको समझाया। कहने लगीं, 'प्रभु से यह आश्वासन मिला है कि सब तरह की सुरक्षा की व्यवस्था की जायेगी और अप्पाजी को किसी तरह का कष्ट नही होगा। इसके अलावा, कल के दिन सिंहासन पर बैठनेवाले को युद्ध आदि के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष-ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, यह समझकर ही युद्ध में जाने की अनुमति दे दी।' माँ के इतना समझाने के बाद उन लोगों को कुछ तसल्ली हुई थी। राजघराने के सभी जनों के हित-चिन्तन में तल्लीन रहनेवाले ऐसे लोग बहुत कम ही मिलेंगे।"

"ऐसा होने पर भी दण्डनायकजी के परिवार के लोग उनके विषय में इतने आत्मीय क्यों नही हैं ? जब भी मौका मिले वे कुछ-न-कुछ विरोध प्रदर्शित करते हुए ही उनके बारे में बोलते रहते हैं। बिना कारण वे ऐसा क्यों कहते होंगे ? कुछ-न-कुछ तो कारण होना ही चाहिए ?"

"हो सकता है। ऐसा कुछ हो तो उन्हें प्रभु से या महाराज से स्पष्ट कहना चाहिए। महादण्डनायक की बात का राजमहल में मूल्य होना ही चाहिए। ऐसा होने पर भी उनके कहने का क्या कारण है ?"

"कुछ भी हो। अब इस बात को यहीं रहने दो। बड़ों की बातों से हमें क्या लेना-देना।" बल्लाल के कहने पर बात वहीं रुक गयी। द्वारपाल विज्जिगा ने आकर कवि जी के आगमन की सूचना दी। बल्लाल उठ खड़े हुए और बज्जिगा को आज्ञा दी, "उदयादित्य को भेज दो।" बिट्टिदेव भी उठ खड़े हुए। कवि नागचन्द्र आये, दोनों ने प्रणाम किया। इस बीच उदयादित्य भी आ गया, उसने भी प्रणाम किया। तीनों बैठ गये। पठन-पाठन रोज़ की तरह फिर शुरू हो गया।

युद्धभूमि से विजय प्राप्त कर लौटनेवाला यह उसका पुराना शिष्य नहीं, बल्कि ज्ञानार्जन में आसक्त एक अन्य ही ज्ञानपिपासु शिष्य है—ऐसा कवि नागचन्द्र को आज बल्लाल के व्यवहार से लगा। विद्या के प्रति बल्लाल की इस अभिरुचि और ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति आदि देख-सुनकर गुरु में जैसे एक नयी स्फूर्ति आ गयी थी। इसका फल भी शिष्यों को मिला।

घाव की पीड़ा से अभी प्रभु एरेयंग चल-फिर नही सकते थे। अच्छी चिकित्सा होने पर भी जांग पर का घाव भरा नहीं था। यह देख चारुकीर्ति पण्डित को प्रभु के रक्त में शर्करा के अंश अधिक प्रमाण में होने की शंका हुई। रक्त में

शर्करांश अधिक होने पर रक्त के घनीभूत होने की शक्ति लुप्त हो जाती है। रक्त परीक्षण के बाद वह शीघ्र ही इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि युवराज को मधुमेह की शिकायत है और इसी कारण से घाव नहीं भर सका था। अनुपान पथ्य बदला गया। सीताफल की पत्ती, चमेली की जड़, कर्कटीमूल मिलाकर दवा तैयार कर देने पर रक्त का शर्करांश कम होता गया और शर्करायुक्त पदार्थों का उपयोग बन्द कर दिया गया।

युवराज के निरन्तर विश्राम करते रहने के कारण उनका अन्तःपुर ही मन्त्रणालय बन गया था। युद्ध से लौटे सात-आठ महीने बीत गये थे। इस बीच महादण्डनायक और दण्डनायिका कई बार आये-गये। कहने की जरूरत नहीं कि उनकी बेटियाँ भी साथ में आया-जाया करती रहीं। बल्लाल भी कभी पखवारे दो-पखवारे में उनके यहाँ हो आया करता। यह सब एक तरह से यन्त्रवत् चलता रहा। कुल मिलाकर यह कहना चाहिए कि दोरसमुद्र में किसी तरह का कोई उल्लास नहीं था।

युवराज का घाव कभी-कभी भर गया-सा लगता, लेकिन वह फिर हरा हो जाता। बेचारे चारुकीर्तिजी चिकित्सा करते-करते हार गये। एक दिन अवसर पाकर युवराज के अकेले होने पर उन्होंने धीरे से निवेदन किया, "प्रभु अन्यथा न समझें। भगवान् को मेरी चिकित्सा शायद पसन्द नहीं हुई, ऐसा लगता है। किसी अन्य क्षेत्र के वैद्य को बुलवा लिया जाय तो अच्छा होगा। मेरे होते किसी अन्य वैद्य को बुलाने की बात—राजपरिवार अन्यथा नहीं लेंगे। चालुक्य चक्रवर्ती के पास दक्ष वैद्य होंगे ही। किसी को भेजकर बुलवा लाना ठीक लगता है। शुरू से इन दिनों में जब मैंने जाना कि मधुमेह के कारण घाव भर नहीं रहा है और जब जो चिकित्सा की उसका सारा विवरण विस्तार के साथ मैंने लिख रखा है। दूसरे वैद्य आवें तो उन्हें इससे सहायता मिल सकेगी। और फिर कोई इसकी अनुरूप औषधि भी उन्हें सूझ सकती है। विलम्ब करना अच्छा नहीं। प्रभु यदि आज्ञा दें तो मैं स्वयं महाराज से निवेदन कर दूँ।"

बात पर विचार-विनिमय करना चाहते हैं, इसीलिए बुलवाया है। शायद यह आपके विश्राम करने का समय होगा, फिर भी बुलवा लिया इस विश्वास से कि आपको कोई परेशानी नहीं होगी। हमारे पण्डित चारुकीर्तिजी किसी दूसरे वैद्य को बुलवाने की सलाह दे रहे हैं। वैसे हम तो उनकी चिकित्सा से संतुष्ट हैं। यदि उनकी चिकित्सा हमारे लिए अनुकूल न बैठी होती तो अब तक हमारा शरीर कब का निश्चेष्ट हो चुका होता। ऐसा कुछ नहीं हुआ। फिर भी जब उन्हीं को अपनी चिकित्सा से सन्तुष्टि नहीं हो रही तो उनके सन्तोप के लिए किसी और को बुलवाना हमें उचित मालूम पड़ता है। आपकी क्या राय है?"

"हम सब लोगों की यही इच्छा है कि आप शीघ्र नीरोग हो जावें। आपके इस तरह चारदीवारी के बीच बने रहने से सारा दोरसमुद्र जैसे उत्साह शून्य हो गया है। सारी जनता अत्यन्त प्रेम और आदर से युवराज और राजकुमार का वीरोचित स्वागत करने के लिए उत्साहित हो प्रतीक्षा कर रही थी। पर यह सब तो दूर, आपके दर्शन तक प्राप्त नहीं हो सके। सबको जैसे पाला मार गया है। इसलिए वैद्यजी की सलाह के अनुसार करना अच्छा होगा। आपकी जैसी आज्ञा होगी, व्यवस्था कर ली जायेगी।"

"हमें सन्तोष है कि आपकी स्वीकृति और सम्मति मिल गयी। एक बात और है। अब इस हालत में हमें दोरसमुद्र ही में रहना होगा। चिण्णम दण्डनाथजी को सोसेऊरु में ही रहना चाहिए। बेलापुरी की रक्षा के काम पर आपके पुत्र डाकरस-जी को रखना होगा। यादवपुर में आपके बड़े पुत्र माचण दण्डनाथजी तो हैं ही। फिलहाल इसी भाग में हमें अधिक बाधाएँ हैं। वैसे डाकरस दण्डनाथजी जहाँ रहें वहीं उनके साथ राजकुमार रहते तो अच्छा होता लेकिन इन परिस्थितियों में ऐसा होना सम्भव नहीं।"

"डाकरस को यहीं बुलवा लें और वेलापुरी में किसी और को भेज दिया जाये"—बीच में ही मरियाने ने कहा।

"वर्तमान परिस्थिति में राजकुमारों के शिक्षण से भी अधिक राष्ट्ररक्षा का कार्य हमारे लिए प्रधान है। इसलिए इस विषय में दूरदृष्टि रखकर सोचना चाहिए।"

"जैसी मर्ज़ी।"

"हमारे साथ अभी किसी का रहना विशेष आवश्यक नहीं लगता। कुमार बल्लाल अब काफी अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। फिर भी अनेक बातों में बराबरी के साथ उनसे बातें करना हमारे लिए कठिन हो जाता है। इसलिए अन्य किसी विश्वासपात्र व्यक्ति को बुलवाना होगा। वे व्यक्ति ऐसे रहें जैसे चिण्णम दण्डनाथ-जी हैं। किसे बुलवायें?"

"प्रभु के दामाद हेम्माड़ी अरसजी आवें तो नहीं बनेगा?"

"सगे-सम्बन्धियों को नहीं रखना चाहिए, दण्डनायकजी। उसमें भी दामाद को तो ऐसे सेवाक्षेत्र में रखदा ही नहीं।"

"तब तो सोचना होगा कि ऐसे और कौन हैं? प्रभु ने तो सोचा होगा?"

"सोचा तो है परन्तु उच्चस्तरीय राजकीय परिसरों मे उस पर कैसी प्रतिक्रिया होगी, इस बात की हमें शंका है। इसलिए ऐसी शंका ही न हो, ऐसी रीति से कार्य का निर्वाह हो तो अच्छा है। इसीलिए आपसे पूछा।"

"तत्काल कुछ भी नहीं सोच पा रहा हूँ। प्रधानजी से भी पूछा होगा प्रभु ने?"

"उनसे भी पूछेंगे। आप भी सोचें, क्योंकि पोय्सल राज्य के आप महादण्डनायक हैं। पिछली बार आपकी सलाह के बिना जब कुछ परिवर्तन किये गये तब आपको भीतर-ही-भीतर थोड़ा दुख-सा हुआ था। आपका मन दुखी हो ऐसा हम नहीं चाहेंगे। इसलिए आपकी सलाह लेकर ही निर्णय करेंगे यही हमारा विचार है।"

"प्रभु का निर्णय हमें शिरोधार्य होगा।"

"प्रभु का निर्णय ठीक न जँचे तो वह किस कारण से ठीक नहीं—इसे कहने का साहस भी आपको होना चाहिए न?"

"कभी-कभी उससे गलतफहमी होने की आशंका बन जाती है।"

"यों समझकर सचाई को कहने से पीछे हटना चाहिए क्या?"

"बुजुर्ग यही कहते हैं कि अप्रिय सत्य मत कहो।"

"सारे राष्ट्र का हित ही जब प्रमुख हो तो कितना ही कटु क्यों न हो, सत्य का प्रकाशन होना ही चाहिए। सत्य को कटु मानकर छिपा रखें और उससे राष्ट्र की हानि हो तो वह अच्छा नहीं। आपने जो कहा वह व्यक्तिगत जीवन अथवा एक परिवार के हिताहित से सम्बन्धित हो तब तो कुछ हद तक ठीक हो सकता है परन्तु जहाँ तक हमारी व्यक्तिगत राय है, सत्य को कभी भी नहीं छिपाना चाहिए।"

"प्रभु ने जैसा कहा, राष्ट्र का हित सर्वोपरि है।"

"इसीलिए तो आपसे सलाह माँगी।"

मरियाने दण्डनायक ने तुरन्त कोई उत्तर नहीं दिया। प्रभु को अच्छा लग सकने वाले किसी व्यक्ति का नाम सुझाया जाय तो उसका क्या परिणाम होगा, कहा नहीं जा सकता। कुछ लोगों के नाम तो उनके दिमाग़ में चक्कर काट ही रहे थे। एक का नाम तो जिह्वाग्र तक पहुँचा भी। उन्हें लगा प्रभु उसे स्वीकार भी कर लेंगे परन्तु वह नाम कह दें और वे कुछ-का-कुछ समझ बैठें तो···? शायद वे कहें कि 'हमें खुश करने के लिए उस व्यक्ति का नाम बता रहे हैं, आपने अपने अनुभव से यह व्यक्त किया ही है कि आपको उनपर विश्वास नहीं', तब मैं क्या

उत्तर दे सकता हूँ ? इस आमन्त्रण-पत्र के प्रसंग में मेरी पत्नी ने जो कुतन्त्र रचा उसके कारण यदि मैंने कोई सलाह दी तो उसका मूल्य भी क्या हो सकता है। यों सोचता हुआ मरियाने दण्डनायक मौन बैठे रहे।

"तत्काल नहीं बूझता हो तो सोचकर बताइए। आपकी सलाह लिये बिना कोई निर्णय हम नहीं करेंगे। क्योंकि कोई भी यहाँ आयें, हमारे लिए आप्त होने पर भी आखिर उन्हें आप ही के अधीन काम करना पड़ेगा। इसलिए आपको ठीक लगनेवाले और आपकी शक्ति पर आघात न करनेवाले व्यक्ति को ही यहाँ बुलवाना चाहिए। ठीक है न ?"

अब कुछ कहे बिना वहाँ से जाना ठीक न समझकर मरियाने ने सलाह दी—"यादवपुरी से सुरिगे के नागिदेवण्णाजी को बुलवा लिया जाय तो कैसा रहे ?"

"आपके लड़के को उन बुजुर्ग के मार्गदर्शन की ज़रूरत है। वे तो वास्तव में ठीक व्यक्ति हैं परन्तु आपके लड़के की शक्ति इससे कमजोर हो जायेगी। यह ठीक नहीं। इससे सीमाप्रान्त की शक्ति ही कमजोर पड़ जायेगी।"

मरियाने ने फिर कहा, "बड़े चलिके नायक को बुलवा लें तो कैसा !"

"अभी हाल के हमले के वक़्त आखिरी दाव में वह जखमी हो गये। उम्र भी ज्यादा है और अब उसे विश्रान्ति की ज़रूरत है। उनका बेटा छोटे चलिके नायक अब वसुधारा प्रान्त में पिता के नाम से वहाँ की निगरानी कर रहा है। अब यह काम उनसे नहीं किया जा सकेगा। आप काफी सोच-विचार कर ही बताइए। हम प्रधानजी से भी विचार-विनिमय करेंगे।" कहकर प्रभु एरेयंग ने घण्टी बजायी।

नौकर ने परदा उठाया और बगल में खड़ा हो गया। मरियाने उठकर बाहर चले आये।

प्रधानजी से प्रभु एरेयंग ने आप्त मन्त्रणा की। महाराज से भी निवेदन किया गया। अप्पाजी से भी विचार-विनिमय कर इस निर्णय के हानि-लाभ के विषय में विस्तार से विवरण देते हुए उसको समझा दिया गया। प्रधानजी से विचार-विनिमय करते समय मरियाने के प्रधान को बताया—"इस नाम को मैं अपनी तरफ से सुझाता तो प्रभु समझते कि मैं केवल उनको खु़श करने के लिए सुझा रहा हूँ। चाहे जो हो, कुल मिलाकर सम्बन्धित सभी लोगों के साथ सभी दृष्टियों से विचार-विनिमय होने के बाद बलिपुर के हेग्गड़े मारसिंगय्या को दोरसमुद्र में बुलवाने का निर्णय हुआ। सिंगिमय्या को बलिपुर हेग्गड़े के स्थान पर नियुक्त करने का निर्णय हुआ। इस परिवर्तन की ख़बर लेकर अगर रेविमय्या जाता तो पता नहीं कितना खु़श हुआ होता। वह ख़ुद प्रभु की सेवा में रहा। इसलिए किसी दूसरे के द्वारा राजाज्ञा बलिपुर में पहुँचा दी गयी।

हेग्गड़े मारसिंगय्या को इस विषय की सूचना मिल गयी परन्तु हेग्गड़ती या

शान्तला को यह सब मालूम नहीं था।

माचिकव्बे को यह मालूम था कि प्रभु का प्रियपात्र बनना बहुत बड़े सौभाग्य की बात है। परन्तु दोरसमुद्र में उनके निवास होनेपर आगे क्या सब हो-सकता है इस बात की शंका भी उनके भीतर घर कर गयी थी। दण्डनायिका चामब्बे के व्यवहार ने उसके सन्तोष को कम कर दिया था फिर भी सब कुछ को अपने में ही समोये घुलते रहना उसका जैसे स्वभाव ही बन गया था। अब भी वही बात थीं: राजाज्ञा का पालन मालिक को करना ही होगा। हमें तो केवल उनके साथ चलना है। हम तो उनके अनुगामी मात्र हैं। इस तरह की बातें मन में बुनते उन्होंने यात्रा की तैयारी की। अपना भाई, उसकी पत्नी सिरियादेवी अब बलिपुर के हेग्गड़े हेग्गड़ती थे। इसलिए उन्हें लोगों के साथ किस तरह का व्यवहार करना चाहिए, यह सब भली-भाँति समझा दिया। बुतुगा बलिपुर में रहने को राजी नहीं हुआ। उसका कहना था, 'जब तक जीऊँ तब तक मुझे मालिक की सेवा में ही जीने दें। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।' वह अपनी ही बात पर जिद्द पकड़कर डटा रहा। इसलिए हेग्गड़े, हेग्गड़ती, शान्तला, बुतुगा, दासब्बे, और कवि बोकिमय्या तथा शिल्पी गंगाचारी ये दोनों सपरिवार, दोरसमुद्र की यात्रा के लिए तैयार होकर निकले। इस तरह बलिपुर में हेग्गड़े मारसिंगय्या के रहते हुए महादण्डनायक का सपरिवार वहाँ जाना नहीं हो सका। फिर उस हालत में बल्लाल का वहाँ जाना भला कैसे सम्भव हो सकता था!

बलिपुर के हेग्गड़े मारसिंगय्या को राजाज्ञा मिलने के पहले ही दण्डनायिका चामब्बे को इस बात की खबर मिल चुकी थी। उसे सबसे ज्यादा परेशानी थी तो यह कि उसके पति ने इस बात की सहमति कैसे दी। कहीं कुछ और पहले यदि उसके कानों में इस बात की ज़रा-सी भी भनक पड़ी होती तो शायद वह कुछ सोचती-करती। लेकिन अब वह इस स्थिति में नहीं थी। और फिर उसके भाई भी इस परिवर्तन से सहमत थे। महाराज भी सहमत हैं। ऐसी हालत में वह अकेली क्या कर सकती थी?

परेशान होने पर भी उसने एक बात अच्छी तरह सोच रखी थी। वह यह कि हेग्गड़े को यदि रहना ही है तो एक अलग निवास की व्यवस्था होनी चाहिए। पहले की तरह हेग्गड़ती युवरानीजी से सटकर अन्तःपुर में तो रह नहीं सकेगी। इसलिए अभी से समझा-बुझाकर मालिक से कहना होगा कि राजधानी के उत्तर-

पूर्व के कोने में उन्हें ठहराने की व्यवस्था करें। यों करने से हेग्गड़ती राजमहल से दूर रहेगी और जब चाहे आ-जा भी न सकेगी। इसी तरह न जाने क्या-क्या सोचती रहती और अपने मन को तसल्ली देती रहती। एकाएक उसके दिमाग में आया—अरे इतनी दूर बलिपुर में रहकर भी इन सब पर जब इस औरत का जादू चल सकता है, फिर यहाँ पास रहकर तो उसकी पाँचों उँगलियाँ घी में समझो।" उसका मन उस वामशक्ति पण्डित की तरफ दौड़ पड़ा। करीब-करीब एक साल से उसने भूलकर भी किसी से वामशक्ति की बात नहीं की थी, उसके यहाँ कभी गयी भी नहीं। युवरानी और युवराज के लोटने के बाद ऐसा कोई प्रसंग भी नहीं आया था, जिससे उसे अपमानित होना पड़ा हो या कोई कड़वी बातें सुननी पड़ी हों। राजमहल में जाने और युवरानीजी के सामने हँसी-खुशी से बात कर आने की अपनी आकांक्षा को उसने अपने भाई की सलाह से रोक रखा था। बड़े संयम से रहना सीख लिया था उसने। इसलिए वामशक्ति पण्डित की याद आते ही उसने सोचा—किसी का ध्यान इस ओर नहीं है, क्यों न उसके यहाँ हो आवें! उसमें जैसे साहस आ गया। बच्चे पढ़ाई में लगे ही थे। नौकरानी से कहकर कि बसदि (मन्दिर) जा रही है, वह चल पड़ी। शाम का समय था, अँधेरा छाने लगा था। चली ही थी कि एकाएक लगा, कोई उसका पीछा कर रहा है, उसने चारों ओर नज़र दौड़ायी। पर ऐसा कोई उसके पीछे आते नहीं दिखाई दिया। क्या करें? अपने ही भीतर शैतान जो बैठा था। वामशक्ति पण्डित के घर पहुँची तो वह पान खाता एक खम्भे से टिककर बैठा दिखाई दे गया। दण्डनायिका के यों अचानक आने से वह कुछ हड़बड़ा-सा गया। उसने सोच रखा था कि कभी दण्डनायिका आयें तो बड़ी रकम हाथ लग जायेगी, परन्तु लम्बी अवधि तक उनके न आने से वह निराश हो गया था। शायद यह बात भूल ही गया था। अक्ल का तेज़ वामशक्ति पण्डित दण्डनायिका को आते देख बहुत प्रसन्न हुआ। पीक को मुँह में ही भरे उसने दण्डनायिकाजी को बैठने के लिए कहा और फिर पीक थूककर मुँह धोकर आ गया। चामव्वे तब तक वहीं बैठी रही। उसके सामने वह भी आकर बैठ गया और बोला, "दण्डनायिकाजी, क्या मैं ऐसा समझूँ कि मेरा वह 'सर्वतोभद्र यन्त्र' अभी भी अपना प्रभाव दिखा रहा है।"

दण्डनायिका का हाथ तुरन्त अपनी छाती पर लटक रहे तावीज पर जा लगा। वामशक्ति पण्डित की दृष्टि उस पर पड़ गयी। चामव्वे ने मन-ही-मन कहा, "सुरक्षित है।"

वामशक्ति ने पूछा, "इस तरफ आये करीब-करीब एक साल बीत रहा है। आप इधर आयीं नहीं, इसलिए मैंने समझा कि सब सकुशल हैं। ठीक है न?"

"हाँ ठीक है।"

"कहिए, मैं और क्या सेवा कर सकता हूँ?" वामशक्ति ने पूछा।

"बस और कुछ नहीं। यह बतायें कि मेरा वह पहले का भय सदा के लिए दूर हो जाएगा या वह और पास आकर तकलीफ देता रहेगा ?" दण्डनायिका ने पूछा।

"यदि दण्डनायिकाजी को ऐसी कोई शंका हो गयी है तो बताइए कौन हैं वे लोग ? मैं आवश्यक क्रिया द्वारा रोक लगा दूँगा।" वामशक्ति बोला।

"मुझे कुछ मालूम नहीं। मुझे ऐसा लगा सो आपको वता देना उचित समझा और जैसे वैठी थी वैसे ही उठकर वहाँ से चली आयी। मेरी तरफ से अंजन लगाकर आप ही देख लें और कहें कि कोई ऐसी वाधा दिखाई देती है या नहीं ? और अगर है तो उसके निवारण का उपाय भी बतावें।" दण्डनायिका ने कहा।

"हाँ, वही करूँगा। आने वाली अमावस्या के दिन अंजन डालकर देखूँगा, वाद में आपके यहाँ आऊँगा।"

"न, न, आप न आयें। मैं ही आऊँगी। अभी मैं यहाँ जो आयी—इसकी भी खबर किसी को नहीं।" कहकर वह उठ खड़ी हुई और जाते हुए बोली, "आपकी दान-दक्षिणा होनी चाहिए। जब मैं फिर आऊँगी तब दूँगी। ठीक है न ?"

"जैसी आपकी इच्छा। मैं तो आपका सेवक ही हूँ !"

दण्डनायिका चुपचाप घर तो आ गयी लेकिन उसका मन अभी वामशक्ति को छोड़कर आना नहीं चाहता था। अमावस्या तक उसका मन पण्डित के यहाँ ही डोलता रहा। उसके ये दिन करीब-करीव मौन ही रहकर वीते। यह देखकर दण्डनायक को भी आश्चर्य हो रहा था। हेग्गड़े परिवार के वलिपुर से आकर यहाँ रहने की वात मालूम हो जाने पर भी अपनी पत्नी द्वारा इस सम्वन्ध में कोई वात तक न उठायी जाने से बड़ा और क्या आश्चर्य हो सकता था ? मगर वह भी मौन ही रहे। अमावस्या के पहले तेरस के दिन, मध्याह्न भोजन के वाद जव पान खाने बैठे तो दण्डनायक ने अपनी पत्नी से हेग्गड़े परिवार के आने की वात कही।

"यहाँ कब पहुँचेंगे ?"—दण्डनायिका ने पूछा।

"आठ-दस दिन तो लग ही जायेंगे।"

"उनका निवास कहाँ रहेगा ?" चामव्वे ने पूछा। मगर मन की वात मन में ही छुपाये रही। वताना ठीक होगा या नहीं—इसी दुविधा में रही। वह पहले दण्डनायकजी से इस वारे में कुछ सुनने के इरादे से प्रतीक्षा करती रही।

"अभी तय नहीं किया। दो-तीन निवास खाली हैं, राजमहल के ही हैं। आने के वाद जो उन्हें अच्छा लगेगा, दे देंगे। यही सोचा है।"

"राजमहल वाले कोई स्थान उनके रहने को यदि तय कर दें तो स्वीकार नहीं करेंगे ?"

"वे युवराज की इच्छा के अनुसार उनके खास कार्यकर्त्ता वनकर आनेवाले हैं इसलिए उनका निवास राजमहल के पास ही रहे यही हमारी और प्रधानजी

की राय है। परन्तु राजमहल के पास वह निवास कुछ छोटा है, इसलिए यदि वह उनके लिए असुविधाजनक हुआ तो फिर कोई अन्यत्र देखना होगा। उनके आने पर ही अन्तिम निर्णय लिया जा सकेगा।"

"यूँ तो आपने और भाई जी ने ठीक ही सोचा होगा, फिर भी यदि आप अन्यथा न समझें तो मैं एक सलाह दूँ?"

"सुझाने में वाधा ही क्या है? वताओ!"

"चालुक्य पिरियरसीजी को अपने यहाँ जब रखा और युवराज भी जब वहाँ रहे तो हेग्गड़े का निवास वलिपुर में वड़ा ही रहा होगा। इसलिए यहाँ भी बड़ा ही रहे तो अच्छा। फिर पति-पत्नी-वेटी इतने ही भर तो नहीं आयेंगे, उस लड़की के गुरुजन और उनके परिवारों को भी तो आना पड़ेगा।"

"अपना घरबार छोड़कर वे सव भला क्यों आएँगे!"

"क्यों, आयेंगे क्यों नहीं? राजमहल का आकर्षण किसे नहीं होगा? आने वाले तो आयेंगे ही, दस-वीस जन और भी आ गये तो दोरसमुद्र के लिए कोई वोझ नहीं बढ़ जायेगा। इसलिए दोरसमुद्र के ईशान के कोने में जो वह वड़ा निवासगृह है, जिसके बड़े अहाते में तीन-चार छोटे मकान भी हैं वह पूरे हेग्गड़े परिवार के लिए सव तरह से सुविधाजनक रहेगा।"

"परन्तु वह राजमहल से तो वहुत दूर है!"

"तो क्या। हेग्गड़े तो चलकर नहीं आयेंगे न। घोड़ा तो रहेगा ही।"

"पता नहीं युवराज क्या कहेंगे? सोचना होगा।"

"ऐसा है तो एक काम कर सकते हैं। मेरे विचार से उस मकान को तैयार रखें और उनके आते ही उन्हें वहीं उतारें। 'यहाँ सव तरह की सुविधाएँ हैं, इसलिए इस स्थान को हमने चुना है। यूँ राजमहल के पास भी दो छोटे निवास हैं, जो खाली रखे गये हैं। हमारा विचार है कि वे आपके लिए अपर्याप्त हैं। अगर आप चाहें तो वहाँ भी रह सकते हैं।' यों कहकर उन्हीं पर निवास को चुन लेने की जिम्मेदारी डाल दें।"

"देखेंगे, तुम्हारे भाई से भी विचार-विनिमय करूँगा। तुम्हारे कहने के ढंग से ऐसा लगता है कि हेग्गड़े का परिवार राजमहल से दूर रहे तो अच्छा, यही तुम्हारी राय है। ठीक है न?"

"मालिक कितने होशियार हैं!"

"अब इस वात में तुम्हारे मालिक की होशियारी नहीं चलेगी। सवकुछ युवराज की इच्छा के अनुसार ही होगा।"

"हमारी वेटियों के विवाह होने तक हमें झुककर ही चलना होगा।"

"हमें ऐसे भी चलना होगा जिससे किसी को दुख न हो। इस वात को जोर देकर वार-वार तुमसे मुझे कहना पड़ रहा है। हेग्गड़े के परिवार से तुम्हें अधिक

मेलजोल नहीं रखना है। तुम्हारी व्यंग्यवृत्ति तुम्हारे न चाहते हुए भी तुम पर हावी हो जाती है। इसलिए तुम्हें बहुत सावधान रहना होगा। फिर कभी उस वामशक्ति पण्डित के यहाँ नहीं जाना होगा। उससे भी सावधान रहें। तुम्हारे भाई ने यह व्यवस्था कर रखी है कि उसके चाल-चलन पर और उसके यहाँ आने-जाने वालों पर नजर रखी जाये। उसके बारे में उनकी अच्छी राय नहीं है।"

सुनते ही दण्डनायिका की छाती धक्-धक् करने लगी। वह सोचने लगी : "शायद उसके यहाँ मेरे जाने की खबर भाई को लग गयी। अब क्या होगा !" उसने एक लम्बी साँस ली। नाक और होठों पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आयीं। आँचल से पसीना पोंछा। "उफ कितनी गरमी लग रही है !" मानो अपने आप से कहा। अन्दर छाती अब भी धड़क रही थी।

"अब तो रामनवमी बीत चली, बस समझो कि गरमी आ गयी।" कहकर पास पड़े खस के पंखे को उठाकर दण्डनायकजी अपने दोनों के बीच हवा करने लगे।

दण्डनायिका कुछ बोली नहीं।

पंखा झलना रोककर दण्डनायक ने पूछा, "वह इस तरफ आया तो नहीं ?"

"कौन ?"

"वही वामशक्ति।"

"नहीं···वह इधर क्यों आने लगा ? कई महीने बीत गये, उसका तो कोई अता-पता भी नहीं।" कहते हुए चामब्बे जैसे भीतर-ही-भीतर घबड़ा गयी।

"बहुत अच्छा हुआ। तुमने बुलवाया तो नहीं ?"

"नहीं"—उसने गला ठीक करते हुए कहा।

"अगर कहीं खुद आ जाय तो पास भी फटकने न देना।"

"बात क्या है ? आज मालिक ने उस पण्डित की बात क्यों उठायी ?"

"उसके बारे में इत्तला मिली है कि किसी बड़े प्रभावशाली परिवार की भलाई के लिए वह आनेवाली अमावस्या के दिन अर्थात् परसों कोई अंजन लगाएगा। उस दिन वह उस अंजन में जो दृश्य देखेगा उसपर उसका भविष्य निहित होगा। यह सूचना उसने अपने किसी विश्वस्त व्यक्ति को दी है।"

"इस तरह उसके गुप्त व गौण समाचार प्रकट करनेवाला भला विश्वस्त कैसे होगा ?"

"वास्तव में वह विश्वस्त नहीं, फिर भी विश्वस्त की तरह रहकर समाचार संग्रह करनेवाला हमारा गुप्तचर है।"

"वह प्रभावशाली परिवार कौन है ? कुछ पता चला ?"

"अभी पता नहीं चला, पर आज नहीं तो आठ-दस दिनों के भीतर पता चल ही जायेगा। उसके बाद उस परिवार की क्या हालत होगी, भगवान् ही

जाने !"

"ऐसा क्यों होना चाहिए ? अपने भावी कष्ट का परिहार कराने के लिए मार्गदर्शन की इच्छा से यदि कोई उसके पास जाये तो इसमें ग़लत क्या है ?"

"सारी बात मालूम होने पर ही तो निर्णय हो सकेगा कि सही क्या है और ग़लत क्या है। एक वामाचारी का सारा भविष्य इस अंजन को लगाकर देखने मात्र से यदि उज्ज्वल हो सकता हो तो वह साधारण बात नहीं होगी। इसलिए अब और भी अधिक जानकारी पाने की प्रतीक्षा की जा रही है।"

"यदि उससे किसी अनिष्ट की आशंका हो तो उस बात को वहीं रोक देना चाहिए। इस तरह से उस पर विशेष दृष्टि रखने की आवश्यकता ही क्या है ?"

"इसका उत्तर तुम्हीं दे सकती हो। तुमसे ही उस वामशक्ति के बारे में ऐसे ऊँटपटाँग विचार आये।"

"यह तो वही पुरानी बात हुई न। मैं ही भूल गयी थी। अब वह बात क्यों उखाड़ते हो ?"

"परन्तु उस तावीज में वह यन्त्र तो सुरक्षित है न ? अब लुका-छिपी से कोई लाभ नहीं होगा। तुमने अभी भी उस पण्डित का पीछा नहीं छोड़ा। बिल्ली आँख मूँदकर दूध पीती जाय और समझे कि कोई नहीं देख रहा है—यही अब तुम्हारी हालत हो गई है। आइन्दा यह सब नहीं होना चाहिए। इन बातों को अभी से छोड़ देना होगा। वह जो अंजन लगायेगा, उसे यहीं हमारे घर में, हमारे ही सामने लगाये—इसकी व्यवस्था की गई है। उसी दिन उससे सम्बन्धित सारी बातें बन्द हो जानी चाहिए। समझीं ?"

चामब्बे का सिर अपने आप झुक गया।

"अभी तक तुम्हारे भाई को यह बात मालूम नहीं है। अमावस्या के दिन, हमारे यहाँ क्या गुल खिलेगा सो देखकर, उसके बाद मैं स्वयं तुम्हारे भाई को सारा विवरण दूँगा। इस बात से आइन्दा दण्डनायिकाजी को दूर रहना होगा। लाचार होकर इस तरह की रोक लगानी पड़ रही है।" दण्डनायक ने बड़े कड़े स्वर में कहा।

थोड़ी देर के लिए वहाँ खामोशी छा गयी। धीरे-धीरे चामब्बे उठ खड़ी हुई—

"मैं······" चामब्बे के मुँह से आगे कुछ नहीं फूटा।

"चलीं। ठीक है। मैंने जो कहा, याद रहे।" मरियाने ने अपनी बात दुहरायी।

चामब्बे वहाँ से सीधे अपने प्रसाधन-कक्ष में चली गयी। आराम करने के इरादे से पलंग पर पैर पसारकर दीवार से सटकर बैठ गयी। यह सारी बात पति को मालूम हो जाने और ऐसी डाँट पड़ने से वह जैसे निश्चेष्ट हो गयी थी, बस छाती की धड़कन ही बन्द नहीं हुई थी। एकदम गुस्सा न दिखाकर बड़े संयम से

उन्होंने बात कही थी। फिर भी वह भीतर-ही-भीतर काँप रही थी। उनका गुस्सा उसने देखा न हो—ऐसी बात न थी, उसे उनके गुस्से को शान्त करने का तरीका भी मालूम था, परन्तु आज की हालत कुछ और थी। आज की उनकी इस कड़ाई के लिए उसके पास कोई दवा नहीं थी : 'कितने ही गोपनीय ढँग से व्यवहार करूँ तो भी बात खुल ही जाती है! ऐसी हालत में तो जीना ही मुश्किल है। इस सबका कारण वह शैतान शान्तला और उसकी पातकी माँ माचि (कब्बे) हैं। पहले शादी हो जाये, मेरी बेटी महारानी हो जाय, उसके बाद इन लोगों को ठिकाने लगाऊँगी। अब पहले तो यह देखना है कि वह वामशक्ति पण्डित क्या करने जा रहा है और उसका परिणाम क्या निकलेगा। भगवान् जाने! मालिक को उचित न लगने पर भी उन्होंने अभी तक यह बात भाई को नहीं बतायी है। इसका मतलब तो यही हुआ कि उनमें भी इस अंजन के बारे में जानने का कुतूहल है। यहाँ तक तो खैरियत है। मान लो, यदि मालिक खुद उस हेग्गड़े दम्पती के षड्यन्त्र की बातों को अंजन लगाकर देख लें तब तो मेरी दस भुजाएँ हो जाएँगी। वामशक्ति भी बच जायेगा। मुझे मालूम है ऐसा ही होगा। युवराज और युवरानी आदि जिन-जिन को उस हेग्गड़े के परिवार पर विश्वास है उन सभी की आँखें खुल जाएँगी। फिर तो इससे मेरा गौरव बढ़ जायेगा, प्रतिष्ठा बढ़ जायेगी। अमावस्या का दिन अब दूर नहीं है।' चामब्बे का मन पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकने लगा। इस तरह सोच-विचार करने से उसका भय भी कुछ जाता रहा। वह अमावस्या के दिन की बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा करने लगी।

युवराज से प्रधानजी को बुलावा आया। वह युवराज से जब मिलते तब अन्य किसी को वहाँ रहने की मनाही रहती। परन्तु अबकी बार जब वह युवराज से मिलने आये तो युवराज के साथ कुमार बल्लाल मौजूद था। क्यों बुलवाया गया है यह बात बल्लाल को मालूम नहीं थी। इसके पहले किसी भी सन्दर्भ में युवराज और प्रधानजी के बीच विचार-विनिमय होता था तो कुमार की उपस्थिति जरूरी नहीं होती थी। इस बार बुलाने पर उसको कुछ कुतूहल पैदा हो गया था। युद्धक्षेत्र में हो आने के बाद अब राजकाज के बारे में युवराज उससे भी बातचीत किया करते, इसलिए उसने सोचा था कि राजकार्य की किसी बात पर विशेष विचार-विनिमय करेंगे। वास्तव में उसमें एक नया उत्साह भी संचरित हो रहा था। उसने निश्चय कर लिया था कि अपने वंश की कीर्ति बढ़ाने के लिए वह पूरी तत्परता से,

तन-मन से लग जायेगा। गुरु नागचन्द्र का प्रभाव भी उस पर काफी पड़ा था। खासकर मलेपों के साथ युद्ध करते समय युवराज उसे अपने कर्त्तव्य पालन व आचार-व्यवहार के बारे में विस्तार के साथ समझाया भी करते थे। इन प्रेरणाओं की पृष्ठ-भूमि में वह नागचन्द्र की बातों का विशेष मूल्यांकन करता था। इसके फलस्वरूप उसका व्यक्तित्व ठीक दिशा में रूपायित हो रहा था। ऐसी हालत में कुतूहल का पैदा होना आश्चर्य की बात न थी।

कुशल प्रश्न के बाद गंगराज ने पूछा, "सुना कि आपकी आज्ञा हुई!"

"प्रधानजी। पोय्सल वंश का आप पर गहरा और पूरा विश्वास है। इसलिए किसी भी जटिल प्रश्न के उठने पर आपसे विचार-विनिमय करके मार्गदर्शन पाना उचित है।" युवराज ने कहा।

"अभी तो कोई ऐसी समस्या उत्पन्न हुई मुझे नहीं दीखती!"

"जो समस्या हमारे लिए जटिल मालूम पड़ती है, आपकी सूक्ष्म बुद्धि को वह कुछ भी नहीं लगेगी। शायद इसी कारण आपका ध्यान ही उस ओर नहीं गया होगा।"

"बात क्या है सो बताने की कृपा करें..."

"हमारे राज्य के सभी अधिकारी संतुष्ट रहें यह उचित है, आवश्यक भी। असन्तुष्ट एवं अतृप्त होने से वे राज्य के लिए कभी खतरा बन सकते हैं। इस-लिए हमारे उच्च अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि वे इस बात का सदैव ध्यान रखें।"

"मैं विश्वास दिला सकता हूँ कि राजघराने के आश्रय में सभी अधिकारीगण तृप्त रहकर सेवा कर रहे हैं।"

"आपके इस आश्वासन के लिए हम कृतज्ञ हैं। जैसा आप समझते हैं यदि वैसा ही है तो हमें भी सन्तोष है। परन्तु एक बात हमें सुनने को मिली जिसमें हमें लगा कि कहीं अतृप्ति भी है। उस अतृप्ति के निवारण के लिए उसके स्वरूप और उसके कारण का मालूम होना आवश्यक है।" कहकर एरेयंग प्रभु चुप हो रहे।

प्रधान गंगाराज ने एक बार राजकुमार की तरफ देखा। फिर प्रभु से कहा, "बात क्या है, बताने की कृपा करें तो क्या करना चाहिए—इसपर विचार किया जा सकता है। बात सन्निधान तक पहुँच गयी, प्रधान को मालूम ही नहीं हुई इसका मुझे आश्चर्य है!"

बल्लाल के कान खड़े हो गये। प्रधान की तरफ उन्होंने देखा। आखिर ऐसी कौन-सी रहस्यमय बात होगी? जिज्ञासा कुछ अधिक बढ़ चली। चूँकि यह सारी बात उसके सामने शुरू की गयी थी, इसलिए राजकुमार बल्लाल को लगा कि जरूर ही इसका सम्बन्ध उससे है। वह अभी इसी उधेड़बुन में था कि प्रभु पलंग

से उठकर दीवार के साथ रखे आसन पर ठीक से बैठ गये और बोले, "क्या प्रधान जी को यह शंका हो गयी कि उनको बताये बिना सीधे हम तक बात पहुँचाने जैसी कोई अन्य व्यवस्था भी है।"

"न, न। मेरे मन में कभी यह विचार नहीं आया। मुझे यह बहुत ही स्पष्ट रूप से और अच्छी तरह से मालूम है कि प्रभु मुझ पर कितना विश्वास रखते हैं। कभी इसमें व्यक्त या अव्यक्त किसी रूप में भी मुझमें गलत विचार नहीं आया, न आयेगा। द्रोही चाहे कोई हो, वह चाहे माँ, बहन, बेटा कोई हो—वे दण्डनीय होंगे। दण्ड से वे बच नहीं सकेंगे।"

"एक छोटी बात को लेकर इतनी दूर तक सोचने की ज़रूरत नहीं, प्रधानजी। देश में होनेवाली सभी बातें जैसे राजमहलवालों को मालूम होती हैं वैसे आपको भी मालूम होनी चाहिए। यह तो सामान्य विवेक की बात है।"

"असली बात······"

"यहाँ की समाज के वामाचारियों को तो जानते हैं न? उनका आश्रय लेने-वाले लोग कैसे होते हैं?"

गंगराज के शरीर में एक क्षण के लिए जैसे विद्युत संचार हो गया था। उन्होंने युवराज की ओर एक तरह से देखकर कहा, "जिनका दिल कमजोर होता है, जो लालची और स्वार्थी होते हैं—वे ही वामाचारियों के आश्रय में शरण पाने जाते हैं, यह अनुभव की बात है।"

"इस वामाचार पर आपको सचमुच विश्वास है, प्रधानजी?"

"मुझे तो बिलकुल भी विश्वास नहीं, परन्तु विश्वास करनेवालों की संख्या भी कम नहीं।"

"आम लोगों में ऐसी बात हो सकती है, क्योंकि उनका लक्ष्य और उनकी इच्छाएँ बहुत सीमित होती हैं इसलिए परिणाम व्यापक नहीं होता। इसके अलावा, जीवन में सभी को सभी बातों में पूर्ण तृप्ति कभी नहीं हो पाती। ऐसे लोग भी वामाचारियों का आश्रय ले सकते हैं। परन्तु जीवन में पद, प्रतिष्ठा, धन, बल, हस्ती-हैसियत—जिनके पास यह सब है, ऐसे लोग वामाचारियों की मदद क्यों चाहेंगे? इससे यही तो समझना चाहिए न, कि वे अतृप्त हैं, असन्तुष्ट हैं।"

"प्रभु ने जो कहा वह सही है। परन्तु हमारे राज्य में इस तरह के भी अधि-कारी हैं—यह मुझे मालूम नहीं था।"

"यही बात है तो फिर आपके विचार से हमारे दण्डनायकजी असंतुष्ट नहीं हैं!"

"उन्हें किस बात की कमी है—असन्तुष्ट होने के लिए।"

"अगर कमी न होती तो उन्होंने गत अमावस्या के दिन वामाचारी को रात के वक़्त अपने यहाँ बुलवाकर सारी रात अंजन लगवाकर क्या देखा?"

"ऐसी बात है ! मुझे यह प्रसंग मालूम ही नहीं। दर्याफ़्त करके जानकारी प्राप्त करूँगा। सन्निधान तक जब खबर पहुँची है तो बात सत्य ही होनी चाहिए।"

"उनके इस बरताव का कारण जानकर, उन्हें किस बात का असन्तोष या भय है—इसका पता लगाना होगा। हम तक बात अगर पहुँची है तो उसके पीछे क्या परिस्थिति रही होगी, कहा नहीं जा सकता। इसलिए अभी उनको यह बात मालूम नहीं होनी चाहिए कि बात हम तक पहुँच गयी है।" कहकर प्रभु ने अपने बेटे की ओर देखा।

"बल्लाल किंकर्त्तव्यविमूढ़ बैठा था। प्रभु ने कहा, "अप्पाजी, तुमको भी ऐसा बरतना होगा कि मानो तुम्हें कुछ मालूम नहीं, क्योंकि तुम कभी-कभी वहाँ जाया-आया करते हो। कुतूहल के कारण सम्भव है तुम उन बच्चों से पूछ भी बैठो। इसलिए अभी से सचेत कर दिया है। सावधान रहना। समझे !"

बल्लाल ने सहमति में सिर हिला दिया। परन्तु उसके भीतर कुतूहल अपेक्षाकृत अधिक बढ़ता जा रहा था। तरह-तरह के विचारों का तांता-सा लग गया था। वह सोचने लगा—दण्डनायक के घर में वामाचारी और कोई उसके बारे में कुछ बताये भी नहीं ! कम-से-कम पद्मला को तो कहना चाहिए था ? सब गुप्त रूप से चल रहा है ! इसका कारण क्या है ? आदि आदि।

बल्लाल के मन में इस तरह के विचार आते-जाते रहे और प्रभु एरेयंग अपनी बात कहते गये। बेटे को इस तरह सचेत कर प्रधान की ओर दुबारा देखते हुए बोले, "प्रधानजी, यह बात वृद्ध महाराज के कानों में न पड़े। इससे उन्हें बड़ा आघात लगेगा। कहीं किसी कोने में पड़े रहनेवाले व्यक्ति को बुद्धिमान् और निष्ठावान् समझकर, पास बुलाकर, सब प्रकार से उसकी देखभाल कर इतने ऊँचे आसन पर ला बिठाया, वही व्यक्ति वामाचार में आसक्त हो गया—यह खबर महाराज सुनें तो उन्हें निश्चित ही बहुत दुःख होगा। इसलिए फिलहाल यह बात उनके कानों तक न पहुँचे। सच्चाई क्या है इसे जानकर, और फिर सोच-विचारकर, राष्ट्र-निष्ठा को ध्यान में रखते हुए आवश्यक प्रतीत होने पर ही बतायेंगे। तब तक नहीं। ठीक है न ?"

गंगराज ने सिर हिलाकर सूचित किया "ठीक है"। कुछ बोले नहीं।

"आपकी व्याकुलता को हम समझते हैं। दण्डनायिका आपकी बहन हैं, इससे आपके हृदय में कितनी पीड़ा हुई होगी, यह हम पूरी तरह समझते हैं। इस विषय की पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। फिर भी हम चाहते हैं कि यह काम आप खुद करें। इसका एक मुख्य कारण है। यह विषय आपको दुविधा में डाल देगा, अनेक प्रकार की उलझनें पैदा करेगा—यह भी हमें मालूम है, फिर भी राजमहल का आप पर दृढ़ विश्वास है, इस बात की जानकारी आपको होनी ही चाहिए। इसलिए हमने दूसरे साधनों पर ध्यान नहीं दिया है। हम जानते हैं

कि आप किसी भी हालत में सत्य को छिपायेंगे नहीं। आपके इस गुण से हम पूरी तरह आश्वस्त हैं।"

गंगराज बैठे-बैठे युवराज की इन बातों को सुनते रहे। उनके चेहरे पर भाव-परिवर्तन का कोई चिह्न लक्षित नहीं हुआ। वामाचारी की बात अचानक उठने पर एक बार कुछ बिजली-सा उसके शरीर में कम्पन तो हुआ था, लेकिन उसके बाद उनका संयम यथावत् बना रहा।

"सन्निधान ने मुझपर जो विश्वास रखा है उसका द्रोह कभी नहीं होगा। यह बात मुझसे छिपाकर किसी अन्य तरीके से जांच करायी होती तो मैं शायद खुद को कभी भी आपका विश्वासपात्र नहीं मानता। इसके लिए मैं सन्निधान का बहुत कृतज्ञ हूँ। बहुत दिन पहले, करीब एक वर्ष पूर्व मेरी बहन वामशक्ति पण्डित के यहाँ जाकर भय-निवारक यन्त्र बनवाकर लायीं थी तो खुद दण्डनायकजी का माथा ठनका था। यह बात उन्होंने ही मुझसे कही थी। इसके पश्चात् मैंने उन्हें बता दिया था कि अब कभी भी उस वामशक्ति के साथ किसी तरह का सम्बन्ध न रखें और उस वामशक्ति पण्डित की गतिविधियों पर दृष्टि रखने के लिए गुप्तचर की व्यवस्था भी कर रखी थी। तब से उस वामाचारी का सम्बन्ध दण्डनायक के घर से कट ही गया था। ऐसी स्थिति में प्रभु को जो खबर मिली है उसे सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ है। मैं तो किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया हूँ। मैं शीघ्र ही वस्तु-स्थिति का पता लगाकर प्रभु से निवेदन करूँगा।"—गंगराज ने कहा।

"पहले जिस भय के वशीभूत हो दण्डनायिका उस वामाचारी पंडित के पास गयीं थीं, उस भय का कारण क्या था? उनमें किसके कारण डर पैदा हो गया था? यह कुछ मालूम पड़ा?" प्रभु ने पूछा।

"पता नहीं, किस तरह का डर था? बच्चियाँ सोते-सोते कभी-कभी चीख पड़ती थीं डरकर। यह बात मेरी बहन ने कही थी।" कहकर गंगराज ने बात समाप्त कर दी।

"अच्छा, तो ठीक है प्रधानजी।" एरेयंग ने कहा।

गंगराज ने समझा कि जिसके लिए बुलावा भेजा था वह काम समाप्त हो गया। उठकर प्रभु को प्रणाम करके वह जाने लगे कि तभी प्रभु एरेयंग ने पूछा, "हेग्गड़े मारसिंगय्या के आने के सम्बन्ध में कोई खबर मिली?"

"मुझे तो कोई समाचार नहीं मिला है। महादण्डनायक के पास कोई खबर पहुँची हो तो दर्याफ़्त कर निवेदन करूँगा।" गंगराज ने कहा।

"उनके ठहराने की व्यवस्था कहाँ की है?"

"दो तीन निवासों की बात सोच रखी है। राजमहल के पास ही एक है। परन्तु वह हेग्गड़े जी के लिए पर्याप्त होगा या नहीं—इसकी शंका है। इसलिए उनके आने पर उनके लिए जो उपयुक्त मालूम पड़े वही दिया जा सकेगा—यही

सोचा है।"

"वे कहीं भी रहें, हमारे लिए सब बराबर है। परन्तु वे राजमहल के पास रहें तो वह कुछ लोगों के लिए ईर्ष्या का कारण हो सकता है इसलिए उनका निवास दूर ही रहना ठीक होगा।"

"जैसी आज्ञा।"

"उनके आने की खबर मिलते ही हमें सूचित करें।"

"जो आज्ञा।"

"अच्छा"—कहकर प्रभु ने घण्टी बजायी। द्वारपाल ने परदा उठाया। गंगराज दुबारा प्रणाम कर चले गये।

बल्लाल बैठा ही रहा। प्रभु एरेयंग भी मौन बैठे रहे। कुछ क्षण बाद प्रभु ने ही कहा, "अप्पाजी, ये सब बातें तुमको मालूम होनी चाहिए। कल तुम सिंहासन पर बैठनेवाले हो। कौन कैसे हैं, किस पर विश्वास रखना चाहिए, किस पर नहीं—इन बातों पर तुम्हें एक निश्चित निर्णय कर लेना चाहिए।"

"गुरु जी ने आचार-व्यवहार, दैवी शक्ति आदि के विषयों पर चर्चा करते समय बताया था कि ये वामाचारी समाज को हानि पहुँचाने वाले हैं। मुझे मालूम ही नहीं था कि ऐसे लोग हमारी इस राजधानी में भी हैं। सबसे बढ़कर आश्चर्य इस बात का है कि हमारे महादण्डनायक के परिवार का सम्बन्ध ऐसे लोगों के साथ है।"

"तुम्हारे लिए आश्चर्य होना सहज है। परन्तु तुम अभी से इस विषय में अपना दिमाग खराब न करो। उनके यहाँ जब कभी जाओ तो इस विषय पर बात तक न करना। प्रधानजी स्वयं इस सम्बन्ध में आवश्यक तहकीकात करेंगे। उसके बाद ही सारी वस्तुस्थिति स्पष्ट होगी। प्रधानजी की बातों से इतना तो स्पष्ट है ही कि दण्डनायकजी की इस दिशा में कोई रुचि नहीं। उनके घर में उनकी पत्नी को ही इसमें रुचि है—परन्तु यह मालूम होने पर भी, उनके मानसिक कष्ट की जानकारी हुए बिना, कुछ निर्णय नहीं लिया जा सकता। चूंकि तुम्हें इस घराने से लगाव है, हमें बहुत सहनशीलता से काम लेना पड़ रहा है। इसलिए तुम्हारा सहयोग बहुत अपेक्षित है। जब तक हम फिर से न कहें तब तक तुम्हारा उस घराने में किसी से न मिलना ही अच्छा है। अचानक यदि भेंट हो भी जाय तो औपचारिक ढंग से दो-चार बातें कर लेना, इससे अधिक कुछ नहीं। समझे!" प्रभु ने कहा।

"ऐसा ही होगा, माँ को यह बात मालूम है?"

"नहीं, न मालूम होना ही फिलहाल अच्छा है। अभी तो यह बात तुम्हें, हमें और प्रधानजी को ही मालूम है।"

"खबर लानेवाले गुप्तचर…"

"उनके बारे में शंका करने की ज़रूरत नहीं। उनके जरिए बात दूसरे किसी के पास नहीं जायेगी। यों खबर उनके मुँह से निकल जायेगी तो वे उस काम के लिए अयोग्य हो जाएँगे। इसलिए उस सम्बन्ध में तुम्हें सोचने की ज़रूरत नहीं। हमारे गुप्तचर विश्वासपात्र हैं। अब जाओ तुम अपना काम करो। तुम्हारी माँ किसी काम में न लगी हों तो यहाँ भेज दो।" प्रभु ने कहा।

बल्लाल खड़ा हो, पिता को प्रणाम कर हाथों से परदा हटाकर वहाँ से निकल गया तथा प्रभु का आदेश माँ को सुनाकर अपने काम में लग गया।

युवरानी एचलदेवी प्रभु के पास आयीं। इस बीच प्रभु पलग पर लेट गये थे। एचलदेवी उनके पैताने जा बैठीं। प्रभु ने छाती पर से हाथ उठाकर पत्नी की ओर बढ़ाया। वह उसे अपने हाथ में लेकर सहलाने लगीं। प्रभु ने करवट बदली और दूसरे हाथ से युवरानी के हाथ का स्पर्श कर बोले, "देवी, हम फिर इस आकाश, सूर्य और तारों से घिरे चन्द्र को देख सकेंगे या नहीं, मालूम नहीं। कभी जीवन में हम अधीर नहीं हुए थे। अभी हाल में पता नहीं कोई अगोचर शक्ति हमें निचोड़ने लगी है। हमें ऐसा ही प्रतीत हो रहा है इसलिए हममें जो धैर्य है उसे तुम्हें समर्पित कर रहे हैं। पता नहीं कब अकेली रहकर कष्टों का सामना करने का भार तुम पर आ पड़े···" तुरन्त एचलदेवी ने प्रभु के मुँह पर हाथ रख दिया। बोलीं, "प्रभु को ऐसा नहीं कहना चाहिए। चारुकीर्ति पण्डित ने कहा है, कोई तकलीफ नहीं है। सिलहार राज्य के वैद्यजी के आ जाने से उनमें अब दो-एक दिन से नया ही धैर्य आ गया है।"

"भगवान् की इच्छा के सामने मनुष्य का धैर्य टिक नहीं पाता।"

"ऐसी हालत में उस शक्ति पर भरोसा रखकर जीवन में दृढ़ता के साथ आगे बढ़ना ही उचित है। आपके मुँह से कभी अधीरता की बात नहीं निकली। लगता है, आज कोई विचित्र बात आपके कानों में पड़ी है। वह क्या है बतायें तो हो सकता उसके निवारण की बात सोचकर कह सकती हूँ," युवरानी ने कहा।

"ऐसी कोई बात नहीं।" कहते हुए प्रभु रुक गये।

"प्रभु! मुझसे छिपाने जैसी कोई बात आपके मन में है? प्रधानजी को बुलवा लेना एक बात है, परन्तु अप्पाजी को भी उनके साथ बातचीत करते वक्त पास बैठाने का कुछ माने जरूर है। इसीलिए मैंने उसी से पूछा लेकिन वह कुछ न कहकर खिसक गया। प्रभु ऐसा न करेंगे—यह मेरा विश्वास है। वह क्या है, बताइये प्रभु!" युवरानी ने आग्रह किया।

युवराज एकटक देखते रहे, कुछ बोले नहीं।

"प्रभु, बात मन में ही दबी रहे तो वह दीमक की तरह अन्दर-ही-अन्दर कुरेदती रहेगी। उसे प्रकट करने पर मन कुछ हल्का हो जायेगा। बात कैसी भी हो मुझसे कह सकते हैं। यदि प्रभु का विश्वास खो बैठी हूँ तो फिर जोर नहीं दें

सकती।"

"देवी, हम नहीं चाहते कि तुम्हारा शान्त मन उद्विग्न हो, इसलिए इस तरह की राजकाज की बातें तुम तक न ही पहुँचें—यह सोचकर हमने चुप रहना ही ठीक समझा।"

"प्रभु की मर्ज़ी। देवेच्छा के सामने हमारे प्रयत्न से कुछ नहीं होगा—मुझे इसका ज्ञान है। सामान्य लोगों की तरह केवल ऊहापोह करके उसे व्यक्त करने से फायदा भी नहीं। इसलिए मेरी एक प्रार्थना है। निराधार यों ही ऊहापोह करके भविष्य की बात मुझसे न किया करें प्रभु।"

"ऐसा ही सही। देवी, तुम्हारी बातों से मुझमें नयी चेतना आ गयी है। आइन्दा ऐसी बात नहीं करूँगा।"

"अच्छा, अब आराम करें। आपस के विचार-विनिमय, चिन्तन आदि से आपके मन और शरीर दोनों कुछ थके-थके लग रहे हैं।" चादर ओढ़ाते हुए युवरानी ने कहा, "थोड़ी देर में औषध और पेय लेकर मैं स्वयं आ जाऊँगी। तब तक और कोई अन्दर न आये।" कहकर चली गयीं।

प्रधानजी के यहाँ वामशक्ति को बुलवा लिया गया। उसे किसी तरह का भय न दिखाकर बड़ी सावधानी से बुला लाने की व्यवस्था की गयी थी। वास्तव में उसे गत अमावस्या की रात की घटना से बहुत तृप्ति मिली थी। खुद मरियाने दण्डनायक जब सन्तुष्ट हुए थे तो उसके आशा-सौध की ऊँचाई आसमान तक बढ़ गयी थी। उसने समझ लिया था कि दण्डनायक ही ने प्रधानजी से मेरे बारे में कहा है और इसीलिए बुलवाया है। प्रधानजी के यहाँ का नौकर तिगणा बुलाने गया था। उसी के मुँह से वह जान लेना चाहता था कि प्रधानजी ने क्यों बुलाया है। लेकिन कुछ बात नहीं बनी।

प्रधानजी ने आदेश दिया था—"आवश्यक काम है तुरन्त आने को कहा है।" बस इतना ही ज्ञात हो सका। प्रधानजी की इस आज्ञा ने उसमें एक नयी स्फूर्ति पैदा कर दी थी। नौकर ने उसे अन्दर ले जाकर मन्त्रणागृह में बिठाया तो उसने समझा कि उसे बहुत गौरव दिया जा रहा है। वहीं बैठे-बैठे वह प्रधानजी की प्रतीक्षा करता रहा।

प्रधानजी के आने की सूचना मिलते ही वामशक्ति पण्डित उठ खड़ा हुआ। प्रधानजी ने अन्दर आकर दरवाजे पर कुण्डी चढ़ा दी और पण्डित को बैठने को कहा। वह बैठ गया।

"पण्डित, मालूम है तुमको क्यों बुलाया है?" प्रधानजी ने कहा।

"आदेश हो। सेवा के लिए तैयार हूँ।" उसने झुककर प्रणाम किया।

"तुमको देश-निकाले का दण्ड देने की युवराज की आज्ञा है।"

पण्डित घवड़ा गया। पसीने से तर हो गया। आँखों के डोल अजीब ढँग से डोलने लगे।

"मालूम है क्यों ?"

"नहीं"—कहने का उसे मन हुआ परन्तु मुँह से नहीं निकला। उसने सिर हिलाकर बताया कि नहीं मालूम है।

"तुमने अपने इस वामाचार से कितने घरों का सर्वनाश किया है अब तक ?"

"आँ ! मैं···नहीं···नहीं···"

"झूठ बोलकर तुम यहाँ से जीवित नहीं लौट सकोगे। पहली बार तुमने जब मेरी बहन को अपने यहाँ बुलवाया था तभी से तुम्हारी चाल-ढाल का पता हमें लगता रहा है।"

"मेरी भला क्या हिम्मत कि ऐसे बड़ों को अपने यहाँ बुलवाऊँ। वे ख़ुद ही आयीं थी प्रधानजी।"

"तो मतलब यह हुआ कि तुमने अपनी प्रतिष्ठा, शक्ति सामर्थ्य के प्रचार का माध्यम उन्हें चुना। दण्डनायक के घर का कौन-सा नौकर तुम्हारा भक्त है ?"

"पालकी ढोनेवाला चौकि।"

"जब भी कोई बहाना मिले तब तुम्हारा नाम लेकर तुम्हारी प्रशंसा करता रहे—यही तुमने उससे कहा था न ?"

"जो कोई भी मेरे पास आते हैं उन सबसे मैं ऐसा ही कहा करता हूँ। नहीं तो मैं जिऊँ कैसे ? फिर जिन्हें मेरी शक्ति पर विश्वास हो जाता है वे ऐसा ही कहते हैं। कुछ लोग अपनी तरफ से भी कह उठते हैं।"

"वह तुम पर विश्वास करने लगे इसके लिए तुमने चौकि का कुछ काम भी कर दिया। है न ?"

"हाँ"

"क्या किया ?"

पण्डित तुरन्त कुछ बोला नहीं।

"कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद आखिर गंगराज गरम होकर बरस पड़े, "चुप क्यों हो गए पण्डित, बताओ।"

"वह किसी स्त्री को चाहता था, मालिक। उसे उसकी वशवर्तिनी बना देने की प्रार्थना की थी उसने।"

"वह स्त्री भी उसे चाहती थी या नहीं, इस बात को जाने बिना तुमने वह काम कर दिया। है न ?"

"हमारा व्यवहार एक तरफा होता है। यह सब पूछ-ताछ हम नहीं करते। हमें अपने गुरु की आज्ञा का पालन भर करना होता है। वे कहते थे कि वे ही लोग

हमारे पास आते हैं जिन्हें अपनी समस्या का अन्यत्र परिहार नहीं दिखाई देता। उनकी समस्या का परिहार करना मात्र हमारा काम है। अन्य विषयों से हमारा कोई ताल्लुक नहीं।" पण्डित ने कहा।

"तुम्हारे प्रयत्न से वह स्त्री उसकी हो गयी ?"

"इसलिए तो उसे मुझपर विश्वास है। बिना शक्ति के हमारा काम नहीं चलता यह कोई ढकोसला नहीं, मालिक।"

"कौन है वह स्त्री ?"

"वह···वह···एक घुड़सवार की पत्नी है।"

"क्या कहा ? एक की पत्नी को दूसरे के वश में कर दिया !" गंगराज के होंठ गुस्से से फड़क रहे थे।

"जो हम से माँगते हैं, उन्हें हम भस्म अभिमन्त्रित करके दे देते हैं। वे जिसको चाहते हैं, उनपर उस भस्म को फेंकते हैं। बस, वशीकरण हो जाता है। और फिर जो वशीभूत हो जाते हैं उनके बारे में जानने की इच्छा नहीं रह जाती। इसलिए हम दोषी नहीं होते।" पण्डित ने साहस बटोरकर कहा। मन-ही-मन वह यह निर्णय कर चुका था कि अब तो वह शिकारी के हाथ पड़ गया है। शिकार बनना ही होगा इसलिए वस्तुस्थिति जैसी है वैसी कहकर क्यों न परिस्थिति का सामना किया जाय।

"तो क्या तुम्हारा कहना है कि अन्याय को प्रोत्साहित करके भी तुम अछूते रहे आओगे ? यही है न तुम्हारा मतलब ?"

"यदि हमें पहले से मालूम हो जाय तो उसका ढँग ही अलग होता है। आम-तौर पर हमें मालूम नहीं रहता। इसलिए हम तो यही सोचकर चलते हैं कि हम जो कुछ करते हैं वह उपकार का ही काम है।"

"उस सवार का नाम क्या है ?"

"मायण"

"और उस स्त्री का ?"

"चट्टला"

"तुमने अपने लिए कितनी स्त्रियों को वश में कर रखा है ?"

"हम अपनी शक्ति का उपयोग स्वयं अपने लिए नहीं कर सकते।"

"तो, दुनिया को बरबाद करना ही वामाचारियों का काम है ?"

"मतभेद है। हमारी शक्ति से बहुत-से लोगों को तृप्ति मिलती है। जो निराश रहते हैं उनकी आशाएँ सफल होती हैं। इसलिए हमारा विश्वास है कि हम जो करते हैं वह उद्धार का ही काम है।"

"यह उद्धार नहीं, घर तोड़ना है। हमारी राजधानी में भविष्य में ऐसे सब कार्यों के लिए अवकाश नहीं। तुमने अब तक किस-किस का इस तरह का उद्धार किया—

उस सबका ब्योरा हमें देना होगा। इससे भी मुख्य बात यह कि गत अमावस्या के दिन महादण्डनायक के घर में जो कुछ घटित हुआ उसे अक्षर-अक्षर बता देना होगा। बोलो क्या-क्या हुआ वहाँ?"

"वे मालिक के आप्तजन हैं। उन्हीं से जान लें, यही अच्छा है। मैंने वचन दिया है कि मैं किसी से नहीं कहूँगा।"

"तुमसे कहलवाये बिना अब छोड़ेंगे नहीं। दण्डनायक ने सब कुछ बता दिया है। परन्तु अब हमें तुम्हारी सच्चाई की परीक्षा लेनी है। इसलिए जो कुछ गुजरा है उसका विवरण हू-ब-हू देना होगा। झूठ बोले तो यहीं जीभ काटकर रख दूंगा, समझे?"

"दण्डनायकजी ने ही यदि झूठ कहा हो तो?"

"उनपर झूठे होने का आरोप लगाते हो?" गंगराज आग-बबूला हो उठे।

"ऐसा नहीं है। जब दूसरों को बुरी लग सकने की बात आती है तो कुछेक बातों को छिपाना मानव के लिए सहज है।"

"इसपर बाद में विचार किया जायेगा। अभी तो तुम्हें सच-सच बताना होगा।"

"पहले से आरम्भ करूँ या अमावस्या के दिन की ही बात कहूँ?"

"मुझे तुम्हारा उद्देश्य मालूम हो गया है। जो कुछ तुम कहना चाहते हो, कहो। ज्यादा बातें बनाने की ज़रूरत नहीं।"

"जैसी आज्ञा। चोकि ने मेरे विषय में जो कहा उससे दण्डनायिका बहुत प्रभावित हुई होंगी। इसीलिए उन्हें जब डर लगा तो आकर उन्होंने मेरी मदद माँगी। कहने लगीं, पता नहीं कौन हमारी और हमारी सन्तान की बुराई चाह रहे हैं। उनसे हमारी रक्षा होनी चाहिए। मैंने उन्हें और उनकी सन्तान के लिए 'सर्वतोभद्र यन्त्र' तैयार करके दिया। यह एक संवत्सर पीछे की बात है। उसके बाद उन्होंने मुझे बुलवाया नहीं और न वे मेरे पास ही आयीं। अभी हाल में गत कृष्णपक्ष के आरम्भ में एक दिन दण्डनायिकाजी आयीं और बोलीं, 'अंजन लगाना है।' उन्होंने मुझे कभी यह नहीं बताया कि आखिर उनका बुरा चाहनेवाले कौन हैं। तब मैंने उनसे कहा—'अंजन लगाने पर अनचाहा विषय भी दृग्गोचर हो सकता है।' लेकिन जब उन्होंने हठ किया तो मैंने उनकी बात स्वीकार कर ली। मगर लगता है, यह बात पहले दण्डनायकजी को मालूम नहीं थी। उन्हें कैसे मालूम हुआ, पता नहीं। वे ख़ुद आये, और बोले, 'यह अंजन लगाने का काम हमारे ही यहाँ हो, और इसकी किसी को खबर न हो। अगर यह मात्र इन्द्रजाल हुआ तो देश निकाले का दण्ड दिया जाएगा।"

एक क्षण चुप रहकर उसने पुनः कहना आरम्भ किया, "सबके सो जाने पर वहाँ जाने का निश्चय किया गया। यथानुसार गत अमावस्या को मैं उनके निवास

पर गया और अंजन लगाया, दण्डनायकजी के ही कमरे में। दण्डनायकजी, दण्डनायिकाजी और चोकि, सिर्फ ये ही जाग रहे थे। दण्डनायक और दण्डनायिका ने तैल भरी थाली और मेरे बीच में स्थापित दीपक को स्थिर दृष्टि से निश्चित समय तक देखा। फिर तैल में देखा। मैंने उनसे पूछा, 'उसमें कोई दिखाई दे रहा है?'

दण्डनायिकाजी ने कहा—'हाँ, कुछ लोग...।'

मैंने पूछा, 'वे कैसे हैं?'

दण्डनायिकाजी ने कहा, 'पूँछवाले आदमी लगते हैं।'

'पहले कभी आपने उन्हें देखा था?' मैंने पूछा।

'नहीं।'—दण्डनायिकाजी ने बताया।

'अब क्या दिखता है?'

'वे हाथ से इशारा कर बुला रहे हैं।'

'कोई आ रहे हैं?'

'कोई स्त्री आ रही है?'

'कौन हैं वह? मालूम पड़ा?'

'ऐसा लगता है कि मेरी साड़ी ही की तरह उसने भी साड़ी पहन रखी है।'

'यह मालूम हुआ कि वे कौन हैं?'

'हाय, वह तो मेरे ही जैसी लगती है। दोनों जगह मैं कैसे रह सकती हूँ?'

'इसका उत्तर बाद में मिलेगा। क्या होता है, देखकर कहिये।'

'उस पूँछवाले आदमी के पास मैं गयी हूँ। हाय, उन्होंने मेरे कन्धे पर हाथ रखा।'

'डरिये नहीं। वे कोई और नहीं। वे महाब्रह्मचारी चिरंजीवी मारुति हैं। वे आपके मन की इच्छा को अभी पूरा करेंगे। आप जो देखना चाहेंगी उसे दिखायेंगे। वे जो कहेंगे वह कीजिए। मुझे दिखाई नहीं देता। इसलिए आप ही को स्पष्ट कहना होगा। अब क्या हो रहा है, बताइये।'

'मुझे हाथ पकड़कर ले जा रहे हैं। यह क्या है, हम कहाँ आ गये हैं? मुझे नहीं लगता कि मैं कभी यहाँ आयी हूँ। यह कौन-सी जगह है?'

'स्वयं ही मालूम हो जाएगा। जल्दी न करें। अब कोई और दिखाई दे रहा है?'

'दूर पर कोई दिख तो रहा है।'

'उन्हीं से आपको कष्ट होगा। पता लगा, कौन हैं?'

'आह। उनसे ही हमें कष्ट होगा। यह सच है?'

'सच है इसीलिए तो मारुति महाराज ने आपको दिखाया है। वे कौन हैं—इसका पता लग गया?'

'बहुत दूर पर हैं।' उतने स्पष्ट नहीं दीखते ।

'आपका मन अभी अनिश्चित स्थिति में है इसलिए स्पष्ट नहीं दीख पड़ते। कुछ और एकाग्र होकर देखिये तो मालूम पड़ सकेगा ।'

'आह ! यह क्या ? न, न, ऐसा हो ही नहीं सकता। जो हमें रोटी दे रहे हैं वे ही हमारी बुराई करेंगे ? नहीं, यह सम्भव नहीं ।'

'जिन्होंने रोटी खायी है वे ही अगर बुराई करें तो रोटी देने वाले बुराई क्यों न करें।'

'मुझे विश्वास नहीं होता ।'

'विश्वास न हो तो मैं क्या करूँ ? वस्तुस्थिति वहाँ दीख रही है। वह करीब-करीब आपके मन का ही प्रतिबिम्ब है। अपने आपको पहचानने के लिए यह अंजन उत्तम साधन है। किसे देखा, बताइए। बाद में कुछ समझाकर कहूँगा तब आपको विश्वास हो जायेगा।'

'न, न, मैं नहीं बता सकूँगी ।'

'छोड़िये ! उससे होने वाली भलाई-बुराई सब आपकी ही है। मेरा वह रक्षा यन्त्र, अभी आपने जिन्हें देखा, उन्हीं के विरुद्ध आपकी रक्षा करेगा। आपने निश्चित रूप से नहीं कहा इसलिए हमने अपनी शक्ति से आपके अन्तरंग को समझकर काम करने का आदेश दे दिया। उसने अपना काम कर दिया। वास्तव में आपको उससे प्रसन्न होना चाहिए। आप स्वयं नहीं कहेंगी तो उसे समझने के लिए हम ख़ुद नहीं जायेंगे। हमारे प्रयोग का फल आपको दीख ही पड़ा है। आप विजयी हों तो और अधिक मदद देने के लिए हम अपनी शक्ति का प्रयोग करेंगे।'

'नहीं, नहीं, ऐसा न करें। सम्भव हो तो अब तक जो किया है उसे भी लौटा लें।'

'तब तो बात यह है कि आप गलत समझ रही थीं। परन्तु अब जो गलती हुई है, अन्याय हुआ है उसका निवारण कहाँ तक सम्भव है, कहा नहीं जा सकता। फिर भी कोशिश करूँगा। उस दिन जब मैंने विरोधियों के नाम बताने को कहा तो आपने नहीं बताया। बता देतीं तो मैं सीधे उन्हीं पर अपनी शक्ति का प्रयोग करता। आपने नहीं बताया, इसलिए अब वह शक्ति आपको बाधा दे सकने वाले किसी अन्य व्यक्ति की ओर क्रियाशील हो रही है। उस शक्ति को जो आदेश दिया गया है उसके अनुसार काम करेगी ही; बिना आदेश पालन किये लौटेगी नहीं।'

'इसके माने ?'

'माने यह कि मैं अब निस्सहाय हूँ। इतना तो सच है कि आपने जिस व्यक्ति को देखा वही आपकी आशाओं को निराशा में परिणत करनेवाले हैं, वे ही आपके

रास्ते का काँटा बने हैं। अच्छा, इस बात को रहने दीजिए। अब बताइए, और क्या दिखाई दे रहा है ?'

'मुझे कुछ और देखने की इच्छा नहीं है।'

'इच्छा न हो तो छोड़ दीजिए। क्या दण्डनायकजी को यह सब दिखाई पड़ा ?'

'नहीं, वह पूँछवाला व्यक्ति दिखाई पड़ा, यह सच है। वह एक स्त्री को साथ लेकर दूर चला गया। इतना मात्र दीख पड़ा। और कुछ भी नहीं दिखा।' दण्डनायक ने बताया।

'वैसे ही देखते रहिए, अगर कुछ देखने की इच्छा हो तो दिखाई पड़ेगा।'

'मुझे सच-सच देखना है। वह दिखेगा ? देखने को मिलेगा ?'

''अगर आपको कुछ भी नहीं दिखाई दिया तो यह सत्य है कि आपके कोई विरोधी नहीं हैं। विश्वास दिलाकर द्रोह करनेवाले हों तो वे धुँधले-से दिखाई पड़ सकेंगे। जरा और गौर से देखिए। क्या दिखाई दे रहा है ?'

'कुछ भी तो नहीं।'

'कुछ देर तक वैसे ही देखते रहिए। अगर कुछ दिखे तो बताइए।'

दण्डनायकजी कुछ देर बैठे देखते रहे।

'कुछ प्रकाश या रोशनी जैसी दिखती है ?'

'नहीं, कुछ भी नहीं। थाली, और तैल—यही दिखाई देते हैं।'

'आसमान और तारे ?'

'नहीं, कुछ भी नहीं।'

'दण्डनायिकाजी, आप फिर देखेंगी ?'

'नहीं।'

'तो इस अंजन का विसर्जन कर दूँ ?'

'हाँ।'

इसके बाद मैंने उस दिये को बुझा दिया। बाद में दण्डनायकजी ने कहा, 'बहुत खुशी हुई, अब तुम जा सकते हो।'

मैंने पूछा—'आपको तृप्ति मिली ?'

'बहुत।'

'प्रधानजी को और राजपरिवार को हमारे बारे में कहिए।' मैंने कहा।

'ठीक है, समय आने पर बतायेंगे। अब तुम जा सकते हो।' दण्डनायक बोले।

तब मैं अपना बकुचा बाँध उठकर खड़ा हो गया। मैंने जिस पारिश्रमिक की आशा की थी वह भी नहीं मिला, मैं हाथ मलता खड़ा रहा। तभी दण्डनायकजी ने पूछा—'अब क्यों खड़े हो ?'

मैंने कुछ संकोच से कहा—'पारिश्रमिक···'

'तुम्हारे घर पहुँच जाएगा, कल सुबह। तुम जा सकते हो।' कहकर नौकर चोकि को साथ करके घर भेज दिया। इतना सब जो हुआ सो हू-ब-हू बता दिया है मैंने।"

"तब तो, तुम जब घर लौट रहे थे उस समय तक गाँव के लोग जगे नहीं थे?" प्रधान गंगराज ने प्रश्न किया।

"अभी मुर्गे ने पहली बार भी बाँग नहीं दिया था।"

"सुबह तुम्हें पारिश्रमिक मिल गया?"

"नहीं, अभी तक नहीं मिला। आज नहीं तो कल मिल जायेगा, उसकी मुझे इतनी चिन्ता नहीं।"

"तो अंजन का काम समाप्त होते ही तुमने पारिश्रमिक क्यों माँगा?"

"जो काम किया उसका पारिश्रमिक तभी माँग लेना मेरी आदत है। आदत के अनुसार पूछ लिया।"

"दण्डनायिका ने जो देखा उसे जानते हुए भी तुम कह नहीं रहे हो। क्यों?"

"मैंने नहीं देखा। अलावा इसके वहाँ सबको सब कुछ नहीं दिखाई पड़ता। दण्डनायकजी को भी सब कुछ नहीं दिखाई पड़ा।"

"तुम झूठ बोल रहे हो। दिखने पर भी कुछ न दीखा कहकर स्वांग रच रहे हो। अब यह स्पष्ट हो गया कि तुम देखनेवाले के ही सिर पर, सही गलत जो देखा उसे मढ़कर खिसक जाते हो, यही तुम्हारी रीति है।"

"ऐसा नहीं, प्रधानजी। इसमें हमें वैयक्तिक कोई रुचि नहीं है। जिनकी जो समस्या होगी, उन्हें उसका परिहार दिखना चाहिए।"

"तो पहली बार जब दण्डनायिका आयी थीं तब तुमने यह क्यों कहा था कि तुम स्वयं अंजन लगाकर पता लगाओगे। उसका पता लगाना तो तुम्हारी समस्या थी नहीं?"

"मेरी समस्या नहीं थी, यह ठीक है। परन्तु कुछ लोग अंजन के तेल में देखने से डरते हैं। तब उनकी तरफ से उनकी स्वीकृति होने पर, हम देखकर कह सकते हैं। परन्तु वे ही देखने को स्वीकार कर लेते हैं तो हम नहीं देखते। हमारी वृत्ति तो कमल के पत्ते पर के पानी की तरह है। वह हमें नहीं लगता।"

"चोकि से गुप्त रूप से तुमने क्या-क्या बातें जान रखी हैं?"

"मैंने? ऐसी बात ही क्या थी जो मैं जानना चाहता?"

"चोकि ने हमें सब कुछ बता दिया है।"

"वह तो नौकर है। वह अपने बचाव के लिए भी उल्टा-सीधा बक गया होगा।"

"चलो मान लिया। यदि उसने झूठ कहा हो तो उसे दण्ड मिलना ही चाहिए न? दण्ड देने के लिए हमें पहले सचाई तो मालूम होनी ही चाहिए?"

"पण्डित कुछ झुका। उसने सोचा था कि सुरक्षित रूप से प्रधान के हाथ से छूट जायेगा। अब उसे सूझ नहीं रहा था कि क्या करना चाहिए।

"चुप रहने से काम नहीं चलेगा। सवाल का जवाब तुरन्त मिलना चाहिए। बताओ, चोकि से तुमने क्या-क्या जानकारी एकत्र की ? और यह सब किसलिए किया ?"

"हमारा धन्धा चले, यही हमेशा हमारा लक्ष्य रहा है। उसके लिए अपेक्षित बातों का पता लगाना जरूरी होता है।"

"पहले यह बात तुमने क्यों नहीं बतायी ?"

"माफ कीजिये कुछ घबड़ा गया था।"

गंगराज हँस पड़े, "अच्छा तो घबड़ा गये थे, तुम।"

"मेरी ऐसी परीक्षा पहले कभी नहीं हुई।"

"सच बोलने वाले को किसी भी परीक्षा में घबड़ाने की जरूरत ही क्या है ! अगर तुम घबड़ा गये तो वह तो सचाई को छिपाने का ही प्रयत्न समझा जायेगा न ?"

"छिपा रखने के लिए है ही क्या, प्रधानजी ? मैंने चोकि से उन्हीं बातों का संग्रह किया जिन्हें आप जानते हैं। सो भी उतना ही जितना वह जानता है।"

"उससे तुमने जो जो बातें जानी हैं वह सब बतानी होंगी। और सुनो, यह मत बको कि जो सब मैं जानता हूँ वह तुम भी जानते हो।"

"ऐसा कुछ नहीं, प्रधानजी। कोई नयी बात नहीं—यही मेरे कहने का मतलब है।"

"विषय एक ही होता है, पर उसकी जानकारी एकत्र करने का उद्देश्य अलग-अलग होता है। इसलिए तुम्हें इससे कोई मतलब नहीं। बताओ।"

"दण्डनायिकाजी की यह अभिलाषा है कि बड़े राजकुमार से उनकी बेटी का विवाह हो। परन्तु युवरानीजी किसी दूसरी लड़की के साथ विवाह की बात सोच रही हैं। उस दूसरी कन्या के माता-पिता दण्डनायिकाजी के प्रयास में बाधा डाल रहे हैं और उन लोगों ने युवरानीजी को वश में कर रखा है। इस वशीकरण से युवरानी को मुक्त करने पर दण्डनायिकाजी की आशा पूरी होने के लिए मार्ग सुगम हो जायेगा इतना ही मालूम हुआ।" और पण्डित चुप हो गया।

"यह बात तुम्हें चोकि ने बतायी या दण्डनायिकाजी ने ?"

"मैंने ही चोकि से यह सब पता लगाया था। दण्डनायिकाजी ने कभी इस सम्बन्ध में नहीं कहा।"

"दण्डनायिकाजी की इच्छा के विरुद्ध अड़चन पैदा करनेवाले कौन हैं ?"

"मुझे मालूम नहीं।"

"चोकि ने नहीं बताया ?"

"उसे भी मालूम नहीं है।"

"तुमने जानने का प्रयत्न किया होगा ?"

"प्रयत्न तो किया। अगर मालूम हो गया होता तो मुझे दण्डनायिकाजी से अधिक लाभ मिल सकता था। न उन्होंने बताया, न कहीं और से मालूम हो सका। मतलब यह कि उनके निकटवर्ती किसी परिवार को भी इस बात की जानकारी नहीं है।"

"तो बात यह है कि तुमने उनके यहाँ के अन्य नौकर-चाकरों से भी इस सम्बन्ध में जानकारी एकत्र करने की कोशिश की ?"

"कोशिश तो की, मगर सीधे उनसे नहीं। चोकि ही के ज़रिये। परन्तु उससे किसी विशेष बात का पता नहीं लग सका।"

"दण्डनायक के घर के नौकरों में से चोकि के अलावा और कोई तुमसे उपकृत नहीं हुआ ?"

"वे जब तक स्वयं हमारे पास न आयें तब तक हम कैसे उनका उपकार कर सकते हैं ?"

"तुमने अभी बताया कि दण्डनायकजी ने कहा कि कुछ नहीं दिखा। क्या सचमुच उन्हें कुछ नहीं दिखा ?"

"यह मैं कैसे बताऊँ ? उन्होंने कहा कि कुछ नहीं दिख रहा है। उनकी बात पर विश्वास करना चाहिए। परन्तु दण्डनायिकाजी ने जो देखा वह उन्हें अच्छा नहीं जँचा। दण्डनायकजी को भी शायद वैसा लगा हो, इसलिए ऐसा कहा हो तो आश्चर्य नहीं।" पण्डित ने कहा।

"तो तुम्हारा मतलब यह कि सभी को अंजन में एक जैसा ही दिखता है, है न ?"

"वहाँ तो एक जैसा ही दिखता है। परन्तु कुछ लोगों को शायद उतना भी नहीं दिखता।"

"क्यों नहीं दिखता ?"

"उसके सम्बन्ध में पहले से कोई भावना नहीं बनी होती, कुछ लोगों में। इसलिए ऐसे लोगों को नहीं दिखता।"

"तो जिसे पूर्वाग्रह हो उसे ही दिखता है। यही न ?"

"ऐसी पूर्वाग्रह पीड़ा न हो तो हमारे पास वे आयेंगे ही क्यों, प्रधानजी ? उन्हें जो समाधान चाहिए, वह इस हमारे अंजन से मिल जाता है। उनकी भावना को सत्य जैसा रूप देना और दिखाना यही उस अंजन का काम है। उनको जो दिखता है उसे ही तो वे कहते हैं।"

"तुम लोग दृष्टि केन्द्रित करने का जो तन्त्र करते हो, उससे व्यक्ति की अपनी ही कल्पना यथारूप धारण करके वहाँ दिखने लगती है। यही एक भ्रम पैदा हो

जाता है। है न ?"

"वह देखने वालों के निर्णय पर छोड़ दिया जाता है। हम उसका विमर्श नहीं करते।"

"तो चाहे झूठ हो या सच, भ्रम हो या कल्पना, कुछ भी हो, जो तुम्हारे पास आते हैं उन्हें तृप्ति मिलनी चाहिए—इतनी ही तुम्हारी दृष्टि है। यही न ?"

"मदद माँगते हुए जो आयें उन्हें तृप्त करना हमारा काम है।"

"उसमें झूठ-मूठ या काल्पनिक वताकर तृप्त करना भी होता है ?"

"जो माँगने आते हैं, उनको जो दिखता है वह सब सत्य है—हमारा तो यही विश्वास है।"

"यदि वह मिथ्या हो तो उससे कितने अनर्थ हो सकते हैं—यह जानते हो ?"

"वह मिथ्या है, ऐसा हम नहीं मानते।"

"तुम क्या मानते हो यह एक अलग वात है किन्तु यदि वह मिथ्या है तो उसके फलस्वरूप अनर्थ तो होगा ही ?"

"हो सकता है।"

"हो सकता है ! दूसरे की पत्नी को वशीकरण करके उसे किसी दूसरे को दे देना, किसी ने कुछ कहा उसे सुनकर सज्जनों को तकलीफ देना, सौहार्द में द्वेष पैदा करना—यह सब करके भी तुम लोग निर्लिप्त हो। पण्डित सुनो, कल सुबह होने से पहले तुम्हें दोरसमुद्र छोड़ देना होगा। इस पोय्सल राज्य में कहीं तुम्हारी छाया भी दिखी वहीं तुम्हें तलवार के घाट उतार दिया जायेगा। कल यह आदेश जारी कर दिया जायेगा। तुम्हें इस राज्य की सीमा से वाहर जाने के लिए दो पखवारों की अवधि दी जाती है। यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम अकेले हो, तुम्हारा परिवार नहीं है। होता तो उन वेचारों को तुमसे कितनी तकलीफों का सामना करना पड़ता। उठो, वाहर निकलो, यहाँ क्या सव हुआ इसका किसी को पता तक न लगे। यहाँ से इस तरह निकलोगे मानो कुछ हुआ ही नहीं, जैसे आये वैसे जाओ। तुम्हारे राजधानी से निकल जाने, राज्य की सीमा छोड़ने आदि कोई भी वात कानों-कान किसी को नहीं मालूम होनी चाहिए। समझे ? चलो, जाओ यहाँ से !"

"मैंने एक भी झूठी वात नहीं कही, प्रधानजी। जैसे का तैसा सबकुछ सुना दिया है।"

"इसीसे तुम्हारी जान वच गई है। परन्तु तुम जैसे आदमी की इस पोय्सल राज्य को जरूरत नहीं। अव ज्यादा वातें मत वना, चल निकल यहाँ से।"

वामशक्ति पण्डित वहाँ से अपने घर चला गया। उसके वाद वह कहाँ गया पता नहीं। कहीं किसी को नहीं दीख पड़ा।

प्रधान गंगराज ने वामशक्ति पण्डित को बुलाकर जो तहकीकात की थी, उसका सारा वृत्तान्त प्रभु एरेयंग के समक्ष यथावत् निवेदन किया और बताया, "मेरी बहन ने उस अंजन क्रिया में जो देखा वह मालूम नहीं पड़ा। उसने आगे देखने से इन्कार कर दिया था, इसलिए यही समझना चाहिए कि उसने जो कुछ देखा वह दुखदायी था। उसे भी बताने का आदेश हो तो जानकर बताऊँगा।"

"अच्छा हुआ कि वामाचारी को देश से निकाल दिया। आपकी बहन को आदत के विपरीत कुछ और ही दिखा, इससे वह बहुत विह्वल हो गयीं, यह भी स्पष्ट हो गया। सारा वृत्तान्त हम तक पहुँच गया है, यह बात जान लेने पर वह अब तक जिस मिलनसारी से राजमहल में आती-जाती रही हैं शायद उन्हें अब वैसा करने में संकोच हो! सुनने में आया है कि अब वे ऐसे ही संकोच की स्थिति में रहा करती हैं। उन्होंने जो किया वह अविवेक था—इतना भर उन्हें मालूम हो जाय तो पर्याप्त है। बड़े लोगों को बड़ों की तरह बरतना चाहिये। छोटे लोगों के साथ मिलकर छोटे नहीं बनना चाहिए। यह उन्हें समझा दीजिए। यह उन्हें ख़बर न होने दें कि हमें यह सारा वृत्तान्त मालूम हो गया है।"

"जैसी आपकी आज्ञा। वास्तव में मैं दण्डनायकजी से या अपनी बहन अथवा उनके यहाँ के नौकर-चाकरों से मिला ही नहीं। उस पण्डित से असली बात निकलवाने के लिए मैंने उसके साथ ऐसा व्यवहार किया मानो मैं सब कुछ जानता हूँ। पण्डित को देश निकाले का दण्ड जो दिया गया है उसका आज्ञा-पत्र कल दण्डनायकजी के पास भेज दिया जायेगा। बाद में अन्यान्य दण्डनायकों के पास उन-उन सीमा-क्षेत्रों के हेग्गड़ों के पास सूचना भेजने की व्यवस्था करने का आदेश कर दिया जायेगा। अगर कोई पूछेगा तो उनसे कहेंगे कि हमने ही उसकी गति-विधियों का पता लगाकर, उसके वामाचारी व्यवहारों से सामाजिक जीवन कलुषित न हो, उसे निकाल दिया है।"

"ठीक है। हेग्गड़े मारसिंगय्या के लिए निवास के सम्बन्ध में क्या निर्णय किया है।"

"जैसी आज्ञा हुई थी, राजधानी के ईशान में निवास की व्यवस्था कर दी गयी है।"

"यह खुशी की बात है। कल सूर्यास्त के पहले वे शायद यहाँ आ पहुँचेंगे, अभी-अभी यह समाचार मिला है। उनपर हमें बहुत विश्वास है यह बात किसी से छिपी नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि वही विश्वास आप भी उनपर रखें। वे राजघराने की आन्तरिक व्यवस्था के लिए ही नियोजित हैं। फिर भी उनके यहाँ आने पर किसी न किसी तरह आपके साथ सीधा सम्बन्ध हो ही जायेगा, व्यावहारिक मामलों के कारण। जिस तरह हमें उनके प्रति विश्वास है, वैसा ही जब

तक आपको भी नहीं हो जायँ तब तक आप उनके प्रति सतर्क रहकर व्यवहार करें। इससे हमें सुविधा होगी। हमारे साथ उनके मेल-जोल की बात ध्यान में रखकर आपको भी वैसा व्यवहार रखने की जरूरत नहीं। आप प्रधान हैं, वह मात्र एक हेग्गड़े। उन्हें भी अपने पद, अपनी मर्यादाओं का ज्ञान है, उनका व्यवहार उसी तरह का होगा। हम उनके साथ अत्यन्त स्नेहपूर्ण-सा भी व्यवहार क्यों न करें, उन्हें औचित्य की सीमा से बाहर कभी नहीं जाना होगा।"

"जैसी आपकी आज्ञा।"

"युवरानीजी कह रही थीं कि दण्डनायिकाजी इधर कुछ समय से नहीं आयीं। दण्डनायिकाजी से तत्काल आने को कह दें।"

"आज ही?"

"जब उन्हें फुरसत हो, आ जायें।"

"जो आज्ञा।"

"अच्छा प्रधानजी।"

गंगराज उठे नहीं, बैठे ही रहे।

"क्या कुछ और बताना चाहते हैं?"

"कल महासन्निधान से भेंट की थी। वे बहुत परेशान हैं।"

"हमारी अस्वस्थता उन्हें चिन्तित बनाये होगी। आपको उन्हें धीरज बधाना चाहिए। आपको मालूम है न, अब सिलहार के वैद्य भी आ गये हैं। अब चिकित्सा और अच्छी तरह से होगी।"

"यह महासन्निधान को मालूम है। जब सिलहार के वैद्यजी ने आपकी जांच कर ली तो उन्हें उन्होंने बुलवाकर उनसे विचार-विनिमय किया था। इसलिए प्रभु की इस अस्वस्थता के बारे में हमें उनसे कुछ भी कहने की जरूरत नहीं। स्वयं वैद्य जी पूरी तरह आश्वस्त कर चुके हैं।"

"तो फिर महासन्निधान की परेशानी का क्या कारण हो सकता है?"

"उनके रहते आपका सिंहासनारोहण नहीं हुआ इसलिए।"

"छि, छि, ऐसा कहीं हो सकता है, प्रधानजी?"

यह सही है या गलत, इसकी चर्चा मैं नहीं करूँगा। पता नहीं उनका अन्तर्मन क्या है कि जब कभी हम उनसे मिलने जाते हैं तो इतना जरूर कहते हैं 'जल्दी ही युवराज को समझा-बुझाकर पट्टाभिषेक करवायें।'

"उन्हें भय है कि कहीं मैं उनसे पहले न चल बसूँ। ऐसा हो भी सकता है। हमें भी कभी-कभी यही लगने लगता है पता नहीं हम इस सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आकाश आदि को फिर कभी देख भी पायेंगे या नहीं। युवरानीजी के धीरज बँधाने पर हमें अपनी बातों पर ही हँसी आ गयी। परन्तु इतना तो सच है कि गत अमावस्या की रात को हमें जो तकलीफ हुई उसका वर्णन हम कर ही नहीं

सकते। अब कुछ मानसिक शान्ति मिल रही है, कुछ राहत मिली है।"

"वास्तव में राज्य की सम्पूर्ण प्रजा प्रभु के स्वास्थ्य के लिए बहुत अधीर हो रही है। ऐसे सन्दर्भ में आप महाराज के अभीष्ट को पूरा कर देंगे तो वे भी तृप्त होंगे।"

"इस महान् पोयसल वंश के गौरव को हम कलंकित नहीं करना चाहेंगे।"

"किसी भी समय इस तरह का नियम नहीं रहा है, प्रभो। पुराणकाल में भी पुत्र का पट्टाभिषेक करके खुश होने वाले अनेक महापुरुषों के नाम चाहेंगे तो निवेदन कर सकता हूँ। प्रभु स्वीकार करके महाराज के मन को सन्तुष्ट करें—बार-बार विनती करता हूँ।"

"यह निश्चय चर्चा या किसी दबाव से बदलनेवाला नहीं, प्रधानजी। हमारा निर्णय अटल है।"

"तो मतलब यह हुआ कि प्रभु ने हमको क्षमा नहीं किया। जाने-अनजाने अपनी एक दिन की गलती से हमें महासन्निधान को चिन्ताग्रस्त देखना पड़ रहा है। आप हमें क्षमा करेंगे और उदारता दिखावेंगे—यही हमारा विश्वास था। प्रभु का चित्त प्रसन्न नहीं हुआ, हमारा दुर्भाग्य है।"

"आपने गलती की हो तो क्षमा करने का प्रश्न उठ सकता है। पर, उस दिन आपने और दण्डनायकजी ने हमारी आँखें खोल दीं। हम आपके ऋणी हैं। चिण्णम दण्डनायजी ने कुछ फूहड़पन अवश्य दिखाया। उन्हें अधिक व्यामोह जो है इसलिए। उनके इस व्यामोह के कारण कभी-कभी राजनैतिक जिज्ञासा उनके दिमाग़ तक नहीं पहुँच पाती। खैर, इस बात को यहीं छोड़ दीजिए। आपके चित्त को इस प्रसंग को लेकर अब और कष्ट न हो, इसलिए हम स्वयं महासन्निधान से प्रार्थना करेंगे। ठीक है न?"

"अगर आप पट्टाभिषेक के लिए स्वीकृति देते हैं तो सभी को खुशी होगी।"

"अभी जैसे हैं वैसे ही रहने पर आप नाखुश हैं?"

"जिस सन्तोष की हम आशा करते हैं, वह यदि न मिले तो निराशा हो सकती है मगर वह असन्तोष नहीं कहलायेगा। प्रभु के मन में एक विचार आ सकता है। उस दिन 'सिंहासनारूढ़ नहीं होऊँगा' कहकर आज स्वीकार करते हैं तो प्रभु के व्यक्तित्व पर बट्टा लग सकता है। लेकिन ऐसा विचार करना प्रभु के लिए उचित नहीं है, क्योंकि प्रभु की वचन-निष्ठा को साम्राज्य की सारी प्रजा अच्छी तरह जानती है। महाराजा और प्रजाजन की इच्छा है तो ऐसे दबाव को भी शिरोधार्य कर स्वीकृति दें, वह प्रभु की उदारता ही होगी। इसलिए प्रभु इस पर पुनर्विचार करें—यही हमारी प्रार्थना है।"

"पहले इतना तो हो कि हम स्वस्थ होकर चलने-फिरने योग्य हो लें, फिर बाद में यह सब सोचेंगे।" कहकर प्रभु बात टालकर घण्टी बजाकर बोले, "अच्छा

प्रधानजी।"

सेवक ने आकर परदा एक ओर सरका दिया। प्रधान गंगराज बाहर चले आये।

उनके मन में कुछ विचार उठे। सोचने लगे—पहली बार जब अंजन के बारे में प्रभु को चर्चा करनी थी तो राजकुमार बल्लालदेव को प्रभु ने अपने साथ रखा था। और जब उसका परिणाम जानने का अवसर आया तो राजकुमार को नहीं बुलवाया गया इसका क्या कारण हो सकता है? पद्मला को बहू बना लेने की प्रभु की इच्छा नहीं है क्या? यह तो सब जानते हैं कि राजकुमार पद्मला को चाहते हैं। तो क्या प्रभु राजकुमार को इस ओर से हटा लेना चाहते हैं? यदि ऐसा कुछ हो गया तो उस लड़की के भविष्य का क्या होगा? मेरी बहन की जल्दबाजी और विपरीत मति के कारण आसानी से बन सकनेवाला काम घोटाले में पड़ गया है। अब दण्डनायकजी और बहिन को बुलाने का उद्देश्य शायद इस विषय में स्पष्ट सूचना देने के लिए ही है। अब इसमें मेरा हस्तक्षेप करना ठीक नहीं। आगे यह बात कौन-सा रूप लेती है, इसे जानकर ही कुछ सोचा-समझा जा सकता है। इतना तो स्पष्ट है कि प्रभु प्रसन्न नहीं हैं। बेचारे दण्डनायक जी बड़ी संदिग्ध स्थिति में पड़ गये हैं। स्त्रियों का स्वार्थ, उनकी असूया, जल्दबाजी आदि के कारण क्या सब हो जाता है—यह जान पाना दुस्साध्य है। इन्हीं सब बातों पर सोचते-विचारते प्रधानजी अपने घर पहुँचे। और फिर युवराज के बुलावे की सूचना दण्डनायकजी के घर भिजवा दी।

दण्डनायक दम्पती ने, फुरसत से आने की सूचना मिलने पर भी, ख़बर पाते ही तुरन्त राजमहल जाने का निश्चय कर लिया। उन्हें यह आशंका भी नहीं हुई कि अमावस्या की रात का वह सारा वृत्तान्त प्रधानजी को और युवराज को मालूम हो गया। वामशक्ति पण्डित को जो देश निकाले का दण्ड मिला था, उसकी भी ख़बर अभी इन तक नहीं पहुँची थी। इसलिए दण्डनायिका ने सलाह दी कि जाते वक़्त अपनी बेटियों को भी साथ ले जाना चाहिए। युवराज ने दण्डनायक को और युवरानी ने दण्डनायिका को देखने के इरादे से सूचना भिजवायी थी। दण्डनायक की दृष्टि में यह एक सामान्य बात ही थी। उन्होंने इतना ही कहा कि बच्चियाँ चलने के लिए तैयार हों तो लेती चलो। राजमहल जाने की तैयारी होने लगी। चामव्वे को चलते वक़्त अचानक याद आयी कि आज राजकुमार बल्लाल का जन्मदिन भी है।

जन्मदिन के इस अवसर पर बुलावे के न आने पर दण्डनायिका को कुछ असन्तोष भी हुआ। धीरे से इस बात को पति के कानों में फुसफुसाया भी। बेटियाँ अभी तैयार होकर नहीं आयी थीं कि तभी दण्डनायक ने कहा—"युवराज की अस्वस्थता के कारण सब कुछ अन्तःपुर तक ही सीमित है। अच्छा हुआ, तुम्हें याद आ गयी। यह भी एक अवसर है, अब जब राजमहल जा ही रहे हैं तो राजकुमार को जन्म-दिन के उपलक्ष्य में भेंट देने के लिए कुछ लेकर चलना चाहिए।"

चामव्वे भीतर गयी।

कुछ ही देर में सब तैयार होकर राजमहल की तरफ निकले। इनके आने की पूर्व-सूचना न होने के कारण वहाँ का सेवक बिज्जिगा उन्हें प्रतीक्षा-प्रकोष्ठ में बैठाकर अन्तःपुर से अनुमति लेकर आया तो उसके साथ दो परिचारिकाएँ भी आयीं। दण्डनायकजी को सेवक युवराज के विश्राम कक्ष तक ले आया। परि-चारिकाओं में से एक दण्डनायिकाजी को युवरानी के अन्तःपुर प्रकोष्ठ में ले गयी। दूसरी उन लड़कियों को अध्ययन कक्ष में ले गयी।

कवि नागचन्द्रजी का अध्यापन चल रहा था। पद्मला, चामला और बोप्पिदेवी—तीनों वहाँ एक भद्रासन पर जाकर बैठ गयीं।

बिट्टिदेव चामला को देख मुस्कुरा उठा। बल्लाल ने उनके आने का एहसास होने पर भी अपनी ग्रीवा ऊपर नहीं उठायी। उदयादित्य ने ऐसी आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा मानो बहुत दिनों बाद आयी थीं। यह सब कुछ ऐसे ढंग से हुआ कि अध्यापन कार्य में कहीं व्यवधान नहीं आया। चामला और बोप्पि को यह सब सहज ही लगा, मगर पद्मला का मन कुछ म्लान हो आया। बल्लाल ने उसकी ओर देखा भी नहीं। मुँह भी जैसे फुलाये बैठा हो। वह कुछ कर भी तो नहीं सकती थी। अपने घर पर ऐसा हुआ होता तो शायद उठकर चली जाती। यह राजमहल है। बैठने को कहने पर बैठना होगा। जहाँ बुलायें वहाँ जाना होगा। ऐसी स्थिति में वह लाचार थी, बैठे रहना पड़ा।

पाठ चल रहा था। कवि चक्रवर्ती रन्न का 'साहस भीमविजय' पढ़ा रहे थे—दुर्योधन कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। धर्मपुत्र युधिष्ठिर की छावनी में चर्चा हो रही है। द्रौपदी और भीम की जोड़ी अनल-अनिल की जोड़ी जैसी है। रन्न कवि का नायक भीम है। काव्य का विषय है भीम द्वारा द्रौपदी की जिज्ञासाएँ शान्त कर उसे सन्तुष्ट करना, विषम शृंगार आदि आदि और इनकी क्रियान्विति के लिए सन्नद्ध भीम के साहसपूर्ण व्यक्तित्व को निरूपित करना। इस अवसर पर कवि रन्न भीम की आन्तरिक वेदना भीम के ही शब्दों में इस तरह व्यक्त करते हैं—

"सभा में मैंने जो प्रतिज्ञा की थी वह पूर्ण होने से चूक गयी। पांचाली के मुख की वह म्लानता नहीं गयी।" इस पद्यांश को कवि नागचन्द्र बहुत ही रसपूर्ण रीति

से पढ़कर अर्थ समझा रहे थे। सम्पूर्ण काव्य रचना इसी केन्द्रविन्दु को लेकर हुई है। ऐसा क्या कारण था कि पांचाल की राजपुत्री का मुख म्लान हुआ और केवल इसी बात पर कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर्वत जैसे विशाल गजराजों के रक्त से प्लावित हो गयी। इतने पर भी द्रौपदी का म्लानवदन म्लान ही बना हुआ है। उसके मुख पर मन्दहास उपजाना है। यह तभी सम्भव है जब भीम उस दिन राजसभा में की गयी प्रतिज्ञा पूरी करें। और वह तभी पूरी होगी जब भीम दुर्योधन की जाँघ तोड़ देंगे। इसलिए वह दुर्योधन को खोज रहा है, परन्तु वह कहीं दिख नहीं रहा है। ऐसी स्थिति में द्रौपदी की वदन-म्लानता दूर हो तो कैसे ? थोड़े शब्दों में सम्पूर्ण महाभारत की कथा कवि ने बहुत ही प्रभावशाली एवं मनोहर ढंग से कह दी है। साथ-साथ एक तत्त्व की बात भी कह दी है। यह कि जो व्यक्ति स्त्रियों को दुःख देते हैं, उन्हें पीड़ा पहुँचाते हैं, उनको अप्रसन्न करते हैं—ऐसे ही व्यक्ति दुनिया में होनेवाले सारे विप्लवों का कारण बनते हैं। जो स्त्रियों के दुःख का निवारण कर उन्हें सुख-चैन देते हैं, उनकी कठिनाइयों का समाधान करते हैं, वे संसार में शान्ति-स्थापित करने का कारण बनते हैं। अर्थात् मानव का सुख मानिनियों को सुखी और तृप्त बनाये रखने में है। उन्हें अतृप्त रखकर, कष्ट पहुँचाकर, उनके सुख-सन्तोष को नष्ट करने से तो वह स्वयं अपने जीवन के लिए शूल बन जाता है। यह कवि का भाव है। काव्य के पढ़ने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हम जिसे प्रेम करते हैं उसे सदा सुखी रखना चाहिए। यह हमारी श्रेष्ठ संस्कृति का लक्षण है। नारी को मात्र भोग्य वस्तु मानकर चलना हमारी संस्कृति की रीति नहीं। उससे प्राप्त होनेवाले सुख के लिए हमें उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। इतना ही नहीं, निष्ठावान् रहकर सदा उनके सुख का कारण बनकर रहना चाहिए।" इतना कुछ निरूपण करने के बाद कवि नागचन्द्रजी रुक गये।

"कवि के विचार प्रशंसनीय हैं, परन्तु नारी को इस तरह रखने के इच्छुक पुरुष के प्रति नारी का भी कुछ कर्तव्य होना चाहिए न, गुरुजी ? वहाँ बलिपुर में आपने मायण के संकट की रामकहानी सुनी है न ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"अपवाद तो रहते ही हैं। अपवाद तत्त्वनिरूपण के आधार नहीं बनते। वैसी समस्या व्यक्तिगत बन जाती है।" कवि नागचन्द्र ने समझाया।

"मायण की वह राम कहानी क्या है ? कौन है वह ?—बल्लाल ने जिज्ञासावश पूछा।

"दण्डनायकजी की पुत्रियाँ आयी हैं। आपने देखा नहीं।" कहकर कवि नागचन्द्र ने उस ओर इंगित किया।

बल्लाल यों ही उस ओर एक बार देखने के बाद गुरुजी की ओर मुखातिब हो गया। वह समझ गया कि उस विषय पर अब आगे बात नहीं होनी चाहिए।

कवि नागचन्द्र का ख्याल था कि बल्लाल अब तक पद्मला को नहीं देख पाया है। लेकिन उसकी तरफ देखकर भी जब उसने कोई उत्साह नहीं दिखाया तो उन्हें आश्चर्य हुआ। मायण का किस्सा अब प्रासंगिक नहीं था। फिर भी कवि नागचन्द्र ने सोचा कि उसे न कहकर कुछ और कहे तो वे लड़कियाँ समझेंगी कि हमारी वजह से बात करना बन्द कर दिया है। इसलिए उन्होंने आज इतना ही कहकर अध्यापन समाप्त कर दिया। फिर बात बदलने के विचार से पद्मला की ओर देखकर पूछा, "दण्डनायकजी भी आये हैं ?"

"हाँ, माँ भी आयी हैं।" पद्मला ने कहा। बात तो वह नागचन्द्र से कर रही थी, मगर दृष्टि अनजाने ही बल्लाल की ओर चली गयी थी।

"दण्डनायकजी से मुझे मिलना था। अब यहाँ आये हुए हैं तो सोचता हूँ मिल लूँ।" कहते हुए कवि नागचन्द्र उठ खड़े हुए।

"शिष्य भी उठ खड़े हुए। उन्होंने गुरु को सविनय प्रणाम किया। कवि नागचन्द्रजी चले गये। तब तक बल्लाल प्रतीक्षा कर रहा था। उसने बिट्टिदेव से कहा, "छोटे बप्पाजी, मुझे महासन्निधान के पास जाना है, तुम और उदय इनके साथ रहो।" और इतना कहकर वह भी चला गया। पद्मला को पूरा विश्वास था कि बल्लाल जाते-जाते कम-से-कम एक बार उसकी ओर देखेगा तो जरूर। मगर उसने ऐसा भी नहीं किया। वह बेचारी बहुत निराश हुई। जिसे न करने का पाठ अभी-अभी गुरुजी से उसने पढ़ा था, वही करके चला गया।

चामला को बहुत आश्चर्य हुआ, बिट्टिदेव को भी। बल्लाल में एकाएक इतना परिवर्तन ! यह तो जानी हुई बात थी कि इससे पद्मला को दुःख हुआ है इसलिए उसे खुश करने के लिए उन लोगों ने बातों-ही-बातों में एक निर्णय कर लिया।

"उदय, चलो हम सब मिलकर शतरंज खेलेंगे। भैया को महासन्निधान के पास राजकार्य रहा होगा, इसलिए वे वहाँ गये हैं। फिर आज जाने का मतलब है कोई बहुत जरूरी काम होगा।" बिट्टिदेव ने कहा।

"आज पर बड़ा जोर दिया आपने ? क्या 'आज' के कोई सींग निकले हैं ?" चामला ने व्यंग्य किया।

"सींग हैं या नहीं, अपनी दीदी से पूछ लो।" बिट्टिदेव बोला।

"उसे यह सब कहाँ मालूम। है न दीदी ?" कहकर उसने बहन के कन्धे को हिलाते हुए उस पर अपना हाथ रख दिया।

बहन का हाथ परे सरकाकर पद्मला बोली, "तुमको तो बस तमाशा सूझा है। राजकुमार शतरंज खेलना चाहते हैं तो तुमने गप लड़ाना क्यों शुरू कर दिया ? चुप भी रहो।"

"आप सब लोग आवेंगे तभी तो शतरंज का खेल हो सकेगा।" बिट्टिदेव

बोला।

"हमें आना होगा ?" चामला ने पूछा।

"आपको आना होगा, आपकी दीदी को भी और आपकी वहिन को भी।"

"बोप्पि को खेलना नहीं आता ?" चामला ने कहा।

"जीते गोटे लेनेवाला भी तो होना चाहिए। चलिए, आइए।"—कहकर सभी को साथ ले अपने प्रकोष्ठ की ओर चल पड़ा।

"यदि हमें किसी ने बुला भेजा तो ?" पद्मला ने पूछा।

"माँ के पास खवर भेज दी जायेगी कि आप लोग यहाँ हैं।"

"हम ही वहाँ चली जायें तो ?"

"नहीं ऐसा होता तो आपको यहाँ नहीं बुला लाता। वे किसी राजकार्य की जब बात कर रहे होते हैं तो बच्चों को वहाँ नहीं रहने देते। आइए, आइए।" दण्डनायकजी की बेटियाँ और उदयादित्य उसके साथ उसी प्रकोष्ठ की ओर चल दिये।

इधर युवराज के साथ दण्डनायक की और वहाँ युवरानीजी के साथ दण्डनायिका चामब्बे की बातें होती रहीं।

घर लौटने पर पद्मला की जैसे किसी विषय में कोई दिलचस्पी ही नहीं रह गयी। उसका वह उत्साह भरा मन राजमहल से लौटने के बाद निराशा और उदासीनता में डूबकर पंख टूटे पंछी जैसा छटपटा रहा था। वह एकान्त चाहती थी। राजमहल में उपाहार अधिक हो गया—बहाना कर वह शाम के भोजन के वक्त भी सबके साथ नहीं मिली। युद्धभूमि से लौटे बल्लाल में उसने कुछ परिवर्तन देखा था। एक नयापन रूपित होने के लिए शायद वह सब आवश्यक रहा हो। परन्तु इस परिवर्तन के बावजूद उसके प्रति प्रेम में कमी होने की सम्भावना अब तक उसे नहीं लगती रही। बल्लाल का मिलना-जुलना अधिक न होने पर भी पद्मला को ऐसा नहीं लग रहा था कि उसका मन उदास है। परन्तु उस दिन, अपने जन्मदिन पर बुलवाकर यों उदासीनता का व्यवहार उसके लिए मानसिक पीड़ा दे गया। ठीक है, कुछ विशेष राजकार्य के कारण महासन्निधान से मिलने जाने की बात बिट्टिदेव ने कही थी। हो भी सकता है। परन्तु राजमहल से लौटने पर माता-पिता ने भी राजमहल के किसी प्रसंग पर चर्चा तक नहीं की। ऐसा क्यों ? कुछ खास बातें शायद हुई होंगी। राजमहल जाते समय जो उत्साह था वहाँ से लौटते वक्त उनमें वैसा

कुछ नहीं दिखाई दिया। आखिर क्यों? वहाँ ऐसी क्या वातचीत हुई? शायद मेरे ही वारे में कुछ बातों का निराकरण हुआ है। न, भगवान् ऐसा न हो। जव राजकुमार का ही व्यवहार इस तरह उदासीन-सा रहा तो, हो सकता है, कुछ अनहोनी हुई हो। तव फिर मेरा क्या होगा? उसकी आँखें भर आयीं। दुःख दूना हो गया। वह विस्तर पर औंधी पड़कर सिसकने लगी।

दण्डनायिका चामव्वे ने चामला से जान लिया कि राजमहल में वच्चे क्या करते रहे। उसे यह भी मालूम हो गया कि वेटी की इस हालत का कारण राजकुमार वल्लाल का उसके प्रति अनपेक्षित व्यवहार है। उसे समझा-वुझाकर सान्त्वना देने के इरादे से चामव्वे पद्मला के कमरे में गयी। उसे लेटी देख वह उसके वगल में जा बैठी। उसे उठाकर वैठाया। वोली—"पगली, तुझे क्या हुआ? राजकुमार ने वात नहीं की तो तुझे भूखा रहना चाहिए? कितने दिन ऐसे रहोगी? भूखी रहकर अगर कृश हो गयी तो क्या राजकुमार तुमसे व्याह करेंगे? पगली कहीं की! कुछ राजकार्य रहा होगा, जल्दी में गये थे। छोटे राजकुमार के कहने पर भी तुम कुछ उल्टा-सीधा सोचोगी तो कैसे वनेगा पद्मा! उठ, चल, भोजन कर ले।"

"राजमहल से लौटने पर आप लोग भी तो प्रसन्न नहीं दिखे। मेरा भी अपमान हुआ। ऐसी हालत में और क्या होगा?"

"युवराज की वीमार हालत देखकर हममें भी कौन-सा उत्साह हो सकता है? तुम ही कहो वेटी? हमने राजकुमार के लिए जो भेंट दी उसे युवरानी ने स्वीकार ही नहीं किया वल्कि कहा भी, 'दण्डनायिकाजी, आपकी आत्मीयता राज-परिवार के साथ खुले दिल की होनी चाहिए।' इसलिए तुम एक छोटी वात को वड़ी वनाकर किसी भय की आशंका करके क्यों दुःखी होती हो? उठो।" कहकर वेटी को हाथ पकड़कर उठाया।

"माँ, युवरानीजी ने मेरे वारे में कुछ पूछा?"

"सभी वच्चों के वारे में पूछा। तुम लोगों की पढ़ाई, संगीत, नाट्य आदि सव कुछ···।"

"क्या हमारे राजमहल में होने की वात युवरानीजी को मालूम नहीं थी, माँ?"

"मालूम तो थी, मगर तुमसे वात करने के लिए ऐसी कौन-सी जरूरत थी? शायद वे चाहती होंगी कि तुम लोग राजकुमारों के साथ रहो। इसीलिए तुम लोगों को इस तरफ भेजकर हमें भीतर वुलवा लिया।"

"तो आपका जलपान युवरानीजी के ही प्रकोष्ठ में हुआ?"

"हाँ", चामव्वे का उत्तर था।

"माँ, तुम कुछ भी कहो, युवरानीजी कुछ वदली-वदली लगती हैं।"

"इस वर्तमान परिस्थिति में उन्हें कुछ सूझता नहीं, बेटी। युवराज युद्ध में जख्मी होकर लौटे हैं। अभी तक घाव नहीं भरा। बिस्तर से नहीं उठ पाते। यह देखकर वे भीतर-ही-भीतर बहुत दुःखी हैं, बेटी। उनके प्रत्येक व्यवहार के पीछे हमें इन सारी बातों का ध्यान रखना चाहिए। उनके प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। वे माता हैं, शान्तमूर्ति माता, धरती जैसी क्षमाशील। तुम लोगों को अपने प्रकोष्ठ में नहीं बुलाया, इसलिए तुमको ऐसा-वैसा नहीं सोचना चाहिए। मान लो कल तुम्हीं महारानी बन गयीं तो सबसे सभी मौक़ों पर मिल सकोगी? सभी को अपने पास बुला सकोगी? तुम्हें उनकी हालत का पता नहीं, बेटी। वे वही पहले जैसी हमारी युवरानी हैं। उठो, आओ," कहकर चामव्वे आगे बढ़ गयी।

माँ की इन बातों ने उसमें फिर आशा की जोत जगा दी। 'कल के दिन तुम्हीं महारानी···' हाँ, इसीलिए तो माँ ने इस तरह मुझसे कहा है—पद्मला को यही लगने लगा। उस बेचारी को क्या मालूम कि माँ मन में कुछ रखती है, कहती कुछ और है। मन को ढाढस बँधाकर वह माँ के पीछे-पीछे भोजन के लिए चल पड़ी। बेटी ने भोजन कर लिया तो दण्डनायिका उसे शयनागार तक छोड़ स्वयं दण्डनायकजी के कमरे की ओर बढ़ गयी।

दण्डनायक पलंग पर तकिये का सहारा लेकर पैर पसारे चिन्तामग्न बैठे थे। दण्डनायिका ने अन्दर प्रवेश करके किवाड़ बन्द कर लिये। कुण्डी चढ़ाने की आवाज सुनकर दण्डनायक प्रकृतिस्थ हुए। पलंग पर ही कुछ सरककर उन्होंने दण्डनायिका को बैठने के लिए जगह कर दी। दण्डनायिका बैठ गयी।

"क्या बातचीत की युवरानी ने?" सीधा सवाल किया दण्डनायक ने। युवराज और दण्डनायकजी के बीच जो बातचीत हुई थी उसी पृष्ठभूमि में शायद युवरानी से दण्डनायिका की बातचीत हुई होगी—यही सोच दण्डनायक कुछ-कुछ ऊहापोह में पड़ गये। युवराज से बातचीत करते हुए उन्हें कुछ पता नहीं चला था। इसलिए जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी दण्डनायिका से विषय जानने का कुतूहल हो रहा था। दण्डनायिका का भी कुछ-कुछ यही हाल था। इसलिए चामव्वे ने ही पूछा, "युवराज ने आपसे क्या बातचीत की?"

"सवाल के लिए सवाल उत्तर नहीं होता। युवरानीजी से क्या बात हुई?"

"न, पहले आप बताइए।"

"मैं सब कुछ नहीं बता सकता। कई-एक राजनीति की बातें होती हैं, उन सबके विषय में स्त्रियों को बताने का विधान नहीं है। इसलिए तुम्हारे और युवरानीजी के बीच क्या बातें हुईं सो बताओ। उसी विषय पर यदि युवराज से मेरी बातें हुई होंगी तो वह सब मैं बता दूँगा।"

"आप पहले मेरे ही मुँह से कहलवाना चाहते हैं न? अच्छी बात है। मेरी बेटियों का भविष्य मेरे लिए प्रधान है। पहले मैं ही कहूँगी। जो भी बातें वहाँ हुईं

हू-ब-हू बताऊँगी। और फिर आप ही बतायें, क्या करना है। मेरे पहुँचने पर युवरानी ने बड़े हर्ष के साथ मेरा स्वागत किया और कहा, 'आइए दण्डनायिकाजी, बहुत दिनों से दिखी नहीं, सो कहलवा भेजना पड़ा। आज ही आ गयीं, बहुत ख़ुशी हुई। बैठिए।'

"मैं बैठ गयी और बोली, 'मालिक ने पूछा कि राजमहल से बुलावा आया है, कब चलेंगे? मैंने कहा, जब राजमहल से बुलावा आया तो, सोचना क्या? आज ही चलें। घर से निकलते समय याद आयी कि राजकुमारजी का जन्मदिन है। हमारी तरफ से उनके लिए यह छोटी-सी भेंट स्वीकार करें। मैंने वह भेंट उनके सामने रख दी।"

'युवराज की अस्वस्थता के कारण हमने किसी को ख़बर नहीं दी। आप लोग आज ही आयेंगी इस बात की हमें कोई उम्मीद भी नहीं थी। फिर भी आप आयीं, अच्छा हुआ। आप लोगों की राज-परिवार के साथ आत्मीयता सदा खुले दिल से हो यही हमारी इच्छा रहती है'—इतना कहकर उन्होंने वह भेंट लेकर पास की एक चौकी पर थाली में रख दी।

'राजकुमार...'मैं कह ही रही थी कि युवरानीजी बीच में बोल उठीं, 'वे अभी अपनी पढ़ाई में लगे हैं और आपकी बेटियाँ भी वहीं हैं। बाद में यह उसे दे दूँगी। ठीक है न? या फिर आप ही उसके हाथ में देना चाहेंगी?'

'ऐसा कुछ नहीं। यों ही देखने की इच्छा हुई' मैंने कहा। तब तक मेरे मन में यह खटक रहा था कि आखिर बच्चियों को मेरे साथ भला क्यों नहीं आने दिया। लेकिन तब मुझे लगा कि यह अच्छा ही हुआ।'

'अगर आप चाहती हों तो कहिए, बुलवा लेती हूँ।' युवरानी ने कहा।

'नहीं'—मैंने कहा।

बाद में मैंने युवराज के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की, 'सुना कि सिलहार के एक वैद्यजी आये हैं। आजकल उन्हीं की चिकित्सा चल रही है। मुझे यह बात मालूम ही नहीं थी। क्या सिलहार के वैद्यजी चालुक्य चक्रवर्तिनी पिरियरसीजी के मायके की तरफ के हैं?'

'हाँ।' उन्होंने कहा।

'तो शायद बलिपुर के हेग्गड़ेजी ने भेजा होगा?' मैंने फिर पूछा।

युवरानीजी हँस पड़ीं। बोलीं, 'एक साधारण हेग्गड़े का क्या इतना प्रभाव हो सकता है दण्डनायिकाजी? प्रभु की अस्वस्थता का समाचार चालुक्य चक्रवर्ती को मालूम हुआ तो पिरियरसीजी ने हरकारे को करहाट भेजकर वैद्य को यहाँ भिजवाया है। कुछ भी हो बड़े-बड़े होते हैं। देखिए न, इतनी दूर रहनेवाले, और हमसे भी ऊँचे स्तर पर रहनेवाले उन लोगों ने हमारे लिए रुचि लेकर वैद्यजी को भेजा, वे कितने ऊँचे और गुणवान हैं। परन्तु यहाँ अपने ही लोगों को ख़बर

देकर बुलवाना पड़ रहा है! भगवदिच्छा। प्रभु को तो यह नया ही जन्म हुआ समझो।'

'मुझे कुछ टीस-सी लगी। सिर झुकाकर बैठ गयी।'

'यह क्या दण्डनायिकाजी, आप ऐसे क्यों बैठ गयीं? मैंने आपके बारे में तो ऐसा नहीं कहा। मेरे कहने का मात्र इतना अभिप्राय था कि आमतौर पर लोगों की मनोवृत्ति ऐसी होती है। आपकी आत्मीयता की साक्षी तो यह है कि आपको राजकुमार के जन्मदिन तक का स्मरण है। हमें क्या चाहिए दण्डनायिकाजी, आपका कुशल, राजघराने का कुशल, गुरुजनों का कुशल, अधिकारी वर्ग, नौकर-चाकर, प्रजा-जन इन सबका कुशल। यही न हमें चाहिए?'

'यह तो सभी लोग जानते हैं, युवरानीजी।'

'मुझे इस बात पर विश्वास नहीं।'

'क्यों युवरानीजी, किसी के विषय में…'

'निश्चित रूप से कैसे कहूँ, दण्डनायिकाजी? राष्ट्र और प्रजा के हित को ध्यान में रखते हुए, पता नहीं किसे, प्रधानजी ने देश-निकाले का दण्ड दिया है। सुबह प्रभु ने युवराज को यह बात बतायी है। उन्होंने यह भी बताया—देखो, हम इतने प्रेम और वात्सल्य से व्यवहार करते हैं फिर भी कुछ स्वार्थी लोग हमारा अहित चाहते हैं। यह तो हमारा और हमारे इस राज्य का परम सौभाग्य है कि हमारे प्रधानजी जैसे निःस्वार्थ, निस्पृह व्यक्ति के नेतृत्व में राज्य का कारोबार चल रहा है। आपके भाईजी की इस निस्पृह सेवा से आपको ख़ुशी नहीं है?' युवरानी ने कहा।

'देश-निकाले का दण्ड देना हो तो…अपराध भी गुरुतर ही होना चाहिए। किसने ऐसा अपराध किया? कुछ पता…'

'हमें मालूम नहीं। हम कैसे कहें? प्रभु ने जब आपके भाईजी की निष्ठा की प्रशंसा करते हुए प्रसंगवश यह बात कही तो मैंने इसका ब्यौरा जानने की कोशिश नहीं की। प्रयोजन भी क्या है? आपके भाई के प्रति मेरे मन में जो गौरव रहा है वह यह बात सुनकर दुगुना-चौगुना हो गया।'

'ऐसे भाई की बहन मैं भी भाग्यशालिनी हूँ।'

'आपको ऐसे भाई की वैसी बहन बनकर उन्हें और अधिक गौरवान्वित करना चाहिए, दण्डनायिकाजी।'

'मैं मायके और ससुराल दोनों घरानों की प्रतिष्ठा को बनाये रखने का सदा प्रयास करती आयी हूँ। राजघराने के उदार आश्रय में रहकर ही हम उस गौरव और प्रतिष्ठा की रक्षा करने में समर्थ हुए हैं।'

'गौरव और प्रतिष्ठा का आप प्रदर्शन करें तो उसका कोई मूल्य नहीं होता। जब दूसरे लोग ख़ुद प्रेरित होकर इस गौरव की भावना को अपने आप व्यक्त करें

तभी उसके महत्व का मूल्य है।'

'दूसरों द्वारा व्यक्त न होने पर उस गौरव-प्रतिष्ठा की कम-से-कम कोई हानि तो नहीं होगी।'

'ऐसा समझना केवल भ्रम होगा। कोई गौरव प्रदर्शन की वस्तु नहीं, दण्डनायिकाजी। वह बाज़ार में बिकनेवाली चीज़ भी नहीं। कौन आँक सकता है उसका मूल्य! अधिकार या ऐश्वर्य के प्रदर्शन से नहीं मिलता गौरव। यदि मिलता भी है तो वह अन्तस् की प्रेरणा से प्राप्त गौरव नहीं। जो अन्तस् की प्रेरणा से प्राप्त गौरव होगा वही शाश्वत होगा। स्थान-मान के कारण मिलनेवाला गौरव कभी शाश्वत हो सकता है?'

'इतनी दूर तक सोचने की मुझमें सामर्थ्य कहाँ?'

'आप जिस स्थान पर हैं, उस स्थान पर रहनेवालों को यह सामर्थ्य प्राप्त करनी चाहिए।'

'बचपन में हमें ऐसा शिक्षण ही नहीं मिला।'

'यह सब शिक्षण मात्र से नहीं आता, दण्डनायिकाजी। मन की संकीर्णता को, स्वार्थ को छोड़कर यदि विशाल मनोभाव से सभी बातों को हृदयंगम किया जाये, उन्हें आचरण में उतारा जाये तो वह स्वयं मालूम हो जायेगा। अलग से शिक्षण की आवश्यकता ही कहाँ? उदाहरण के लिए कहती हूँ। मैं, आप और माचिकब्बे साधारण पहनावे पहनकर अपरिचित लोगों के बीच में पहुँच जायें तो लोग हमारी हस्ती-हैसियत को पहचान सकेंगे?'

'नहीं।'

'ऐसे स्थान पर भी लोग यदि आपके बारे में सद्भाव रखें तो वह आपके व्यक्तित्व की शक्ति है। वही गौरव का प्रथम चरण है। इसलिए पद या अधिकार के गर्व से हम अपने को भुलादें और अपने व्यक्तित्व को विकसित न करें तो हम ऊँचे स्थान पर रहने योग्य नहीं बन सकेंगे। इस वजह से ऊँचे स्थानों पर रहनेवाले हम लोगों का क्या यह कर्तव्य नहीं हो जाता कि कार्य-कारण संयोग से हम अपने से निम्न स्तर पर रहनेवालों का मार्गदर्शन करें?'

'हाँ, एक तरह से युवरानीजी का कहना ठीक है। परन्तु निम्न स्तर पर रहनेवाले अगर किसी दुराभाव से बेवकूफी करें तो उसे भी सहना होगा?'

'वह बेवकूफी यदि दुराभाव के कारण की गयी है, तो तब तक संयम बनाये रखना चाहिए कि जब तक वह दुराभाव साबित न हो जाय। इसीमें बड़प्पन है। अपने दृष्टिकोण से दूसरों के आचरण को नमक-मिर्च लगाकर देखना तो निरी मूर्खता होगी। फिर सम्भ्रान्त व्यक्तियों में तो इस तरह की मूर्खता की गन्ध तक नहीं होनी चाहिए। ठीक कहती हूँ न?'

'किसी ने युवरानीजी के मन को अपने आचरण से दुःख पहुँचाया है क्या?

कौन हैं वे—यदि बता सकें तो···।'

'छिः छिः, ऐसा कुछ नहीं। मनुष्य के जीवन में ऐसी बहुत-सी घटनाएं हो जाया करती हैं। यों ही बैठे-ठाले, पता नहीं कितनी ही बातें मन में आती रहती हैं। और इस बीच कोई बातचीत करने मिल जाय तो वे बातें ख़ुद-ब-ख़ुद बाहर निकल आती हैं। इसलिए इन सब बातों को एक लौकिक व्यवहार की रीति ही समझना चाहिए, दण्डनायिकाजी।'

बात वहीं रुक गयी। मैं मौन हो रही। युवरानीजी भी मौन हो गयीं। कुछेक क्षण यों ही बैठी रहकर, मैंने कहा—'अब तक इधर-उधर की बातें हुईं। आने का आदेश था, आयी। बुलावा किसलिए था यह अब तक मालूम नही पड़ा।'

'कोई ख़ास बात नहीं। बहुत दिन से देखा नहीं था। बलिपुर से हमारे लौटने के बाद राजमहल में किसी से इधर-उधर की बातें करते-करते आपकी बड़ी लड़की की शादी युवराज के लौटते ही कराने की बात सुनाई दी थी। आये इतने दिन बीत गये तो भी उस बारे में कोई ख़बर नहीं मिली। यही समाचार सुनने-जानने की इच्छा थी।' युवरानी ने कहा।

'प्रभु जब तक पूर्णरूप से नीरोग नहीं हो जाते हमारी कोई विशेष बात उनसे निवेदन करना उचित नहीं होगा। मैंने और दण्यनायकजी ने यही निर्णय लिया है।' मैंने बड़े उत्साह से कहा।

'युवराज के नीरोग होने तक लोग अपने-अपने कार्य यों क्यों रोक रखें? ऐसा सोचना ठीक नहीं है। आप विवाह उत्सव सम्पन्न करें।' युवरानीजी बोलीं।

'हम इसी स्वीकृति की प्रतीक्षा कर रहे थे।' मैं ख़ुशी से फूल उठी।

'इसमें हमारी स्वीकृति की भला क्या ज़रूरत, दण्डनायिकाजी? वधू-वर को आशीष देना हमारा कर्तव्य है, सो उसका निर्वाह हम अवश्य करेंगे।' युवरानीजी ने कहा।

मुझे उनसे इस तरह के उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। यह सुनकर मैं तो सन्न रह गयी। फिर भी मैंने इतना ही कहा, 'मालिक से कहूँगी।' और इस तरह बात कहीं से शुरू हुई थी और कहीं आकर रुकी। मैं उमंग से वहाँ गयी थी और जब लौटी तो निराश होकर। अब तो आप ख़ुश हैं! हमारी पद्मला का भविष्य अब समाप्त हुआ समझो। ऐसा क्यों हुआ, यही मालूम नहीं पड़ा। राजकुमार का भी मन बदला हुआ-सा लगता है।" इस तरह विस्तारपूर्वक दण्डनायिका को जो कहना था सो सब कह दिया—राजमहल में हुई सारी बात भी और अपनी बात भी।

"राजकुमार का मन भी बदल गया? किसने कहा?" दण्डनायक ने पूछा।

"प्रस्तुत प्रसंग से ही यह स्पष्ट हो जाता है। वहाँ-जहाँ ये सब बच्चे थे क्या हुआ मालूम है?" दण्डनायिका ने वह सारा वृत्तान्त भी कह सुनाया और पद्मला को समझाने-बुझाने की राय भी दी और फिर पूछा, "अब आप भी

बताइए, प्रभु ने आपसे क्या कहा ?"

दण्डनायक तुरत कुछ नहीं बोले। दण्डनायिका ने अभी तक जो कुछ बताया वह उनके भीतर घुमड़ रहा था। युवरानी की बातें उन्हें जैसे भीतर-ही-भीतर कचोट रही थीं। वे सोचने लगे : फिर भी उन्होंने वामशक्ति पण्डित के बारे में कुछ नहीं कहा ? तो क्या उस सम्बन्ध में उन्हें जानकारी नहीं थी ? या जानकर भी कुछ नहीं बोलीं ? राजकुमार का व्यवहार तो सचमुच अप्रत्याशित था। ऐसी हालत में उन्हें पद्मला के विषय में यदि सन्देह होता है तो कोई आश्चर्य नहीं। पर, पद्मला किस तरह से उनके सन्देह का कारण बन सकती है ? हाल में हुई भेंट के समय भी वे सदा की तरह सहज भाव से मिले। अब ऐसा अचानक क्यों हुआ ? इन विचारों में वह ताल-मेल नहीं बैठा पा रहे थे। उन्हें लगा कि बेटियों को साथ न ले गये होते तो अच्छा होता। उन्होंने यह अपनी पत्नी से भी कहा।

"मालिक मना कर देते तो मैं ही क्यों अनुरोध करती ?" दण्डनायिका ने उत्तर दिया।

"मैंने समझा था कि सब ठीक है। परन्तु सोचा कुछ और हुआ कुछ और। मैं अब सिर उठाकर चल भी नहीं सकता। इस सब का कारण तुम हो। किसी का कहा न मानकर तुमने ऐसी हालत पैदा कर दी है।"

"हाँ, सारी बुराई की जड़ मैं ही हूँ। सारी गलती मुझ ही पर थोप दीजिए।"

"साल भर से ज़्यादा चुप रहकर फिर तुम उस वामशक्ति पण्डित के पास क्यों गयीं ? अंजन लगाने की स्वीकृति क्यों दी ? मुझसे पूछा था…?"

"आपसे पूछा नहीं, गलती हुई। पर आपने उसे घर पर क्यों बुलवाया ? मैं तो इससे यही समझी थी कि आपकी भी स्वीकृति है।"

"मैंने उस बात को गुप्त ही रखने के इरादे से ऐसा किया था।"

"अभी प्रकट ही क्या हुआ ? उस अंजन की बात किसे मालूम है ? यदि यह बात राजमहल तक पहुँची होती तो युवरानीजी कहे बिना न रहतीं, यही क्यों, खरी-खोटी भी सुनातीं।"

"मुझे भी यही आश्चर्य है कि युवरानीजी ने तुमसे यह बात क्यों नहीं छेड़ी !"

"तो क्या प्रभु की आपसे इस सम्बन्ध में कोई बात हुई ?"

"प्रभु ने यही—केवल यही बात की। तुम्हारे भाई ने सारी बातें कह दी हैं।"

"उन्हें कहाँ से मालूम हुआ ?"

"यह मैं नहीं जानता। प्रभु से भी कैसे पूछ सकता हूँ ? प्रभु जब वह सारा हाल, जो हमारे घर में हुआ था, विस्तार से सुना रहे थे तब सिर्फ़ हाँ कहते हुए सिर झुकाकर बैठने के सिवा मेरे लिए और चारा ही क्या था ? कुछ उत्तर देने का मौक़ा ही नहीं मिला। मुझे तो जैसे काठ मार गया था। बात जो घटी उसे प्रभु

हू-ब-हू कह रहे थे। उन्हें किसने बताया होगा इस तरह से? केवल हम ही चार लोग—मैं, तुम, बामशक्ति और चोकी—ही तो जानते हैं इस बात को।"

"मैंने किसी से कहा नहीं, आपने भी नहीं कहा। बच्चों को भी इसकी गन्ध तक नहीं पहुँचने दी। तब तो जाहिर है, बाकी दोनों में से किसी एक ने कहा होगा। चोकी को बुलवाकर पूछा जाय।"

"अब उससे क्या होगा? उससे कुछ और कहलवाना तो सम्भव है नहीं।"

"इस तरह पीठ पीछे छुरा घोंपनेवालों को सजा दी जानी चाहिए।"

"यदि ख़ुद जाकर कहा हो तो वह द्रोह होगा। चोकी जाकर कहे, यह सम्भव नहीं। वह साधारण नौकर मात्र है। उसके लिए प्रभु तक वह नहीं पहुँच सकता।"

"तो क्या आप समझते हैं कि बामशक्ति ने ही जाकर कहा है।"

"हो सकता है। उसके बार-बार जोर देकर पूछने पर भी तुमने यह नहीं बताया कि अंजन में क्या देखा। इससे वह असमंजस में पड़ गया होगा।"

"आपने कहा था—'कुछ नहीं दिख रहा है', यह भी तो उसके असमंजस का कारण हो सकता है?"

"जिसे देखा नहीं उसे मैं 'देखा' कहूँ भी कैसे? उसे भी मालूम है कि कुछ लोगों को दिखता है, कुछ को नहीं। परन्तु जिसे दिखा वह भी अगर न कहे तो असमंजस नहीं होगा? वास्तव में तुमने उस बात को मुझे भी नहीं बताया।"

"मैंने कहा नहीं, इसके लिए असमंजस हो सकता है। परन्तु न जानने पर नुकसान ही क्या था?"

"नुकसान नहीं? सुन-समझकर मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर लेता हूँ। परन्तु तुमने तो उसके मनोभाव को समझा ही नहीं। वह तुम्हारी मदद करने आया था। तुम भी सहायता पाने की आशा से उसके पास गयी थीं तो तुम्हें उस पर पूरा विश्वास दिखाना चाहिए था।"

"तो क्या जिस बात को नहीं कहना चाहिए उसे भी कह देती?"

"भला ऐसा तुमने क्या देखा—कम-से-कम मुझे तो बताओ।"

"अब ज़ाने भी दो उस बात को।"

"अभी यह प्रसंग समाप्त नहीं हुआ है। प्रभु को तब तक समाधान नहीं होगा जब तक यह मालूम न हो जाय कि तुमने क्या देखा था।"

"मतलब?"

"लगता है, प्रभु ने मन-ही-मन निश्चय कर रखा है कि यह बात जानकर ही रहेंगे। उन्होंने इसी आशय से मुझसे यह पूछा कि मैं यह सब जानता हूँ। जब मैंने कहा कि नहीं जानता तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। मेरे पूछने पर भी तुमने बताया नहीं—जब मैंने यह बात कही तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। वे शायद यही सोचते होंगे कि मैंने झूठ कहा। अन्त में वे क्या बोले, जानती हो? 'दण्डनायकजी,

हमने आप पर पूरा भरोसा रखा है। हमारी मान्यता है कि आप हमसे कोई बात नहीं छिपायेंगे। परन्तु इस सम्बन्ध में आप कुछ आगा-पीछा कर रहे हैं। हमारे बारे में आपका यह व्यवहार कहाँ तक उचित है यह ख़ुद ही सोच लें।' मैंने कहा, 'भगवान् की सौगन्ध है, मैं कुछ नहीं जानता।' 'दर्याफ़्त कर सच-सच जानकारी दीजिए।' प्रभु ने कहा। यह भी कहा, 'जब तक सारी बात स्पष्ट नहीं हो जाती है तब तक मेरा मन शान्त नहीं होगा। कल प्रातः तक आपकी तरफ़ से हमें सही सूचना मिल ही जानी चाहिए।' इतना कहकर बात ख़तम कर दी। तुम्हारी सलाह के मुताबिक विवाह की बात छेड़ने के लिए मौक़ा ही नहीं मिल सका। अपराधी की तरह उनके सामने बैठे रहने की हालत थी। कम-से-कम अब तो सब कुछ बता दो। अगर अब भी नहीं बताना चाहती हो तो हमें आज ही रात सारे परिवार के साथ राजधानी छोड़ देनी होगी। आगे तुम्हारी मरजी। मुझे अब तक सत्यनिष्ठ माना जाता रहा, किन्तु इस ढलती उम्र में अब तुम्हारी वजह से सर झुकाना पड़ रहा है।"

"मैं स्वयं जब उसमें विश्वास नहीं करती तो उसे कहने से क्या लाभ? मैं जिसे देखना चाहती थी वह तो दिखा ही नहीं।"

"किसे देखने की चाह थी?"

"मैंने सोचा था कि मेरी वैरी बलिपुर की हेग्गड़ती दिखेगी, जो अब दोरसमुद्र में ही बैठकर हमारे उस आशा सौध को ढहा दे रही है।"

"तो तुम्हें कौन दिखाई पड़े?"

"बतलाना ही होगा?"

"बतलाने की इच्छा न हो तो बिस्तरा-बकुचा बाँध लो, रात ही को कूच कर दें।"

"वह नहीं होगा, मालिक। ऐसा हो ही नहीं सकता। इसीलिए तो मैंने कहा नहीं। आप भी सुनकर उस पर विश्वास नहीं कर सकेंगे। मुझे उसमें प्रभु दिखे। तुरन्त मेरे मन में आया कि वे हमारी आशा-आकांक्षाओं के काँटे बनेंगे? तभी वह वामशक्ति कुछ दूर पर दिखाई पड़ा। उसने मूँठ बाँधकर तीन बार फूंक मारी और फिर हथेली पसार दी। तलवार हाथ में लिये प्रभु जहाँ खड़े थे वहीं गिर पड़े। हाय! हाय! मुझे इस दृश्य को देखना ही नहीं चाहिए था। मैं अन्धी हो जाती तो कितना अच्छा होता। मेरे दिमाग़ में इस अंजन की बात ही क्यों सूझी, मालूम नहीं। उस वक़्त उसने जो कहा···" चामव्वे का गला रुँध आया। हिचकी बँध गयी, वह सिसकने लग गयी, आँसू बह निकले।

"अंजन में तुम्हें कोई कुछ कहता भी सुनाई पड़ा?" दण्डनायक ने पूछा। स्वयं पर संयम रखकर चामव्वे बोली—"वहाँ सुनाई देने जैसा कुछ होता नहीं, केवल दिखाई ही देता है। उसी पर से वह सवाल पूछकर उसका अर्थ बतलाता है।

वही अर्थ···आपको याद नहीं ?" दण्डनायिका ने कहा।

"याद नहीं, क्या कहा था···?"

"वामशक्ति ने कहा था—'उससे होने वाला भला-बुरा सब आपसे सम्बन्धित है। जो उसमें दिखाई दिया, मेरा वह रक्षणायन्त्र उसके विरुद्ध आपका संरक्षण करेगा। आपने स्पष्ट रूप से नहीं कहा, इसीलिए आपके मनोगत को भाँप कर काम करने की आज्ञा हमने अपनी शक्ति को दे दी। उसने अपना काम कर दिया। यदि आप चाहेंगी तो और ज्यादा आपकी मदद करेंगे।' मैंने तभी कहा था—'नहीं, हो सकता हो तो अपनी शक्ति को वापस ले लें।' हाय! हाय!··· मालिक···क्या हुआ, करना चाहा कुछ, हुआ कुछ और, क्या से क्या हो गया! अब क्या करना चाहिए? मेरे मन में भी कभी प्रभु के अहित की बात नहीं आयी। जब आपने वेलापुरी जाकर अपनी पुत्री को स्वीकार करने की प्रार्थना प्रभु से की थी और तब प्रभु ने जो कहा था, 'अभी उसके बारे में कोई विचार ही नहीं' तो कुछ खिन्नता मुझे ज़रूर हुई थी परन्तु···कभी··· मैंने प्रभु की बुराई नहीं चाही, मालिक। इस बात को आप प्रभु से निवेदन कैसे करेंगे? फिर ऐसा कहना ठीक भी होगा या नहीं, यह सोचकर ही मैंने आपसे इस बारे में कुछ नहीं कहा। अपने भीतर की इस पीड़ा को भुगतने का निर्णय तब मैंने स्वयं कर लिया था लेकिन अब कहने के अलावा कोई चारा ही नहीं रहा इसलिए कह दिया। आप जो चाहें करें। मैंने तो उसी रात को उसके जाते ही उन चारों यन्त्रों को निकालकर कूड़े में फेंक दिया था।"

"फेंक दिया अच्छा किया। कूड़े के बदले कुएँ में फेंक देती।"

"कूड़े में रहने पर किसी की नजर उस पर नहीं पड़ेगी, कूड़े के साथ चला जायेगा। कुएँ में रहने से यह भावना बनी रहती कि वह वहाँ है। इन वामाचारियों से तो भगवान् बचाये।"

"पहले से इतनी अकल आ गयी होती तो कितना अच्छा होता! पर हाँ, चोट लगने पर ही तो अकल आती है।"

"अब क्या करना होगा?"

"तुम्हारे भाई से विचार-विनिमय कर निर्णय करूँगा कि क्या करना चाहिए।"

"हाय! भैया से न कहें?"

"तुम्हारी सलाह की जरूरत नहीं। मुझे जैसा लगेगा करूँगा। इसमें तुमने एक ही अच्छा काम किया है, वह यह कि तुमने बच्चों को इन बातों से दूर रखा है।"

"अब पद्मला का क्या होगा?"

"मैं अभी कुछ नहीं कह सकता।"

"मतलब ?"

"अभी मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा है। शान्त चित्त होने पर ही सोच सकूंगा। उसे कुछ तसल्ली दी है न। अच्छा, अब तुम जा सकती हो।"

चामव्वे धीरे से किवाड़ खोलकर बाहर निकल गयी।

दण्डनायक सोचते-सोचते लेट गये। कब आँख लगी सो उन्हें ही पता न चला।

इन सभी प्रसंगों के बीच एक ही ऐसा प्रसंग था जो दण्डनायिका के मन को कुछ सन्तोष दे सका और वह था हेग्गड़े परिवार के ठहराने की व्यवस्था। पूर्व सूचना के अनुसार हेग्गड़ेजी का परिवार दोरसमुद्र जा पहुँचा और ईशान में स्थित उसी निवास में ठहराया गया। काफी समय से खाली पड़ा रहने के कारण इस निवास-गृह का पिछवाड़ा एक जंगल-सा बन गया था। कहाँ बलिपुर के निवास का पिछवाड़ा और कहाँ यह झाड़-झाँखड़ से भरा जंगल। उन्होंने तत्काल उसे साफ कराने का निश्चय किया। बलिपुर के निवास से यह निवास बड़ा ही था। इसलिए हेग्गड़ेजी के सारे परिवार को वहाँ ठहरने में कोई दिक्कत नहीं पड़ी। सारे परिवार को निवास में ठहराकर हेग्गड़ेजी उसी यात्रा के लिबास में अकेले राजमहल प्रभु के दर्शन करने जा पहुँचे। सबके राजधानी सुरक्षित पहुँचने का समाचार सुनकर युवराज सन्तुष्ट हुए। परस्पर कुशल-क्षेम के बाद प्रभु एरेयंग ने कहा, "अच्छा हेग्गड़ेजी, आप इस लम्बी यात्रा से थक गये होंगे। निवासगृह को व्यवस्थित करा-कर पहले जाकर विश्राम करें। बाद में यहाँ के कार्य के सम्बन्ध में यथावश्यक निर्देश आपको मिल जायेंगे।"

"निवास को व्यवस्थित करने के लिए तो स्त्रियाँ हैं, नौकर-चाकर हैं। फिर सदा घुड़सवारी करनेवाले हम जैसों के लिए यात्रा की थकावट की बात ही कहाँ उठती? जैसे बलिपुर में रात को विश्राम करते थे उसी तरह विश्राम लेकर ही हमने यह यात्रा की है। इसलिए कल से ही···"

"आपका कहना ठीक है फिर भी आप फिलहाल अपने निवास की व्यवस्था आदि तरफ ही ध्यान दें। बाद में हम कहला भेजेंगे।"

"जैसी आपकी आज्ञा"—कहकर हेग्गड़े मारसिंगय्या ने खड़े होकर सिर नवाया। युवराज ने घण्टी बजायी।

हेग्गड़े के इतनी जल्दी राजमहल से लौट आने पर हेग्गड़ती को बड़ा आश्चर्य

हुआ। घर में कदम रखते ही हेग्गड़ती ने पूछा—"युवराज का स्वास्थ्य कैसा है ?"

"सुना है कि अमावस्या को उनकी हालत बहुत बिगड़ गयी थी। लेकिन अब स्वास्थ्य में तेज़ी से सुधार हो रहा है।"

"युवरानी और राजकुमारों से भी मिल आये ?"

"मिले तो नहीं लेकिन सुना है कि सब कुशल हैं। हाँ, एक बात जरूर देखी। अब राजमहल में आने-जाने में पहले जैसी छूट नहीं। अब राजमहल में जाने के लिए अन्दर से आज्ञा लेनी पड़ती है और आने का कारण बताना पड़ता है।"—हेग्गड़े ने कहा।

"मैं अम्माजी के साथ युवरानी से मिलने जाऊँ तो कोई हर्ज़ तो नहीं ?"

"तुम्हारी इच्छा तो ठीक ही है लेकिन प्रभु ने पूछा नहीं कि तुम लोग राजमहल क्यों नहीं आयीं। मैं स्वयं तब तक नहीं जा सकता जब तक मुझे बुलाया नहीं जाता। यह दोरसमुद्र है बलिपुर नहीं। यहाँ महाराज रहते हैं, प्रधानजी रहते हैं। महादण्डनायक जैसे अनेक बड़े अधिकारी रहते हैं। ऐसी हालत में राजमहल में जाना-आना इतना आसान नहीं। बलिपुर में इसी हैसियत के होने पर भी जैसे वहाँ रहे वैसे यहाँ नहीं रह सकते। हमारी हैसियत राजधानी में बहुत छोटी है। यहाँ सब कुछ नया ही लगेगा लेकिन कुछ समय बाद इस नवीन वातावरण में मिल जावेंगे। प्रभु ने हमें बुलवाया है राजमहल के आन्तरिक कार्य के लिए। देखो, फिर भी हमारा निवास राजमहल से कितनी दूर है !"

"दूर रहने से क्या होता है ? आप चाहे जब घोड़े पर चढ़कर राजमहल पहुँच जायेंगे। आपको दूर लगने का कोई अर्थ ही नहीं। फिर पास रहने पर भी क्या हम सुबह-शाम राजमहल में जा-आ सकेंगे ? ऐसा करना उचित होगा ? एक तरह से हमारा दूर रहना ही अच्छा है। दूर रहने पर किसी को कुछ खटकेगा नहीं।" हेग्गड़ती ने कहा।

हेग्गड़े और हेग्गड़ती आपस में बातें कर रहे थे कि तभी रेविमय्या वहाँ आ पहुँचा। उसने दोनों को प्रणाम किया। कहने लगा—"मैं प्रभु से आज्ञा लेकर अम्माजी और हेग्गड़तीजी से मिलने के लिए आया हूँ।"

"आओ, आओ, बैठो। मैं राजमहल में तो कुछ बातचीत ही नहीं कर सका। देखा-देखी ही हो सकी। अच्छे तो हो !" मारसिंगय्या ने पूछा।

"जब प्रभु स्वस्थ नहीं तो हमारे स्वस्थ होने से क्या, हेग्गड़ेजी ? बेहद सक्रिय रहने वाले प्रभु सदा मंज़िल के एक प्रकोष्ठ में ही पड़े रहें तो बताओ किसे राहत मिल सकती है ? अभी दो दिन से ही कुछ बेहतर हैं, वो भी आप सभी लोगों के आने का समाचार मिलने पर। वास्तव में प्रभु पास किसी को नहीं आने देते। युद्धभूमि से लौटने के बाद करीब एक साल बीतने को आया, इस बीच हमें

निरुत्साह के दिन बिताने पड़े हैं। प्रभुजी की अस्वस्थता के कारण राजमहल में किसी को कोई उत्साह नहीं। किसी का किसी काम में मन नहीं लगता।

"वैद्यजी क्या कहते हैं, रेविमय्या।"

"आवश्यकतानुसार औषधियाँ दे रहे हैं। चालुक्य पिरियरसीजी ने सिलहार के वैद्यजी को भी भेजा है। प्रभु की शारीरिक अस्वस्थता से भी ज्यादा मानसिक अस्वस्थता है। इसे समझकर दूर कर सकनेवाले आत्मीय जन राजधानी में कोई नहीं हैं। हमारा विश्वास है कि अब आपके आने पर वह कमी न खटकेगी और प्रभुजी ठीक हो जायेंगे। और, हेग्गड़तीजी के आने पर तो युवरानीजी को भी कुछ सहारा हो गया।" कहकर रेविमय्या ने इधर-उधर दृष्टि डालते हुए पूछा—"अम्माजी कहाँ हैं? दिखाई नहीं पड़ीं?"

"तुम्हारी आवाज़ उसे अभी सुनाई नहीं पड़ी होगी।" माचिकब्बे "अम्माजी, अम्माजी, रेविमय्या आया है" आवाज़ लगाते हुए ख़ुद अन्दर चली गयीं।

थोड़ी ही देर में शान्तला आ गयी।

"अरे! एक ही साल में कितनी बड़ी हो गयी हो अम्माजी!" आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए रेविमय्या ने कहा।

"अच्छा! तुमने कहीं छोटे से बड़ा चश्मा तो नहीं लगा रखा है? जैसी पहले थी, वैसी ही हूँ। है न अप्पाजी?" कहते हुए शान्तला ने पिता की ओर देखा।

"अम्माजी, मगर यह पूरा हाथ मिट्टी में क्यों सान रखा है?" रेविमय्या ने पूछा।

"यहाँ आते ही इसने बागवानी शुरू कर दी है। बुतुगा, दासब्बे और अम्माजी तीनों ही पिछवाड़े की बगीची को साफ करने में लगे रहते हैं। मारसिंगय्या ने कहा।

"क्यों रेविमय्या, यहाँ घर की बगीची की देखभाल तो कोई करता नहीं? झाड़-झंखाड़ से सारी बगीची भरी पड़ी है। कहीं पैर रखने तक की जगह नहीं है।" शान्तला ने कहा।

"आप इस काम में हाथ क्यों लगा रहीं हैं अम्माजी? नौकर हैं न, उनसे कह दें, ठीक-ठीक करेंगे। अभी-अभी तो आप आयी हैं।"

"ज़रा तुम बगीची की हालत तो देखो। मकान की वनलक्ष्मी कहलाती है यह। मगर वह केश बिखेरे राक्षसी जैसी भयंकर लगे तो उसे देखकर किसे वेदना नहीं होगी? मेरे हाथों में मिट्टी लगी होने से तुम्हें जैसा लगा, झाड़-झंखाड़ की गन्दगी से भरी बगीची को देखकर मुझे भी ऐसा ही लगा। मैं हाथ धोकर भी आ सकती थी लेकिन तुम्हारे पास आने में तब देर हो जाती। मैं जैसी थी वसी ही चली आयी। बैठो, हाथ धोकर अभी आती हूँ।" कहकर शान्तला अन्दर चली गयी।

रेविमय्या की आँखें गीली हो आयीं। आँसू प्रकट न हों इसलिए धीरे से पोंछ लिये। इतने में शान्तला भी आ गयी।

"राजमहल का क्या समाचार है, रेविमय्या? जो नौकरानी मुझे बुलाने आयी थी उसने बताया था कि प्रभुजी का स्वास्थ्य, सुनती हूँ, अब कुछ सुधर रहा है। भगवान् की कृपा से प्रभु शीघ्र ही नीरोग हो जायेंगे। भगवान् जाने, युवरानी पर कैसी गुज़र रही होगी! राजकुमारों का शिक्षण तो अच्छी तरह चल रहा होगा न? दण्डनायिका की बेटियों ने अब तक संगीत और नृत्य में प्रवीणता प्राप्त कर ली होगी। उनकी साहित्य-गुरु वह देवी जी यहीं हैं? उत्कल के नाट्याचार्य भी यहीं है?..."

शान्तला प्रश्न करती जा रही थी कि रेविमय्या बीच में ही बोल उठा, "अम्माजी, एक साथ इतने प्रश्नों का उत्तर मैं कैसे दे सकूँगा? वैसे सारे काम अपने ढँग से चल रहे हैं। दोनों गुरु यहीं हैं इतना मुझे मालूम है। प्रभु को छोड़कर दूर रहने का अवकाश मुझे अब तक नहीं मिला, इसलिए मुझे यह मालूम नहीं कि कहाँ क्या हो रहा है। आज प्रभु ने स्वयं मुझे पास बुलाया और पूछा 'क्यों रेविमय्या, तुम अम्माजी को देखने नहीं जाओगे?' मैंने इतना ही कहा, 'यहाँ सन्निधान की सेवा में...' तो कहने लगे, 'कोई हर्ज़ नहीं। पहले जाकर देख आओ। हमें मालूम है कि तुम्हारा दिल क्या चाहता रहता है। हमारी हालत के कारण तुम स्वयं अपनी इच्छा को प्रकट नहीं करोगे यह भी हम जानते हैं।' इस प्रकार प्रभु ने मुझे भेज दिया। अम्माजी, ऐसे कब तक रहेंगे मालिक? उनकी इस अस्वस्थता के कारण सारा पोय्सल राज्य राहु-ग्रस्त-सा लगता है। मेरा मन कहता है कि किसी ने कुछ कर-करा दिया है।" बड़े उद्वेग से कहा रेविमय्या ने।

"क्या कह रहे हो! क्या कर-करा दिया?" मारसिंगय्या ने पूछा।

"यही मन्त्र-तन्त्र, वामाचार वगैरह।"

"ऐसा कैसे हो सकता है, रेविमय्या? कभी किसी की बुराई तक न सोचने वाले प्रभु के प्रति इस तरह का साहस कौन कर सकता है?"—मारसिंगय्या ने उत्तर दिया।

"जिसने किया, वही जाने। मगर प्रभु बड़े दृढ़ मनोबल के हैं। उन पर इन बातों का असर नहीं होता।" शान्तला ने कहा।

"मैं भला यह सब क्या जानूँ। हाँ, गत अमावस्या के बाद प्रधानजी और दण्डनायक जी को बुलवाकर प्रभु बहुत देर तक बातें करते रहे। प्रधानजी तो इन दो दिनों में कोई तीन-चार बार आये होंगे। पता नहीं, क्या कुछ हो रहा है?"

"राज्य पर किसी दुश्मन के हमले के बारे में ख़बर मिली होगी। ख़ुद प्रभु के युद्ध में न जा सकने के कारण, उस सम्बन्ध में मंत्रणा की होगी।" मारसिंगय्या ने कहा।

"इस तरह पहले भी कई बार हो चुका है, हेग्गड़े जी। दुश्मनों के हमलों के बारे में विचार-विनिमय करते वक़्त मुझे प्रभु ने कभी बाहर रहने के लिए नहीं कहा। परन्तु अबकी बार वे दोनों जब मिले तब मुझे भी वहाँ नहीं रहने दिया। मुझे लगा, होगी कोई और दूसरी ही बात। पर वह आज दोपहर स्पष्ट हो गयी।" रेविमय्या ने कहा।

"क्या स्पष्ट हो गयी ?" शान्तला की जानने की उत्सुकता बढ़ गयी।

"राजधानी में रहने वाले एक वामाचारी को देश-निकाले का दण्ड मिला है। इससे मेरे विचार की पुष्टि हुई है।" रेविमय्या ने कहा।

"इस तरह की शंका अगर प्रभुजी को हुई होती तो उसका तत्काल उपचार भी तो वे करा सकते थे ? ऐसा कुछ न करने के कारण तुम्हारी शंका केवल शंका मात्र ही है। बात कुछ और ही हो सकती है।"—मारसिंगय्या ने कहा।

"जो भी हो हेग्गड़ेजी, उस अमावस्या की रात यहाँ रहकर प्रभु की उस दर्द भरी हालत को देखते तो मेरी बात को तुरन्त मान लेते। एक प्रहर रात जाते ही सारा शरीर पसीने से तर-बतर होकर एकदम ठण्डा पड़ गया था। इस सब पर विचार नहीं करना चाहिए ?—अब जैसी भगवान् की मरज़ी। प्रभु ने तो सबमें धीरज उड़ेल दिया है।" रेविमय्या बोला।

"हम सबको यही तो चाहिए कि प्रभु कुशल रहें। अच्छा यह तो बताओ, तुम कब तक छुट्टी पर हो ?" हेग्गड़े ने पूछा।

"कुछ निश्चित नहीं। फिर भी उनकी उदारता का हमें अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिए। इसलिए अब चलता हूँ।" रेविमय्या ने कहा।

"बुतुगा से नहीं मिलोगे ?" शान्तला ने पूछा।

"यहाँ आकर उससे मिले बिना कैसे जाऊँगा ? कहाँ है वह ?"

"तुम यहीं अप्पाजी से तब तक बातें करो, मैं उसे बुला लाती हूँ।" शान्तला बोली।

"अम्माजी, आप रहने दीजिए। मैं ही जाकर मिल आऊँगा। पिछवाड़े बगीची में ही होगा न ?" और इतना कहकर रेविमय्या बगीची की ओर चला गया।

थोड़ी ही देर में वह लौट आया। तब तक नाश्ता लग चुका था। नाश्ता करने के बाद रेविमय्या ने कहा—"आप लोगों के आने पर हमें नया धैर्य मिला है। मुझे आशा है, जल्दी-जल्दी न आ पाऊँ तो आप लोग चिन्तित नहीं होंगे। अच्छा, अब चलता हूँ हेग्गड़ती जी।" कहकर रेविमय्या चला गया।

शान्तला ख़ुद अलग से राजकुमारों के बारे में पूछताछ करना चाहती थी। परन्तु सबके सामने चुप रहना पड़ा।

दोरसमुद्र में हेग्गड़े परिवार के पहुँच जाने की ख़बर दण्डनायिका को भी लग चुकी थी। उनके ठहरने के लिए जो निवास दिया गया था यह वही था जिसे दण्डनायिका ने सुझाया था। इसलिए उन लोगों का जब-जब राजमहल जाना होता, उसे पता चलता रहता। दण्डनायिका ने निगरानी रखने के लिए दडिगा से कह रखा था। जिस दिन वे आये थे उसी दिन अकेले हेग्गड़े राजमहल हो आये इसकी सूचना भी उसे उसी दिन मिल गयी थी। इसके बाद एक सप्ताह के करीब बीतने पर भी किसी के राज महल में आने-जाने का समाचार चामव्वे को नहीं मिला।

उस दिन राजमहल हो आने के बाद चामव्वे ने दण्डनायक से जो बातचीत की थी, उस बारे में उसके बाद कोई चर्चा नहीं हुई। दूसरे दिन दण्डनायक से उसे यह समाचार मिला कि वामशक्ति पण्डित को देश निकाले का दण्ड दिया गया है। सोचा, चलो यह शनि भी टल गया। वह उसी रात भाग गया था—यह ख़बर भी दण्डनायक ने सुनायी थी। फिर महाराज से मिलने से पहले सारा समाचार प्रधान गंगराज को बताकर उनकी सलाह के अनुसार ही, वह व्यवहार करने लगा था। उसने जो कहा उस पर विश्वास करके युवराज ने ठीक ही कहा था। परन्तु गंगराज ने क्या सलाह दी? उन्होंने युवराज से क्या कहा? इस सम्बन्ध में दण्डनायक ने अपनी पत्नी को कुछ भी नहीं बताया। दण्डनायिका ने पूछा भी तो दण्डनायिका ने डाँट दिया, "यदि इस मामले में तुमने बाधा डाली तो तुम्हें तुम्हारे मायके भेज दूंगा।" इसलिए उसे चुप रह जाना पड़ा। "मैंने तो मन से भी युवराज का कभी बुरा नहीं चाहा, और फिर यह भी उन्हें मालूम है कि वामशक्ति द्वारा दिया गया यन्त्र मैंने कूड़े में फेंक दिया है। फिर भी पतिदेव मुझे गलत समझते हैं!" दण्डनायिका इसी सोच में डूब गयी। फिलहाल तो उसे सामने के संकट से मुक्त होना था। एक सीमा तक वह उबर भी गयी। फिर भी कुछ बातें उसके मन को साल रही थीं। युवरानी ने बुरे लोगों को देश निकाले का दण्ड देने के बारे में ही कहा, न कि यह कि वामशक्ति पण्डित को देश से निकाल दिया गया है। तो इसके यह माने हुआ कि उन्हें सारी बातें मालूम नहीं। या जानते हुए भी, हमें उससे सम्बन्धित व्यक्ति समझकर, हमारे मन पर इसका असर कैसा पड़ेगा और हमारी प्रतिक्रिया क्या हो सकती है, आदि को समझने के लिए शायद ऐसा किया होगा। जानते हुए भी अनजान बनकर कोई बुलवाकर बातचीत करेगा? युवराज को मालूम हो तो वे युवरानीजी से नहीं कहेंगे? जरूर जानते होंगे। इस बात को भाई से भी न कहने की बात मालिक ने कही थी न?…फिर प्रभु तक यह बात कैसे गयी?"

और यदि यह बात बड़े राजकुमार के कान में पड़ गयी तो न जाने क्या होगा? उन्होंने उस दिन पद्मला की तरफ मुड़कर भी नहीं देखा। इसका तो यही अर्थ हुआ कि उनको भी ये बातें मालूम हो गयी हैं। बच्चों को मालूम हो जाने पर

उस हेग्गड़ती को भी ख़बर हो ही जायेगी। हँसने वालों के सामने मेरी हालत फिसलकर गिरनेवाले की-सी हो गयी। हे भगवन्! ऐसा सब क्यों करवाया? इन सबका परिणाम क्या होगा? मेरी आशा-आकांक्षाएँ धरी-की-धरी रह जायेंगी? कृपा करो भगवन्, कृपा करो कि मेरी बड़ी लड़की का विवाह बड़े राजकुमार से हो जाये। इसके लिए मैं मनौती मनाऊँगी। अपराध क्षमा करो। आदि-आदि बातों को सोचती हुई दण्डनायिका न जाने कब तक बैठी रही।

इतने में दडिगा ने आकर ख़बर दी कि हेग्गड़ती और उनकी पुत्री दर्शन करने आयी हैं।

दण्डनायिका को विश्वास नहीं हुआ। बोली, "तुमने कभी उनको देखा भी है? कोई और होंगे।"

"ऐसा कैसे हो सकता है? मुझे मालूम नहीं? वे ही हैं।" दडिगा बोला।

"अभी वे कहाँ हैं?"

"बाहर के बड़े कमरे में बैठाया है।"

"आये कैसे?"

"पालकी में।"

"यहाँ लिवा लाओ और जाकर देकब्बे से कहो कि नाश्ता तैयार करे।"

दडिगा वहाँ से चला गया।

"चलकर आती तो क्या पैर घिस जाते? अपना बड़प्पन दिखाने पालकी में आयी है।" दण्डनायिका ने मन-ही-मन कहा। फिर भी मन की बात प्रकट न हो इसलिए वह बड़े संयम से अन्दर के प्रकोष्ठ में आयी और झूले पर बैठ गयी।

हेग्गड़ती और शान्तला ने अन्दर आकर विनीत भाव से झुककर प्रणाम किया।

"बैठिए हेग्गड़तीजी। ओह आपकी लड़की तो ख़ूब बड़ी हो गयी! बैठो बेटी। क्या समाचार है! आप सब कुशल हैं न? भगवान् कृपालु हैं। आपकी अभिलाषा पूरी हुई।" दण्डनायिका चामब्बे ने कहा।

"आप जैसे बड़ों का आशीर्वाद है। भगवान् की कृपा से हम सब कुशल हैं, दण्डनायिकाजी। आपने कहा कि हमारी अभिलाषा पूरी हुई, मैं कुछ समझी नहीं।" हेग्गड़ती ने कहा।

"हेग्गड़तीजी, हर एक को राजधानी में आकर रहने की इच्छा रहती है। अस्वाभाविक भी नहीं है। मैं सोचती हूँ, ऐसी ही इच्छा आपकी भी रही होगी। इसीलिए मैंने ऐसा कहा।"

"यहाँ हम आये। खुशी इस बात की है कि यहाँ उच्च पदाधिकारी रहते हैं। उनसे हमारा सम्पर्क होगा, सहयोग और मार्गदर्शन मिलेगा जिससे हम जीवन में कहीं अधिक सुसंस्कृत हो सकेंगे और प्रगति कर सकेंगे। इसलिए हमें यह एक

अच्छा अवसर मिला है। महादण्डनायक जी, प्रधान जी, युवराज, युवरानी आदि सभी ने मिलकर विचार-विमर्श के बाद ही हमें यहाँ बुलवाया है। इस सौभाग्य के लिए हम सदा कृतज्ञ रहेंगे और, निष्ठा के साथ कार्यरत रहना है सो रहेंगे ही। यहाँ आये एक सप्ताह हो गया, फिर भी आपका आशीर्वाद लेने न आ सके। रोज सोचते ही रहे, घर से बाहर निकलना ही नहीं हो पाया। अब कुछ व्यवस्थित हुए हैं। हेग्गड़ेजी राजमहल की ओर गये हैं इसलिए समय मिलते ही इस ओर चली आयी।" हेग्गड़ती ने विनम्रभाव से कहा।

"यह क्या, राजमहल आज गये ! आज तक आप लोग युवराज और युवरानी के दर्शन के लिए नहीं गये?"

"जिस दिन आये थे उसी दिन अकेले वे ही युवराज के दर्शन के लिए गये थे। आज फिर बुलावा आया था।"

"और आप लोग ?"

"नहीं, अभी तक नहीं जा पाये। यों भी हम जैसे छोटी सामर्थ्य वाले जब चाहें तब इच्छानुसार राजमहल में आ-जा भी नहीं सकते। दण्डनायिका जी ! उनका समय और उनकी सुविधा सब कुछ देखना पड़ती है न ?"

"सो तो है। यह राजधानी है, बलिपुर नहीं—यह बात आपके अनुभव में आयी होगी। सुना है आपकी अम्माजी के गुरु भी आये हैं ! अच्छा हुआ, उन्हें भी बुला लिया। राजधानी होने पर भी यहाँ अच्छे अध्यापक नहीं हैं। हमने भी तो उत्कल से बुलवाया है न ?"

"जहाँ तक मुझे स्मरण है, वे ही इधर आये थे सो शिक्षण देने के लिए आपने उन्हें ठहरा लिया।"

"फिर भी वे हैं तो उत्कल के ही। यह सच है कि वे ठहर गये सो बुलवा लेने जैसा ही हुआ न।"

"अम्माजी उनका दर्शन करना चाहती थी। वास्तव में हम आप सबकी बलिपुर में प्रतीक्षा करते रहे। आप लोगों का सत्कार करने का सौभाग्य ही नहीं जुट सका और अब तो हम ही यहाँ चले आये।"

"अब तो उनके पढ़ाने के लिए आने का समय भी हो गया है। हमारे नाश्ता-पानी होने तक यदि वे नहीं आते हैं तो किसी को भेजकर उन्हें बुलवा लूँगी।"

"तो वे क्या कहीं अन्यत्र निवास करते हैं ?"

"और नहीं तो क्या। यह कोई धर्मशाला थोड़े ही है, हेग्गड़तीजी।"

"आपकी बेटियाँ कहाँ हैं ? कोई भी दिखायी नहीं पड़तीं ?"

"अभी वो अभ्यास में लगी होंगी। नाश्ते के समय बुलाऊँगी। अरे दडिगा, जाओ और नाट्याचार्य जैसे ही आयें उन्हें यहाँ बुला लाओ।"

"शान्तला की इच्छा हुई कि पूछे : मैं वहाँ जाकर बैठ सकती हूँ ? लेकिन

पूछा नहीं।

कुछेक क्षणों के लिए मौन छा गया।

"हेग्गड़तीजी आपको निवास पसन्द आया? अच्छा है न?" दण्डनायिका ने यों ही पूछ लिया।

"अच्छा है। दण्डनायिकाजी, वास्तव में इतना बड़ा निवास-गृह यहाँ हमें मिलेगा—इसकी उम्मीद नहीं थी। वहीं अहाते में तीन-चार छोटे और भी निवास हैं। इससे और अधिक सहूलियत हो गयी।"

"वैसे राजमहल के पास ही एक निवास था। मालिक चाहते थे कि वहीं ठहरावें। मैंने उनसे कहा कि वह उनके लिए पर्याप्त नहीं होगा। वे सिर्फ़ पति-पत्नी और बेटी ही नहीं आयेंगे। उस समय जब बड़े राजकुमार के उपनयन के सन्दर्भ में आये थे तो अपने साथ सभी गुरुजनों को भी लेते आये थे। अब भी वे सब साथ आयेंगे ही, इसलिए उनको सब तरह की सुविधाएँ नहीं रहेंगी। इसी कारण इस मकान को देने के लिए कहा था। सब ठीक है फिर भी लगता है एक बात की सुविधा वहाँ नहीं है।"

"ऐसी कोई असुविधा तो नहीं है!"

"राजमहल से दूर बहुत है।"

"इसमें क्या असुविधा है? राजमहल में काम तो मालिक को करना है। वे घोड़े पर आया-जाया करेंगे। हम चाहे कहीं रहें; हमारे लिए वहाँ राजमहल में भला काम ही क्या है?" हेग्गड़ती ने कहा।

"सो तो ठीक है। फिर भी युवरानी का आपसे ज़्यादा लगाव है। बार-बार बुलावा आया तो जाना-आना ज़रा मुश्किल होगा।" दण्डनायिका ने चुटकी ली।

"वे अगर बुलवायें तो आदेश का पालन तो करना ही होगा। इसमें किसी तरह की कठिनाई की बात सोचना भी हमारे लिए उचित नहीं।"

"सो तो ठीक है। आपको चलकर थोड़े ही जाना है। पालकी तो होगी ही।" चामब्बे कह ही रही थी कि तभी उत्कल के नाट्याचार्य महापात्र वहाँ आ गये और बोले, "आने का आदेश हुआ···ओह, हेग्गड़तीजी आप! आप सब कुशल हैं?" फिर शान्तला की ओर देखा। पहले तो उन्होंने पहचाना नहीं लेकिन जब शान्तला ने ही मुस्कराकर प्रणाम किया तो बोल उठे, "ओह! ओह! शान्तलादेवी है न? कितनी बड़ी हो गयी हो बेटी! मैं पहचान न सका।" महापात्र के मुख पर प्रसन्नता छा गयी।

"बैठिए आचार्यजी, आपसे मिलने के ही लिए हेग्गड़तीजी और उनकी बेटी आयी हैं।" दण्डनायिका ने कहा। उसके कहने के इस ढँग में कुछ व्यंग्य था।

"कहला भेजतीं तो मैं स्वयं वहाँ चला आता।" महापात्र ने कहा।

"जब से यहाँ आये हैं तभी से दण्डनायिकाजी के दर्शन करने का गौरव ही

संजोती रही। आज समय निकालकर दर्शन करने आ पायी। आते समय रास्ते में अम्माजी ने मिलने की इच्छा व्यक्त की थी। इसीलिए दण्डनायिकाजी से निवेदन किया था।" हेग्गड़ती बोली।

"आपके गुरुजी भी आये हैं ?" महापात्र ने शान्तला से पूछा।

शान्तला के जवाब देने से पहले चामब्बे बोल उठी, "वे सब तो परिवार के व्यक्ति जैसे माने जाते हैं। आये बिना कैसे रहेंगे ?"

"बहुत अच्छा हुआ।" महापात्र ने कहा।

"तभी नाश्ता तैयार होने की सूचना मिली। सब उठकर नाश्ता करने चले गये। महापात्र भी उस दिन नाश्ते पर निमन्त्रित हुए थे। पद्मला, चामला, बोप्पदेवी सभी साथ थे। परन्तु उनके साहित्य के अध्यापक नाश्ते का बुलावा आने से पहले ही चले गये थे।

दण्डनायिका के बच्चों में जैसे एक नया उत्साह आ गया था। पद्मला को तो बड़ा ही रास आया। उस दिन राजमहल से लौटने के बाद से उसे कोई आहार रुचता ही नहीं था। आज उसे वह रुचिकर लग रहा था। वह शान्तला की बगल में ही बैठी थी। चामला शान्तला के दूसरी बगल में बैठी थी। सामने की पंक्ति में हेग्गड़ती और दण्डनायिका बैठी थीं और बोप्पदेवी चामब्बे की बगल में। नाट्याचार्य अलग पंक्ति में जा बैठे थे। नाश्ता करने के बीच कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। केवल हेग्गड़ती और दण्डनायिकाजी के बीच उपचारोक्ति 'थोड़ा और लीजिए' 'बस, और नहीं चाहिए' आदि चल रही थीं। नाट्याचार्य पूरे समय मौन रहे आये। हाँ, बच्चों की खुसर-पुसर बराबर चलती रही।

नाश्ता करने के बाद दोनों बेटियाँ नाट्याभ्यास के लिए निकलीं। चामला के अनुरोध पर माँ से आज्ञा लेकर शान्तला भी वहाँ चली गयी। "ज़्यादा देर मत लगाना, तुम्हारे पिताजी से पहले हमें घर पहुँचना है।" माचिकब्बे ने शान्तला को सचेत किया।

भेंट के इस अवसर पर नाश्ता कुछ अधिक ही हो गया इसलिए बेटियों ने सोचा कि अब अभ्यास कुछ देर बाद ही आरम्भ किया जाये। फिर भी उन लोगों ने वह समय व्यर्थ नहीं गँवाया। आपस में अपने ज्ञान, कला, अध्ययन आदि की प्रगति के बारे में बातें करती रहीं।

"एक दिन तुम्हारा नृत्य देखना चाहिए, अम्माजी !" महापात्र ने कहा।

"हम भी देखना चाहती हैं।" लड़कियों ने भी ज़ोर देकर कहा।

"उसके लिए इतना संकोच ? आप सब लोग एक दिन हमारे यहाँ पधारिए।" शान्तला ने कहा।

"ऐसा ही करेंगे। सुना कि मुझसे मिलना चाहती थीं, अम्माजी ?" शान्तला से महापात्र ने पूछा।

"विशेष कुछ नहीं। यहाँ मेरी आपसे भेंट हुई थी न! उसके बारे में मैंने अपने गुरुजी से कहा था। तो उन्होंने पूछा, 'क्या औत्तरेय पद्धति के अनुसार नृत्य सिखा रहे हैं?' मैं यह कुछ जानती नहीं थी। फिर भी मैंने कह दिया था कि भरतनाट्य सिखा रहे हैं। तो वे बोले—'उन्हें औत्तरेय पद्धति का ज्ञान तो होगा ही?' इस सम्बन्ध में मैं कुछ जानती ही नहीं थी। मैंने कहा, 'मैं नहीं जानती।' तभी से यह जिज्ञासा बनी रही।" शान्तला ने कहा।

"आपके गुरुजी का प्रश्न बिलकुल सहज है, बेटी। उत्कल के होने से मैंने उसी औत्तरेय पद्धति के नृत्य को सीखा था। फिर जीवन से कुछ ऊब जाने के कारण मैं दक्षिण की तरफ चला आया। यहाँ आने के बाद यहाँ की इस नाट्य पद्धति के अनुसार थोड़ा-बहुत ज्ञान अर्जित किया। वही आज मेरे गुज़र-बसर का सहारा बन गया है। मेरे सिखाने में निश्चित ही शुद्ध दाक्षिणात्य पद्धति की कमी दीखती होगी। इसका कारण मूलतः औत्तरेय पद्धति का अभ्यास है। उस औत्तरेय पद्धति का नृत्य यहाँ कोई सीखना नहीं चाहेगा यही समझकर मैंने दाक्षिणात्य पद्धति को अपनाया।"

"उसमें और हमारे भरत-नाट्य में क्या अन्तर है?" शान्तला ने पूछा।

दाक्षिणात्य पद्धति में समाधान, तृप्ति, सन्तोषपूर्ण नैसर्गिकता और धार्मिकता छलकती है। उसका लक्ष्य दैहिक आकर्षण नहीं। भरत मुनि प्रणीत नाट्यसूत्रों के आधार पर थोड़ा-बहुत शास्त्रीय अंश समन्वित किया गया है। अस्तु, हमारा औत्तरेय विधान भी पहले धार्मिक पृष्ठभूमि को लेकर निरूपित हुआ है। हमारे लिए भी भरत मुनि का वही शास्त्र आधार है। उसका उपयोग करके पुराण और इतिहास को नृत्य का रूप देकर दोनों का समन्वय किया गया है। इसका लक्ष्य मुख्यतः पुराणों-इतिहासों की कथाएँ जनता को समझाना है। इसलिए उस तरह की कथाओं को सुनानेवाले कथकों का मार्ग ही हमारे लिए मूलभूत आधार बन गया है। अलेक्जेण्डर (सिकन्दर) के समय से हमारे इस पवित्र देश पर यूरोपीय, मोहम्मदीय, चीनी, ब्रह्मदेशीय आदि विदेशियों के हमले होते रहने के कारण उनकी नाट्य-पद्धतियों के भी कुछ अंश उसमें आकर मिल गये हैं। ऐसा होने से वह कुछ खिचड़ी-सी बन गयी है।"

"इस औत्तरेय पद्धति ने इन सभी से कुछ-न-कुछ नवीनता लेकर स्वयं को अलंकृत किया है। इसे खिचड़ी या मिलावट न कहकर यों कहना उपयुक्त न होगा?" शान्तला ने पूछा।

"जो भी कहो, एक ही बात है।" महापात्र बोले।

"क्या आपकी दृष्टि में वह ठीक नहीं है?" शान्तला ने फिर पूछा।

"मैंने कब कहा कि वह ठीक नहीं है?" सदा सर्वदा हम अच्छे ही को ग्रहण करते हैं ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। दक्षिण में नृत्य का उत्थान मन्दिरों में होता

है। सामान्यतः वह प्रजारंजन के लिए नहीं होता। उत्तर में यह आदर्श कुछ भिन्न तरह का बन गया है। अब वह एक लौकिक कला बनकर लोगों के आकर्षण की चीज़ बन गयी है। इसलिए दैहिक आकर्षण भी औत्तरेय नृत्य का एक अंग-सा बन गया है।"

"वह कथकों की रीति कैसी होती है—इसे प्रत्यक्ष देखे बिना, अन्तर कहाँ है, यह बात नहीं समझ पाऊँगी।"

"चाहो तो तुम्हें सिखा दूंगा।" महापात्र ने तुरन्त जवाब दिया।

"अभी जो सीख रही हूँ वह भी पूरा नहीं हो सका है। ऐसी हालत में··· फिर भी आपकी उस पद्धति को मैं आँखों देखना चाहती हूँ। तीनों को एक ही पद्धति का नृत्य सिखाने के बदले किसी एक को उस औत्तरेय नाट्य-पद्धति के अनुसार सिखाते तो अच्छा होता और देखने को आसानी से मिल भी जाता।"

"अगर मैं यह कहता कि उसे सिखाउँगा तो मुझे यहाँ स्थान ही नहीं मिलता। दण्डनायिकाजी भरतनाट्य को ही अधिक पसन्द करती हैं।" महापात्र ने कहा।

"अच्छा !" कहकर शान्तला उठ खड़ी हुई और नाट्याचार्य महापात्र को प्रणाम कर बोली, "अब मुझे आज्ञा दें, माँ प्रतीक्षा करती होंगी। फिर आपको अध्यापन भी में तो देरी हो रही है। फिर उन बहनों से बोली, "अच्छा, अब चलती हूँ, आप लोग समय निकालकर ज़रूर आयें। मेरा यहाँ और किसी से परिचय नहीं है। सहेलियाँ न होने के कारण मन ऊबने लगता है।"

बालिकाओं ने अपनी स्वीकृति दे दी। शान्तला वहाँ से चली गयी। पढ़ाई शुरू हो गयी।

बेटी के आते ही हेग्गड़ती माचिकब्बे उठ खड़ी हुई और बोली—"अच्छा दण्डनायिकाजी, चलती हूँ। और हाँ, यहाँ हमारे कोई परिचित नहीं हैं। अतः आप सबकी हम पर दृष्टि बनी रहनी चाहिए।"

दण्डनायिका ने हेग्गड़ती को हल्दी-रोड़ी (रोली) तथा पान-बीड़ा देकर विदा करते हुए कहा—"अच्छा हेग्गड़तीजी, यहाँ भी उसी तरह मिल-जुलकर रहें जैसे राजमहल में रहा करती हैं। किसी तरह के संकोच की जरूरत नहीं। कभी-कभी आती-जाती रहें। बच्ची को भी भेजती रहें। बेचारी अकेली ऊब जाती होगी।"

माँ-बेटी दोनों पालकी में बैठकर जाने वाली ही थीं कि देखा, दण्डनायकजी प्रांगण तक आ चुके हैं। हेग्गड़ती पालकी से उतरीं तो बेटी ने भी माँ का अनुसरण किया। दण्डनायक घोड़े से उतरे और सीधे उन लोगों के पास आये। बोले, "हेग्गड़ेजी ने राजमहल में बताया था कि आप लोग हमारे यहाँ गयी हैं। सब कुशल हैं न ? बिटिया काफ़ी बड़ी हो गयी है !"

"सब कुशल हैं। आज्ञा हो तो फिर कभी आवेंगे।" माचिकब्बे ने कहा।

"अच्छा," कहकर मरियाने अन्दर चले गये। इधर माँ-बेटी भी अपने घर आ पहुँची। चर्चा के समय अगर दण्डनायिका यह सवाल कर बैठती, कि लड़की के लिए वर निश्चित हो गया या नहीं? तो पता नहीं माचिकब्बे क्या उत्तर देती। भला हो उस दण्डनायिका का कि उसने पूछा नहीं। शायद जवाब में हेग्गड़ती भी सवाल कर बैठती, 'और आपकी बेटी की शादी कब हो रही है?' तो दण्डनायिका भला क्या उत्तर देती? इसलिए उसने नहीं पूछा होगा। यह रहस्य बेचारी माचिकब्बे क्या समझे।

हेग्गड़े परिवार के दोरसमुद्र में आकर बसने के बाद से युवराज के स्वास्थ्य में काफी सुधार आ गया था। उनके पाँव के घाव भर चुके थे। अब वे स्वयं चल-फिर सकते थे। उनके मन से अब यह भय भी निकल गया था कि वह दुबारा खुला आकाश, चाँद व सूरज नहीं देख पायेंगे। स्वयं मंत्रणालय जाकर वह राजकाज सम्बन्धी मंत्रणाएँ भी करने लगे थे।

उधर युवरानी एचलदेवी, दुख के कारण जिनका मुँह म्लान पड़ गया था, फिर से हँसमुख दिखने लगी थीं। उनके कार्यों में अब पहले की तरह ही रुचि और स्फूर्ति दिखाई देने लगी थी। राजमहल में जो एक तरह का गम्भीर वातावरण बना हुआ था वह समाप्त हो गया था। वहाँ एक बार फिर चहल-पहल शुरु हो गई थी। सम्पूर्ण राजमहल फिर से एक नई उमंग से भर उठा था।

महाराजा अब तक तो एक तरह से राजकाज से विरक्त हो गये थे। राजकाज में जैसे उनका कोई दख़ल ही नहीं था। लेकिन अब उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया था और घोषणा कर दी थी—"इस साल युवराज की वर्धन्ती के दिन उनका महाभिषेक करने का हमने निश्चय कर लिया है। हम अब किसी की सलाह को नहीं मानेंगे। खुद युवराज ही क्यों न मना करेंगे, उनको हम सिंहासन पर बिठाकर ही चैन लेंगे। जो भी इसका विरोध करेगा उसे राज्य का विरोधी मानकर दण्डित किया जायेगा। वास्तव में अब वे ही महाराज हैं। पहले ही हमने दोरसमुद्र को राजधानी बनाकर, वहाँ के महामण्डलेश्वर की हैसियत से, एरेयंग प्रभु ही राज्यभार सम्भाल रहे हैं इस बात का शिलालेख स्थापित करने की सूचना सर्वत्र भेजी थी और इस प्रकार के शिलालेख जहाँ-तहाँ स्थापित भी हुए हैं। यह सब देखने के बाद, उन्होंने यह आदेश प्रसारित किया था कि फिलहाल उनका नाम सूचित नहीं होना चाहिए। वह युवराज के रूप में ही हमारे नाम से सारे राजकाज का विधिवत् संचालन करते रहेंगे यह भी हमें मालूम है। किन्तु तब हम किसी का मन न दुखे इसलिए चुप रहे। मगर किसी ने हमारे अभिप्राय को समझने की कोशिश नहीं की—इस बात का हमें अत्यन्त खेद है। ठीक है इसे हमारी मन की दुर्बलता ही कहा जाय। अब इस वर्ष हमारे युवराज की वर्धन्ती के अवसर पर उनको महाराजा घोषित कर पट्टाभिषेक करेंगे और राजकुमार

बल्लाल को युवराज पद पर अभिषिक्त करेंगे।" इस तरह के निश्चय से राजमहल में जैसे एक नया उत्साह फूट पड़ा था।

प्रधान गंगराज और मरियाने दण्डनायक को यह अच्छी तरह मालूम था कि इस सारी गड़बड़ी का कारण उन्हीं की एक साधारण-सी गलती है। अब उन्होंने महाराज के इस आदेश को सम्पूर्ण रूप से मानकर पट्टाभिषेक महोत्सव को बड़ी सज-धज के साथ अपूर्व ढंग से सम्पन्न करने की योजना तैयार की थी। इस सुखद समारम्भ की प्रतीक्षा में सब अपने-अपने वैयक्तिक विचारों को भूलकर ध्यान लगाये बैठे थे। पूरे दोरसमुद्र में मानों कहीं कोई मनोमालिन्य ही नहीं था। पूरी राजधानी एक परिवार-सी बन गयी थी। ऊँच-नीच, मालिक-नौकर, अधिकारी-कर्मचारी आदि इस तरह के विचारों पर किसी का ध्यान ही नहीं रहा।

चामव्वे दण्डनायिका की आशाएँ मन-ही-मन फिर से अंगड़ाई लेने लगीं। पहले इस पट्टाभिषेक को रोकने का कारण वह स्वयं बनी थी उसे इसका पूरा आभास हो गया था। पट्टाभिषेक के महान् उत्सव ने उसे भी अपनी इच्छा को प्रस्तुत करने, अपनी बेटी पद्मला को युवरानी बनाने के लिए प्रयास का अवसर दे दिया था। और यह तो निश्चय है ही कि युवरानी बनने के बाद वह महारानी बनेगी ही। इस तरह से उसने सोचकर देख लिया था कि इस बार उसकी इस चिर अभिलाषा के पूरी होने में किसी तरह की बाधा नहीं आयेगी। सो, उसने पतिदेव से भी चर्चा कर दी। मगर उन्होंने फटकार दिया, "इस विचार को अब छेड़ोगी तो तुम्हें देश-निकाले का दण्ड दिया जाएगा। अब केवल प्रभु का पट्टाभिषेक और राजकुमार बल्लालदेव का यौवराज्याभिषेक इन दो विषयों को छोड़कर अन्य किसी भी विषय पर बातचीत नहीं करनी है।"

"ठीक है, यह दोनों काम हो जायें तो मैं भी अपनी इच्छा पूरी करके ही रहूँगी। मैं कोई ऐरी-गैरी नहीं—गंगराज की बहन और महादण्डनायक की पत्नी चामव्वा हूँ।" मन-ही-मन उसने ठान लिया।

उधर पट्टाभिषेक के प्रसग ने बच्चों में मैत्री की भावना अधिक प्रगाढ़ कर दी थी। गुरुजन भी अपने को एक ही गुरुकुल के प्राध्यापक मानने लगे थे। प्रमाधि संवत् आश्वयुज सुदी दशमी का दिन पट्टाभिषेक के लिए निश्चित करके सबको आमंत्रण पत्र भी भेज दिये गये।

दोरसमुद्र इन्द्र की अमरावती बनने लगा। सब की जुबान पर एक ही चर्चा थी—पट्टाभिषेक। एरेयंग प्रभु का पट्टाभिषेक और बल्लालदेव का यौवराज्याभिषेक। लोगों में यही चर्चा होती—'चालुक्य चक्रवर्ती विक्रमादित्य आएँगे तथा पिरियरसी जी आएँगी। प्रभु द्वारा पराजित किए गये बड़े-छोटे नरेश आदि अपनी-अपनी तरफ़ से भेंट आदि लेकर आयेंगे। सारे देश के सभी बसदी, मन्दिरों तथा विहारों में महाराज, युवराज और सारे राजपरिवार की कुशलता के लिए

पूजा-अर्चा-अभिषेक आदि के साथ प्रार्थनाएँ होंगी। उस दिन समस्त सेना से अलंकृत नये महाराज और युवराज हाथी के हौदे में बैठेंगे, राजपथों पर जुलूस निकलेगा। सूर्यास्त के बहुत पहले निकलेगा, फिर भी सभी राजपथों से होता हुआ राजमहल लौटने तक अँधेरा हो जायेगा। अतः हज़ारों मशालों के साथ जुलूस होगा। नये महाराज के सिंहासनारोहण सभारम्भ की खुशी में राजधानी के सभी मन्दिरों में लाख-लाख दीप जगमगा उठेंगे। राजमहल के प्राचीर के चारों ओर कतारों में दीपमालाएँ सजायी जायेंगी। इस तरह की व्यवस्थाओं के बारे में जिसे जो सूझता वैसी ही चर्चा आपस में छेड़ देता।

ये सब बातें राज्य के कोने-कोने में फैल गयीं। इससे यह अन्दाज़ हो गया था कि राजधानी के इर्द-गिर्द के प्रदेशों और गाँवों से इस आनन्दोत्सव में भाग लेने के लिए लाखों लोग राजधानी पहुँचेंगे। जगह-जगह पर उनके ठहरने, खाने-पीने आदि की व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व महासंधि-विग्राहक नागिदेव को सौंपा गया था। इसके लिए राजधानी के चारों ओर तम्बू गड़वाये जा रहे थे। भोजन-शालाएँ तैयार की जाने लगी थीं। डाकरस दण्डनाथ के नेतृत्व में वृद्धजनों, बच्चों आदि की देख-रेख के लिए एक रक्षक दल बनाया गया था। चिकित्सा सम्बन्धी जरूरतों के लिए पण्डित चारुकीर्तिजी के नेतृत्व में सौ वैद्यों का जत्था संगठित किया गया था। प्रमुख अतिथियों की अगवानी के लिए एक स्वागत समिति माचण दण्डनाथ के नेतृत्व में बनायी गयी थी। स्वयं महाप्रधान गंगराज पट्टाभिषेक समारम्भ की व्यवस्था करेंगे और महादण्डनायक मरियाने जुलूस की व्यवस्था और देखभाल करेंगे। मनोरंजन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी कवि नागचन्द के नेतृत्व में संगठित एक समिति को सौंपी गयी थी। इस समिति में राजमहल के, महादण्डनायक निवास के और हेगड़े परिवार के गुरु, बैजरस, रावत, मायण आदि शामिल थे। चिण्णम दण्डनाथ एवं मारसिंगय्या को राजमहल की आंतरिक कार्य-व्यवस्था का जिम्मा दिया गया था। चालुक्य सम्राट् तथा पिरियरसी आदि को बलिपुर में ही स्वागत करके दोरसमुद्र तक सुव्यवस्थित रूप से लिवा लाने का दायित्व सिंगिमय्या को सौंपा गया था। इस सारी व्यवस्था के साथ सबसे पहले बच्चों के दूध की व्यवस्था भी की गयी थी।

यों इस महान् समारंभ के अभूतपूर्व आयोजन के कारण राजधानी में उत्साह-पूर्ण चहल-पहल थी। राजधानी में आने वाली गाड़ियों, बैलों और घोड़ों को नये ढंग से सजाया जा रहा था।

इन वाहनों, बैलों और घोड़ों को उनके मालिकों ने खूब सजाया था। इस समारंभ के अवसर पर लाखों की तादाद में लोगों के एकत्रित होने की सम्भावना तो थी ही, इसलिए बड़े-बड़े व्यापारियों ने राज्य के नाना भागों से आकर एक अस्थाई बाजार ही लगा दिया था। कपड़े, जेवरात, वस्त्र-बासन, खिलाने आदि की

दुकानें ज्यादा लगी थीं। रसद और खाने-पीने की चीज़ों की दुकानों को लगाने की मनाही थी। इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आने वाले सभी लोगों के लिए मुफ्त में रहने और खाने-पीने आदि की व्यवस्था की गयी थी। इस वजह से ऐसी दुकानों को लगाने की अनुमति नहीं दी गयी थी। इस अवसर पर राजधानी आने वाले सभी लोगों को राजमहल का ही अतिथि मानने का निर्णय किया गया था।

इस अवसर पर दोरसमुद्र पहुँचने वाले घोड़े-बैलों के ठहराने, घास-कुल्थी आदि की व्यवस्था के लिए राजधानी के दक्षिण-पूर्व के कोने में स्थित वृक्ष-वाटिका में व्यवस्था की गयी थी। गाड़ीवालों के ठहरने के लिए उस वृक्षवाटिका के चारों ओर छोटे-छोटे तम्बू व झोंपड़े लगाये गये थे।

इस तरह पट्टाभिषेक महोत्सव के लिए सभी ओर से आनेवाले लोगों के लिए किसी तरह की तकलीफ न हो—ऐसी व्यवस्था सुचारुरूप से की गयी थी, सभी के लिए सब तरह की सहूलियत मिले—ऐसा सारा इन्तज़ाम किया गया था। यह सारी व्यवस्था प्रधान गंगराज एवं मरियाने दण्डनायक—इन्हीं दो के संगठन के बल पर हुई थी। व्यवस्था सम्बन्धी प्रगति का विवरण उसी समय महाराज तथा युवराज को पहुँचाया जाता था। इस व्यवस्था की रीति से महाराज विनयादित्य बहुत सन्तुष्ट थे। खासकर प्रधानजी और महादण्डनायक की लगन और श्रद्धा को देखकर उनके बारे में पहले जो एक तरह की असन्तोष भावना थी, वह सब जाती रही। इस तैयारी के दौरान ही महाराज विनयादित्य ने कुमार बल्लालदेव को अपने पास बुलवाकर यह समझाते हुए कहा कि जिस तरह युवराज एरेयंग उनकी सहायता करते रहे उसी तरह बल्लाल को भी अपने पिता की करनी चाहिए। "तुम्हारे पिता की कार्यक्षमता से मैं बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ। अप्पाजी, तुझे उनके सद्‌गुणों की अपेक्षा अधिक सद्‌गुणी, अधिक दक्ष और कर्तव्यपरायण होना चाहिए। तुम्हारे पिता ने मात्र यशलाभ से कभी कोई कार्य नहीं किया। वह निष्काम भाव से कार्य करते हैं। सभी ऐसा नहीं कर पाते। हमारे इस साम्राज्य का तिगुना से भी अधिक विस्तार तुम्हारे पिता के ही परिश्रम का फल है। उन्हीं की तरह तुम्हें गुण-ग्राहक बनकर रहना चाहिए। कभी मन में यह विचार मत धारण करना कि गुण से अधिकार बड़ा है। गुण सर्वोपरि है। सद्‌गुणों को पहचानना और गुणवानों का आदर करना, यही हमारे इस वंश की रीति रही है। हमारी प्रवृत्ति गुण और निष्ठा पर आधारित कार्य करने की होनी चाहिए। यदि ऐसा न होता तो हमारे दण्डनायक कहीं एक साधारण लिपिकार बनकर ही पड़े रहते। गुण के कारण ही तुम्हारी दादी ने उन पर भाई का-सा वात्सल्य रखा था। परन्तु उनका वह वात्सल्य अपात्र पर नहीं था, यही हमारे लिए तृप्ति और सन्तोष का कारण है। उनका जीवनादर्श, कुछ छोटे-मोटे स्वार्थ छोड़ दें तो, अच्छा ही है।

वर्धन्ती और पट्टाभिषेक का समय निकट आता गया।

मनोरंजन का कार्यक्रम भी बना। कुश्ती, तलवार तथा धनुर्विद्या, अश्वारोहण का प्रदर्शन, लोकनृत्य-गीत, पहाड़ी जनजातियों का सामूहिक नृत्य आदि की व्यवस्था बाहर—खुले मैदान में राजमहल के सामने ही की गयी थी। महल के अन्दर केवल आमन्त्रित अतिथियों के लिए ही मनोरंजन आयोजित था। इसमें शान्तला का नृत्य-गान और दण्डनायक की बच्चियों के सम्मिलित नृत्य की भी व्यवस्था थी। पद्मला ने नाचने से स्पष्ट इन्कार कर दिया और कहा कि बहिनें जब नृत्य करेंगी तो वह गीत गा देगी। राजकुमार के समक्ष वह नृत्य करेगी तो उसका असर राजकुमार के मन पर अच्छा पड़ेगा—यह चामब्बे का इरादा था। इसलिए उसने महापात्र से कहलवाया भी। किन्तु पद्मला ने जब इन्कार कर दिया तो दण्डनायिका को कुछ गुस्सा भी आया। असल में उसके संकोच का कारण था कि अब बल्लाल के साथ उसका पहले जैसा मेल-जोल नहीं रह गया है। इसलिए बल्लाल के सामने नृत्य करने का उसका मन नहीं हो रहा था। चारों लड़कियों में वह बड़ी भी थी। उसने कभी ऐसे सार्वजनिक समारोहों में नृत्य किया भी नहीं था। अतः बड़ी आयु की वजह से उत्पन्न सहज लज्जा और अन्य न बता सकने वाली अनेक भावनाओं के कारण उसने नृत्य करना स्वीकार नहीं किया था। दुखी चामब्बे चाहती थी कि किसी भी तरह पद्मला राजकुमार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल रहे। जब पद्मला गीत गाने को राजी हो गयी तो उसे थोड़ा सन्तोष हुआ। वह चाहती थी कि उसकी लड़कियाँ हेग्गड़ती की लड़की से ज्यादा श्रेष्ठ लगें। यूँ अब उसका मन काफी परिवर्तित हो गया था। हेग्गड़ती और उसकी लड़की के बारे में पहले जैसा द्वेष-भाव अब उसमें नहीं था। यह भावना भी आयी थी कि वे अच्छे लोग हैं, फरेबी नहीं। मगर करे तो क्या, कोई आशंका उसके मन में दानवी की तरह हड़कम्प मचाने लगती। सोचती, युवकों का मन ज्यादा विश्वसनीय नही होता। नजर इस ओर से उस ओर फिर जाने में देर ही क्या लगती है? फिर भी दोरसमुद्र की हाल की अनेक घटनाओं ने उसके मन में भय की भावना भर दी थी। इसलिए वह कोई भी कदम हिचकिचाकर उठाती। इसी कारण बुराई की बात वह सोच भी नहीं पायी थी। वह इतना ही चाहती थी कि बल्लाल ने उसकी लड़की को जो वचन दिया था, वह पूरा हो जाय। बाकी और जो भी हो जाय तो ठीक, न हो सो भी ठीक।

चामला को इस बात की खुशी थी कि शान्तला के साथ उसी मंच पर चढ़ने का मौक़ा उसे मिला है। अपनी इस खुशी को उसने शान्तला के सामने व्यक्त भी किया। उसने कहा, "जिस मंच को तुम्हारे चरणों ने स्पर्श किया उसी मच पर चढ़ने का सौभाग्य मुझे मिला है, शान्तला। तुम्हारी शुभकामना रहेगी तो मैं भी यशस्वी हो सकूँगी। पढ़ाते समय गुरुजी ने कहा था कि यह कला दूसरों के

मन को सन्तुष्ट करने के लिए ही है। अतः कलाभ्यासियों को सार्वजनिक रूप में कला का प्रदर्शन करते हुए लजाना नहीं चाहिए।"

"गुरु जी ने ठीक ही कहा। तुम्हारी दीदी भी नृत्य करती तो अच्छा था। परन्तु अरुचि होने पर कला का विकास रुक जाता है। अगर वह नृत्य करतीं तो बड़े राजकुमार सचमुच बहुत खुश होते।"—शान्तला ने कहा।

"यह तो वह भी महसूस करती है। पहले तो उनके सामने जाने पर वह स्वर्ग-सुख का अनुभव करती थी। परन्तु पता नहीं आजकल क्यों वह उनका नाम लेने पर कछुए की तरह अपने अंग समेट लेती है और अन्तर्मुखी हो जाती है।"—चामला ने कहा।

"ऐसा है तो कोई दूसरा ही कारण होना चाहिए, चामला। इस उत्सव के समाप्त हो जाने के बाद उन्हीं से इसका पता लगाना चाहिए। किसी भी विषय को दिल में रखकर घुटना नहीं चाहिए। इससे मन अस्वस्थ हो सकता है।"

"मेरे पूछने पर तो वह कुछ बोली नहीं। तुम्हीं कोशिश कर देखो।"

"अच्छा, कोशिश करूँगी।"—शान्तला ने कहा।

पहले से चली आ रही उनकी मित्रता इस बातचीत से और भी प्रगाढ़ हो गयी। चूँकि शान्तला दोरसमुद्र में ही अब रहती थी, इसलिए निकटता स्वाभाविक ही थी। हेग्गड़ती की लड़की के साथ अपनी लड़की की इस मैत्री से दण्डनायिका चिढ़ती ज़रूर थी, मगर बोलती कुछ नहीं थी। 'उत्सव के सन्दर्भ में किसी के दिल को दुखाना नहीं चाहिए। यह सब समाप्त होने पर एक बार विवाह का निर्णय तो हो जाय, बाद में कहाँ किस पुर्जे को कैसे कसना होगा उसे कसकर ही छोड़ूंगी। मैं छोड़ने वाली नहीं'—यही सोचकर वह इनकी आत्मीयता को सहती रही।

अभी हाल में ही शान्तला ने औत्तरेय पद्धति का नृत्याभ्यास भी शुरू कर दिया था। इसके लिए दण्डनायिका बहुत लड़-झगड़ कर लेने के बाद राजी हुई थी। बात यह थी कि एक बार महापात्र हेग्गड़ेजी के घर शान्तला के नृत्याभ्यास के वक्त उपस्थित थे। तब उन्होंने स्वयं प्रेरित होकर कहा था—"अम्माजी! अपनी औत्तरेय विद्या का दान तुम्हें देने का निर्णय मैंने अभी-अभी किया है। तुम्हें मेरी शिष्या बनने की स्वीकृति देनी होगी। स्वीकृति देने के लिए मैं तुम्हारे गुरुजी से प्रार्थना करूँगा।"

शान्तला के गुरु को कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन महापात्र दण्डनायकजी के घर के अध्यापक थे, अतः उनकी अनुमति लेना महापात्र को ज़रूरी था।

शान्तला सीखना चाहती थी। उसके गुरु ने महापात्र के इस इरादे का स्वागत किया था। महापात्र ने दण्डनायक से स्वयं अनुमति प्राप्त की थी। कुछ महीनों तक अभ्यास भी हुआ था। शान्तला की ग्रहण-शक्ति तथा सीखने में उसकी

श्रद्धा और आसक्ति से महापात्र अपरिचित नहीं थे। विषय को समझकर उसके अनुसार अनुष्ठान में शान्तला की तीव्र गति देखकर वह चकित हो गए थे। उनकी इच्छा थी कि पट्टाभिषेक के अवसर पर शान्तला भरतनाट्य प्रदर्शन के साथ-साथ, औत्तरेय नृत्य भी दिखाये। इससे औत्तरेय पद्धति में नृत्य सीखने का उत्साह पोय्सल राज्य के नागरिकों में पैदा हो जाएगा और विद्यादान करने के लिए अधिक अवसर मिलेगा—यह महापात्र का विचार था। यह सोचकर कवि नागचन्द्र और शान्तला के गुरु गंगाचारी को समझा-बुझाकर इस औत्तरेय नृत्य को भी कार्य-क्रम में सम्मिलित कराया। जब शान्तला को यह बात मालूम हुई तो उसने इस औत्तरेय पद्धति के नृत्य से स्पष्ट इन्कार कर दिया। उसने कहा—मुझे इस पद्धति की रीति-नीति का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है। ऐसी हालत में प्रतिष्ठित सभासदों के सामने उसे प्रदर्शित कर मैं उस कला का अपमान नहीं कर सकती।" इस वजह से यह बात जहाँ की तहाँ रह गयी। फिर भी महापात्र यह सोच रहे थे कि किसी तरह से अधिकारी स्तर के लोगों से कहलवाने पर कार्य हो जायेगा। परन्तु उन लोगों से कहें कैसे? उन्होंने सोचा कि दण्डनायिका से इस काम में मदद लें। दण्डनायिका ऊपर से आत्मीयता दिखाने वाली हैं। यह अनुभवी महापात्र अच्छी तरह समझते थे। यह भी वह जानते थे कि वह हेग्गड़े परिवार से अन्दर-ही-अन्दर जलती है। दण्डनायिका की इसी ईर्ष्या की आड़ में उन्होंने अन्तिम क्षणों में शान्तला पर दबाव डालने की कोशिश करनी चाही। बार-बार उनके मन में एक ही बात उठती कि इससे अपने देश की इस कला के लिए यहाँ प्रोत्साहन मिल जाएगा और शान्तला की प्रतिभा का परिचय भी हो जाएगा, वह विख्यात हो जायेगी। लक्ष्य उत्तम है। और उत्तम लक्ष्य की सिद्धि के लिए कुछ इधर-उधर भी किया जाये तो अनुचित नहीं।

जैसे-जैसे पट्टाभिषेक समारम्भ निकट आता गया, दोरसमुद्र में सर्वत्र आनन्द ही-आनन्द हिलोरें लेने लगा। सुदी पंचमी के दिन भावी महाराज और युवराज के मंगल स्नान की पूर्व वेला में तूर्यनाद चारों ओर प्रतिध्वनित होने लगे। महा-भारत के समय से ही चला आ रहा यह विजयोत्सव इस बार विशेष महत्त्वपूर्ण था। महाभारत का विजयोत्सव कन्नड़ राज्य में ही तो आरम्भ हुआ था।

गो-संरक्षण हेतु युद्ध में अर्जुन ने इसी कन्नड़ राज्य में विजय पायी थी। उसी के स्मृति स्वरूप यह विजयोत्सव सम्पन्न होता रहा है। गो-रक्षा धर्म-रक्षा का प्रतीक है। इस धर्मरक्षा के कार्य में पोय्सलों की अपार आस्था के कारण इस उत्सव में उनकी श्रद्धा स्वाभाविक ही थी।

पट्टाभिषेक के पाँचों दिन पाँच पावन नदियों के जल से भरे कुम्भों द्वारा पूजा का विधान था। प्रति दिन एक-एक कुम्भ की पूजा शास्त्र विधि के अनुसार करने का निर्णय पुरोहित वर्ग ने लिया था। प्रथम दिन पाँच-सुमंगलियाँ पाँच स्वर्ण

कलशों को पवित्र थाली में रखकर, सिंहासन की तीन बार परिक्रमा कर उसे पुरोहितों को सौंपेंगी। यह काम गंगराज की दोनों पत्नियाँ लक्कलदेवी और नागलदेवी, दण्डनायिका चामव्वे, चंदलदेवी और हेग्गड़ती माचिकव्वे—इन सुमंगलियों को सौंपा गया था। 'उन पाँच सुमंगलियों में डाकरस की पत्नी या दण्डनायक की बहू एचियक्का को हेग्गड़ती के बदले चुना होता तो इनका क्या बिगड़ जाता ?'—यों मुझ जैसी बहू को छोड़कर उस हेग्गड़ती को चुना है जिसने अपने वंशोद्धार के लिए एक पुत्र तक को नहीं जना। क्या मैं दो पुत्रों की माँ उससे घटिया हूँ ?' एचियक्का के मन में इस तरह के विचार उठ रहे थे। परन्तु उसे क्षण-भर के लिए भी यह नहीं सूझा कि सद्यःप्रसूता होने के कारण इन शास्त्रीय विधि-विधानों का पालन उससे नहीं हो सकता। इस तरह की बात एरेयंग प्रभु की बेटी केळेयल देवी भी सोच सकती थी। सुमंगली पुत्री से श्रेष्ठ सुमंगली दूसरी कौन हो सकती है ? वास्तव में दुखी उसे होना चाहिए था। पाँचों में उसे शामिल नहीं किया गया था। फिर भी उसे ऐसा कुछ भी नहीं लगा। आखिर वह युवरानी एचलदेवी की पुत्री जो है।

पाँचों गुरुओं को बुलवाकर प्रति दिन गुरु-सेवा करने की व्यवस्था की गयी थी। प्रभु एरेयंग के गुरु अजितसेनाचार्य और एचलदेवी के गुरु गुणसेन पण्डित, मेघचन्द्र त्रैविद्य, माघनंदि मुनिवर्य और शुभचन्द्र देव इन पाँचों को बुलाया गया था। सारी तैयारियाँ होने लगी थीं।

पंचमी के दिन इन पाँच सुमंगलियों में से दो वृद्ध सुमंगलियाँ—नागलदेवी और चामव्वे दण्डनायिका—इन दोनों ने युवराज, युवरानी और राजकुमार को मंगल-स्नान के पहले भद्रासन पर बिठाकर तैल-स्पर्श का मंगलोपचार किया। उनकी आरती उतारी गयी। इसके बाद वह आरती राजमहल की ड्योढ़ी पर उतारी गयी। तदनन्तर उस थाल के जल को राजमहल की ड्योढ़ी पर छिड़कने के लिए गयी दण्डनायिका। जल छिड़कते समय वह पौड़ी से टकराकर गिरने ही वाली थी कि ड्योढ़ी का सहारा पाकर बच गयी। फिर भी आरती की थाल का वासंती जल उसकी कीमती जरीदार रेशमी साड़ी पर गिर ही गया। बचा-खुचा जल वह पोड़ी पर वहीं से छिड़ककर लौट आयी। वहाँ से भद्रासन से लगे बारहदरी की ओर न जाकर सीधे पूजा-घर में चली गयी। वहाँ थाल रख दिया। फिर साड़ी बदलने के लिए उस कमरे में चली गयी जहाँ उन लोगों ने अपना सामान व बक्से रखे थे। स्त्रियों के सारे पहनावे रखने की व्यवस्था उसी कोठरी में की गयी थी और गोंका उसकी रखवाली पर नियुक्त था। दण्डनायिका की भीगी साड़ी देखकर वह पूछ बैठा, "क्या हो गया दण्डनायिकाजी, स्नानागार में फिसल गयीं क्या ? कहीं चोट तो नहीं आयी ?"

"कुछ नहीं" कहकर वह अन्दर चली गयी और किवाड़ बन्द कर लिये। वह

जहाँ खड़ी हुई थी, वहाँ दो-चार खून की बूंदों के धब्बे गोंक को दिखाई दे गये। दण्डनायिका साड़ी बदलकर जब आयीं तो उसने कहा, "पैर में चोट लगी होगी, खून बह रहा होगा। शायद आपने ध्यान नहीं दिया होगा!" "कुछ नहीं कुछ नहीं," कहती हुई वह बारहदरी की ओर बढ़ गयी। इस बीच युवराज वगैरह स्नान करने चले गये थे।

गोंक ने यह बात रेविमय्या को बतायी। रेविमय्या ने बात सुन ली, मगर कुछ बोला नहीं। दोनों ने ही जैसे यह घटना भुला दी।

पहले दिन उत्सव की सारी विधियाँ शास्त्रोक्त रीति से सम्पन्न हुईं। दूसरे दिन दोपहर के समय बलिपुर से सिंगिमय्या आये। चालुक्य चक्रवर्ती के यहाँ से जो पत्र आया था, उन्होंने उसे अपने बहनोई के हाथ में भोजन के बाद दिया। भोजन के उपरान्त एरेयंग प्रभु ने कहा, "कल्याण से चक्रवर्ती जी नहीं आये और न उनकी तरफ से कोई सूचना ही मिली?" यह सुनकर हेग्गड़े मारसिंगय्या बोले, "अभी बलिपुर से हेग्गड़े आये हैं। यह लपेटा हुआ पत्र चक्रवर्ती की ओर से आया है।" कहकर उसे प्रभु के हाथ में देने के लिए आगे बढ़े। उस समय वहाँ इन दोनों के अलावा अकेला रेविमय्या ही उपस्थित था। प्रभु एरेयंग ने कहा, "आप ही पढ़िये हेग्गड़ेजी, सारी विरुदावली आदि को छोड़कर पत्र का मुख्यांश भाव ही पढ़िये।" पत्र का मुख्यांश यों था—

"आपको हमने भाई की तरह माना था। उसी आत्मीयता के कारण हमने अपना विरुद आपको प्रदान किया था। आपका सिंहासनारोहण होना उचित है। फिर भी पहले हमें सूचित करने के बाद यह व्यवस्था होती तो अच्छा लगता। आपने क्यों ऐसा किया यह मालूम नहीं हुआ। आपके सिंहासनारोहण का उत्सव सुखपूर्वक सम्पन्न होवे। एक बात हमें लाचार होकर बतानी पड़ रही है कि हमने आत्मीयता वश बलिपुर प्रान्त आपके मातहत किया था। अब उसे हम अपने बनवासी प्रान्त के अन्तर्गत कर रहे हैं। आप अपने हेग्गड़े को वापस बुलवा सकते हैं। हम आपके सिंहासनारोहण के इस शुभ-अवसर पर उपस्थित नहीं हो सके, इसका हमें खेद है।"

इति,

श्री विक्रमादित्य

प्रभु एरेयंग ने कहा, "पत्र इधर दीजिए, हेग्गड़ेजी। पत्र में हस्ताक्षर और राजमुद्रा असली है या नहीं, क्योंकि चक्रवर्ती को ऐसा लिखने का कोई कारण नहीं।" उन्होंने पत्र लेकर देखा। बहुत देर तक वैसे ही बैठे देखते रहे। हेग्गड़े को कुछ सूझा नहीं कि क्या बोलें। वे मूर्तिवत् खड़े रहे।

कुछ देर बाद पत्र को लौटाते हुए प्रभु ने कहा, "इस बात की अभी किसी से चर्चा मत कीजियेगा। हम चुपचाप इस पर विचार करेंगे। लगता है, इसने

किसी का हस्तक्षेप है। इसे गुप्त ही रखें।"

मारसिंगय्या पत्र हाथ में लिये वैसे ही खड़े रहे।

"अब आप जाइये। बहुत देर तक मेरे साथ एकान्त में रहने पर हो सकता है, लोग कुछ और ही अर्थ लगायें।"—प्रभु एरेयंग ने कहा। हेग्गड़े मारसिंगय्या बाहर निकल आये। जहाँ उनका साला हेग्गड़े सिंगिमय्या प्रतीक्षा कर रहा था। उन्हें भी साथ लेकर मंत्रणालय की ओर चल दिये।

रेविमय्या कमरे में ही रहा। प्रभु ने उससे कहा, "देखो रेविमय्या, अपना मुँह बन्द रखना। कोई अगर पूछे कि चक्रवर्ती क्यों नहीं आये तो कहना—'वहाँ से समाचार मिला है। उनका स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वे आ नहीं सके। उन्होंने आशीर्वाद भेजा है।' हेग्गड़े मारसिंगय्या से भी कह दो, वक्त मिलने पर वे प्रधानजी और महादण्डनायक से यही समाचार कहें।" उसने स्वीकृति सूचक ढँग से सिर हिला तो दिया, मगर अन्दर ही अन्दर बहुत व्यथित हुआ। मन ही मन कहने लगा, "बड़ों के छोटेपन का इससे बढ़कर कौन-सा उदाहरण मिलेगा? बहुत छोटी-सी बात को बढ़ा बनाकर उनके लिए प्राण देनेवाले हमारे प्रभु का यों अपमान करें? हमारे प्रभु की निस्वार्थ सहायता का यही प्रतिदान दिया है? ईश्वर कभी क्षमा नहीं करेंगे। बलिपुर प्रान्त को आज छीन लेंगे तो उससे दस गुना खोने के लिए यह अंकुरारोपण होगा। उन्होंने जिस नीयत का बीज बोया, वह उनके लिए ही काँटा बनेगा इसमें कोई शक नहीं।" यों सोचते-सोचते रेमिवय्या का मन चालुक्य चक्रवर्ती के प्रति गुस्से से भर आया था। समय पाकर रेविमय्या ने मारसिंगय्या को प्रभु की आज्ञा सुना दी। उन्होंने प्रधान जी और दण्डनायक जी को यह ख़बर पहुँचा दी। महाराज को स्वयं प्रभु एरेयंग ने यही ख़बर दी।

उसी रात को महादण्डनायक के घर में बात उठी। सभी आगन्तुकों के आने पर जब चालुक्य चक्रवर्ती और पिरियरसी नहीं आयेंगे तो बात उठे बिना कैसे रहेगी? चामव्वे दण्डनायिका ने अब की बार पिरियरसीजी का मन सेवा-सत्कार द्वारा जीत लेने की सोच रखी थी। स्वाभाविक था कि उनके नहीं आने से अब सबसे ज्यादा वही परेशान थी। सो उसी ने बात शुरु की। महादण्डनायक ने बात बता दी। तुरन्त चामव्वे बोली, 'उन्हें दोरसमुद्र की आबोहवा ठीक नहीं लगी होगी। उस समय भी स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण पिरियरसी जी को बुलवा लिया था। अब की बार भी यही हुआ। इस भगवान् की भी आँखें बन्द हैं।"

"तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं हुई तो भगवान को बुरा-भला क्यों कहती हो? जो होना है, वह तो होगा ही। उनके न आने से यहाँ का कोई काम नहीं रुकेगा। समझीं।" कहकर दण्डनायक ने बात यहीं खत्म कर दी।

इस ख़बर से सबसे अधिक निराशा किसी को हुई तो शान्तला और दासव्वे को। रेमिवय्या से उनके आने के बारे में बराबर पूछते रहने के कारण शान्तला का

निराश होना स्वाभाविक ही था। इस शुभ अवसर पर पिरियरसी के दर्शन होने की महान आशा जब निराशा में बदल गयी तो वह बहुत अनमनी-सी हो गयी। पिरियरसी जी के साथ गालब्बे आयेगी ही। दासब्बे अपनी बहिन गालब्बे से मिलने की आशा लगाये बैठी थी। इस खबर से वह भी निराश हो गयी थी। हेग्गड़ती माचिकब्बे भी यह समाचार सुनकर बहुत परेशानी हुई। उसने सोचा कि पिरियरसी जी ज़रूर आना चाहती होंगी परन्तु चक्रवर्ती के अस्वास्थ्य के कारण नहीं आ पायेंगी। बेचारी बहुत चिंतित होंगी। भगवान् से प्रार्थना है कि हे भगवन्, चक्रवर्ती शीघ्र ही स्वस्थ हो जायें।

पट्टाभिषेक महोत्सव में आये अतिथियों का सिवा इस उत्सव के किसी दूसरी बात पर ध्यान ही नहीं था। इन्द्र की अमरावती की तरह सजी-सजाई राजधानी को देखकर मुग्ध ग्रामीण इस पट्टाभिषेक महोत्सव को और अपने नये महाराज और युवराज को हौदे पर बैठे देखने के लिए बहुत उत्साह से प्रतीक्षा कर रहे थे। घर-घर की मंजिल-मजिल पर पोय्सलों की व्याघ्र पताका को फहरते देखकर वे उमंग भरे उत्साह से पुलकित हो रहे थे। मुनि के आदेश के अनुसार भयंकर व्याघ्र को मार गिरानेवाले महानुभाव वीरसल का था वंश यह। यह पताका उसी का प्रतीक थी। इस झण्डे के नीचे कैसे भी डरपोक निडर हो जाते थे। इन पताकाओं को आसमान में फहरते देखकर सब लोगों में वीरावेश आ गया था। राजधानी भर में उत्साह छलक रहा था।

क्रमानुसार मंत्रपूत पवित्र जलकुम्भ स्थापित किये गये, पंच गुरुओं का सम्मान समारम्भ यथाविधि सम्पन्न हुआ। इन सब कार्यों की समाप्ति पर महानवमी के दिन महाराज ने अपने प्रिय अश्व की पूजा की और उस पर सवार होकर राजमहल के अहाते में स्थित जिन-मन्दिर तथा शिव-मन्दिरों की तीन बार परिक्रमा की। दूसरे दिन आरोहित सिंहासन किरीट, करवाल आदि सब की पूजा करके पंच-कलश लानेवाली पाँचों सुमंगलियों को मंगल द्रव्य समेत वस्त्र आदि देने के बाद भोजन कराया गया।

अश्व की पूजा राजमहल के सामने के अहाते में व्यवस्थित की गयी थी। उसी अहाते में निर्मित शामियाने के एक भाग पर कुछ ऊँचा स्थान बना था जहाँ महाराज विनयादित्य के बैठने के लिए भद्रासन स्थापित था। महाराज अपनी विरुदावलियों के साथ वहाँ उपस्थित हुए। बन्दि-मागधों ने विरुदावलियों की घोषणा की। राजकुमार बिट्टिदेव और उदयादित्य महाराज के दोनों तरफ आकर बैठे। प्रभु एरेयंग युवराज एचलदेवी के साथ राजमहल के अन्दर से आये। उनकी बगल में राजकुमार बल्लाल भी था। सर्वालंकार भूषित उन दम्पतियों को देखकर उपस्थित जन-समुदाय ने हर्षोल्लास किया। दम्पतियों ने झुककर सबको अभिवादन किया। लोगों ने साक्षात् लक्ष्मी-नारायण ही समझकर उन्हें प्रणाम किया।

जन समूह एक साथ कह उठा, "पोय्सल साम्राज्य चिरायु हो ! विनया-दित्य महाराज की जय ! एरेयंग प्रभु की जय ! राजकुमार वल्लालदेव की जय!" यह जय-जयकार दिग्दिगंत तक व्याप गयी। दसों दिशाएँ जय-जयकार से गूंज उठीं।

महाराज विनयादित्य, प्रभु एरेयंग और राजकुमार वल्लाल और युवरानी एचलदेवी ने हाथ जोड़कर सबको प्रणाम किया। प्रजाजन के आनन्दोत्साह ने इनके हृदयांतराल को भर दिया था।

प्रभु एरेयंग ने चारों ओर नज़र दौड़ायी। महाराज से थोड़ी ही दूर पर पाँचों गुरुवर्य और उनसे कुछ ही दूरी पर पाँचों सुमंगलियाँ बैठी थीं। प्रभु ने दोनों तरफ झुककर प्रणाम किया। सामने खड़े अश्वराज को देखा। वह भी बहुत सुन्दर ढंग से सजा हुआ था। इसके अतिरिक्त राजमहल के महाद्वार से लेकर अहाते के सदर फाटक तक एक जैसे सजे सजाये छोड़ों की कतारें आमने-सामने खड़ी थीं और उन पर समवस्त्रधारी सवार गौरव रक्षा (सलामी देने) के लिए तैयार थे। फौजी समुदाय के प्रतीक के रूप में यह व्यवस्था की गयी थी। इस प्रसंग में यह व्यवस्था उत्सव के महत्त्व को बढ़ा रही थी। प्रभु ने फिर से जन समुदाय की ओर नज़र दौड़ायी। एक तरफ स्त्री और दूसरी ओर पुरुष समुदाय का समुद्र-सा फैला हुआ था। अहाते के उत्तर और दक्षिण के द्वारों तक सशस्त्र सैनिक करीने से आमने सामने कतारों में खड़े थे। अश्वपूजा के बाद परिक्रमा के लिए निर्धारित मार्ग की रक्षा के लिए सैनिक पंक्तिबद्ध खड़े हुए थे। श्रीमान् महाराज, गुरु पंचक, सुमंगली पंचक राजमहल से लगे एक तरफ बैठे तो दूसरी तरफ प्रधान जी, मंत्री-गण, दण्डनायक, सामंत राजे, संभ्रान्त महापुरुष एवं गण्यमान्य नागरिक बैठे थे।

पुरोहितों द्वारा अश्वपूजा आरम्भ करने से पहले मंगलतूर्यों का निनाद झंकृत हुआ। यथाविधि अश्वराज की पूजा सम्पन्न हुई। खुद एरेयंग प्रभु ने चमेली के फूलों की माला अश्वराज को पहनायी। उसकी परिक्रमा करके माथा छूकर उसे प्रणाम किया। पीठ सहलाकर उस पर सवार हुए। बहुत दिनों से उस पर नहीं सवार हुए थे, इस कारण से उस अश्व की तन्द्रा भंग हुई, उसमें उत्साह आया। उसने हिनहिनाकर अपनी खुशी व्यक्त की। एरेयंग प्रभु जिन मन्दिर, शिव मन्दिर आदि के दर्शन करके महाद्वार के पास आये। उन्हें महाराज पद प्रदान करने वाले महाराजा विनयादित्य स्वयं हाथों से थामकर गौरव के साथ राजमहल के अन्दर से लाये। उस दिन के कार्यक्रम यथाविधि सम्पन्न हुए। इन सबके पश्चात् एक कार्य शेष रह गया था। वह था, अंतःपुर के देवमन्दिर में जाकर युवराज, युवरानी और वल्लाल का प्रणाम करके आना। पाँचों सुमंगलियाँ पहले ही जाकर मन्दिर-द्वार के दोनों ओर खड़ी हो गयीं थीं। एरेयंग प्रभु ने अन्दर प्रवेश करने के

लिए पैर उठाया ही था कि पौर से टकरा गये। वे गिरने ही वाले थे कि तुरन्त एचलदेवी ने जो उनके बगल में थी और दो सुमंगलियों ने उन्हें थाम लिया। गिरने से बच गये। फिर वे पत्नी-पुत्र के साथ अन्दर जाकर प्रणाम कर बाहर आये। सुमंगलियों ने उनकी आरती उतारी। पश्चात् प्रभु अपने विश्रामगृह की ओर चले गये। उनके पैर से खून टपकने लगा था। देवमन्दिर से विश्रामगृह तक रक्त की लकीर बन गयी थी। किसी का ध्यान उस तरफ नहीं गया था। परन्तु रेविमय्या की नज़र से यह घटना छिपी न रही।

शेष सभी लोग उस दिन के भोज में शामिल होने चले गये। एचलदेवी ने सभी के साथ राजकुमार को भोजन करने भेज दिया। अकेला रेविमय्या आँसू भरी आँखों को टिमटिमाता किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा। गोंक चारुकीर्ति पण्डित को बुलाने चला गया। पण्डित जी आये और आवश्यक चिकित्सा करने के बाद बोले, "प्रभु आराम करें। उन्हें कुछ लघु आहार दें। यदि वे न चाहें तो खाने को जोर न डालें।" फिर बताया, "एक प्रहर बाद मैं आऊँगा।" इतना कहकर बाहर चले गये। एचलदेवी भी उनके साथ बाहर निकल आयीं।"

चारुकीर्ति पण्डित ने सोचा कि शायद कुछ पूछने आयी हैं। उन्होंने कहा, "घबड़ाने का कोई कारण नहीं है, युवरानी जी, आप धीरज रखिये।"

"अच्छा पण्डित जी, यह बात बाहर किसी को मालूम न पड़े।"—एचलदेवी ने बहुत ही संभल कर कहा। परन्तु उनके हृदय की पीड़ा फूटकर बाहर निकल आयी और आँसू भर आये।

पण्डितजी ने उन्हें देखा। कहा, "इतना अधीर होंगी तो कैसे काम चलेगा! आप धीरज धरिये। इस तरह आप प्रभु के सामने आँसू बहायेंगी तो उनकी छाती फट जाएगी। उनके लिए अब आप ही धीरज का सहारा हैं।"

"वही हो पण्डितजी, जिससे मेरा सुहाग बचे। इतना ही चाहती हूँ", इतना कहकर तथा आँसू पोंछकर उन्हें बिदा किया और स्वयं अन्दर चली गयीं। रेविमय्या पत्थर की तरह खड़ा रहा।

युवरानी ने उसे डाँटते हुए कहा, "अरे रेविमय्या! पथराया हुआ-सा खड़ा है?" उसकी आँखें टिमटिमा रही थीं। कोरों में आँसू रुके हुए थे।

एचलदेवी ने कहा, "जाओ, और प्रभु के लिए भोजन ले आओ।"

"हाँ" कहकर वह चला गया।

"एचलदेवी पलंग पर पतिदेव के निकट बैठ गयी। उनका सिर सहलाती हुई बोली, "प्रभु! बहुत खून बहा है। दर्द बहुत हो रहा होगा न?"

"अब उतना दर्द नहीं है। पता नहीं क्यों आँखों में अँधेरा-सा छा गया, देवी। सिर्फ़ दो ही क्षण ऐसा रहा।...मुझे आहार नहीं चाहिए। रेविमय्या को यहाँ रहने के लिए कह दो और तुम जाकर भोजन कर आओ।"

"वह आपके लिए भोजन लाने गया है। मंगलस्नान करके उपवास नहीं रखना चाहिए। जितना भी खाया जा सके खाइये। मैं बाद में ही खाऊँगी।"

"जैसा तुम चाहो। कल तक चलने लायक हो जाऊँ तो ठीक है।"

"सब ठीक हो जाएगा प्रभु, पण्डित जी ने भी यही कहा है।"

"वे कभी कोई दूसरी राय नहीं देते, देवी। ज्योतिषी, वैद्य कभी बुरी बात पहले नहीं कहते।"

"किसी को नहीं कहना चाहिए। ऐसी हालत में ये ही क्यों बुरी बात कहेंगे? अब आप भी बातें न करें, थकान होगी। किसी तरह की चिन्ता-जिज्ञासा किये बिना आराम कीजिए।"

"ऐसा ही होगा।"

वहाँ मौन छा गया। थोड़ी देर में रेविमय्या ने भोजन लाकर आसन पर रख दिया।

"बाहर ही रहो रेविमय्या, किसी को अन्दर मत आने दो।"—एचलदेवी ने कहा। वह यंत्रचालित-सा बाहर चला गया और दरवाज़े को बन्द कर दिया।

प्रभु ने थाली में परोसी भोजन सामग्री को देखा और कहा, "मुझे निमित्त मात्र के लिए दो कौर पर्याप्त हैं। देवी! तुम भी साथ भोजन करो तो कैसा रहे!"

"प्रभु के आनन्द में मैंने बाधा ही कब डाली है?"

भोजन समाप्त हुआ। घण्टी बजायी। रेविमय्या आया। उससे कहा, "इसे ले जाओ और तुम भी खाकर आ जाओ। तब तक गोंका को वहाँ रहने के लिए कह दो। वह दरवाज़े पर रहे।"

रेविमय्या हामी भरते हुए थाली उठाकर, "आपके भोजन के बिना......" कह ही रहा था कि इतने में, "मेरा भोजन हो गया, जो कहा जाय उसे करो, जाओ!" एचलदेवी ने उसे आदेश दिया।

वह चला गया। प्रभु लेटे रहे और एचलदेवी पंखा करती रहीं। प्रभु की ज़रा आँख लग गयी। एचलदेवी ने पंखा नीचे रख दिया। मन-ही-मन भगवान् से अत्यन्त आर्त होकर प्रार्थना करने लगी, "हे अर्हन्! प्रभु का सिंहासनारोहण आपको अच्छा नहीं लगा? एक समय अवश्य था जब कि वे सचमुच ही सिंहासन चाहते थे लेकिन वे अब बिलकुल नहीं चाहते। उन्होंने तो बड़ों की आज्ञा का पालन करने के उद्देश्य से ही स्वीकृति दी थी। हे भगवन्! आज तुम्हारे दरवाज़े पर अपशकुन हुए तो इसका यही अर्थ लगाऊँ कि तुम्हें सिंहासनारोहण प्रिय नहीं लगा। हमें ऐसा ही तो समझना चाहिए न? न उन्हें महाराज बनने की इच्छा है और न मुझे महारानी बनने की। मेरी मात्र यही इच्छा है कि मेरा सुहाग बना रहे। इसे बचाओ, भगवन्।"

खा-पी चुकने के तुरन्त बाद रेविमय्या आया और बोला, "पाँचों सुमंगलियाँ

नहीं सकते थे। रात को ही वैद्य पण्डित गोपनन्दी और चारुकीर्ति—दोनों ने मिल-कर विचार-विनिमय किया। उनसे आश्वस्त होने के बाद ही महोत्सव को तेरस तक स्थगित करने का निर्णय लिया गया था।

राजमहल में रोशनी की जगह जैसे अँधेरा छा गया। बात को गुप्त रखकर भीतर-ही-भीतर चिकित्सा कार्य चलता रहा। परन्तु दुर्भाग्य कि सारे प्रयत्न बेकार गये। एकादशी के दिन धनिष्ठा नक्षत्र के उदय होने के कुछ ही देर बाद प्रभु एरेयंग की आत्मा परलोक सिधार गयी। आनन्द और उल्लास से भरा दोर-समुद्र दुःख का सागर बन गया। पट्टाभिषेक महोत्सव के आनन्द में भागी बनने के लिए जो जनसमूह एकत्र हुआ था उसे इस दुखपूर्ण अन्तिम यात्रा में शामिल होना पड़ा।

किसी को कभी दुःख न देने वाली, सदा सबका हित चाहने वाली एचलदेवी जैसी महासाध्वी की पुकार भी विधाता को सुनाई नहीं दी, उसका सुहाग ही छीन लिया।

महाराज विनयादित्य इस पुत्रशोक के आघात को न सह सके, वे बिस्तर पर आ पड़े।

पुरोहित वर्ग ने आकर बताया, "नक्षत्र अशुभ है, और ऐसे अशुभ नक्षत्र में मृत्यु होने के कारण छह माह के भीतर स्थान छोड़ देने की रीति है। वैसे राजगृह और गुरुगृह के लिए सभी नियम लागू नहीं होते अतः जैसा उचित समझें करें।" महाराज, एचलदेवी और राजकुमार सभी का वहाँ रहने को जी नहीं कर रहा था इसलिए राजहित को स्वीकार कर वे बेलापुरी चले गये।

राजधानी के चारों ओर जो तम्बू लगाये गये थे उन्हें निकाल रखने की भी किसी को याद नहीं रही। जो लोग आये थे वे भी बिना अनुमति लिये चुपचाप लौट गये। हवा, पानी और धूप से वे तम्बू टूट-फटकर मानो बिछोह के दुःख से अधोमुखी हो गये थे।

राज्य की सारी जनता अपार दुःख सागर में डूब गयी। "हाय, यह क्या हो गया! ऐसा नहीं होना चाहिए था।" कहती रह गयी।

राजपरिवार के साथ चिण्णम दण्डनाथ, उनका परिवार और अमात्य मान-बेग्गड़े कुन्दमराय भी बेलापुरी को चल दिये। प्रधान गंगराज भी जाना चाहते थे। उन्होंने स्वयं महाराज से निवेदन भी किया था, पर महाराज ने स्पष्ट कहा:

दिया—"आपको और दण्डनायक मरियाने को राजधानी में ही रहकर यहाँ के समस्त कार्यों का निर्वहण करना होगा। छह महीने हम यहाँ नहीं रहेंगे। सम्भव है, वेलापुरी में हम साल-भर रह जायें। इस साल हमें अनेक धार्मिक कार्य करने होंगे। यगची नदी के पवित्र प्रदेश को हम इन कार्यों के लिए उपयुक्त स्थान मानते हैं। फिर इस आघात से संभलने के लिए भी हमें काफ़ी समय लग जायेगा। यहाँ तो वह सब सम्भव नहीं लगता।" कहते हुए वे चुप हो रहे।

"सन्निधान का स्वास्थ्य भी दिनोंदिन गिरता जा रहा है। इसलिए..."

बीच ही में विनयादित्य बोले, "प्रधानजी, मुझे आप यहीं रोक रखेंगे तो... तो मेरी आयु समय से पहले ही कहीं पूरी न हो जाय। आपकी यदि ऐसी ही इच्छा है तो कहिए, हम वही करेंगे।"

"नहीं प्रभो, जैसा आप सोचें!" कहकर प्रधान गंगराज ने फिर बात आगे नहीं वढ़ायी। इस तरह के अकल्पित आघात को कैसे सह सकेंगे? सच तो यह है कि ख़ुद गंगराज ही इस आघात को नहीं सह सके थे। फिर पुत्र-शोक के इस भारी आघात को भला महाराज कैसे सह सकेंगे! इसलिए इस अवसर पर कोई सलाह न देना ही उन्होंने उचित समझा। वास्तव में उनके अन्तरंग में कुछ और ही वात चुभती रही, पर महाराज से कहने का उन्हें साहस नहीं हुआ। अपनी यह वात वह मरियाने से भी नहीं कह सके।

एरेयंग प्रभु का निधन हुए तीन दिन गुज़र गये, तो हेग्गड़े मारसिंगय्या ने चालुक्य चक्रवर्ती के उस पत्र की वात दण्डनायक को वतायी। इसे हेग्गड़े सिंगिमय्या से भी गुप्त रखने के लिए कह रखा था। सिंगिमय्या से इतना भर कहा, "अव जाकर चालुक्य प्रतिनिधि को वहाँ का अधिकार सौंपकर, अपने परिवार और निर्वाहक वर्ग से कुछ न कह सब को साथ लेकर यहाँ आ जाओ।" यह प्रधान जी की आज्ञा थी जिसे हेग्गड़े ने सुनाया। उसे वात तो मालूम ही थी अतः इसे गुप्त ही रखने के ख्याल से किसी से कहे विना ही वह चल पड़ा। तात्कालिक रूप से किसी तरह की ग़लत-फ़हमी न हो, इसलिए तभी-का-तभी यह निर्णय कर लिया गया था।

सम्पूर्ण राजधानी शोकमग्न थी, ऐसी हालत में यहाँ रहकर इसमें भागी न वनकर अचानक ही अपने मामा के चले जाने से शान्तला वहुत चकित हुई। वह अपने मन में यह वात छुपा कर नहीं रख सकी। उसने मामा के चले जाने के औचित्य पर पिताजी से सवाल किया।

"राजनैतिक परिस्थिति कुछ ही ऐसी है, अम्माजी। उसे अव जाना ही चाहिए था। मुझे यह मालूम है, परन्तु इस सम्वन्ध में अभी किसी को कुछ नहीं पूछना चाहिए। फिलहाल मैं नहीं वताऊँगा। वता भी नहीं सकता।" पिता के कहने पर वह चुप तो हो रही लेकिन उसके दिमाग़ में भीतर-ही-भीतर यह राज़-

नैतिक समस्या कहीं और अधिक प्रबल बनकर घुमड़ती रही।

राजपरिवार के सभी लोगों को दोरसमुद्र छोड़कर जाने के पश्चात् समय के बीतने के साथ-साथ राजधानी प्रकृतिस्थ होने लगी। प्रभु एरेयंग ने जहाँ पार्थिव शरीर छोड़ा था उस प्रकोष्ठ को बन्द कर दिया गया। राजमहल के शेष भागों में निरन्तर ज्योति जलती रहे ऐसी व्यवस्था की गयी थी। वह ज्योति की ज्वाला ही तो थी वहाँ, वह प्रखर ज्वाला अब वहाँ कहाँ थी? हाँ, वहाँ के आसन आदि, फ़र्श और दीवार रोज की भाँति नौकर-चाकर साफ़ करते, रोज की भाँति वे सब साफ़-सुथरे रखे जाते। ख़ुद प्रधानजी दिन में कम-से-कम एक बार आकर मुआइना भी कर जाते।

एक दिन दण्डनायिका ने अपने भाई प्रधान गंगराज के यहाँ जाकर कहा, "भैया, आपको ही क्यों राजमहल में जाना पड़ता है? किसी दूसरे को क्यों नहीं भेज दिया करते? बुरे नक्षत्र के कारण जब वह स्थान खाली कर दिया गया तो फिर आप का भी वहाँ जाना ठीक नहीं जँचता। कुछ का कुछ हो जाय तो···"

"चामू, यह शरीर पोय्सल राजवंश की निधि है। उसके लिए कार्यनिर्वहण करते हुए प्राण विसर्जन करना पुण्य की बात है, ऐसा मैं मानता हूँ। कितना पवित्र था प्रभु का हृदय! उनके जब प्राण पखेरू उड़े तो आकाश में भले ही कोई बुरा नक्षत्र रहा हो लेकिन उनकी आत्मा···वह कभी किसी का अहित नहीं चाहेगी। जब वे जीवित रहे तब किसी ने यदि उनकी बुराई की हो तो ऐसे लोग ही वहाँ प्रवेश करने से डरेंगे। मुझ जैसे को भला किस बात का भय? अब आगे कभी बुरे नक्षत्र की बात तुम्हारे मुँह से निकले तो मेरे और तुम्हारे बीच का सम्बन्ध ही टूट जाएगा, समझी! जब जो मुँह आया सो बक देती हो।" प्रधान गंगराज ने साफ़-साफ़ जता दिया।

"भैया, क्या मैं नहीं समझती कि तुम्हें असह्नीय दुःख है! ऐसे समय कोई कुछ तुमसे कहे तो तुम्हें गुस्सा आना सहज है। पर मैंने ऐसी कौन सी ग़लत बात कही? दुनिया जिसे स्वीकार कर चलती है वही बात तो, भैया, मैंने तुमसे कही, वह भी तुमसे ममत्व···तुमसे प्रेम-स्नेह के कारण।" दण्डनायिका ने मरहम लगानी चाही।

"छेड़ो मत! मुझे मालूम है तुम्हारा प्रेम-स्नेह। तुम्हें वास्तव में राजपरिवार के प्रति ममत्व होता और यदि तुम युवराज का हित और कुशल चाहने वाली होती तो तुम अपने अमंगलकारी पैर के रखत से राजमहल के पवित्र देवालय को अपवित्र नहीं करती। वही सब प्रभु की मृत्यु का कारण बना कहूँ तो तुम्हें कैसा लगेगा? हट जाओ, मुझसे बात मत करो! इस समय मैं अपने वश में नहीं हूँ। मेरा मन बहुत उद्वेलित है।" कहकर उसके जाने की प्रतीक्षा किये बिना ही

प्रधानजी वहाँ से चले गये।

भाई के मुँह से ये बातें सुनकर दण्डनायिका चामब्बे काँप उठी। वह मन ही मन कह रही थी : मैं···युवराज की मृत्यु का कारण, मैं ? नहीं, नहीं। मैं अपनी बेटी को उनकी बहू बनाकर उन्हें सौंपना चाहती थी। क्या मुझे ऐसा करना चाहिए था ? हे भगवान, यह सब कैसे सहन होगा ! हे भगवान···"सिर झुकाए ही वहाँ से निकलकर वह जल्दी-जल्दी अपने घर चली आयी।

अपने और अपने भाई के बीच की सारी वार्ता उसने अपने पतिदेव को सुनायी। शायद उनसे कुछ सहानुभूति मिले। पर, वह भी ग़ुस्से से लाल होकर उस पर पिल पड़े। बोले, "इतना होने के बाद भी तुम्हें अक़्ल नहीं आयी। अपनी हस्ती हैसियत के योग्य बरतने के लिए बार-बार कहने के बावजूद भी तुमने कुछ नहीं सीखा। ऐसी बातों में, जिनसे तुम्हें कोई मतलब नहीं, हस्तक्षेप क्यों करने गयी ? जो चोट तुम्हें लगी वह काफ़ी नहीं है ? चाहे जो भी हो तुमको अक़्ल नहीं आने की। तुम्हारे कारण कई बार हमें शर्मिन्दा होकर सिर झुकाना पड़ा है। तुम्हारे भाई ने जो कहा कि तुमने देव मन्दिर को अपवित्र किया क्या वह सही नहीं है ?" दण्डनायक कुछ कड़ककर बोले।

"परिस्थिति को न समझकर सब लोग अगर मुझपर इस तरह टूट पड़ें तो मैं क्या करूँ ? सच है, आरती के जल को फेंकने गयी और टकरा गयी। युवराज भी तो टकराये। मेरा टक्कर खाना अपवित्र और अमंगल हुआ और उनका टकराना···अमंगल नहीं ?" बात तो कुछ कड़वी थी, मगर आँखें भर आयीं।

"कहाँ से कहाँ छलाँग मारी ! पहले तुम टकरायी यह शुभ कार्य के आरम्भ में अपशकुन नहीं तो और क्या है ? मैं पहले से ही कहता रहा कि किसी तरह के पचड़े में मत पड़ो। परन्तु तुमने मेरी बात नहीं मानी। पांच सुमंगलियों में एक तुम्हारा बनना क्या ज़रूरी था ? पाँच में एक बन गयी तो कौन-सा महान कार्य कर लिया ? न बनती तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ता ? युवराज कुमारी को छोड़कर अपना नाम सुझाने क्यों गयीं ? इसके लिए मौक़ा ही क्यों दिया ?"

"उस हेग्गड़ती को तो पाँच सुमंगलियों में बना लिया, फिर मैं यदि वंचित रह जाती तो मेरा कितना अपमान होता ?"

"अब तुम्हें बहुत सम्मान मिल गया न ? पवित्र-अपवित्र के ज्ञान से शून्य तुम निरी एक मूर्ख स्त्री हो, महास्वार्थी। तुम्हारा यह स्वार्थ ही तुम्हारी बेटियों की प्रगति में सबसे बड़ा काँटा है। अब कौन-सा मुँह लेकर अपनी कन्या की बात कहने युवरानीजी के पास जाओगी ? सारा सत्यानाश हो गया। खून बहते उस भी पैर को ढोती तुम देवमन्दिर में गयी थीं, इसे युवरानी जी के अन्तःपुर का नौकर गोंक ने और रेविमय्या ने भी देखा है। क्या तुम समझती हो कि यह समाचार युवरानीजी को मालूम नहीं ? उस हालत में देवमन्दिर में गयी ही क्यों ?"

मुझे अपनी सौगन्ध, मुझे यह पता नहीं लगा कि मेरे पैर से रक्त बह रहा है। बल्कि मैं तो इस बात से चिंतित थी कि आरती का जल छलक गया। आरती की थाली रखने के लिए दूसरी जगह नहीं दिखी, इसलिए उस देवमन्दिर में रखकर साड़ी बदलने दूसरे कमरे में चली गयी थी। वहाँ पता चला कि मेरे पैर से ख़ून बह रहा है। पहले से यदि मालूम हुआ होता तो शायद मैं ऐसा नहीं करती। अनजाने में जो कुछ गलती हो गयी उसके लिए क्षमा नहीं किया जाता ?"

"क्षमा···तुम्हें वह कई बार मिल चुकी है। तुम अब उसके लायक नहीं हो। तुम्हारे इस दुरभिमान को नष्ट करना ही होगा, और कोई चारा नहीं। यह बात कहाँ से कहाँ पहुँचेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। ध्यान रखो, आइन्दा अब तुम्हारी बात सुनकर कोई काम नहीं करूँगा।"

"ठीक है, मुझसे बात न कीजिए, मेरी बात न मानिए। मेरी बेटियों के लिए भी कुछ न करेंगे ?"

"वह सब भगवान की इच्छा। मैं ख़ुद इसमें आगे नहीं आऊँगा, इसे अच्छी तरह समझ लो। तुमसे चर्चा करना ही समय का दुरुपयोग है। एकदम फ़िज़ूल। मुझे और भी काम हैं।" कहते हुए कपड़ा पहनकर दण्डनायक बाहर निकल गये।

"मालिक के ही हाथ का सहारा नहीं तो आगे क्या ? हे भगवान···!" वह विकल हो उठी। एकाएक उसे लगा जैसे सब-के-सब उसके विरोधी बन बैठे हैं। "आख़िर इसके पीछे कोई कारण भी होगा ! मेरे विरुद्ध ज़रूर कोई भड़का रहा है। इस सबका मूल दोरसमुद्र के उत्तर-पूर्व के कोने में है। युवरानी और अन्य लोगों को बेलापुरी जाने की इन्हीं लोगों ने अपना स्वार्थ साधने के लिए तजवीज कर रखी है। बुरा नक्षत्र तो एक बहाना भर है। कितने लोग बुरे नक्षत्र में नहीं मरते ! सब गाँव छोड़ कर जाते हैं ? अरे, जिस स्थान पर मरे उस स्थान को बन्द कर दें, उससे बाक़ी घर का सम्पर्क न हो, ऐसी व्यवस्था करते हैं। या फिर तात्कालिक रूप से पास ही किसी दूसरे घर में रहेंगे, गाँव-शहर ही को छोड़कर नहीं जाएँगे। जब महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं है तब यह परदेश गमन क्यों ? भैया ने कहा भी था, माने ही नहीं। न मानें तो जाने दें, ख़ुद साथ चलने के लिए तैयार होने को कहा तो महाराज ने मना कर दिया। मेरे स्वामी को तो वहाँ जाना ही मना है। भाई और मेरे स्वामी दोरसमुद्र के लिए बँधे हैं। बाक़ी लोग उनके पास रहकर जब चाहें तब अपना स्वार्थ साधने के लिए तजवीज कर ले सकते हैं। इसके लिए भी सोचकर अब तक युक्ति निकाल ली होगी। अभी साथ जायेंगे तो लोग ग़लत समझेंगे, इसलिए यहीं रहने की व्यवस्था कर ली है। महीने दो महीने में बेलापुरी जायेंगे ही, स्थान परिवर्तन के बहाने से। तब मेरी बेटियों की भावी स्थिति की इतिश्री हो ही जाएगी। तब मेरी आशा आकाश कुसुम बनकर रह जायेगी। जब तक मैं जीती हूँ तब तक ऐसा नहीं होने दूँगी।

चाहे कोई भी मेरा विरोध करे, मैं अपने अरमान पूरे करके ही रहूँगी।"

इस तरह सोचते-सोचते उसने तय कर लिया कि वह उनसे ज़रूर बदला लेगी जो उसके खिलाफ़ राजपरिवार को भड़का रहे हैं।

वेलापुरी में एक तरह से शान्ति से दिन गुज़रे। कोई कार्य रुका नहीं परन्तु कहीं कोई विशेष उत्साह नहीं दिख रहा था। चारुकीर्ति पण्डित की चिकित्सा से महाराज का स्वास्थ्य सुधर रहा था। राजकुमारों का पाठ-प्रवचन यथावत् चलने लगा था। महाराज के अनुभव का भी उन्हें लाभ मिलने लगा। अपने पुत्र के गुणों की चर्चा के प्रसंग में कभी-कभी वे विह्वल हो उठते थे। अपने पौत्रों से कहने लगे, "तुम्हें अपने पिता से भी अधिक शूर-वीर और गणवान बनना है। और बोले, "तुम लोगों को दशरथ के पुत्रों की तरह जीना चाहिए। अप्पाजी, तुम पर बहुत शीघ्र ही सारी जिम्मेदारी आनेवाली है। हम इस बात को अपनी आयु और स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर बता रहे हैं। तुम्हारे पिता एक समय तुम्हारे विषय में बहुत चिन्तित थे। परन्तु इधर कुछ समय से तुममें हमारे इस वंश के अनुकूल गुणों के विकास को देख वे गर्व करने लगे थे। जो अधिकारी होते हैं उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार आदेश में रखने की कुशलता शासक में स्वयं आ जाती है। अभी चढ़ता यौवन है तुम्हारा और खून गरम है। तुम्हें उकसाकर, लालच दिखाकर, लोग अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं। तुम्हारे पिता एक नियम का पालन किया करते थे। कोई मुँह पर प्रशंसा करता तो वे उसका कभी विश्वास नहीं करते थे। उसे यह बात महसूस नहीं होने देते थे जिससे किसी तरह की अनबन न पैदा हो। अगर उन्हें किसी पर विश्वास रखकर चलना भी होता तो उसकी पहले अच्छी तरह से परीक्षा कर लेते थे। यह तुम्हें मालूम ही है कि उनका किन-किन पर पूर्ण विश्वास था। यदि नहीं जानते हो तो मैं बता दूंगा। वे हर बात हमें बता दिया करते थे। किसी भी बात को वे हमसे नहीं छिपाते थे। आम तौर पर पहले बताते और स्वीकृति लेते थे। कभी-कभी हमसे विचार करने का यदि समय न मिलता और तत्काल कोई निर्णय लेना होता या कार्य करना ही होता था तो अवकाश मिलते ही आकर हमें बता दिया करते थे। हमने उन्हें सब तरह से आज़ादी दे रखी थी। फिर भी उन्होंने उस आज़ादी का दुरुपयोग नहीं किया। जहाँ तक मुझे याद है, उन्होंने कभी कोई ऐसा काम नहीं किया जो हमें अप्रिय लगा हो। हमने तुम्हारे उपनयन के अवसर पर उनके पट्टाभिषेक की बात सोची था

लेकिन वह राजा नहीं बने। वे संकोच प्रकट करते तो भी मना लिया जा सकता था, परन्तु उस समय कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं कि उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया। इस बार हमें सन्तुष्ट करने के विचार से स्वीकार किया था लेकिन इस बार भगवान की ही इच्छा नहीं थी। जीना-मरना हमारे हाथ की बात नहीं। हमें अपनी आँखों के सामने उनका निधन देखकर शोक संतप्त होना लिखा था, सो हुआ। यह हमारे पूर्व संचित किन्हीं पापों का फल है। हम विनाश या मृत्यु से डरनेवाले नहीं, किसी तरह सह लेते हैं यह सब। परन्तु तुम्हारी माँ महासाध्वी एचलदेवी को इस दुःख का सहना कितना कष्ट कर है इसे हम समझते हैं। सीता सावित्री जैसी साध्वी, परम पवित्र सौम्यमूर्ति है वह। हमारे लिए बहू-बेटी दोनों वही है। अपनी उस माँ को कभी दुःख न पहुँचाना। वह दूसरों को सुखी बनाने के लिए ख़ुद मौन रहकर दुःख सहन करती रहने वाली देवी है। उसकी इच्छा के अनुसार चलना तुम लोगों का कर्त्तव्य है। छोटे अप्पाजी, उदय, यह बात मैं तुम से भी कह रहा हूँ। ऐसी महिमामयी माता को सुखी बनाकर रखना तुम सबका धर्म है। दोनों भाइयों को परस्पर पूरक बनकर एक-दूसरे को सहयोग देते हुए, किसी तरह की अनबन के बिना आपस में मिलजुलकर रहना चाहिए। छोटे अप्पा जी, मैं नाममात्र के लिए महाराज था, सार कार्य तुम्हारे पिताजी ही निभाते रहे। सुनो, तुम्हारे पिता का जो सद्व्यवहार रहा वैसी ही अपेक्षा तुमसे की जाती है। अब तुम्हें अप्पाजी के इस गुरुतर राज्य-निर्वहण के कार्य में दायाँ हाथ बन कर कार्यरत होना होगा। उदय अभी छोटा है। वह जब तक बड़ा न हो जाय तब तक एक तरह का यह अतिरिक्त उत्तरदायित्व भी तुम पर है। जब उदय लायक बन जाय तो दोनों जिम्मेदारी को आपस में बाँटकर बड़े अप्पाजी के काम में हाथ बँटाना। तुम दोनों को कुन्ती-पुत्रों की तरह एक बनकर रहना होगा। इसका आश्वासन हमें देंगे? तुम्हारे पिता अपने अन्तिम समय में कुछ तो कह नहीं पाये। उन्हीं को कहाँ मालूम था कि वह उनका अन्तिम समय है। इसलिए हम भी अन्तिम समय तक की प्रतीक्षा न करके जो कुछ कहना चाहते हैं उसे जल्दी ही कह देना चाहेंगे। हाँ, सब कुछ एक ही बार नहीं कहा जा सकेगा। जब-जब सूझेगा तब तुम्हें बताता चलूँगा। ठीक है न!"

बालक मौन रहे। उनके मनःपटल पर पट्टाभिषेक महोत्सव की सारी घटनाएँ एक साथ घूम गयीं। आँखें भर आयीं। उमड़ते हुए दुःख को रोकने के उनके सारे प्रयत्न बेकार हो गये। महाराज विनयादित्य की दृष्टि उनपर ही थी। बोले, "रोको मत, उन्हें बहने दो। अन्दर के दुःख-भार के हलका होने का यही तो एक मार्ग है। अच्छा हो, सारे आँसू वेलापुरी में ही बह जाँय और इस यगची की धारा में मिल जाँय, इन्हें दोरसमुद्र ढोकर न ले जाना पड़े। वहाँ जाने का समय भी तो अब निकट आता जा रहा है। यहाँ आये छह महीने बीतने को हुए। प्रधान-

जी से बुलावा भी आया है। राजधानी के लोग अब और प्रतीक्षा नहीं करना चाहते। हमें अब वापस जाने के बारे में सोचना होगा।"

"पता नहीं, माँ की क्या राय है?" राजकुमार बल्लाल ने कहा।

"जब वहाँ रहने में हमें असहनीय दुःख होता हैं, तो उन्हें कितना दुःख हो सकता है, इसकी कल्पना कर सकते हैं। फिर भी उन्हें व्यावहारिक दृष्टि से सीधा ले जाना ही उचित है, इसलिए उन्हें ढाढस देकर समझा-बुझाकर ले जाना ही होगा।"

"माँ से यह बात कहें भी कैसे? मेरे लिए तो बहुत मुश्किल है।" बल्लाल विह्वल हो उठा।

"हम स्वयं कहेंगे। हम उसके पास चलते हैं, अभी ही बात करनी होगी। आज शाम तक हमें अपने निर्णय की सूचना राजधानी भेज देनी है।"

"उदय! तुम जाकर माँ को बता दो कि महासन्निधान आ रहे हैं। हम अभी थोड़ी देर में पहुँच जायेंगे।" बल्लाल ने छोटे भैया से कहा। वह आज्ञा शिरोधार्य कर तत्काल चला गया।

महासन्निधान के आगमन की सूचना पाते ही युवरानी एचलदेवी सम्मानपूर्वक प्रतीक्षा करने लगी। कुछ ही देर में गोंका ने आकर निवेदन किया कि महासन्निधान पधार रहे हैं। युवरानी उठकर अन्तःपुर के द्वार तक चली आयीं। महाराज विनयादित्य, राजकुमार बल्लाल और बिट्टिदेव के साथ वहाँ आ पहुँचे तो एचलदेवी ने महाराज के पैर छुए और आँखों से लगाया। और फिर किसी औपचारिकता के बिना महाराज के बैठते ही सब बैठ गये।

महाराज ने बात आरम्भ की, "इस समय हम पेचीदा राजनैतिक प्रस्ताव लेकर आये हैं। पेचीदा तो है पर कहे बिना काम नहीं चलेगा। युवराज जब कभी मानसिक तनाव का अनुभव करते थे तो स्वस्थ होने के लिए बेलापुरी आया करते थे। तब युवरानी भी साथ होती थीं। यह सब मालूम ही है। इस बार भी एक बड़ी व्यथा हलकी करने के लिए यहाँ आये थे। नक्षत्र-दोष की बात पुरोहितों ने कही वह कोई जबरदस्त कारण नहीं था। हम अगर चाहते तो लोकरूढ़ि के अनुसार कुछ व्यवस्था करके दोरसमुद्र में ही रहा जा सकता था। परन्तु वहाँ रहने से हर क्षण युवराज का स्मरण आता रहता। होना कुछ था, हुआ कुछ और ही, उस दुर्घटना की याद क्षण-क्षण मानसिक व्यथा उत्पन्न करती रहती। इसलिए हमने घटना स्थल से दूर रहने की सोची थी। हमारा विचार था कि इससे भीतर का दर्द कुछ कम होगा, इस दुरंत को कुछ हद तक भूलने में मदद मिलेगी। वास्तव में प्रधानजी और दण्डनायकजी इस स्थानान्तर को पसन्द नहीं करते थे। मेरे स्वास्थ्य के अच्छा न होने का बहाना करके भी हमें रोकना चाहते थे। मगर हमें मन-ही-मन यहाँ की राजनैतिक स्थिति, उस समय कुछ कलुषित हुई-सी लग रही थी। इसे

निर्मल होने देना आवश्यक था। शायद हमारी गैर-हाज़िरी इसमें सहायक हो सकेगी—यह सोचकर ही हम यहाँ चले आये। अब स्थिति कुछ सुधरती प्रतीत होती है। यह तो सर्वविदित है कि एक-न-एक दिन मृत्यु आती है परन्तु उस मृत्यु का यों अचानक आ जाना हमें आघात पहुँचाता है, हम शोकाकुल हो उठते हैं। यह शोक भी अनिवार्य है। अब वह कुछ कुछ शान्त होने को है; ऐसी हालत में उसे फिर से दोरसमुद्र तक साथ ले जायँ तो यह डर है कि उसका पुनरावर्तन हो जाय। ऐसा होना सहज ही है। लेकिन अब प्रधानजी ने निवेदन भेजा है कि उचित समय आ गया है, सब लौटें और राजमहल को फिर से शोभा प्रदान करें।" फिर एक क्षण मौन रहकर बोले, "हमारे सामने अब अनेक कठिन समस्याएँ हैं। युवराज जिन कार्यों का निर्वहण करते थे, उनसे भी कहीं अधिक उत्तरदायित्वों का निर्वहण अब इन्हें करना होगा। राज्य को कहीं अधिक सुदृढ़ और विस्तृत करना होगा और इसके लिए राजकुमारों का राजधानी में रहना अत्यन्त आवश्यक है। व्यावहारिक दृष्टि से यही उचित है। इनके भावी श्रेय का विकास भी इसी बात पर निर्भर है। ऐसी स्थिति में युवरानी को अपना दुःख सहकर भी कुमारों के हित को ध्यान में रखकर राजधानी में जाकर रहना ही अच्छा है। हम जानते हैं यह आसान नहीं, फिर भी कहना पड़ रहा है। हमारी युवरानी में औचित्यज्ञान किस स्तर का है, इसे युवराज ने हमसे अनेक बार कहा और प्रशंसा भी की है। इसीलिए हमने स्वयं आकर सारी वस्तुस्थिति स्पष्ट कर दी है, वैसे हम किसी भी बात पर ज़ोर नहीं डालेंगे।" विनयादित्य ने बड़े स्नेह भरे शब्दों में अपनी मनःस्थिति युवरानी के सामने रख दी।

"मृत्युशय्या पर पड़े हुए उन्होंने मुझसे एक बात कही थी। मैंने वचन दिया है कि उसका पालन करूँगी। अतः राजकुमारों का हित मुझे ही सबसे मुख्य है। उसके लिए सब कुछ त्याग करने के तैयार हूँ। उनके विछोह के इस वज्र-आघात को भी सह लूँगी। सब तरह के कष्ट झेलकर जीना ही नारी की शक्ति की सच्ची परीक्षा है। सन्निधान की आज्ञा शिरोधार्य है। अपने स्वामी से मैंने अनुसरण करना ही सीखा है। मुझे उन्होंने एक बात और बतायी थी—सन्निधान को बताने के लिए अब तक मौक़ा नहीं मिला। अब बता देना मेरा कर्तव्य है। वह भी मृत्यु-समय ही उन्होंने कहा था, 'देखो देवी, सन्निधान तुम्हारे विषय में सदा एक बात कहते रहते हैं—हमारे लिए युवरानी बहू ही नहीं, बेटी भी है। अब इसके साथ तुम्हें उनका पुत्र भी बनना होगा। पूर्ण रूप से सजग रहकर तुम्हें उनको संभालते रहना होगा, वृद्ध जो ठहरे।'—उनकी इस आज्ञा का पालन करके उनकी आत्मा को शान्ति पहुँचाना मेरा परम कर्तव्य है। प्राणपण से उनकी इस आज्ञा का पालन करूँगी।"

"ठीक है। मैं प्रधानजी के पास पत्र भेज दूँगा। किस मुहूर्त में यहाँ से रवाना

होना है और किस मुहूर्त में वहाँ पहुँचना है यह बात कर वहाँ ख़बर भेजने का आदेश दूँगा।" कहकर विनयादित्य उठ खड़े हुए। युवरानी और राजकुमार उनके पीछे द्वार तक आये। महाराज ने अपने विश्रामागार में जाकर दोरसमुद्र के लिए पत्र भेज दिया।

राजघराने के ज्योतिषियों की सूचना लेकर स्वयं प्रधान गंगराज ही वेलापुरी जा पहुँचे। मुहूर्त के अनुसार राज-परिवार ने दोरसमुद्र के लिए प्रस्थान किया। चिण्णम दण्डनाथ को वेलापुरी में ही रहना पड़ा। अपनी राजपरम्परा के अनुसार सबने बिना किसी संभ्रम के राजमहल में प्रवेश किया।

प्रभु ने जहाँ देहत्याग किया था वहाँ यथाविधि पूजन-हवन सम्पन्न किया गया। और वह कोष्ठ खोल दिया गया।

दोरसमुद्र पहुँचे करीब-करीब एक पखवारा बीत गया मगर हेग्गड़े मारसिंगय्या का कहीं कोई पता नहीं था! यह युवरानी को कुछ बुरा लगा। सीधे बड़े बेटे से पूछने में हिचकिचाहट थी। किसी को मिलने-जुलने के लिए मौक़ा ही उन्होंने नहीं दिया, वह उन्हें स्वीकार्य नहीं था। दण्डनायिका ने भी दर्शन करने की कोशिश की, पर सफल नहीं हुई। प्रभु ने हेग्गड़े को स्वयं इसलिए बुलवाया था कि केवल राजमहल की आन्तरिक व्यवस्था के कामों में मदद करेंगे, राजमहल के कार्यकर्ता की हैसियत से। अब आश्चर्य तो यह है कि उनका कहीं पता ही नहीं! वास्तव में युवरानी की यह भावना थी कि जब वह आयेंगी तब वे उपस्थित रहेंगे। बीच में एक बार प्रधान गंगराज जब आये थे तो उनसे पूछना भी चाहा था। पता नहीं क्यों चुप रह गयीं। शायद हेग्गड़े के प्रति विशेष आत्मीयता का का प्रकाशन उचित न समझकर ऐसा किया होगा। महादण्डनायक ने उन्हें दोरसमुद्र में नहीं रहने दिया होगा, यह भी उनके मन में आया। सचाई का पता लगाने के लिए उन्होंने रेविमय्या को आदेश दिया।

रेविमय्या ने आकर बताया, "महाराज और राजपरिवार के लोगों के वेलापुरी जाने के बाद, हेग्गड़े जी को दोरसमुद्र में विशेष कार्य नहीं रह गया था। उन्हें बलिपुर वापस भेजने की भी सुविधा नहीं दिखी, इसलिए वेलुगोल के रास्ते पर वहाँ से डेढ़-दो कोस इधर ही के एक ग्राम के हेग्गड़े बनाकर भेज दिये गये हैं। उन्हें वहाँ गये तीन महीने से ज्यादा हो गया है।"

"और सिगिमय्या?" एचलदेवी ने पूछा।

"बलिपुर से आते ही उन्हें, सुना है, यादवपुरी भेज दिया गया था।"

"ठीक है, जाओ अपना काम देखो।" एचलदेवी ने कहा। वह चला गया।

"राजनैतिक शृंखला में लगी कड़ियों को एक जगह से निकाल कर दूसरी जगह बिठाया जा सकता है। यह महाण्डनायक से सम्बद्ध विषय है। अन्तःपुर के लोगों को इन बातों में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं ऐसा एचलदेवी समझती थीं। फिर प्रभु ने स्वतः अपने कार्य के लिए जिन्हें यहाँ बुलवाया उन्हें राजगृह की सलाह लिये बिना कहीं अन्यत्र भेजने के लिए कोई कारण होना चाहिए। पता लगाना होगा कि कारण क्या है।" ऐचलदेवी ने विचार किया। वे सोचने लगीं कि बेटे से विचार-विनियम करें या महाराज से? आखिर निर्णय किया कि इस विषय पर महाराज से ही चर्चा करना ठीक है। महाराज से मिलने के लिए सूचना भिजवा दी गयी।

जिस दासी के द्वारा समाचार भेजा था उसी के साथ महाराज स्वयं ही आ पहुंचे और, "क्या कोई ज़रूरी काम था?" पूछते हुए बैठ गये। इसी बीच एचलदेवी उठकर खड़ी हो गयी थीं। उन्होंने आगे बढ़कर उनके पैर छुए, प्रणाम किया और कुछ दूर पर जा बैठीं। बोलीं, "प्रभु ने हेग्गड़े मारसिंगय्या जी को यहाँ राजमहल के कार्य पर नियुक्त कर बलिपुर से बुलवाया था।" इतना निवेदन कर मौन हो गयीं।

"हाँ, यह हमें मालूम है। युवराज ने हमसे विचार-विनमय करने के बाद ही यह निर्णय लिया था। युवराज को हमने सब अधिकार सौंप दिये थे। फिर भी वे कभी कोई काम हमसे कहे बिना या हमारी राय लिये बिना नहीं करते थे। कभी उन्होंने उस अधिकार स्वातन्त्र्य का दुरुपयोग नहीं किया। अच्छा, इस बात को अब यहीं रहने दें। यह बतायें कि अब हेग्गड़े का क्या हुआ?" महाराज ने पूछा।

"उन्हें एक ग्राम भेजा गया है तीन मास पहले ही, यह सुनने में आया।"

"ऐसा क्यों? हमें कुछ मालूम ही नहीं! हम से मिलने के लिए जब भी प्रधान जी आये, उन्होंने इस बात का जिक्र तक नहीं किया! अच्छा, हम इस सम्बन्ध में दर्याफ़्त करेंगे। उन्हें यहाँ बुलवाने का आदेश हम आज ही दे रहे हैं।"

"न, न, महाराज को भी नहीं बताया है तो, इसमें किसी का कोई उद्देश्य ज़रूर होगा। पहले वह उद्देश्य क्या है—इसे ठीक-ठीक जानने का प्रयास करें उसके बाद ही इस सम्बन्ध में आगे कोई विचार किया जाय—ऐसा मुझे लगता है। हमारे यहाँ के किसी अधिकारी को उनका यहाँ रहना रास न आया हो फिर भी हम बुला लें, तो उन्हें अप्रिय और अनावश्यक संघर्ष का शिकार बनना पड़ेगा। ऐसी स्थिति आखिर क्यों पैदा की जाय?"

"हमारी युवरानी जी को किसी भी अधिकारी से डरने की ज़रूरत नहीं, चाहे

वह बड़े-से-बड़े पद पर क्यों न हों। आज युवरानी हैं कल वह राजमाता होंगी। युवरानी की बात को न माननेवाले अधिकारी को हमारे राज्य में कोई स्थान नहीं।"

"सन्निधान का स्वास्थ्य इस योग्य नहीं कि जब जहाँ चाहें वहाँ चल-फिर सकें। पहले जैसा स्वास्थ्य रहा होता तो किसी भी तरह का निर्णय कर सकते थे। अप्पाजी की उम्र इस लायक होने पर भी अभी अनुभव की कमी है। उसे राज्य-संचालन-सूत्र जब तक पूरी तरह हस्तगत न हो जाये तब तक किसी को भी छेड़ना शायद ठीक नहीं होगा, मेरी अल्पमति में कुछ ऐसा ही आता है। प्रभु के जीवित रहते हुए भी, उनकी शारीरिक-शक्ति का ह्रास हुआ जानकर, उन्हीं से उपकृत होकर उनसे ही प्राण-रक्षा प्राप्त करनेवाले खुद चालुक्य चक्रवर्ती ही जब क्रूर बन सकते हैं तो सावधानी से काम लेना होगा। इसी भावना से यह निवेदन कर रही हूँ। फिलहाल हमें ऐसा आचरण करना होगा कि इस स्थान-परिवर्तन से हमें कुछ फायदा नहीं हुआ है। अगर किसी दुरुद्देश्य से किसी ने वह सब किया होगा तो हमारे इस तरह के आचरण से उसे बल मिलेगा और वह और भी किसी कुतन्त्र में प्रवृत्त होगा। सावधान रहकर तब हम उसे पकड़ सकते हैं—यही ठीक होगा। सारी बात तब बड़े-छोटे दोनों अप्पाजी को भी मालूम पड़ जायेगी। तब अधिकार-सूत्र अपने हाथ में लेने के लिए वे प्रयत्नशील होंगे, और तब तक उन्हें पर्याप्त समय भी मिल जायेगा। एक बार राज्य संचालन की पूरी योग्यता उनमें आ जाय तभी स्वतन्त्र रूप से कुछ करने योग्य वे बन सकेंगे। यदि सन्निधान मेरी इस सलाह को उचित समझें तो ऐसा करें।" एचलदेवी ने निवेदन किया।

"अभी हम कुछ नहीं कहेंगे। अप्पाजी और छोटे अप्पाजी दोनों को बुलवाकर विचार-विनिमय करने के बाद ही कोई निर्णय लेना उचित होगा। वैसे युवरानी ने बड़ी अच्छी बात कही है, सूझबूझ भरी।"—महाराज ने कहा।

"राजकुमारों से विचार-विनिमय न ही करें तो शायद अच्छा होगा!"

"क्यों?"

"अप्पाजी के मन में हेग्गड़े मारसिंगय्याजी के बारे में कैसी धारणा है, यह मालूम नहीं। एक समय उनके लिए अप्पाजी के मन में तिरस्कार का भाव रहा है। उसके विचार करने का ढंग कुछ दूसरी ही दिशा में चला गया था। इसलिए इस विषय में उससे नहीं कहें तो ही ठीक होगा।"

"हाँ, हाँ, हमारा ध्यान उस तरफ नहीं गया था। बढ़ती हुई उम्र के साथ विचार करने की शक्ति भी घटती जाती है। हमें सारा वृतान्त मालूम है। एक बार क्यों, अनेक बार दण्डनायक मरियाने को उसकी पूर्व-स्थिति हस्ती-हैसियत की याद भी दिलायी है। अप्पाजी का मन पद्मला पर है, यह भी मालूम है।"

"पहले प्रबल आसक्ति थी, परन्तु आजकल क्या स्थिति है इसका मुझे पता नहीं, इस सम्बन्ध में मैं कह भी नहीं सकती। हाँ, एक दिन, जब प्रभु जीवित थे,

उन्होंने अप्पाजी को भी साथ में रखकर प्रधानजी से विचार-विनिमय किया था। इसके पश्चात् शायद उसका उधर ध्यान नहीं जाता है।"

"उस समय क्या हुआ था, मालूम है?"

"नहीं। प्रभु और वह दोनों इस सम्बन्ध में मौन रहे। मैंने भी जानने पर ज़ोर नहीं दिया। मुझसे छिपाकर रखने जैसी कोई बात उनमें नहीं रही। यदि मैं न भी जानती तो उससे कोई हानि नहीं थी; यही सोचकर मैं चुप रही।"

"अच्छा उसे जाने दें। पद्मला का विवाह अप्पाजी से होने के बारे में युवरानी को कोई एतराज है?"

"प्रभु की इस विषय में एक निश्चित राय थी। उस लड़की के लिए उन्हें किसी भी तरह से व्यक्तिगत असमंजस नहीं था। फिर भी वह जिस वातावरण में पली है उसे देखते हुए वह उसे अप्पाजी के योग्य नहीं मानते थे। वह वातावरण हानिकारक है—यह उनकी निश्चित धारणा थी। अप्पाजी अगर बड़ा बेटा न होते तो शायद वे बीच में न पड़ते।"

"युवरानीजी की भी यही राय है क्या?"

"अप्पाजी को अच्छा न लगे, ऐसा कोई भी बन्धन मेरी ओर से नहीं। इस विषय में मैं उसकी इच्छा के अनुसार ही चलूंगी। चाहे मुझे उचित लगे, न लगे। यदि यही उसका निश्चय है तो मैं उसके सुख को अपना सुख समझूंगी।

"मतलब यह कि अप्पाजी की शादी उसी की इच्छा के अनुसार होगी—यही न?"

"मेरी यह राय सिर्फ़ अप्पाजी के ही बारे में नहीं, सभी बच्चों के प्रति है।"

"अगर वे किसी गलत रास्ते पर जायें तो उन्हें समझाकर कुछ कहेंगी नहीं?"

"मनुष्य को मनुष्य बनकर जीना हो तो उसे किस तरह रहना चाहिए, किस तरह का परिवार मनुष्य को पुरुष बनकर जीने के लिए चाहिए? दाम्पत्य जीवन में समरस क्या है? इन सब विषयों को मैंने अच्छी तरह से समझाया है। उन्हें अच्छे गुरु भी मिले हैं। वास्तव में वह हमारे हाथ से निकला जा रहा था। यही गुरु थे जिन्होंने उसमें इतना परिवर्तन ला दिया। अब उसमें यौवन का अन्धा जोश नहीं, बल्कि एक विवेकपूर्ण संयम आया है। इसलिए इस सम्बन्ध में मैं अधिक सोचती नहीं हूँ। इसका यह मतलब नहीं कि मुझे ठीक न जँचने पर भी मैं चुप रहूँगी। उसे समझाऊँगी। परन्तु मेरी ही बात मानी जाये—ऐसा मेरा आग्रह नहीं।"

"तो अब आगे का कार्य?"

"मौन रहकर नज़र रखने का। मारसिंगय्या के स्थानान्तरण के बारे में जिज्ञासावश सन्निधान के दर्शन की अभिलाषा की थी, मगर सन्निधान को ही इससे अपरिचित रखा गया है। सन्निधान को यहाँ तक आने का कष्ट नहीं करना

चाहिए था। मैंने दर्शन लिए उपयुक्त समय जानने हेतु खबर भिजवायी थी, मैं स्वयं सेवा में पहुँचती।"

"अपनी उस आशा को पूर्ण करने के लिए तुरन्त चले आना चाहिए। बेटी को पिता के पास आने के लिए समय-असमय के बारे में नहीं सोचना चाहिए।"

"जो आज्ञा।"

"इस स्थान परिवर्तन से हेग्गड़े मारसिंगय्या दुःखित हुए होंगे?"

"उन्हें सब बातें मालूम हैं। वे परेशान नहीं होंगे। उनको यह विश्वास है कि राज-परिवार को यदि हमारी आवश्यकता होगी तो वे बुला लेंगे। वर्षान्त के समय बाहुबली स्वामी के दर्शन के लिए तो जाना ही है। तब उन्हें भी वहाँ आने के लिए सूचित कर देंगे!"

"ठीक है।" कहकर महाराज उठ खड़े हुए। एचलदेवी ने दरवाज़े तक आकर स्वयं परदा हटाया। वे वहाँ से चले गये।

प्रभु एरेयंग के स्वर्गवास के एक वर्ष बीतते ही बल्लाल के यौवराज्याभिषेक का निर्णय महाराज विनयादित्य ने लिया। बाहुबली स्वामी के दर्शन तथा सेवा करके लौटने के पश्चात् युवरानी एचलदेवी की इच्छा के अनुसार इस समारम्भ को सम्पन्न करने का निर्णय किया गया। यदि पहले जैसी स्थिति होती तो इस यात्रा के सन्दर्भ में दण्डनायिका शायद बहुत उत्साह दिखाती।

परन्तु अब की बार राज-परिवार के वेलापुरी से लौटने पर युवरानीजी के संदर्शन के लिए दण्डनायिका ने प्रयत्न किये थे लेकिन वह अपने प्रयत्नों में असफल रही। इस का गुस्सा उसने हेग्गड़े परिवार पर उतारा—चाहे पास रहे या दूर कोई-न-कोई गड़बड़ी तो पैदा करता ही रहता है। शायद ग्राम से उस हेग्गड़े ने ख़बर भेजी होगी। शिकायत भी की होगी कि दूर भेज दिया है। हमारी हज़ार शिकायतें की होंगी इसीलिए तो युवरानी ने दर्शन नहीं दिये। ऐसी हालत में उसके स्थान परिवर्तन को लेकर राजमहल में विक्षोभ का वातावरण हो गया होगा। फिर इसकी प्रतिक्रिया क्या हुई होगी—यही चामव्वा सोचती रही।

परन्तु राजमहल में या अन्यत्र कहीं भी कुछ नहीं हुआ था। इस बात को समझने के लिए दण्डनायिका को बहुत समय न लगा। खुद दण्डनायिका चामव्वे को युवरानी के दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला था लेकिन उसकी बेटियों को कभी-कभी राजकुमारों से मिलते-रहने का मौक़ा मिल जाता था। उस कभी-कभी के

मिलन में पहले की-सी मिलनसारी और उत्साह न दीखने पर भी कोई विपरीत भावना नहीं थी इस बात को दण्डनायिका अपनी बेटियों से बातचीत करके समझ चुकी थी। उसके पति या भाई ने कोई ऐसी बात भी नहीं की थी कि जिससे वह आतंकित हो जाय। इसलिए दण्डनायिका को थोड़ा सन्तोष हुआ था कि हेग्गड़े के स्थान-परिवर्तन से राजमहल में कोई खिन्नता नहीं है। फिर भी अन्दर-ही-अन्दर उसे यह दुःख तो रहा कि दर्शन करने का मौक़ा नहीं मिला। उसे ऐसा लग रहा था कि उसके इस दुःख का कारण हेग्गड़े का ही परिवार है। वह इस आशा से प्रतीक्षा कर रही थी कि इसका प्रतिकार करने का मौक़ा मिले बिना न रहेगा।

बाहुबली स्वामी के दर्शन के लिए जाने से एक दिन पूर्व चामव्वे और उसकी बेटियों को राजमहल से बुलावा आया। जब चामव्वे ने यह सुना तो विश्वास ही नहीं हुआ। इस बुलावे का कारण न मालूम होने से वह सोच रही थी पता नहीं क्यों बुलाया गया है। अच्छा विचार भी आया, बुरे भी आये। जब मानसिक द्वन्द्व हो तब निर्मल और स्पष्ट विचार आ भी कैसे सकते हैं? एक तरफ उत्साह था। बुलावा को लाभदायक समझकर वह उत्साहित हुई थी, तो साथ ही उसमें यह भावना भी आयी कि इस समय युवरानी के मन में दबा पड़ा क्रोध ज्वालामुखी की तरह उबल पड़े तो क्या होगा? उस उत्साह में भी यह भय। वह काँप उठी। इन्हीं भावनाओं को लेकर वह अपनी बेटियों के साथ राजमहल में गयी।

वहाँ उसे और उसकी बेटियों को अपेक्षा से भी अधिक स्वागत मिला। देखते ही युवरानी ने कहा, "दण्डनायिका को दुःख हुआ होगा दर्शन चाहने पर भी न मिलने के कारण। स्वामी के आकस्मिक निधन के कारण मैंने किसी सुमंगली या कन्या का दर्शन न करने का निर्णय किया था। इसलिए आपकी दर्शनाभिलाषा को पूर्ण नहीं कर सकी थी। पता नहीं किसी पुराकृत पाप के कारण मेरा मांगल्य छिन गया और मेरी यह स्थिति हो गयी···" युवरानी का गला भर आया, सांस रुक गयी, आँसू निकल आये। बात गले की बात गले में ही रह गयी। पल्ला से मुँह ढँक लिया।

चामव्वे को ऐसे मौक़े की बात कहना भी नहीं सूझा। चुप रही। बच्चियों की आँखें भर आयीं। उन्होंने आँसू पोंछ लिये। थोड़ा रुककर युवरानी ने कहा, "दण्डनायिका जी, यह दुःख ही ऐसा है कि कितना ही रोकने का प्रयत्न करें तब भी वह रुकता नहीं। हम सदा भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि शत्रुओं को भी ऐसा दुःख न दे। वास्तव में मेरा वर्तमान जीवन मेरे लिए अवांछित है। प्रभु की अन्तिम आशा को सम्पूर्ण करना मेरा कर्तव्य है—इसी भावना को लेकर जी रही हूँ। नहीं तो अब तक सल्लेखना व्रत लेकर मैं सुरलोक पहुँच गयी होती···हालाँकि यह सब नहीं बोलना चाहिए फिर भी दुःख ही ऐसा है, क्या करूँ। मैंने कभी किसी की बुराई मनसा-वाचा-कर्मणा किसी तरह नहीं चाही। बुराई चाहनेवालों

की भी मैंने बुराई नहीं चाही। तो भी मेरी ऐसी दशा क्यों हुई ? जब मैं यह सोचती हूँ तब सदा दूसरों की बुराई चाहते ही रहनेवालों के लिए कौन-सा भारी दुःख मिल सकता है—इसकी कल्पना नहीं कर पाती। बुराई करें तो दुःख का मिलना तो अनिवार्य है ही। लोग इसे समझकर भी बुराई क्यों करते जाते हैं—यह ऐसी समस्या है जिसका हल ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता।"

दण्डनायिका को कुछ कहना चाहिए था। उसे लगा कि युवरानी ने जो कुछ कहा वह सब उसी के बारे में है। परन्तु वह इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थी कि उसने बुराई की है। उसने कहा, "युवरानीजी की अगर किसी ने कोई बुराई की हो तो उसे दण्ड देना आसान काम है। युवरानी की बुराई करने का साहस भी किसी को न होगा।"—कहते समय गला कुछ रुँधने लगा था फिर भी साहस करके कह ही दिया।

युवरानी जी सुनकर कुछ मुस्कुरायीं। बोलीं, "मैंने खास अपने बारे में सोचकर यह बात नहीं कही। बुराई युवरानी की करे या एक साधारण सिपाही की पत्नी की—दोनों बराबर हैं। बुराई किसकी की गयी, वह बुरा है या नहीं—इस तरह सोचना ठीक नहीं। परन्तु हमसे उपकृत होकर भी हमारी ही बुराई करेंगे तो वे भगवान् के सामने क्या उत्तर दे सकेंगे ? अपनी बुराई को लोगों की आँखों से छिपा लेंगे लेकिन भगवान से तो छिपा नहीं सकेंगे ! है न दण्डनायिकाजी ? यह सम्भव है कि बुराई करते वक़्त वह बुराई न लगे परन्तु वह एक न एक दिन स्पष्ट मालूम हो जायेगी कि वह बुराई है। तब बुराई करनेवाले ख़ुद अपनी आत्मा को सान्त्वना नहीं दे सकेंगे। ऐसा ही है न ? आप ज़रूर सोच रही होंगी, मैं यह सब क्यों बोल रही हूँ, है न दण्डनायिकाजी ?"

"बिना किसी विशेष कारण के युवरानी कोई बात नहीं कहेंगी—यह सबको मालूम है।"—यों सीधा जवाब न दे सकने के कारण कुछ घुमा-फिराकर कहा।

"मतलब ?"

"मतलब यह कि युवरानीजी अवश्य ही कहेंगी—यह मुझे मालूम है।"

"युवरानी को यदि मालूम हो तो अवश्य कहेंगी। न मालूम हो तो क्या कह सकती हैं ?"

दण्डनायिका अनजान बनकर पलकें मटकाती रही।

"मुझे भी ऐसा ही हुआ करता है, दण्डनायिकाजी। हमने जिसकी कल्पना नहीं की वह हो जाता है। परन्तु ऐसा क्यों हुआ इसका पता नहीं लगता। कारण न मालूम होने पर ऐसे ही किंकर्तव्यविमूढ़ रह जाना पड़ता है। पिछले एक वर्ष से तो मैं अकेली अलग-थलग घुटती रही हूँ। अपनी बात तक सुनाने को कोई नहीं है इसी वजह से मुझे बहुत परेशानी होती रही है। प्रभु जब तक जीवित रहे, मुझे कभी ऐसी स्थिति का सामना नहीं करना पड़ा। महासन्निधान मुझे

अपना बेटी से भी अधिक मानते और समझते हैं। फिर भी स्वतन्त्रतापूर्वक उनसे बातचीत नहीं कर सकती। राजकुमार छोटे हैं। इसलिए मेरी भावना हुई कि आपसे वार्ता करने पर मन का बोझ कुछ कम हो सकेगा।"—युवरानी बोली।

दण्डनायिका के अन्तरंग में अचानक कुछ उफान आया। चेहरे पर उत्साह के भाव आये। बोली, "मैं सदा राज-परिवार की सेवा के लिए तैयार हूँ।"

युवरानी ने घण्टी बजायी। दासी ने परदा हटाया। उन्होंने दासी से कहा, "राजकुमारों का अध्ययन चल रहा है? जाकर शीघ्र देख कर आओ।"

दासी गयी और शीघ्र ही लौटकर बोली कि पाठ चल रहा है।

"ऐसा है तो इन बच्चों को भी वहाँ ले जाओ। पाठ समाप्त होने तक बच्चे वहीं रहें। बाद में एक साथ सबके उपाहार की व्यवस्था हो।"—युवरानी ने कहा।

कोई दूसरा उपाय न देख दण्डनायिका की बेटियाँ दासी के साथ चली गयीं।

युवरानीजी बैठी थीं। उन्होंने उठकर दरवाज़ा बन्द किया और साँकल लगा दी। फिर आकर बैठ गयीं। कहने लगीं, "दण्डनायिकाजी, मुझे आजकल किसी पर विश्वास नहीं हो रहा है। किसी से सम्पर्क रखने की भी इच्छा नहीं होती। परन्तु इसके बिना जीना भी दुःसाध्य है। प्रभुजी मुझ पर ऐसा असाध्य बोझ डालकर मुझसे वचन लेकर छोड़ कर चले गये। ऐसे मौक़े पर मुझे सबकी मदद की आवश्यकता है। आप शायद विश्वास न करें परन्तु उस सत्य को बता दूँ तो आपका हृदय भी काँप उठेगा, फट जायेगा।"

युवरानीजी की बातें उद्वेगपूर्ण थीं। उस उद्वेग को रोकने के लिए कुछ देर तक मौन होकर बैठी रहीं। दण्डनायिका संदिग्ध दृष्टि से उनकी ओर देखती रही।

एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर युवरानी ने कहा, "हमारे प्रभु ने चालुक्य चक्रवर्ती की गौरव प्रतिष्ठा की और उनके प्राणों की रक्षा के कार्य में प्राणपण से सहयोग दिया। चालुक्य पिरियरसी जी का मान रखा और ख़तरे के समय में उनकी प्राणरक्षा की। और भलमानसाहत के साथ वापस ले जाकर उस धरोहर को सौंप दिया। इसका पोय्सल राज्य को क्या प्रतिफल मिला जानती हैं? हमने जो निष्ठा और विश्वास उन पर रखा था उसका क्या पुरस्कार हमें मिला आपको मालूम है?"

"क्या हुआ? मेरे मालिक ने भी मुझे कुछ बताया नहीं!"

"अगर आप कहें कि उन्होंने नहीं बताया, तब यही समझना पड़ता है कि आपने उनके विश्वास की पात्रता खो दी है।"

"ऐसा तो कुछ नहीं। राजकाज के बारे में वे मुझसे बातें नहीं करते। इस सबका स्त्रियों से क्या सम्बन्ध है? इसलिए नहीं बताया।"—दण्डनायिका ने

कहा। फिर भी युवरानी की बात ने दण्डनायिका के मन पर आघात किया था।

"अगर हम बता दें कि चालुक्य चक्रवर्ती हमारे विरोधी बन गये हैं तो आप विश्वास करेंगी, दण्डनायिकाजी ?"

"क्या यह सच है !"

"सच, एकदम; वैसे जब आपके मालिक ने ही नहीं बताया तो मुझे भी नहीं बताना चाहिए था परन्तु समय आने पर सम्पूर्ण पोय्सल साम्राज्य को एक परिवार की तरह बनकर रहना होगा—इस बात को ध्यान में रखकर यह बात मैंने आपको बतायी है।" युवरानी ने कहा।

"जैसा मालिक कहते हैं, हम तो अबला हैं, न राज्य को चला सकती हैं, न युद्ध ही कर सकती हैं। हमारे···"

"यही तो आप गलत कह रही हैं। हम राज्य—संचालन या संरक्षण के कार्य में अशक्त हैं, तो भी घर को बिगाड़ने तोड़ने, भेदभाव पैदा करने के लिए आवश्यक बुद्धिमत्ता तथा तेज जीभ रखते हैं यह बात आप न भूलें। स्त्री घर को बना भी सकती है और बिगाड़ भी सकती है।पोय्सल राज्य को एक परिवार-सा बनाकर रखने के लिए हमें उसी के अनुरूप चरित्र निर्माण करना होगा। जो स्त्री अपनी प्रतिष्ठा एवं स्वार्थ से प्रेरित होकर नौकर-चाकरों को हीन दृष्टि से देखेगी और ऐसे कार्य में प्रवृत्त होगी, वह घरफोड़ ही तो कही जायेगी ? जो स्वार्थी होती हैं, वह दूसरों के हित और गौरव की परवाह नहीं करतीं। प्रभु जब बीमार थे तब मैंने आपको एक बात बतायी थी। वह यह थी कि पोय्सल राज्य से एक व्यक्ति को देश-निकाले का दण्ड देना पड़ा था। वह व्यक्ति भी स्वार्थ का ही शिकार था। उसी देश-निष्कासित व्यक्ति ने ही आज चालुक्य और पोय्सलों में विष का बीज बो दिया है—यह ख़बर मिली है। उस व्यक्ति का सम्पर्क हमारी राजधानी के एक उच्च पदाधिकारी के घराने से बताते हैं। अतः स्त्री होने पर भी वह अविवेक से किसी भी अनचाहे आघात का कारण बन सकती है। इसीलिए हमारे राज्य के हित की और राजकुमारों के हित की दृष्टि से उच्च अधिकारी वर्ग के आप जैसों को सम्पर्क रखते समय बीसियों बार सोच-समझकर निर्णय लेना चाहिए। आपका उद्देश्य बुरा न होने पर भी आपके ऐसे सम्पर्क से स्वार्थी लोग नाजायज फ़ायदा उठा जाते हैं। उस व्यक्ति के देश निष्कासन दण्ड के बारे में आपके मालिक ने आपको बताया है या नहीं, मालूम नहीं।"

"बतलाया है।"

"तो मुझे इस विषय में ज़्यादा कहने की ज़रूरत नहीं। सभी प्रसंग आप जानती ही हैं। आप ही कहिए दण्डनायिकाजी, हमने उस वामाचारी का क्या नुकसान किया था ! प्रभु ने ही कौन-सा अन्याय किया था ? उसने उनको प्राणाघात पहुँचाने के लिए मन्त्र-तन्त्र किया सुनते हैं। देश-निकाले के दण्ड का बदला लेने के खयाल

से उसने अपने इस मन्त्र-तन्त्र के प्रभाव को बढ़ाया जिसके फलस्वरूप हमें उन्हें खोना पड़ा। इस आघात के कारण जिस सहारे को खोया उसे हम फिर से तो पा नहीं सकते। उस सहारे को कोई हमें पुनः दे नहीं सकता। अब तो मुझे अपने बच्चों की फ़िक्र है। मुझे अब यह देखना है कि बच्चे कुशल रहें, इसके लिए आप सभी की सहायता चाहिए। जिन लोगों को हम चाहते हैं, वे आपको भी पसन्द आने चाहिए। तभी हम एक परिवार के होंगे और उस लक्ष्य को साथ-साथ निबाह सकेंगे। जिन्हें हम चाहते हैं उन्हें अगर आप न चाहें तो सब व्यर्थ है। राज-घराने और अधिकारी वर्ग व उनके परिवार के लोगों के बीच स्नेह बढ़ाने और द्वेष दूर करने के कार्यों में आप लोगों की मदद बहुत ज़रूरी है। क्या हमें आपकी यह मदद मिल सकती है?"

"यह पूछना चाहिए? सरकार की आज्ञा हमें शिरोधार्य है, मान्य है।"

"आज्ञा! अधिकार मुझे नहीं चाहिए, दण्डनायिकाजी। प्रेमपूर्ण हृदय से इसे अपना कर्तव्य मानकर सन्तोष करना चाहिए। ऐसा करने से परिशुद्ध मन का विकास होता है।"

"बच्चों की क़सम, मैं युवरानीजी की इच्छा के अनुसार चलूँगी।"

"बच्चों की क़सम मत खाइये, दण्डनायिकाजी। बच्चों का हित चाहनेवाली कोई भी माँ बच्चों की क़सम नहीं खाती। हमारा अविवेक उनके अहित होने का कारण बन सकता है। आपके बच्चों के भाग्य में क्या लिखा है, उनके योगायोग क्या होंगे यह तो कोई नहीं बता सकता है लेकिन उनकी राह में स्वयं कण्टक न बनें, यही हमारे ध्यान में रखने की बात है। कई बार, होनेवाली किसी बुराई के हम जिम्मेदार बन जाते हैं। हम आत्मा से न चाहेंगे फिर भी काम ऐसा हो जाता है कि मानो हम ही उसका कारण हैं। जब आप आरती का जल छिड़कने गयीं, तब क्या प्रभु की बुराई चाहकर ही ड्योढ़ी से टकरायीं? उनकी बुराई चाहकर आपने देव मन्दिर में रक्त की बूँदें गिरायीं? पहली घटना तो आकस्मिक हुई और दूसरी शायद अनजान में हो गयी है। फिर भी आगे जो भयंकर घटना घटी तब उसकी जिम्मेदार आप हैं, यह कहें तो गलत न होगा? वह उचित होगा? दूसरों पर शिकायत लादने से पहले उस पर विचार करना होता है। आपके रक्तसिक्त पैर को हमारे नौकर ने देखा और बड़ी घबड़ाहट से आकर हमसे कहा था। अगर हमने उसी वक़्त उस क्रिया पर ध्यान दिया होता तो आज आपसे बातचीत करने तक का भी मौक़ा न रहता। हम और आप अलग-अलग ही रहे होते। आपको मेरी एक ही सलाह है। स्नेह, प्रेम तथा सहृदयता के विचार बढ़ाने की ओर आपका मन प्रवृत्त हो। पश्चात्ताप से बढ़कर कोई और प्रायश्चित नहीं। जब तक हममें अपनी गलती को गलती मानने का साहस नहीं होता तब तक मन निर्मल नहीं होता। यह जो बात मैं आपसे कह रही हूँ। इसे

प्रभु ने अपनी अन्तिम घड़ी में मुझसे कहा था और यही उनका अन्तिम आग्रह था। कितनी बड़ी बात है यह! यदि सब लोग उसे अपनायें तो यह भूमि स्वर्ग ही बन जाये क्योंकि तब यहाँ केवल महान आत्माएँ ही रहेंगी।"

इतने में दरवाज़े के बाहर से उपाहार की व्यवस्था की सूचना मिली।

एचलदेवी ने उठकर कहा, "आइये" और दरवाज़े की ओर चल दी। चामव्वे ने स्वयं आगे बढ़कर दरवाज़ा खोला। दोनों ने बच्चों के साथ मिलकर उपाहार किया।

पद्मला के मन को सन्तोष हो, ऐसा कोई प्रसंग नहीं उठा। पाठ समाप्त होते ही बल्लाल महासन्निधान से मिलने अथवा किसी राजकार्य के बहाने चला गया। वास्तव में पद्मला उससे एकान्त में बात करने की इच्छा रखती थी। वह इच्छा एक तरफा हो तो फलेगी कैसे?

विदा होते समय युवरानी ने कहा, "दण्डनायिकाजी, आपको एक बात बतानी है। कल मैं बेलुगोल की यात्रा पर राजकुमारों के साथ बाहुबली स्वामी का अनुग्रह प्राप्त करने जाऊँगी। वहाँ से लौटने के बाद अप्पाजी के यौवराज्याभिषेक का दिन निश्चय करेंगे। पहले जब हम बेलुगोल की यात्रा पर गये थे तब आप साथ में थीं। अब की बार हमने किसी को भी साथ नहीं ले जाने का निर्णय किया है।"

दण्डनायिका कहना चाहती थी कि हम भी साथ चलेंगी। इतने में महारानीजी का निर्णय ही व्यक्त हो गया। युवरानीजी ने बहुत ही सौजन्यता से कहा था तो भी वे बातें प्रकारान्तर से दण्डनायिका चामव्वे को चुभ-सी रही थीं। उनमें भी जब वामाचारी के देश निकाले के विषय में कह रही थीं तब उसका हृदय निचुड़ ही गया था। 'अपनी गलती को मानने का साहस जिनमें हो उनका मन निर्मल होता है'—यह बात जब युवरानी ने कही तब अपने मन के उस भाव को प्रदर्शित करने की इच्छा भी हुई। परन्तु उस समय उसे वह साहस नहीं हुआ। फिर भी उसके संयम को महान् ही कहना चाहिए। किसी भी प्रसंग में उसने अपने मन के तुमुल-संघर्ष को व्यक्त होने नहीं दिया।

"युवरानीजी के ये विचार बहुत ही अच्छे हैं। राजकुमारों के हित में भी आपकी यह यात्रा बहुत ही ज़रूरी है। मेरे मालिक ने मुझे इसके बारे में भी कुछ नहीं बताया?..."

"शायद उन्हें भी मालूम नहीं है। हमारी इस यात्रा के बारे में प्रचार न हो, यही महासन्निधान की इच्छा है। इसलिए यह विषय केवल प्रधानजी को मालूम है, ऐसा मैं समझती हूँ। आज शायद दण्डनायकजी को मालूम हो जायेगी। क्योंकि रक्षक दल को तो साथ चलना होगा न? जिन्हें वे भेजेंगे वे ही तो साथ जायेंगे। अच्छा, दण्डनायिकाजी। कभी-कभी राजमहल में आती रहिए। मन दर्द की बात

अलग रही। समझीं ?"

"जो आज्ञा" कहकर वेटियों के साथ दण्डनायिका चली गयी।

युवरानी एचलदेवी और राजकुमार जब वेलुगोल मार्ग पर स्थित ग्राम पहुँचे तो मारसिंगय्या, माचिकब्बे और शान्तला ने उनका स्वागत किया। यह स्वागत निराडम्बर एवं हार्दिक था। युवरानी ने एक रात ग्राम में ही विताने का निश्चय किया था परन्तु दण्डिगन हल्ली नामक स्थान पर रात वितानी पड़ी। वहाँ सिंगिमय्या और सिरियादेवी ने उनका स्वागत किया।

राजकुमारों को इस दण्डिगन हल्ली में सिंगिमय्या को देखकर वास्तव में आश्चर्य हुआ। जहाँ तक उनकी जानकारी थी, वे समझते थे कि सिंगिमय्या वलिपुर के हेग्गड़े के पद पर नियुक्त थे। यहाँ क्यों और कैसे आये? इस तरह के विचार उनके दिमाग़ में आना स्वाभाविक ही थे। वल्लाल और विट्टिदेव ने इसके बारे में परस्पर विचार विनिमय किया। दोनों ही इसके कारण से अनभिज्ञ थे। कारण जानने का कुतूहल हो रहा था। हेग्गड़े मारसिंगय्या के स्थान-परिवर्तन का कारण तो उन्हें मालूम हो गया था मगर सिंगिमय्या के बारे में कुछ मालूम नहीं हुआ था। सिंगिमय्या से ही दर्याफ़्त करने का निश्चय करके वल्लालदेव ने इसकी तहकीकात करने का काम विट्टिदेव को ही सौंप दिया। वल्लाल को यह मालूम था कि सिंगिमय्या और विट्टिदेव के वलिपुर में रहते वक़्त निकट का सम्पर्क था। परन्तु विट्टिदेव ने कहा, "इस सन्दर्भ में तहकीकात कर उन्हें संदिग्धावस्था में डालने के बदले सीधे माँ से पूछकर जान लेना अच्छा होगा।" इसलिए आराम करने से पहले उन्होंने माँ से पूछा।

एचलदेवी ने समझाते हुए बताया, "यह बात कभी न कभी तुम लोगों को ज़रूर ही मालूम होनी चाहिए थी। प्रभु के सिंहासनारोहण के सन्दर्भ में चालुक्य चक्रवर्ती असन्तुष्ट थे। इस असन्तुष्टि का कारण यह था कि इस सम्बन्ध में हमने पहले उनसे अनुमति नहीं ली। इसी बहाने उन्होंने वलिपुर प्रदेश को पोय्सल राज्य के अधिकार से वापस लेकर उसे पहले जैसे बनवासी प्रान्त में विलीन करने की सूचना पट्टाभिषेक के समय में दी थी। उस समय प्रभु मृत्युशय्या पर थे इसलिए यह बात गुप्त ही रखी गयी, किसी को बतायी नहीं गयी। यहाँ तक कि यह बात महासन्निधान को भी नहीं बतायी गयी थी। इसके कुछ समय बाद ही हेग्गड़े मारसिंगय्याजी ने प्रधानजी के मार्फ़त महासन्निधान को सूचित किया था। फिर

प्रधानजी के आदेश से ही हेग्गड़ेजी ने महादण्डनायक को बताया था। अब भी यह बात महासन्निधान, प्रधान, महादण्डनायक, हेग्गड़े मारसिंगय्या, सिंगिमय्या और रेविमय्या को ही मालूम है।"

"उन्होंने ऐसी आज्ञा दी थी, इसीलिए उस क्षेत्र को जाने हाथ से दिया ?"—बिट्टिदेव ने पूछा।

"हाँ अप्पाजी।"

"क्या हमारे पोय्सलवंश के लिए यह अपमान की बात नहीं माँ ? हमें इस धोखेबाज़ी के सामने झुकना पड़ेगा ?" ज़रा उत्तेजित होकर बिट्टिदेव ने पूछा।

"उस समय उत्तेजित होकर इस प्रश्न को हल करने की स्थिति नहीं थी, छोटे अप्पाजी। उस समय शासन की हालत बहुत नाज़ुक थी। प्रभु ने सभी बातों पर विचार करके तुरन्त प्रतिक्रिया प्रकट करना राजनैतिक दृष्टि से बुद्धिमानी का काम नहीं समझा।" युवरानी ने बताया।

"हम स्नेहवश उनके सामन्त बने थे। उन्हें यह बतलाते तो अच्छा होता कि हम स्वतन्त्र होकर भी रह सकने की शक्ति रखते हैं।"—बिट्टिदेव ने कहा।

"इसके लिए आप लोग तैयार हो जाओ। कौन मना करता है ! धोखा और अन्याय के सामने पोय्सलों को सिर झुकाने की आदत नहीं। परन्तु तब दूसरा कोई चारा भी नहीं था। इसके अलावा वह हमारे द्वारा विजित प्रदेश नहीं था। उन्होंने उस प्रदेश को हमें अपने स्नेह के प्रतीक के रूप में सौंपा था। सो भी भाई-भाई के आपसी मनमुटाव के कारण।"

"प्रभुजी ने न जाने क्या देखकर विक्रमादित्य का पक्ष लिया था ?" बिट्टिदेव ने कहा।

"अब हमें उस बात की आलोचना नहीं करनी चाहिए। जहाँ तक मैं जानती हूँ प्रभु कभी गलत विषयों में मदद नहीं करते थे। अगर उन्होंने विक्रमादित्य जी की मदद की तो वह निश्चित ही न्यायसंगत रही होगी।"—एरेयंग प्रभु के व्यवहार का समर्थन करती हुई युवरानी ने कहा।

"फिर भी भाई-भाई के बीच···" बिट्टिदेव कुछ कहना चाहता था, कि इसी बीच युवरानी ने कहा, "भाई-भाई में इसका ज्ञान होना चाहिए था न ? इसीलिए तो मैं तुम लोगों से सदा कहती रहती हूँ कि पद, अधिकार, कीर्ति आदि सभी चीज़ें वात्सल्य के सामने गौण हैं। इसी को हम रामायण में भी पाते हैं। भाईयों के बीच विद्वेष भावना पैदा नहीं होनी चाहिए। मेरे कोख से जन्मे तुम लोगों को स्वार्थवश भ्रातृवात्सल्य को नष्ट नहीं करना है।"

"इस बारे में आप चिन्तित न हों माँ। हम तीनों आप और प्रभुजी के अन्तःकरण के ही तो फल हैं। हममें कभी यह भावना नहीं आयेगी। आप चिन्ता न करें। परन्तु चालुक्यों ने हमारे प्रभु का जो स्नेह द्रोह किया है उसका प्रतिकार

तो होना ही चाहिए। स्वयं सशक्त होने पर उसका फायदा उठाने तथा दूसरे के निर्बल होने पर उसे दबाकर रखने की प्रवृत्ति के लिए उचित पाठ पढ़ाना ही होगा।"—बिट्टिदेव का स्वर अब भी उत्तेजित था।

"महासन्निधान के रहते हुए हम छोटों को उनकी सलाह के अनुसार चलना चाहिए। छोटे अप्पाजी, उद्विग्न या उत्तेजित होकर काम करने से हम कुछ भी संभाल नहीं सकेंगे। यदि चालुक्यों ने अन्याय किया है तो भगवान् ही उन्हें दण्ड देगा। हमें दण्ड देने के लिए आगे नहीं बढ़ना चाहिए।"

"यह खींच-तानकर छेड़ने की रीति है, माँ। चालुक्यों ने कमीनापन दिखाया है।"

"इसमें एक बात और है। प्रभु युद्धभूमि से लौटने के बाद जब रोगशय्या पर पड़े थे तब एक व्यक्ति को देश-निकाले का दण्ड दिया था उन्होंने। उसकी चालाकी चालुक्यों के इस तरह के व्यवहार का कारण बनी—यह बात सुनने में आयी है। इसलिए शायद गलत-फहमी के कारण ऐसा व्यवहार किया हो। समय आने पर वास्तविकता का उन्हें पता लग ही जायेगा। इसलिए अभी हमें शान्त ही रहना होगा।"

"तब क्या वह वामाचारी ही इसका कारण है, माँ ?"—बल्लाल जो अब तक मौन रहा, सवाल कर बैठा।

"वह क्या था सो मुझे मालूम नहीं, अप्पाजी। मुझे सिर्फ़ इतना ही मालूम है कि राज्य के लिए ख़तरा पैदा करनेवाले एक व्यक्ति को देश-निकाले का दण्ड दिया गया था। तुम शायद मुझसे ज़्यादा जानते हो—ऐसा लगता है। कौन था वह ? उसने क्या किया ?"

"माँ, प्रभु को मालूम था। उन्होंने जब आपको नहीं बताया तो क्या मेरा कहना ठीक होगा ? इसके अलावा उन्होंने आज्ञा दी थी कि इस सम्बन्ध में कभी किसी से कुछ नहीं कहना।"

"मुझे भी ऐसा ही लगा था कि कुछ बात रही होगी। एक दिन प्रभु ने प्रधानजी से जब गुप्त मन्त्रणा की थी तब तुमको भी अपने साथ रखा था। जब मैंने तुमसे पूछा तो तुम कुछ न कहकर खिसक गये थे। प्रभु से पूछा तो उन्होंने कहा कि इन सब राजनैतिक बातों को जानकर अपना दिमाग़ क्यों ख़राब करती हो, वह यदि तुमको मालूम न होती हैं तो भी तुम्हारा कोई नुकसान नहीं। इस ढंग से उन्होंने कह दिया था। मैं चुप रह गयी। अब वे ही न रहे। उन्होंने तुम लोगों को मुझे सौंपकर होशियारी से देखभाल करते रहने का आदेश दिया था। आज तुम लोगों के लिए ही मैं जी रही हूँ। इसलिए प्रभुजी जिन बातों को जानते थे उन सभी बातों से मैं भी परिचित रहूँगी। तो जो वे करना चाहते थे, उसे करने की कोशिश कर सकूँगी। कह सकते हो तो कहो, नहीं तो तुम्हारी इच्छा। मैं

विवश नहीं करूँगी।"

"माँ, अभी नहीं। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ बातों की जानकारी और चाहिए। जब जानकारी पूरी हो जायेगी तब तुम्हें बताऊँगा, ठीक है ?"

"वैसा ही करो। हेग्गड़े मारसिंगय्या को प्रभु ने सब बातें बता ही दी होगीं। उनसे पूछने पर ऐसी बातें भी मालूम हो सकेंगी जिन्हें तुम नहीं जानते होगे। कल उन्हीं से पूछो।"

"हो सकता है वे मुझे न भी बतायें।"

"तब तो तुमने उन्हें ठीक पहचाना नहीं। कल तुम युवराज बननेवाले हो और बाद में महाराज भी। अधिकारियों के साथ तुम्हारा सम्बन्ध अर्थहीन नहीं होना चाहिए। इसलिए तुम्हें सभी को अच्छी तरह परखकर समझ लेना होगा। और सब तुम्हें भी समझ सकें—इसके लिए मौक़ा भी देना होगा। प्रभु ने काफी यत्न के बाद यह गुण पाया था। इसीलिए वे सबके प्रेम और आदर के पात्र बन सके थे।"

"इस सबके लिए अनुभव भी तो होना चाहिए न ?"

"बिना किसी पूर्वाग्रह के खुले दिल से अनुभव प्राप्त करोगे, तभी तुम आदर्श बन सकोगे।"

"एक समय था जब मैं पूर्वाग्रह ग्रस्त था। अब नहीं। प्रभु के साथ युद्धक्षेत्र में न जाकर आपके साथ गया होता अथवा राजधानी में रह गया होता तो वही का वही रहता, अब का अप्पाजी नहीं बनता। कुछ दूसरा ही अप्पाजी होता। प्रभु ने मुझमें जिस आदर्श भावना को भरा उस भावना ने मुझमें आवश्यक संयम और विशाल भाव भर दिया है। इसलिए मैं आपके लिए भार-स्वरूप नहीं बनूंगा, माँ। प्रभु को आपने जो वचन दिया है, उसे पालन करने में मैं आपका सहायक ही बना रहूँगा, बाधक नहीं। मेरे लिए आपका आशीर्वाद ही पर्याप्त है।"—भावोद्वेग से बल्लाल ने माँ के चरण छुए और उन्हें आँखों से लगाया।

"भगवान् की कृपा से तुम प्रजानुरागी राजा बनो और मुझे तुम्हें लोकप्रिय देखने का सौभाग्य मिले। बहुत देर हो गई। आराम कर लो। सुबह तड़के ही यात्रा करनी होगी। पूर्वाह्न तक हमें बेलुगोल पहुँचना है।"—एचलदेवी ने कहा। सब अपने-अपने शयनकक्ष में चले गये।

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार नियमित समय पर वे बेलुगोल पहुँचे। स्वागत के बाद मुकाम पर गये। फिर बेलुगोल की पुष्करिणी देवबेलुगोल में स्नान कर भगवान् बाहुबली के दर्शन के लिए इन्द्रगिरि पहाड़ पर चढ़े।

रेविमय्या और बच्चे जल्दी-जल्दी चढ़ गये। युवरानी, हेग्गड़े दम्पती धीरे-धीरे। रक्षक दल के दो अंगरक्षक उनके पीछे-पीछे चढ़ रहे थे। यह सब प्रक्रिया मौन ही चली। स्वामी का दर्शन, पूजा-अर्चा यथाविधि सम्पन्न हुई। बाहुबली स्वामी

के चरणाराधक ने शान्तला की तरफ मुड़कर कहा—"अम्माजी, वाहुवली स्वामी आपके स्तोत्र पाठ को सुनना चाहते हैं। सुने हुए कई साल बीत गये हैं। आपकी वह मधुर ध्वनि आज भी ताजा है मानो अभी सुनी हो। इसलिए स्वामी के प्रति श्रद्धा के प्रतीकस्वरूप एक बार फिर तुम्हारा गायन हो जाये।"

शान्तला ने अपनी माँ की ओर देखा।

"भगवान् को सेवा समर्पित करने के लिए किसी की अनुमति की प्रतीक्षा नहीं करनी होती। आज का यह भगवद्दर्शन जीवन में बहुत महत्त्व रखता है। प्रभु ने मुझे जो आज्ञा दी है, उसे दुहराकर भगवान् के सामने फिर वचन लूँगी कि उस आज्ञा का पालन करूँ। हमारे बड़े राजकुमार की सारी प्रगति आज की पूजा-अर्चा में निहित है। पोय्सल राजघराने की प्रगति के लिए तुम्हारे माता-पिता अत्यन्त निष्ठा के साथ सेवा करते रहे हैं; तुम भी उन्हीं की तरह निष्ठा रखोगी—यह मेरा विश्वास है। आज की तुम्हारी सेवा, हमारे बड़े अप्पाजी प्रगति के लिए बाहुबलि स्वामी को समर्पित होगी।"—एचलदेवी ने कहा।

शान्तला सर्वांग-सौष्ठव युक्त गोम्मटेश्वर के सम्मुख ध्यानमग्न थी। उसने आँख मूंदकर हाथ जोड़े और स्तुति गान शुरू कर दिया। उसी भूपाली राग में जैसाकि पहले सूर्योदय के समय प्रथम बार गाया था। आज ठीक दोपहर का समय था। प्रातःकाल में गाये जानेवाले उस राग को मध्याह्न समय में गाने पर उतना मनोहारी न होगा—यह शास्त्रज्ञ पण्डितों की राय है। लेकिन शान्तला ने सूरज की उस तपती दोपहरी में तथा उसी राग में ही गाया और शान्तिमय वातावरण उत्पनन्न कर दिया। उस शान्तिमय मधुर नाद के साथ ठण्डी-ठण्डी हवा के झोंके सबको आह्लादकर लग रहे थे।

इस वातावरण में रेविमय्या अपने-आपको भूलकर भावसमाधि में सबसे अधिक खोया था। बल्लाल कुमार की भी यही दशा थी, वह भी उसी भावसमाधि में था। इसका यह मतलब नहीं कि बाक़ी लोगों को उतना आनन्द नहीं मिला। उन्हें भी मिला। एचलदेवी को बल्लाल की यह स्थिति देखकर बहुत सन्तोष हुआ था। मन-ही-मन उन्होंने शान्तला को हजारों बार असीसा। वास्तव में उस दिन शान्तला ने तादात्म्य भाव से गान किया था। मन्द स्वरों में उसने जो स्वर-विन्यास किया था, वह ऐसा लग रहा था कि सम्पूर्ण हृदय से प्रार्थना भगवान् के सामने समर्पित की गयी है। ऐसा लग रहा था कि उसके मधुर कण्ठ से निकले नाद की झंकृति ने बाहुबली के हृदय-कमल को विकसित कर दिया हो और उसने किसी भ्रमर की तरह उस कमल के अमृत समान रस का पानकर लिया हो वहाँ का सारा वातावरण नादमय हो गया था।

स्तोत्र के बाद शान्तला ने भगवान् के चरणों में प्रणाम किया।

"अम्माजी, अद्भुत! आज का स्वर-विन्यास उस दिन की तुलना में बहुत ही

अच्छा रहा। उस पुरानी याद को भुला दिया। वास्तव में आज के गायन ने स्वामी के हृदयकमल को खिला दिया। तुम्हारे कारण ही पोय्सल राज-घराने और राज्य के लिए बाहुबली-स्वामी का आशीर्वाद आज प्राप्त हुआ है। बड़े राजकुमार धन्य हैं।" कहकर पुजारीजी ने युवरानीजी से आरती उतारने की अनुमति माँगी। युवरानीजी ने अपनी सम्मति व्यक्त की।

आरती के बाद चरणामृत और प्रसाद लेकर थोड़ी देर वहीं बैठे और फिर सब इन्द्रगिरि से उतर आये। भोजनोपरान्त सब आराम करने अपने-अपने स्थान पर चले गये। युवरानी की इच्छा के अनुसार हेग्गड़ती माचिकब्बे और शान्तला उनके साथ रहीं।

उधर बल्लाल आदि दूसरी जगह लेटे थे। उदयादित्य को नींद आ गयी थी। परन्तु बिट्टिदेव और बल्लाल यों ही लेटे रहे। उन दोनों के दिमाग़ में शान्तला के बारे में विचार घुमड़ रहे थे।

बिट्टिदेव भी कुछ चकित हुआ था। वह अपनी ही आँखों का विश्वास नहीं कर सका था कि शान्तला में एक वर्ष की अवधि में ही इतना बड़ा परिवर्तन हुआ है। ऊँचाई, काठी, मुटाई और यह अंग सौष्ठव, प्रभापूर्ण मुखमण्डल, गम्भीर दृष्टि आदि इन सभी को देखकर उसको लग रहा था कि देवशिल्पी द्वारा निर्मित मूर्ति शायद इसी की तरह होती होगी। मैं सचमुच भाग्यवान् हूँ। उसके उस मौन स्वागत में भी कैसी आत्मीयता थी! उसकी आँखों में और होंठों पर कैसा सन्तोष और प्रेम का स्पन्दन होता रहा! अनिर्वचनीय सौन्दर्य! सिरजनहार के सिरजन में गुण और रूप दोनों की परिपूर्णता अगर कहीं है तो इस शान्तला के रूप सौष्ठव व व्यक्तित्व में है। शायद संसार-भर में ऐसी गुण-निधि और सौन्दर्य की खान अन्यत्र मिलना सम्भव नहीं। कभी एक दिन मेरे भाई ने इसमें अहंकार का अनुभव किया था पर वह भ्रान्ति थी। आज पता नहीं उसने क्या देखा? ख़ुद ही प्रकट हो जायेगा। अगर मैं यह बात छेड़ूँगा तो उसको मेरी हँसी उड़ाने के लिए मौक़ा मिल जायेगा। मैं तो तब और अब एक-सा ही हूँ परन्तु ऐसा लगता है कि अप्पाजी में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है। मैं भी यह देख रहा हूँ कि उनके पहले जैसा स्वभाव नहीं रहा। वह जल्दबाज भी नहीं हैं। पद्मला से अचानक भेंट हो भी जाये तो उसमें थोड़ी सी आत्मीयता भी नहीं लक्षित होती। बेचारी दण्डनायिका की बेटी उसकी नज़र से इस तरह क्यों उतर गयी? उससे ऐसी कौन-सी अनहोनी हो गयी? भैया से ही पूछना चाहिए। राजधानी में पहुँचने पर तनहाई कुछ कम रहेगी अतः यहीं कुछ कोशिश करके इसके बारे में उनका विचार जान लेना चाहिए।

बल्लाल कुछ और ही सोच रहा था: निर्मल अन्तःकरण कितना अनमोल है! वास्तव में मैंने हेग्गड़े परिवार के प्रति उचित व्यवहार नहीं किया। कितने पावन

नाद, नृत्य के जनक और प्रेरक, शक्ति-स्वरूप नटराज महादेव के सान्निध्य में शान्तला की गानसुधा की धारा बही। शान्तला का नृत्य भी हुआ। लास्य के समय शिवकामिनी और ताण्डव करते वक़्त रुद्राणी जैसी लगती थी शान्तला। इस भंगिमा को देखकर मन्त्रमुग्ध-सा बैठा था बल्लाल। बगल में बिट्टिदेव बैठा था। बल्लाल ने भाई के कान में धीरे से कहा, "छोटे अप्पाजी, महान् है यह ! बहुत ही रम्य···सुन्दर !" भाई के मुँह से यह प्रशंसा सुनकर बिट्टिदेव खिल उठा।

मारसिंगय्या जी के हेग्गड़े बनकर ग्राम में आने से ग्रामवासियों के लिए एक विशाल सभारम्भ देखने का सौभाग्य मिला था। ग्राम के प्रमुख पौरों ने इस महान् सन्निवेश के स्मारक के रूप में एक शिलालेख की स्थापना कराने की सलाह दी। इसके बारे में युवरानीजी से निवेदन किया गया।

"अभी हम एक पारिवारिक कार्य के निमित्त यहाँ आये हैं। अतः इस प्रवास में हमारा अन्य किसी भी तरह के कार्यक्रम में सम्मिलित होना उचित नहीं। इसके अलावा राजपरिवार के लोगों की उपस्थिति का ज़िक्र महासन्निधान की अनुमति के बिना करना उचित नहीं। इसलिए शासन का लेख अपने तक ही सीमित रखें। वही होना भी चाहिए क्योंकि मन्दिर निर्माण तो एक चिरस्थायी कार्य है।"—युवरानी एचलदेवी ने कहा।

मारसिंगय्या ने "जो आज्ञा" कहकर सिर झुका लिया। वह अपने नाम का उल्लेख उस प्रस्तरोत्कीर्ण में कराना नहीं चाहते थे। इसलिए वहाँ मूर्ति स्थापना के वर्ष—तिथि, वार एवं संवत् का ज़िक्र कराकर एक छोटा प्रस्तर-लेख मन्दिर की जगत पर लगवाने की व्यवस्था करने का निर्णय किया।

उस दिन शाम को रेविमय्या को साथ लेकर बल्लाल और बिट्टिदेव घोड़ों पर सवार होकर सैर करने ग्राम से बाहर निकल आये। बिट्टिदेव के अपने मन में जो समस्या उठ खड़ी हुई थी उसे हल करने के उपाय ढूँढ़ने के इरादे से ही इस तरह की युक्ति निकाली थी। ग्राम के पूरब की ओर एक कोस की दूरी पर हेमावती से मिलनेवाली एक छोटी नदी है। उस नदी से थोड़ी दूर पर दक्षिण की ओर एक पगडण्डी है, उससे हटकर जनसंचार रहित शान्त स्थान पर दोनों भाई जा बैठे। शाम का सुहावना समय था। धीरे-धीरे सूर्य पश्चिमांगना की गोद में विश्राम लेने के लिए उतर रहा था।

घोड़ों को पेड़ से बाँधकर रेविमय्या पास ही थोड़ी दूर पर जा बैठा था। वर्षा-काल समाप्त प्राय था। छोटी नदी भरपूर होकर हेमावती की ओर धीरे-धीरे बह रही थी।

बिट्टिदेव सोच रहा था कि बात को किस तरह से छेड़े। कुछ विचार-विनिमय करने के ही इरादे से भाई को बुला लाया था—यह बल्लाल को मालूम नहीं था।

रेविमय्या जानता था, इसलिए वह वड़े कुतूहल से सुनने की प्रतीक्षा कर रहा था।

वल्लाल ने अचानक कहा, "छोटे अप्पाजी, तुम वड़े भाग्यवान् हो।"

"विट्टिदेव तो सोच ही रहा था कि वात कैसे छेड़े। भाई की यह वात सुनकर वह मानो स्वप्न से जागा। और पूछा "क्या कहा?"

वह मुस्कुराता हुआ बोला, "कहा कि तुम वड़े भाग्यवान् हो।"

वल्लाल की वात सुनकर विट्टिदेव वोला, "भैया हम सव भाग्यवान् हैं। प्रभु जैसे विशाल हृदय के पिता और प्रेममयी माता की सन्तान होकर हम तीनों ने जन्म लिया है। ऐसी दशा में हम तीनों धन्य हैं और भाग्यशाली हैं। तव मेरे ही लिए कौन-सा खास सींग निकला है?"

"अप्पाजी, तुम ऐसा मत समझो कि मैंने ईर्ष्यावश यह वात कही है। मैंने हार्दिकता में यह वात कही है।" वल्लाल ने कहा।

"आपकी इस विशेष भावना के लिए कोई कारण भी तो होना चाहिए न?" विट्टिदेव ने पूछा।

"माँ सदा कहती रहती है कि पश्चात्ताप ही वड़ा प्रायश्चित है। एक समय था जव कि मेरे मन में इस हेग्गड़े परिवार और उनकी वेटी के विषय में अच्छे भाव न थे। उस भाव को मैंने कभी छिपाकर नहीं रखा; कई प्रसंगों में व्यक्त-अव्यक्त रूप से और मेरे अपने व्यवहार से प्रकट होता रहा। लेकिन अव मैं यह सोचता हूँ कि मैंने जो कुछ समझा था वह गलत था। मेरे मन में उनका जो चित्र था वह कुछ दूसरा ही था। परन्तु अव उनका जो चित्र मेरे मन में है वह कुछ और ही है। प्रभुजी, माताजी, तुम और रेविमय्या जो उत्साह उनके प्रति दिखाया करते थे उसे मैं अर्थहीन मानता था। यह उत्कट प्रेम के कारण वना उत्साह समझता था। इस वजह से आप लोग उनके वारे में जो कुछ कभी-कभी कहा करते थे उन वातों का मेरे मन पर कोई असर नहीं होता था। परन्तु उससे एक अच्छा परिणाम हुआ। खुले मन से तथा खुली आँखों से देखकर सव वातों पर विचार करने की एक नयी दृष्टि का उद्भव मुझमें हुआ। जव से वेलुगोल आये तव से अव तक के उनके व्यवहार, वातचीत, सविनयपूर्ण सहृदयता आदि को परखने के वाद मैंने यह समझा कि इनमें कृत्रिमता और दिखावा नहीं। जैसा इनका हृदय है वैसा ही इनका व्यवहार है मेरी यह निश्चित धारणा वनी है। इसलिए ..." इतना कहकर वल्लाल वोलते-वोलते रुक गया।

"भैया, क्यों रुक गये? इससे मैं कैसे विशेष भाग्यशाली हो जाऊँगा। वास्तव में विशेष भाग्यवान् तो तुम हो। हेग्गड़े जैसे निष्ठावान् लोगों का सहयोग कल सिंहासन पर वैठनेवाले को मिलेगा और वह तुम हो।"

"वह भी तो एक भाग्य ही है। परन्तु हेग्गड़े की वेटी का मन तुमने जीत

लिया है। यह तुम्हारा महाभाग्य है।" बल्लाल ने बगल में बैठे बिट्टिदेव को बगल से छूकर तथा रेविमय्या की तरफ देखकर आँखें मटकायीं।

बिट्टिदेव वास्तव में पुलकित हो रहा था। अपने मन की भावना को व्यक्त न करके अपने लक्ष्य को साधने के लिए उसे ख़ुद-ब-ख़ुद मौक़ा मिल गया, ऐसा सोचकर कहने लगा—"यह कौन-सा महाभाग्य है? राजकुमार होकर एक साधारण हेग्गड़े की लड़की का मन जीतना कौन-सा बड़ा काम है? इस दृष्टि से विचार करेंगे तो तुम मुझसे अधिक भाग्यवान हो क्योंकि तुमने तो महादण्डनायक की पुत्री तथा प्रधान की भाँजी के मन को जीत लिया है।"

बल्लाल के इस उत्साह पर भाई की इस बात ने पानी फेर दिया। वह पहले कन्धे उचकाकर, फिर जड़वत् बैठ गया।

"क्यों भैया, मेरी बात से क्रोधित हो गये?"

"छोटे अप्पाजी, कृपा करके इस बात को न उठाओ। शान्त-सागर में जब मन तैर रहा है तब यह कड़वी बात क्यों?"

"भैया, मैं इसी कड़वी बात पर तुमसे विचार-विनिमय करने के लिए ही आज इधर इस एकान्त में बुला लाया हूँ। युद्धक्षेत्र से लौटने के बाद से तुम में एक बड़ा परिवर्तन आया है। खासकर दण्डनायक के परिवार के प्रति जो उत्साह दिखाते रहे थे अब नहीं दीखता है। उनकी लड़की के प्रति जो आदर भावना थी वह लुप्त हो गयी है। एकदम ऐसा क्यों हुआ? तुम ख़ुद कहते हो कि यह कड़वी बात है, इस कड़वी बात को अकेले अपने में रखे रहोगे तो घुलते जाओगे। क्या हुआ बताओ? यहाँ मैं, तुम और रेविमय्या—हम तीनों के अलावा अन्य कोई नहीं है। तुम कुछ भी कहो वह गुप्त ही रहेगा, कहीं प्रगट नहीं होगा।"

"नहीं छोटे अप्पाजी, मैं कह नहीं सकता। उसे मुझ अकेले को भुगतना है।"

"यदि बात इतनी अधिक कड़वी है तो वह दीमक की तरह अन्दर-ही-अन्दर तुमको खोखला बना डालेगी। तुम कल पोय्सल महाराज होओगे। मैं तुमको ऐसा होने नहीं दूंगा। इस दुनिया में कोई ऐसी समस्या नहीं जिसका हल न हो। इसलिए कुछ न कुछ हल निकल ही आयेगा। कृपा करके बता दो, भैया।"

"नहीं, छोटे अप्पाजी, मैंने प्रभु को वचन दिया है कि उस विषय को किसी से नहीं कहूंगा।"

"जब तक वे रहे तब तक तुमने उसका पालन किया। अब उसे कहकर अपने दिल के बोझ को उतार डालो।"

"नहीं छोटे अप्पाजी, वह मेरा दर्द है। मैं भुगत लूंगा। उसे दूसरों में बांटना ठीक नहीं।"

"यह दर्द अकेले तुम्हारा नहीं। ऐसा होता तो चुप रहा भी जा सकता था।

भैया ! तुम्हें मन को खुश रखना चाहिए। तुम्हारा खुश रहना राज्य के हित की दृष्टि से बहुत ही आवश्यक है। इसके साथ जिसने अपने हृदयान्तराल से तुमसे प्रेम किया है, उस लड़की के लिए तुम्हारे इस तरह के व्यवहार से कितना दुःख हुआ होगा—इस बात पर भी तुमने कभी विचार किया है ?"

"वह उसका भाग्य है। उसे ठीक करने की आवश्यकता नहीं।"

"हमारी वजह से, हमारे व्यवहार से दूसरों का भाग्य जब बदलता हो तब हमें इस विषय में स्पष्ट रहना होगा न ? भैया ! वह लड़की जिसने तुमसे प्रेम किया उसने कभी सीधा ऐसा कोई व्यवहार किया है जिससे तुम्हारा दिल दुखे ?"

"उसने सीधा तो कुछ नहीं किया। परन्तु उसके परिवार का व्यवहार ठीक नहीं है। इसलिए उस घराने से सम्बन्ध रखना उचित नहीं।"

"यदि यही तुम्हारा निर्णय है तो तुम उस लड़की को कारण समेत स्पष्ट समझा दो और अपना रास्ता ठीक कर लो। उधर वह लड़की और इधर तुम—इस तरह दोनों को दुःखी होना और घुलते रहना तो उचित नहीं। यों घुलते रहने से तो दोनों में से किसी का भी कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। अगर मुझसे तुम न कहना चाहो तो मत कहो। मैं जोर नहीं डालूँगा। असली बात मालूम हो तो कुछ हल निकाला जाये इसी आशा से मैंने यह विषय छेड़ा है। इतना ही। तुम स्वयं ही उस लड़की से सीधा मिल लो और एक स्पष्ट मत अपने में बना लो। तुमने कभी उस लड़की से या उसके माँ-बाप से बात की है क्या ?"

"नहीं, यदि बात करने जायें तो वे कोई न कोई कारण बताकर बात को ठीक बैठाये बिना नहीं रहेंगे। इसलिए बात करने से कोई प्रयोजन नहीं निकलेगा।"

"कम से कम माँ से इस विषय में बात की है क्या ?"

"प्रभु का असली मतलब ही यह था कि यह बात माँ को मालूम न हो।"

"तो मामला बहुत पेचीदा है। कुछ भी हो, मेरी अल्पबुद्धि में तो यही समझ में आता है कि उनके घरेलू व्यवहार कुछ अच्छे नहीं। तुमने भी यही बताया। तुममें जब यह भावना रही कि उनका व्यवहार अच्छा है तब तुममें उस ओर अधिक प्रीति पैदा हुई। तुम्हारी उस भावना के बदलने में कोई न कोई ऐसी घटना अवश्य हुई होगी। बस उसी का ही फल है न जो तुममें यह परिवर्तन हुआ है ?"

"हाँ"

"इस घटना में उस लड़की की क्या भूमिका रही है ?"

"मैं कुछ नहीं जानता। हो भी सकती है और नहीं भी।"

"इसलिए तुम दिल खोलकर उस घटना के बारे में स्पष्ट बातचीत कर लोगे तो अच्छा रहेगा।"

"देखेंगे। हो सकता है, तुम्हारी बातों से कोई मार्ग प्रशस्त हो। राजधानी

लौटने के बाद सोचकर निश्चय करूँगा कि आगे क्या करना है।"

"ठीक है, ऐसा ही करो। परन्तु इसमें महासाध्वी माता भी न जाने—ऐसी कोई बात है तो उसे बहुत ही भयंकर होनी चाहिए। सोचना तक कठिन है। रेविमय्या जाओ, घोड़ों को ले आओ, चलें। कहीं हेग्गड़ेजी स्वयं ही खोजते हुए यहाँ न आ जायें।" बिट्टिदेव ने कहा।

वे सब मुकाम पर पहुँचे। वहाँ एक दिन और ठहरकर राजधानी की तरफ प्रस्थान किया।

बिट्टिदेव और शान्तला एकान्त में मिल न सके तो भी जब उन दोनों ने परस्पर देखा था तभी मन ही मन आँखों ही आँखों में बात कर डाली थी। इस मौन क्रिया में कितनी ताकत है यह दोनों को अच्छी तरह विदित हो गया था। ऐसा महसूस होने लगा था कि उनका अनुराग एकदम हज़ार गुना बढ़ गया है।

पारिवारिक या राजनैतिक किसी भी विषय पर किसी ने कोई बातचीत नहीं की।

सबसे आश्चर्य का विषय यह था कि रेविमय्या ने कभी किसी हालत में मुँह नहीं खोला। एक बार शान्तला ने उसे छेड़ा भी, "क्या रेविमय्या, तुम अम्माजी को भूल गये ?"

तुरन्त उसकी आँखें भर आयीं। बोलने का प्रयत्न किया परन्तु अधिक बोल न सका। "मौन में बात करने से भी अधिक शक्ति है, अम्माजी···" इतना ही वह कह सका था। उसका कण्ठ रुँध रहा था।

"अब की बार इस पाठ का अभ्यास सबने अच्छी तरह किया है – ऐसा प्रतीत होता है। बड़े राजकुमार कल महाराज बननेवाले हैं इसलिए यह गाम्भीर्य उनके लिए तो शोभायमान है। लेकिन बाक़ी लोगों को इस तरह गुमसुम रहना चाहिए ?"

"अम्माजी, प्रभु से बिछुड़ने के बाद एक तरह का गम्भीर वातावरण ही फैला है। किसी में कोई उत्साह नहीं। यान्त्रिक ढंग से दिन गुजरते जा रहे हैं। वास्तव में सबको यह सारा असहज ही लग रहा है। इस असहज व्यवहार से कोई दूर रह नहीं सकता। राजधानी का जीवन ही ऐसा है। अब कुछ परिवर्तन सबमें लक्षित हो रहा है। अब जब तुम जल्दी ही राजधानी आओगी तो सब कुछ ही मालूम हो जायेगा। परन्तु एक बात याद रहे। हमारे बड़े राजकुमार सहित सब लोगों में आप लोगों के प्रति एक-सी ही सद्भावना है। वर्तमान मानसिक दुःखद स्थिति समय की गति के साथ-सा बदल जायेगी।" यों अपना आशावादी मनोभाव व्यक्त कर रेविमय्या ने बात समाप्त कर दी।

यौवराज्याभिषेक के आमन्त्रण की प्रतीक्षा करते हुए हेग्गड़े परिवार ग्राम में

ही रहा। सिगिमय्या और उनका परिवार जो यादवपुरी से आया था, वापस चला गया।

युवरानीजी और राजकुमारों के राजधानी में लौट आते ही दो कार्यों के सम्बन्ध में निर्णय हुआ। एक, कुमार बल्लालदेव का यौवराज्याभिषेक महोत्सव और दूसरा, सिगिमय्या को ग्राम में हेग्गड़े के पद पर नियुक्त करना और हेग्गड़े मारसिंगय्या को राजधानी में बुलाना। इसके लिए आज्ञा-पत्र निकाला दिया गया।

हेग्गड़े मारसिंगय्या अगहन के समाप्त होने के पूर्व ही सपरिवार राजधानी में आ गये और फिर से अपना पहले का कार्यभार संभालना शुरू कर दिया। माघ के महीने में ही यौवराज्याभिषेक करने का निश्चय हुआ था। इसलिए सभी लोगों को काम इतना अधिक करना था कि किसी को काम से फ़ुरसत ही नहीं मिल रही थी। चामव्वे को भी कुछ कार्यों की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी थी। यों तो दण्डनायिका फिर से हेग्गड़ती के राजधानी में आने पर कुढ़ रही थीं, फिर भी उस ओर उसका विशेष ध्यान नहीं गया। अब की उसके सोचने-विचारने का ढंग ही कुछ और बना था। अब वह सोच रही थी कि अपने इष्टार्थ को साधने का यह अच्छा मौक़ा है और अपने को बहुत अच्छी और निष्ठावान् साबित करूँ। इसके लिए परिश्रम करने से मैं पीछे हटनेवाली नहीं—इस तरह की भावना प्रभुत्व में हो जाये—ऐसा विचार कर उसने कार्यारम्भ करने की ओर पहला कदम उठाया। उसका यह निर्णय था कि महासन्निधान, युवरानीजी और राजकुमार बल्लाल को अपनी कार्यदक्षता द्वारा वह सन्तुष्ट कर लेगी। दोनों पुरुषों को सन्तुष्ट करना उसके लिए कोई समस्या नहीं थी। परन्तु युवरानीजी को समझना उनके अन्तरंग तक पहुँचना एक कठिन कार्य समझ रही थी। इसलिए युवरानीजी के निकट आने के लिए उसने हेग्गड़ती और उसकी बेटी के ही जरिये मार्ग सुगम कर लेना सोचा। इसके लिए उसने उन लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने तथा अपनी भलमनसाहत दिखाकर उनके मन में अपने प्रति उत्तम भाव उत्पन्न करने के लिए अपने व्यवहार को रूपित कर लिया और उसी तरह बरतने लगी।

इन लोगों में से किसी के मन में दण्डनायिका चामव्वे के लिए कोई सद्भावना नहीं थी। फिर भी उसके प्रति उदारता से ही बरतते थे, यही कहना चाहिए। यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि इन लोगों ने बड़ी सहिष्णुता से उसके साथ बरताव किया। चामव्वे का सर झुक तो गया फिर भी दांव नहीं लगा। दिन गुज़रते गये।

यौवराज्याभिषेक के लिए मुहूर्त निश्चित हो गया था। बड़े पैमाने पर सारे इन्तज़ाम हो रहे थे। परन्तु इस मुहूर्त के एक पखवारे के पहले महाराज विनयादित्य पार्श्व-वायु के शिकार हो गये। बिस्तर की शरण ले ली। इस वजह से मन्त्रणा सभा बैठी और वर्तमान परिस्थिति पर विचार हुआ और निर्णय लिया गया कि महाराज की स्वीकृति के अनुसार कुमार बल्लाल को महाराजाभिषिक्त कर सिंहासन पर आसीन कराया जाये। इसके अनुसार ही घोषणा कर दी गयी।

घोषणा सुनते ही चामव्वे के दिमाग़ में शैतान घुस बैठा। वह सोचने लगी कि इसमें कुछ कुतन्त्र है। सम्भव है कि कल-परसों यह ख़बर भी फैल जाये कि कुमार बल्लाल का विवाह शान्तला से होगा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसका पता कैसे लगावे ? यह तो वह जानती ही थी बल्लाल पहले शान्तला को उदासीन भाव से देख रहा था। लेकिन अब एक सम्मान का भाव उनमें आ गया है, उसके प्रति ! इसका रहस्य जानना चाहिए। शान्तला की ऐसी ही स्थिति है। बल्लाल से हँसते-हँसते वातचीत करने की रीति को देखने पर ऐसा लगता है किअभी हाल में जो बेलुगोल हो आये तब कुछ खास बातें हुई हों। इसलिए वह पद्मला की परवाह उतना नहीं कर रहा है। भगवान् भी कैसा मूर्ख है कि उसने उसे पद्मला से भी अधिक सुन्दर बनाया है। इस प्रकार दण्डनायिका का कलुषित मन कुछ अण्ट-सण्ट विचार कर रहा था। उसका पता लगाने का उसने निश्चय किया। पद्मला को भी शान्तला के साथ करने का विचार किया। और इस दिशा में कार्य-प्रवृत्त हुई।

माँ ने जो कुछ कहा पद्मला वह सब ध्यान से सुनती गयी। उसे भी लगा कि यदि उस तरह हुआ तो उसमें आश्चर्य ही क्या है। महारानी बनने की किसे चाह नहीं होगी ? शान्तला की भी इच्छा हो गयी हो। इसमें गलती ही क्या है ? अब भी मेरा मन कह रहा है कि राजकुमार की यह इच्छा नहीं होगी। फिर भी इधर कुछ समय से राजकुमार को मेरे बारे में कुतूहल न रह जाने के कारण माँ के कथनानुसार हो भी सकता है। कौन जाने ? इस तरह पद्मला का मन डाँवाडोल हो रहा था। सत्य क्या है इसे जानने में कोई गलती नहीं। जैसे-जैसे मुझे इसके सत्यासत्य को जानने के लिए उपाय सूझेगा, उसके अनुसार जानने की कोशिश करूँगी—यह बात उसने अपनी माँ से कह भी दी।

एक दिन समय देखकर राजमहल के ओसारे में अकेली शान्तला को पाकर पद्मला ने कहा, "आपसे तनहाई में मिलने का इरादा है। आप मान लें तो हमारे यहाँ चलेंगी।"

"आज नहीं। हो सकता है कि कल आऊँ।" शान्तला बोली।

"आज कोई अन्य कार्य है ?"

"हाँ।"

"क्या है, मैं जान सकूँगी ?"

"राजघराने के बारे में जो भी जो कुछ जानते हैं उन्हें अपने ही मन में रखना चाहिए, दूसरों से नहीं कहना चाहिए।"

"तो वह कोई रहस्य होगा।"

"आप भी जानती होंगी। मैं क्या जानूँ ? आपको जो बात मालूम है उसके बारे में मैं कभी नहीं पूछूँगी।"

"अच्छा, जाने दीजिए, राजघराने की बातों से हमें क्या मतलब?" पद्मला ने एक असहज रीति से कहा।

"ऐसा कहेंगी तो कैसे चलेगा ? आप कल की होनेवाली महारानी हैं।"

पद्मला ने एक निराशापूर्ण हँसी हँस दी। कहा "आपसे यह किसने कहा ?"

"छोटे राजकुमार ने बहुत समय पूर्व कहा था।"

"समय बदलने के साथ मन भी बदल सकता है न ?"

"न, न। मैं विश्वास नहीं करती। पोय्सल वंशी वचन भंग नहीं करेंगे।"

"महारानी बनने की आशा का शिकार बनकर, जादू चलाकर अपने वश में कर लेने की चाह करनेवाली लड़कियों की कमी तो नहीं है।"

"तो आपका अनुमान है कि ऐसी भी कोई लड़की है। किसी पर शंका है ?"

"हाँ है, इसीलिए तनहाई में बातचीत करनी चाही थी।"

"वह लड़की कौन है, बताइये। उसको मैं समझा दूँगी। स्त्री यदि एक बार किसी को अपना हृदय देती है तो सदा के लिए ही। उसका वह हृदय अन्यत्र विचलित नहीं होता। अगर वह लड़की विचलित होती है तो उसमें कुछ और तरह की इच्छा रहती है। ऐसी लड़की समाज के लिए हानिकारक बनती है। हम सब मिलकर उसका निवारण करेंगे।" शान्तला ने कहा।

"इतना आश्वासन आपसे प्राप्त हो तो मैं निश्चिन्त हूँ। आपको जब फुरसत हो तब यह सब विस्तार से बताऊँगी।" पद्मला बोली।

इतने में बिट्टिदेव वहाँ आया। "ओह ! छोटी दण्डनायिका और छोटी हेग्गड़ती में मन्त्रालोचना चल रही है क्या ?" उसने पूछा।

"यह जानते हुए कि अभी निकट भविष्य में महारानी बननेवाली हैं, तो यह छोटी दण्डनायिका सम्बोधन क्यों ?" शान्तला ने पूछा।

"भैया महाराज बनेंगे। फिर भी पट्टाभिषेक के होने तक तो वे भैया ही हैं न।" बिट्टिदेव ने कहा। बात तो विवरणात्मक रही। फिर भी उसके कहने के ढंग में शान्तला को कुछ असहजता लक्षित हो रही थी। क्या पद्मला की शंका और इस असहज रीति—इन दोनों में कुछ सम्बन्ध हो सकता है ? हो भी तो इस समय उसकी खोज करना या छेड़ना ठीक नहीं यह मानकर, "इतना ही कारण हो तो वह ठीक ही है" कहकर शान्तला ने पद्मला की ओर देखा। पद्मला के

चेहरे पर कुछ आशा की झलक उभर आयी थी।

"अच्छा, आप लोगों की मन्त्रालोचना चालू रहे" कहकर बिट्टिदेव चला गया। बाद में शान्तला ने कहा, "देखा, आपका भय निराधार है। आइये, महाराज के पट्टाभिषेक के समय हाथ में जो फल दिया जायेगा उसे मणियों से सजाना है।" —कहकर बात न बढ़ाकर पद्मला को ले गयी।

पद्मला ने जाकर अपनी माँ को सब बताया। पट्टाभिषेक समारम्भ सन्निहित होने से सबका ध्यान उस ओर रहने के कारण अन्य किसी बात के लिए मौक़ा ही नहीं रहा।

राजकुमार बल्लाल का पट्टाभिषेक समारम्भ शक संवत् 1022 के विक्रम संवत्सर माघ वदी सप्तमी के दिन शास्त्रोक्त विधि के अनुसार बड़ी धूम-धाम के साथ सम्पन्न हुआ।

एरेयंग प्रभु के सिंहासनारोहण सभारम्भ की वेला में प्रजा को दुख-सागर में डूबना पड़ा था। आज वह आनन्दोत्साह के चरम तक पहुँच गयी थी। यदि कोई दुःख था तो वह यह कि महाराज विनयादित्य शय्या-शायी थे। इसके सिवाय अन्य कोई दुःख न था।

एचलदेवी की आँखों में आनन्द और दुःख के संगम के अश्रु भर आये थे। आनन्द और दुःख इन दोनों के बीच का बाँध शायद टूट गया था। पतिदेव की आज्ञापालन करने की तृप्ति से उनका अन्तःकरण भर आया था।

पट्टाभिषेक महोत्सव के साथ ही साथ महाराज के जुलूस का भी प्रबन्ध किया गया था जिससे सारी प्रजा को अपने नये महाराज के दर्शन करने का सुअवसर मिल सके।

राजधानी के घर की छतों और महलों के कगूरों पर पोय्सल झण्डे फहर रहे थे।

"पोय्सल सन्तानश्री की जय हो, चिरायु हो, महाराज बल्लाल प्रभु चिर-जीवी हों।" की ध्वनि से दसों दिशाएँ गूंज उठीं।

"अभी महाराज का पाणिग्रहण मेरी लड़की से हो गया होता तो कितना अच्छा था! खैर वह समय भी दूर नहीं"—यही समझकर एक तरह से दण्ड-नायिका सन्तुष्ट हो रही थी।

उस दिन रात को राजमहल में प्रवेश करने के बाद युवराज बल्लाल ने महाराज विनयादित्य से आशीर्वाद प्राप्त किया। इस अवसर पर बिट्टिदेव, उदया दित्य और प्रधान आदि सबने स्वामिनिष्ठा की शपथ ली।

धीमी आवाज़ में महाराज विनयादित्य ने कहा, "महाराज अभी छोटी आयु के हैं। आप लोगों की निष्ठा पर उनका और राज्य का भविष्य निहित है। आप लोगों की निष्ठा सदा एक सी बनी रहे।" इतना कहकर सभा का विसर्जन

किया।

सब लोगों के चले जाने के बाद महाराज विनयादित्य ने युवरानी को बुलवाया और बिठलाकर उसने कहा, "बेटी, आज से तुम महामातृश्री राजमाता हो। इस समारम्भ के सफल रीति से सम्पन्न होने तक जीवित रखने की प्रार्थना अर्हन् से की थी। वह करुणामय है। अब निश्चिन्त हुए। अब हमारा जीवन थोड़ दिनों का है। निमित्त मात्र के लिए बड़े बने रहकर एरेयंग प्रभु के मरणोत्तर काल के दिन हमने व्यतीत किये। अब आगे से राजमहल का सारा बड़प्पन महासाध्वी, सहनशील, करुणामयी तुम्हारे जिम्मे है।"

एचलदेवी ने मौन भाव से उनकी वन्दना की, चरण छुए।

महाराज विनयादित्य ने हृदय से आशीर्वाद दिया।

इसके पश्चात् महाराज विनयादित्य बहुत दिन शय्याशायी न रहे। उस संवत्सर के समाप्त होने से पहले ही वे सुरलोक सिधार गये।

महाराज विनयादित्य की मृत्यु हो जाने से महामातृश्री एचलदेवी पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी आ पड़ी, यह कोई कहने की आवश्यकता नहीं। सिंहासनारूढ़ महाराज बल्लाल यौवनोचित उत्साह से निष्ठा के साथ अपने उत्तरदायित्व को निभाते रहे। महामातृश्री एचलदेवी के अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति चिण्णम दण्डनाथ और हेग्गड़े मारसिंगय्या थे। प्रधान गंगराज के प्रति गौरव की भावना रही। फिर भी दण्डनायिका चामव्वे प्रधान की बहिन होने से, प्रधान जी पर आत्मभाव को रखने की उनकी इच्छा नहीं हो रही थी। परन्तु किसी को दूर नहीं रख सकती थीं। उन्होंने सोचा कि सम्पूर्ण राज्याधिकार सूत्र अपने बच्चों के हस्तगस्त होने से पूर्व सबके साथ विचार-विनिमय करते रहना ही योग्य है। बिना किसी असमाधान या असन्तुष्टि के राज्य परिपालन व्यवस्थित रूप से चलने लगा था। वास्तव में इस मौक़े पर प्रधान गंगराज ने अपनी सम्पूर्ण निष्ठा दिखायी थी। महादण्डनायक मरियाने ने भी उसी तरह निष्ठा से काम लिया था; फिर भी उनके प्रति महामातृश्री एचलदेवी या महाराज बल्लालदेव आत्मीयता दर्शाने का मन नहीं बना सके थे। तो भी उनसे व्यवहार इस तरह करते रहे कि मानो वे उनके अत्यन्त निकट के हैं। राजमहल के मांगलिक कार्यक्रमों में दण्डनायिका चामव्वे और उसकी बच्चियाँ रहा करती थीं; फिर भी विशिष्ट कार्यकलापों में उन लोगों का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता था। प्रधानजी की पत्नी लक्कलदेवी को अग्रस्थान सहज

ही प्राप्त हुआ था, वे स्वभाव से ही ऐसी महासाध्वी मणि थीं। दण्डनायिका चन्दलदेवी और हेग्गड़ती माचिकब्बे ही विशेष उत्तरदायित्व से महामातृश्री एचलदेवी के आदेशानुसार कार्यनिर्वहण करती रहीं।

महादण्डनायिका चामब्बे के मन में इन लोगों के प्रति इतना अधिक गुस्सा आता था कि इन सभी को एकदम पीस कर रख दे। परन्तु किसी तरह की प्रतिक्रिया कर सकने का उसे साहस नहीं होता था। वह समझती थी कि बल्लाल अपना है, उनसे सब ठीक करा लूंगी। मगर वह बल भी नहीं रहा। वह सोचती, "इतने अच्छे बल्लाल को क्या से क्या बना दिया इन स्वार्थियों ने? भगवान् अन्धा नहीं। वह सब देख रहा है। कभी न कभी वह इन लोगों को अच्छा पाठ पढ़ायेगा। तब उन लोगों की जो हालत बनेगी उसे मैं देखूंगी। मेरे प्रति जो लापरवाही की है, तब इसके कारण उन लोगों को पछताते हुए हाय-तोबा करना पड़ेगा। इस सबका कारण उस मनहूस वामशक्ति पण्डित के सर्वतोभद्र यन्त्र हैं। उन यन्त्रों ने उलटा हम ही को डाँवाडोल बना दिया है। उन्हें कूड़े में फेंक दिया, फिर भी उनका प्रभाव हम ही को सता रहा है। उस हेग्गड़े के घर के अहाते में एक सुन्दर बगीचा बनाना चाहते हैं। उसके लिए खाद की खोज कर रहे थे। हमारे यहाँ के कूड़े का सारा गोबर वहाँ भिजवाकर उसके साथ इन मनहूस यन्त्रों को जहाँ पहुँचाना था, वहाँ पहुंचा दिया है। उस अहाते की मिट्टी के लगते ही वे यन्त्र अपना प्रभाव दिखायेंगे ही। तब मैं अपना हथकंडा दिखाऊँगी। आज खुशी से हेग्गड़ती जो फूल कर कुप्पा बन रही है उसे तब मिट्टी चाटनी पड़ेगी।" इस प्रकार महादण्डनायिका तरह-तरह की अण्ट-सण्ट बातें सोचती रहती थी।

इसी समय एक विचित्र बात हुई। महादण्डनायक के घर में पढ़ानेवाली अध्यापिका का कवि बोकिमय्या और नागचन्द्र के साथ परिचय हो जाने एवं इस अध्यापक वृन्द के बीच मात्सर्य रहित एक परिशुद्ध मैत्री भाव पैदा हो जाने से जब कभी इन सबकी आपस में भेट हो जाती थी। दोनों विद्वान् कवि और महासाध्वी, मितभाषिणी, महाज्ञानी कवयित्री, सरस्वती के ये तीनों निष्ठावान् आराधक जब एक बार मिले तो उन्होंने आपस में विचार-विनिमय करके प्रस्ताव रखा कि राजकुमार, दण्डनायक की बेटियों और शान्तला—इन सबका पठन-पाठन राजमहल ही में क्यों न हो। महामातृश्री और अन्य सभी ने यह स्वीकार कर लिया पर महाराज बल्लालदेव ने अनुमति नहीं दी। महाराज की अनुमति न हो तो कोई क्या कर सकता है? वह सलाह जैसे उत्पन्न हुई वैसे ही रह गयी।

एचलदेवी को इसके लिए दुःख नहीं हुआ, किसी को दुःखी होने की आवश्यकता भी नहीं थी। परन्तु महाराज बल्लालदेव की इस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप कुमार बिट्टिदेव अवश्य चिन्तित हुए। उन्होंने शान्तला से इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया। शान्तला से आग्रह किया कि वह पद्मला के मन को समझाने की

कोशिश करे। बल्लाल को ठीक न जँचने के कारण वह अभी कुछ दिनों से चामला से भी सीमित व्यवहार रखता था। परन्तु ऐसा नहीं हुआ था कि उनमें आपस में जो बन्धुत्व रहा वह कम हुआ हो। उसका लक्ष्य एक था, वह यह कि पद्मला और बल्लाल के बीच जो अनबन हो गयी है वह फिर से जुड़ सकती हो तो अच्छा है। इसमें आनेवाली कठिनाइयों को दूर करें ताकि दोनों में पहले का-सा सरस भाव उत्पन्न होने का रास्ता खुल जाये। किसी भी मार्ग को बन्द नहीं रखना चाहिए। हमारा व्यवहार बल्लाल को परेशानी पैदा करने के लिए नहीं है, यह सोचकर वह बहुत सतर्कता से हर बात पर विचार किया करता था।

बेटे के सिंहासनारोहण के पश्चात् एचलदेवी उसके विवाह की बात उठाने की सोच रही थी। पक्षाघात पीड़ित महाराज विनयादित्य ने भी एचलदेवी से बातचीत कर बल्लाल का विवाह जल्दी करा देने के लिए ही कहा था। वे इसके बारे में सोच रही थीं कि उसके सामने इस विषय को किस ढंग से छेड़ें। उनके मन में पद्मला के विषय में कोई विरोधी भाव न थे। क्योंकि वह जानती थीं कि बेटा हृदय से उससे प्रेम करता रहा···लेकिन पद्मला का व्यवहार भी उसकी माँ जैसा हो जाये तो उससे अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए वह खुद उस पर जोर नहीं डाल सकती थीं। उनकी यह भावना थी कि यदि भगवान् की प्रेरणा से यह छूट जाये तो अच्छा ही है। वह अपने मन में विचारती थी कि बल्लाल खुद ही उसके विषय में अनादर की भावना जब रखता है तब उससे इस विषय की चर्चा करते समय बड़ी सतर्कता बरतनी होगी। एचलदेवी यह जानती थीं कि बिट्टिदेव और शान्तला में परस्पर बहुत गहरा प्रेम है। इस तरह का प्रेम अगर न हुआ होता तो वह क्या सोचती सो कहना आसान ही था। यह तो वह अच्छी तरह समझ गयी थीं रानी बननेवाली के लिए जिन गुणों का होना आवश्यक है वे सब गुण शान्तला में हैं। परन्तु अब ये विचार कार्य रूप में परिणत होनेवाले नहीं है। ऐसी हालत में विवाह के विषय में बात करनी हो तो माँ को कम-से-कम इस बात का निश्चित ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है कि कन्या कौन हो। कहाँ-कहाँ ऐसी लड़कियाँ होंगी—इसके बारे में जानकारी संग्रह करना चाहती थीं। पद्मला की बहन चामला के बारे में एक तरह से अच्छी भावना एचलदेवी की थी। भला क्यों न होनी चाहिए?—सोचते हुए यह विचार आया कि यह हो सकता है। फिर भी वह दण्डनायिका चामव्वे की बेटी होने के कारण बल्लाल के मनोगत को जाने बिना इस सम्बन्ध में बात उठाना अनुचित ही लगा। वह इस विषय में किसी निर्णय पर पहुँच न पायी थी कि इतने में वृद्ध महाराज विनयादित्य का स्वर्गवास हो गया। विवाह का प्रश्न भी स्थगित हो गया।

पट्टाभिषेक महोत्सव के बाद स्वयं वृद्ध महाराज विनयादित्य ने ही एक बार बल्लाल से विवाह का प्रश्न उठाया था। बल्लाल ने "महासन्निधान पहले निरोग

हो जायें, फिर इस बारे में सोचेंगे" कहकर प्रश्न को टाल दिया था। यद्यपि वह समझता था कि यह सवाल अब उठता ही रहेगा। ग्राम में रहते समय बल्लाल से बिट्टिदेव ने इस सम्बन्ध में प्रश्न उठाया भी था। अब माँ भी सुझाये बिना न रहेगी। इस समस्या का हल आसानी से निकल आता, यदि महादण्डनायक ने पद्मला का विवाह कर दिया होता। उन्होंने उसका विवाह नहीं किया। महादण्डनायक मरियाने ने या दण्डनायिका चामव्वे ने कहीं किसी से इस सम्बन्ध में बात तक नहीं उठायी। पद्मला ने क्या गलती की है—इस सम्बन्ध में एक निश्चित और सकारण मत नहीं होने के कारण, भाई बिट्टिदेव के कहे अनुसार उस लड़की से सीधे बातचीत कर लेनी चाहिए। असमंजस में पड़े रहकर अब अन्दर-अन्दर ही घुलते रहने का समय नहीं रहा, इससे छुटकारा पाने के उपाय में बल्लाल सोचता ही रहा कि इतने में महाराज विनयादित्य का स्वर्गवास हो गया। इससे यह समस्या तात्कालिक रूप से टल गयी, साल भर के लिए। काश! पद्मला का विवाह हो जाय तो यह समस्या ही न रहे—यह सब बल्लाल सोचता रहता। फिर भी रोज सुबह-शाम किसी न किसी कारण से दण्डनायक मरियाने से मिलना होता ही रहता था। कभी-कभी पद्मला, उसकी बहिनों और उसकी माँ के आमने-सामने होने के मौक़े भी आ जाते थे। अगर दोरसमुद्र को छोड़ दें तो इससे भी बच लेंगे—यों भी वह सोचता था। ये सब विचार मन में रखकर वह अपनी माँ के पास गया और बोला—"माँ, हमने प्रभु के सभी और्ध्वदैहिक संस्कार यगची नदी के तट पर किये। महासन्निधान के भी संस्कार कर्म वहीं करने की इच्छा है। साल भर के लिए वेलापुरी क्यों न जाया जाये?"

"विचार अच्छे हैं। प्रधानजी से विचार-विमर्श करेंगे।" एचलदेवी ने कहा।

विचार-विमर्श के बाद निर्णयानुसार महामातृश्री, महाराज बल्लाल, बिट्टिदेव, उदयादित्य, चिण्णम दण्डनाथ और डाकरस दण्डनाथ—ये साथ मिलकर वेलापुरी चले गये। हेग्गड़े मारसिंगय्या दोरसमुद्र ही में रहे।

यह कहने की ज़रूरत नहीं कि कवि नागचन्द्र भी वेलापुरी गये।

बल्लाल के हित की दृष्टि से यह व्यवस्था आवश्यक होने पर भी, हेग्गड़े परिवार के दोरसमुद्र ही में ठहर जाने के कारण बिट्टिदेव और एचलदेवी को अपने चाहनेवालों का साथ न रह सकना कुछ खटकता ज़रूर था। परन्तु बल्लाल का हित-चिन्तन सबसे प्रधान था यह बात को सब लोग जानते थे इसलिए सभी को अपना मन परिस्थिति के अनुसार बना लेना पड़ा।

बल्लाल की मन:स्थिति से प्रधान गंगराज अच्छी तरह परिचित थे। उन्हें अपनी बहिन की गलती का पूरी तरह अहसास था। कभी-कभी पत्नी की बातों में आ जाने पर भी मरियाने दण्डनायक के मन में बुरे विचार नहीं थे, यह भी प्रधानजी जानते थे। उनकी भानजियाँ निर्दोष थीं और बड़ी भाँजी को उन्होंने कभी एक वचन भी दिया था। वह सब अच्छी तरह समझने के बावजूद वह जानते थे कि इस विषय को स्वयं छेड़ेंगे तो वह गलतफहमी का कारण बन जायेगा। इसी वजह से दण्डनायक को शान्त एवं सहनशील होकर रहने की सलाह उन्होंने दी थी। "दूसरे वर की खोज क्यों न करें? कभी बचपन में वचन दिया हो सो यदि उसी बात पर अड़े रहे तो उस लड़की का कल क्या हाल होगा? उसका जीवन ही नष्ट हो जायेगा"—यों उन्होंने एक दो बार कहा भी। तब मरियाने दण्डनायक ने कहा था, "पद्मला से इस बारे में पूछे बिना आगे कैसे बढ़ें? वह जिद्द पकड़ के बैठी है। कहती है कि अगर विवाह करूँगी तो उन्हीं से करूँगी जिन्हें मैंने पहले से अपना दिल दिया है दूसरे से विवाह करने पर ज़ोर डालेंगे तो मैं किसी कुएँ या तालाब में कूदकर मर जाऊँगी।" यों भावी स्थिति जटिल थी। पता नहीं, उसके भाग्य में क्या लिखा है। देखना है। अब एक ही मार्ग बच रहा है। जिसने गलती की वह खुले दिल से अपनी गलती स्वीकार कर महामातृश्री एवं महाराज के पाँव पड़े और क्षमा याचना करे। यदि वे क्षमा कर दें तो पद्मला के लिए भाग्य की बात हो सकेगी।—प्रधान गंगराज ने अपनी राय बता दी।

दण्डनायिका की भावना थी कि यों अपमानित होकर जीने से मरना बेहतर है। उसके सामने यह सवाल था कि लड़की के हित से भी मान-प्रतिष्ठा का प्रश्न बड़ा है। अब उसे इस समस्या का सामना करना पड़ा। फिलहाल एक साल तक तो इस बात पर विचार करने के लिए समय मिल गया न? यह तो जानी-मानी बात है कि हेग्गड़े की पत्नी और उसकी लड़की पर विद्वेष और असूया के भाव तो थे ही। इसके साथ यह भी दृढ़ विश्वास था कि हेग्गड़े के अहाते के बगीचे के लिए जो खाद भिजवायी थी उसके साथ जिन यन्त्रों को भी भिजवा दिया उनका कुछ न कुछ बुरा असर हो ही जायेगा। इतना सब होते हुए भी उसने सोचा कि हेग्गड़ती के साथ मैत्री बढ़ाना चाहिए। यही सब उसे उचित लग रहा था। इन दोनों में मैत्री अगर विशेष रूप से न भी बढ़ सकी तो कम से कम लड़कियों को हेग्गड़े की बेटी के साथ अधिकाधिक आत्मीयता बढ़ाने के विचार उसके मन में दृढ़ होते गये। अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करने के लिए उसे मौक़ा भी मिल गया था। हेग्गड़े परिवार के दोरसमुद्र ही में रहने के कारण अपने और उनके घराने के अध्यापकवर्ग कभी-कभी मिलते और कभी-कभी दोनों के बच्चों का एक जगह पठन-पाठन और विचार-विमर्श आदि कराते रहने से बच्चों की भलाई हो सकेगी—इसी बहाने अपने इन विचारों को कार्यगत करने को उसने अपना प्रयास आरम्भ

किया। फलस्वरूप शान्तला का दण्डनायिका के घर, और दण्डनायिका की बेटियों का हेग्गड़े के घर आना-जाना शुरू हो गया और यह एक आदत-सी हो गयी।

चामला और शान्तला में पहले से जो स्नेह था वह अब बढ़ने लगा। प्रकारान्तर से पद्मला के मानसिक द्वन्द्व से परिचित हो जाने के कारण उसके विषय में अधिक अनुकम्पा शान्तला की रही। इस वजह से वह उसकी ओर अधिक ध्यान देती थी। धीरे-धीरे परस्पर आत्मीयता के भाव बढ़ते गये। इसके फलस्वरूप हेग्गड़े के घर के अहाते के बगीचे के काम में दण्डनायिका की बच्चियाँ भी शान्तला के साथ सहज भाव से मिलकर काम करने लगीं।

उस बगीचे में एक फुलवाड़ी भी बनी थी। इसके लिए एक बाँसों से बना छप्पर भी बनाया गया था। पुष्पलताओं को सहारा देकर फैलाने के लिए उन लताओं को रोपने के वास्ते क्यारियाँ बनायी जा रही थीं। ज़मीन खोदकर बालू-मिट्टी और खाद उन क्यारियों में भरकर तैयार करने का काम चल रहा था। नौकर बूतुगा ने टोकरी में खाद भरकर ला रखा। कलछा लेकर खाद उठाकर शान्तला ज्योंहि क्यारी में डालने लगी कि खाद के साथ कुछ चमकती चीज़ दिखायी पड़ी। शान्तला ने कुतूहल से उसे हाथ में उठाकर देखा। सोने के ताबीज थे। उस टोकरी के पूरे खाद को उन्होंने फैलाकर खोज की तो सोने के चार ताबीज़ निकले। उसने उन्हें साफ धुलवाकर अपनी माता को बताये; तब दण्डनायिका की बेटियाँ भी साथ थीं।

हेग्गड़ती ने उन्हें देखा और कहा, "अम्माजी, यह खाद दण्डनायिका के घर से आयी है। इसलिए ये ताबीज़ उन्हीं के घर के होने चाहिए। इन बेटियों के हाथ उनके घर भिजवा देंगे। मालिक के आने पर उन्हें भी बता देना।"

"अप्पाजी के द्वारा महादण्डनायकजी के पास सीधे पहुँचा देना अच्छा होगा न?"—शान्तला ने कहा।

"यह भी ठीक है। यही करेंगे।" माचिकब्बे ने कहा।

"ठीक है, इन्हें आप अपने ही पास रखे रहिए।" कहकर शान्तला अपनी सहेलियों के साथ पौधों को रोपने के लिए चली गयी। चमेली की बेल को पद्मला ने और मल्लिका की बेल को चामला ने रोपा और शान्तला ने नित्य मल्लिका की बेल को रोपा। ये तीन ही क़िस्मों की बेल उनके पास थीं। बोप्पी भी साथ रही। उसने कोई बेल नहीं रोपी। शान्तला ने बूतुगा से पूछा, "हरसिंगार को कहाँ रोपा गया है?"

नौकर बूतुगा जगह बताते हुए बोला, "यहाँ उसके लिए क्यारी बनायी है। यहाँ से हवा बहेगी तो उस फुलवाड़ी की तरफ बहेगी। इसलिए इसे इस जगह रोपना ठीक रहेगा।"

शान्तला ने उस स्थान को देखा। वह वाड़ी के उतर-पूर्व के कोने में थी।

उन्होंने उस स्थान को हरसिंगार के लिए ठीक माना। क्योंकि वहीं वन-चम्पा का पौधा भी था। हरसिंगार के साथ उसकी जोड़ी बैठ जायेगी। तुरन्त बोप्पि के हाथ से हरसिंगार के पौधे को वहाँ रोपवा दिया। जिस दिन अध्ययन बन्द रहता शान्तला फुलवाड़ी का काम देखती थी। आजकल दण्डनायक की बच्चियों के साथ एक तरह से मैत्री बढ़ जाने के कारण वे भी कभी-कभी इधर आती रहती थीं। ऐसे ही एक दिन ये सोने के तावीज़ मिले थे।

दण्डनायक की लड़कियों को इसलिए कुतूहल हो रहा था कि वे तावीज़ उन्हीं के घर की गोबर-खाद के अन्दर से निकले थे। वे उन्हें साथ ले जाने को उत्सुक थीं। बड़ों के ही बीच में यह बात तय हो इस कारण वे चुप रह गयीं। वे इस कुतूहल के साथ घर पहुँचीं।

माँ को देखते ही पद्मला ने सोने के इन तावीज़ों की बात कह दी। बात सुनते ही दण्डनायिका चामव्वे काँप उठी। एक तो उसने इस बात को अपनी बच्चियों से गुप्त रखा था, दूसरे यह कि रहस्य खुल गया था। तावीज़ों के घर वापस भेजे जाने की बात से भी उसमें भय व्याप्त हो गया था। मगर उसने बेटियों के सामने अपना भय प्रदर्शित नहीं होने दिया।

"हमारे घर की खाद में इन तावीज़ों का मिलना संभव ही नहीं। वह किसी दूसरे के घर की खाद होगी। उन्हें शायद भ्रम हो गया होगा। वह दण्डनायक के घर की खाद है—ऐसा पहचानने के लिए उसका कोई अलग रंग है?" दण्डनायिका ने कहा।

"नहीं, माँ, यही तो कह रहे थे कि वह खाद हमारे ही घर से गयी।"—चामला बोली।

"किसने कहा यह?"

"उनके यहाँ सभी यही कह रहे हैं।"

"तब तो उनका कोई दूसरा ही लक्ष्य है। तुम लोग इस बात को लेकर दिमाग़ ख़राब मत करो। मैं और तुम्हारे पिता इसे देख लेंगे। चलो, अब अन्धेरा होने को है। भोजन कर लो। दण्डनायकजी बेलापुरी गये हैं, उनके लौटने में देरी हो जायेगी।" यह कहती हुई किसी दूसरी बात को कहने के लिए कोई मौक़ा न देकर वह अन्दर चली गयी।

बच्चियों ने गुसलखाने में जाकर हाथ-पैर धोये, भगवान् को प्रणाम किया और भोजन करने के बाद अपने अध्ययन में जुट गयीं।

दण्डनायिका अपने कमरे में आयी; पान चबाती हुई पलंग पर बैठ गयी। अचानक वह काँप उठी, पसीना छूट गया। "हे भगवान्, मैं कुछ करने गयी तो हुआ कुछ और ही। वे तावीज़ फिर मेरे घर पहुँचेंगे तो जो भी बुरा होगा सब हमारा ही होगा न? हमारी बच्चियों का ही होगा न? नहीं, मैं ऐसा होने नहीं

दूंगी। मालिक से पहले ही कह दूंगी कि उसे स्वीकार न करें। मैं तो कह दूंगी, मगर ये मान जायँ तब न? अब पहले जैसी स्थिति नहीं। अगर मैं एक बार खाँस भी दूं तो जाकर वे भैया से कह देंगे। यह बात भैया को मालूम हो जाये तो आगे क्या होगा, कौन जाने। हे भगवन्, मालिक को ऐसी बुद्धि दो कि वे मेरी बात को मान लें। खाद को हेग्गड़े के घर जो भेज दिया, वह गलती हो गयी। शैतान फाटक से निकल गया समझा तो वह झरोखे से फिर अन्दर आ गया। मालिक को उन्हें छूना तक नहीं चाहिए। इसके लिए कोई न कोई उपाय ढूंढ़ना ही होगा।" ये ही बातें सोचती हुई दण्डनायिका पलंग पर पैर पसार कर तकिये से पीठ लगा बैठ गयी। "पता नहीं दण्डनायकजी किस वक़्त लौटेंगे। आते ही उनके मन को अपनी तरफ बना लेना चाहिए।"—यही सोचती वह बैठी रही। घर के अन्दर से बरतन-वासन की और चलने-फिरने की जो आवाज़ आ रही थी सो बन्द हो गयी और खामोशी छा गयी। दण्डनायिका उठ खड़ी हुई और कमरे से बाहर आकर इधर-उधर देखने लगी। सब जगह अन्धेरा फैला था। पूजाघर में दीया टिमटिमा रहा था। उसकी धुंधली रोशनी छायी थी। देकव्वा गहरी नींद में खुर्राटे ले रही थी। दण्डनायिका फाटक तक गयी, देखा कि अन्दर से कुण्डी लगी है या नहीं। फिर अपनी बच्चियों के कमरे की ओर चली। झांककर देखा, बच्चियाँ सोयी हुई थीं और एक ढिबरी टिमटिमा रही थी। उसे देखकर धीरे से किवाड़ लटकाकर अपने कमरे की ओर चल दी। देकव्वे के खुर्राटे और तेज़ होते जा रहे थे। दण्डनायिका का दिल धड़क उठा। छाती दबाये वहीं खड़ी रही। उसे डर का अनुभव होने लगा। कहने लगी—"हे भगवन्! कृपा करो, दण्डनायकजी कुशल पूर्वक लौट आयें। मुझे कभी डर नहीं लगा था, पता नहीं आज क्यों लग रहा है! दण्डनायकजी ने कहा था कि आ ही जाऊँगा।"

दण्डनायक बहुत रात बीतने पर भी नहीं आये, इस कारण भय का होना सहज ही था। अन्धेरी रात देख रात को वहीं ठहरकर उनके तड़के ही चले आने की बात उसे यदि सूझ जाती तो शायद डर दूर हो जाता। इसके अलावा उन सोने के तावीजों को दण्डनायक के हाथ सीधे पहुँचा दिये जाने की याद ने उसके डर को दुगुना कर दिया था। दूसरों को इन तावीज़ों की बात ही मालूम नहीं हुई थी। इसलिए उनको उनकी चिन्ता ही नहीं रही। वे निश्चिन्त होकर सो रहे थे। देकव्वे यह न समझकर कि उसके खुर्राटों से मालकिन डर जायेंगी, ज़ोर-शोर से खुर्राटे लेती बेखबर सो रही थी। दण्डनायिका को लगने लगा कि वह अपने घर में न रहकर किसी अपरिचित स्थान में रह रही है और इस तरह का भय ऐसी भ्रान्ति के कारण उसे होने लगा था। वह न आगे बढ़ सकी, न पीछे; निस्सहाय होकर ज्यों की त्यों वहीं खड़ी रही। ऐसे वक़्त गुस्सा बढ़ना सहज ही है। अपनी इस हालत का कारण सोये पड़े बेचारे दडिगा को समझा। दण्डनायिका का ख़्याल था कि दडिगा को

जागते बैठे रहना चाहिए था। अपना गुस्सा वह दडिगा पर उतार देना चाहती थी। बेचारा कर ही क्या सकता था? रोज की तरह अपना सारा कामकाज समाप्त कर देकब्बे के भी सो जाने के बाद, सभी दरवाज़ों को अच्छी तरह बन्द करके सो गया था। महल के पहरेदार खुली तलवार हाथ में लिये पहरे पर अहाते के सदर दरवाज़े पर तैनात थे। इन बातों की ओर दण्डनायिका का ध्यान ही नहीं गया। दडिगा पर गुस्से के कारण दण्डनायिका का बुरा हाल था। उसी वक़्त गश्ती सिपाहियों ने सीटी बजायी, दूसरी ओर से दूसरे सिपाही ने सीटी के उत्तर में सीटी बजायी। इन गश्ती सीटियों की आवाज़ से दण्डनायिका का डर कुछ कम हुआ। अब वह समझ सकी कि वह दोरसमुद्र में अपने ही महल में है। धीरे से प्रधान दरवाज़े तक गयी और खिड़की के बाहर झाँका। दूर पर घोड़े के टापों की आवाज़ आती हुई सुनायी पड़ी। ऐसा लगा कि खुर के टापों की आवाज़ पास आती जा रही है। शायद मालिक ही आ रहे हैं। सदर फाटक के पास किसी के आने-जाने की धुँधली-सी छाया दिखी। पहरे के सिपाही भी टापों की आवाज़ सुनकर टहलते हुए इधर-उधर चहलकदमी कर रहे थे यह भी उसने देखा। वहाँ टापों की आवाज़ सुनती हुई प्रतीक्षा में खड़ी रही। आवाज़ पास आती हुई होकर, फिर कुछ दूर पर गयी हुई सी लगने लगी और फिर बन्द हो गयी।

घोड़े के जाने के मार्ग और उसकी टापों की आवाज़—इनसे दण्डनायिका चामब्बे ने अन्दाज़ लगाया कि वह उसके भाई के महल की ओर गया होगा। तो इसके माने यह कि मालिक भैया के साथ ही गये थे, मगर भैया अकेले लौटे! तो क्या मालिक नहीं लौटे? क्यों? मालिक नहीं लौटे और भैया अकेले आये तो भैया को उसका कारण तो बताना चाहिए न? शायद जाकर जल्दी सो जाना चाहते होंगे। प्रतीक्षा में रहनेवालों की हालत कैसी रहेगी—इसकी चिन्ता उन्हें भला क्यों होगी? बेचारी बहिन प्रतीक्षा में बैठी होगी यह यदि स्वप्न में भी देख लेते तो शायद कहला भेजते।...फिर भी वही लौटे इस बात का प्रमाण क्या है? खाली टापों की आवाज़ सुनकर दुनिया भर की बातें सोचना मनमाने अन्दाज़ लगाना क्या ठीक है? उस समय की हालत में दण्डनायिका यह सोच न सकी कि सही क्या है और गलत क्या है। इसीलिए वह इस ढंग से सोचती रही। उसने समझा कि प्रधानजी को घर पहुँचाकर मालिक शायद घर आवेंगे। वास्तव में ऐसा होना भी चाहिए। उसने प्रतीक्षा की। कान लगाये बैठी रही। यही सोच रही थी कहीं किसी ओर से टापों की आवाज़ सुनायी देगी। अहाते की ओर नज़र दौड़ायी भी। पहरे के सिपाही फिर बैठे हुए-से दीख पड़े।

बेचारी दण्डनायिका आँखें खोलकर कान लगाये काफी देर तक प्रतीक्षा करती बैठी रही। एक-दो बार उल्लू के बोलने की आवाज़ सुन पड़ी। चमगादड़ों ने पंख फड़फड़ाये। अब बैठे रहने का कोई प्रयोजन न समझकर वह अपने कमरे की

ओर चली। दरवाज़ा बन्द कर बिस्तर फैलाकर चित लेट गयी। उसके दिमाग़ में कई तरह के विचार चक्कर काट रहे थे। डर और आशा-प्रतीक्षा के होते हुए भी थकावट के कारण सब कुछ थोड़ी देर के लिए भुलाकर शरीर आराम चाहता है। दण्डनायिका को भी ऐसे ही नींद लग गयी। कब लगी, कैसे लगी—यह कुछ नहीं मालूम हुआ। भाग्य की बात है कि कोई बुरा स्वप्न नहीं दिखायी दिया। प्रातः अमावस्या के दिन सूर्योदय के बहुत समय बाद उसकी आँखें खुली। चारों ओर फैली रोशनी उसकी आँखों को चौंधिया रही थी। वह घबड़ाकर उठी और स्नानागार में जाकर हाथ-मुँह धोया, भगवान् को प्रणाम कर माथे पर रोरी लगायी और फिर देकव्वे को पुकारने लगी।

आवाज़ सुनकर "आयी" कहती हुई देकव्वे रसोईघर से बाहर निकली।

"मालिक ?"

"आ गये।"

"जग रहे हैं ? कब आये ?"

"पहले मुर्ग़े की बाँग पर वेलापुरी से निकलकर सूर्योदय के कुछ पहले ही आ गये थे। आते ही स्नान आदि करके नाश्ता समाप्त कर राजमहल की ओर चले गये।"

"ठीक है, तुम जाओ।" दण्डनायिका ने कह तो दिया पर अपने आप पर काफी दुःखी हुई। वह अपने मन में ही गुनने लगी—"हाँ, उस कंगाल से मनहूस तावीज़ों को लेकर ही वे घर आयेंगे। जिसे न होने देना चाहती थी, वही होकर रहा, यही लगता है। 'ये हमारे नहीं' कहकर टाल देने की बुद्धिमत्ता दिखावें तो भाग्य की बात होगी।" इस तरह सोच-सोचकर बेचैन होने लगी। वह चुप तो बैठी नहीं रह सकती थी। दैनिक कार्य तो होने ही चाहिए। काम और चिन्ता, दोनों साथ-साथ चलते रहे। "बच्चों से तो कह दिया है कि तावीज हमारे नहीं मगर जब बच्चों के सामने ही 'हमारे हैं' कहकर मुझे सौंप देंगे तो बड़ी भद होगी। क्या करना चाहिए ? यह सब उसी वामाचारी से मदद लेने के कारण हुआ है। दुष्ट चोकी की बात नहीं सुनती तो उस वामाचारी के पास कभी फटकती भी नहीं। उस चोकी ने उस वामाचारी के इस वशीकरण के बारे में मनगढ़न्त किस्से सुनाकर मुझमें उस पर विश्वास पैदा किया। इन नौकर-चाकरों को ज्यादा मुँह नहीं लगाना चाहिए। उसे दूर रखती तो यह सब न हुआ होता। अब ख़ुद लापता हो गया है। शायद वह उस वामाचारी के साथ ही गया होगा। पता नही उससे किस-किसकी क्या बुराई होगी। अब जो भी हो, अब मैं इस परिस्थिति से पार हो जाऊँ तो काफी है। हे भगवान्, कृपा करो ! मालिक को इतनी बुद्धि दो कि वे कह सकें कि ये ताबीज हमारे नहीं हैं।" घुमा-फिराकर बात यहीं आकर अटक जाती। साथ ही कुछ और विचार दिमाग़ पर हावी हो गये। जब तक मालिक घर

न लौटें तव तक चुप रहने की बात दिमाग़ में आयी मगर अपने मन पर उसका काबू ही नहीं था—एक विचार दूसरे में फँसता गया।

भोजन के वक़्त दण्डनायक घर आये। वह रोज़ की तरह ही दिखायी दिये, कोई परिवर्तन नहीं। सबने साथ मिलकर भोजन किया। बाद में दण्डनायक अपने कमरे में चले गये। थोड़ी ही देर में दण्डनायिका भी पनवट्टा लेकर वहाँ पहुँच गयी। दोनों ने पान खाये।

बात दण्डनायिका ने ही छेड़ी, "वेलापुरी की क्या ख़बर है ?"

"क्या सब कहीं से लौटने के बाद तुम्हें समाचार देना ज़रूरी है ?"

"ठीक है। मैं इसलिए पूछ रही थी क्योंकि आपके साथ भाई भी गये थे। इसके अलावा आपको कल ही लौट आना चाहिए था मगर आये नहीं। इसलिए पूछा कि कोई खास काम पर शायद वहाँ ठहरना पड़ा हो।"

"हाँ, कुछ खास राजनैतिक कार्य था। दोनों को जाना पड़ा था। ठहरना पड़ा, ठहरे।"

"एक साल बीतने को आया न? महाराज के दोरसमुद्र लौटने के बारे में कोई बातचीत चली ?"

"उस सबसे तुम्हारा क्या मतलब ?"

"अगर वे यहाँ आ जायें तो आपको बार-बार जाना-आना न पड़ेगा; इसलिए पूछा।"

"तुमको तो आना-जाना नहीं न ? बिना किसी तकलीफ के आराम से यहाँ रहने की सुविधा जब है, तब तुम्हें इसकी चिन्ता क्यों ?"

"हाँ, आप इस ढलती उम्र में दिन-रात की परवाह न करके घूमते-फिरते रहें और मैं आराम से यहाँ पड़ी रहूँ। आजकल आप मेरे प्रति उदासीन हैं। हमेशा आपकी ही सेवा-शुश्रुषा में लगी रहती हूँ, फिर भी आप मेरे प्रति उदासीन क्यों ?"

"नहीं, तुम्हें सिर पर बिठाकर ढिंढोरा पीटकर कहता जुलूस में निकलूँगा कि देखो यह वही दण्डनायिका है जिसने दसों बार चोट पर चोट खाने पर भी ठीक तरह से बरताव करना न सीख पाया और यों कह खुश होऊँगा।"

"मुझ पर गुस्सा क्यों होते हैं ? मैंने क्या किया ?"

"मूर्खों जैसी बात न करो। अब भी क्यों झूठ का आश्रय लेती रहती हो ?"

"झूठ ! मैंने आपसे झूठ कब कहा ?"

"मुझसे नहीं। अपनी मासूम बच्चियों से।"

"उनसे क्या झूठ कहा ?"

"हेग्गड़े के घर में मिले तावीज़ 'हमारे नहीं' ऐसा क्यों कहा ?"

"उन्हें इनके बारे में कुछ भी मालूम नहीं। इसलिए उन्हें मालूम कैसे होगा

कि मैंने झूठ कहा ?"

"मुझे क्या मालूम कि जो तुम्हारे मन में आता है, कह डालती हो। सुबह उठते ही उन्होंने मुझसे कहा । खाद जब हमारे घर की है तो हेग्गड़े का कहना ठीक है, मैंने कहा । तब उन्होंने वही कहा जो तुमने उनसे कहा था । 'हमारे नहीं' कहकर क्यों तुमने जिम्मेदारी अपने ऊपर ली ? चुप रहना तो तुम जानती ही नहीं ।"

"आपको इतनी समझ तो होनी चाहिए न ? अगर हम मान लें कि वे हमारे घर के हैं तो हेग्गड़े चाहे जैसे उसका उपयोग अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए कर सकेगा—यह आपने सोचा भी नहीं न ?"

"स्वीकार कर लें तो उससे उनकी स्वार्थ-सिद्धि में उपयोग भी क्या होगा ?"

"जाकर वह समाचार सुनायेगा या हेग्गड़ती के जरिये महामातृश्री के पास समाचार पहुँचवा देगा। कहेगा—हमारी बुराई कराने के लिए इन तावीज़ों को खाद के साथ मिलाकर दण्डनायक ने हमारे घर भिजवा दिया है । हम उनके हाथ से बच नहीं सकते। उनकी सारी चर्चाएँ इस तरह बुराई ही की होती हैं। यों नमक-मिर्च लगाकर कुछ कहकर हम पर क्रोध उत्पन्न करायेगा।"

"अगर हम अस्वीकार कर देते तो जैसा तुम कहती हो वैसा होता । उन्हें सीधा महाराज को सौंपकर, सारा वृतान्त बता देना काफी था। हमें विश्रान्ति की प्रार्थना करके सिदगेरे को जाना पड़ता । तुम्हारे भाई को यह सब मालूम ही था न ? उन्हीं के सामने हेग्गड़ेजी ने तावीजों को मेरे हाथ में दिया । मैंने स्वीकार किया कि हमारे हैं और उन्हें ले आया । अब तुम अपनी बच्चियों से सच्ची बात कह दो। मेरे और तुम्हारे कहने में फर्क होगा तो हम दोनों पर बच्चे विश्वास खो बैठेंगे।"

"आप ही बच्चों को बता दीजिये कि मेरा कहना ही सही है। बात ख़तम हो जायेगी ।"

"बात ख़तम नहीं होगी, आगे बढ़ेगी। जब यह बात उठेगी, बच्चियाँ हेग्गड़े की बेटी से कहेंगी कि ये हमारे नहीं । या फिर हेग्गड़े की बेटी ही यह कहेगी कि आपका है कहकर उन्हें दण्डनायकजी को सौंपा है। तब क्या होगा, जानती हो ? जब बच्चों में सन्देह पैदा हो जायेगा और इस बात की तहकीकात चलेगी कि इनकी जड़ कहाँ है तो वह बहुत बड़ी बुराई की जड़ बनेगा। आजकल तुम्हारी अक़्ल मारी गयी है। कोई बात मत करो। बच्चियाँ अगर पूछें तो कहना कि मैं ऐसा समझती थी, अगर तुम्हारे पिता ऐसा कहते हैं तो वही ठीक है। समझी ? तुम खुद बात मत उठाना ।"

"ऐसा ही कहूँगी; पर तावीज़ों का क्या करेंगे ?"

"एक कण्ठहार बनवाकर तुम्हारे गले में पहनाऊँगा।"

"ठीक, आपको क्या ? बचपना करते हैं।"

"कुछ भी करूँगा। इस बारे में तुम्हें कुछ नहीं बोलना होगा।"

"हाय, जब से वे हमारे पास आये हैं, हमसे राजमहल का सम्बन्ध दूर ही होता गया है। अगर ये मनहूस तावीज़ गले में बँध गये तो हमारे प्राण ही जोखिम में पड़ जायेंगे।"

"हमने जो किया, उसे हमें भुगतना ही होगा। उसे निरपराधियों पर मढ़ दें तो वह हमें ही निगलेगा।"

"तो जो गलती हमने की उसके लिए हमें कभी क्षमा ही नहीं मिलेगी ? उसका कोई परिहार ही नहीं ?"

"है। खुले मन से साहस करके सम्बन्धित लोगों के सामने साफ-साफ अपनी गलती को स्वीकार कर लेना। इससे बढ़कर उत्तम मार्ग दूसरा नहीं है।

"मान-प्रतिष्ठा को खो देने के बाद बचेगा ही क्या ?"

"निर्मल मन बच रहेगा। इस निरर्थक मान-प्रतिष्ठा से वह अच्छा है।"

"नया वेदान्त शुरू कर दिया है आपने।"

"अब आगे कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है। महाराज अब दोरसमुद्र लौटने की बात ही नहीं कर रहे हैं। 'अभी जैसा चल रहा है वैसा ही ठीक से चलता रहे राज्य का सब कारोबार। प्रधानजी राज्य के प्रधान सूत्रधार हैं। आप लोगों की निगरानी में सब सुरक्षित है। हम यहाँ रहें चाहे वहाँ, दोनों बराबर हैं। हमें दोरसमुद्र से वेलापुरी अच्छी लगती है। यहाँ के लोग और यहाँ का वातावरण सब हमें अच्छा लगता है।' जब महाराज स्वयं यह बात तुम्हारे भाई से और मुझसे कह रहे हैं तो माने यही हुआ 'आप लोगों के साथ रहे अब तक, सो काफी है; आप लोग वहीं रहें और हम यहीं रहेंगे।' यही न उनके कहने का तात्पर्य हुआ ! ऐसी स्थिति में रहने से बेहतर है वानप्रस्थ होकर कहीं चले जाना। यह सब तुम्हारी ही कृपा है।"

"ठीक है। सारी बुराई की जड़ मैं ही हूँ। मैं ही अपने प्राण त्याग दूँगी। बाद में आप सब सुखी होकर रहेंगे। मैंने कौन-सा ऐसा अन्याय किया है जो आप सब मुझ पर थोप रहे हैं ?"

"मैं जवाब नहीं दे सकता। हमारे घर में जो अंजन लगवाया था, उस बात को लेकर तुम्हारे भाई ने प्रभु के साथ जब बातचीत की थी तब महाराज के सामने ही बातें हुई थीं। उस दिन से वे दूर-दूर रहने लगे हैं। इसके बाद की घटनाओं ने उन्हें और दूर कर दिया है। एक बेवकूफी ने हमारे सारे परिवार को, इन बच्चियों को कितना नुकसान पहुँचाया है—तुम ही सोचो, समझो। इतना पर्याप्त न समझकर, उस हेग्गड़े परिवार को हानि पहुँचाने का इरादा तुमने किया और बच्चियों से यह कहकर खुश हुईं कि ये हमारे नहीं। जब खाद उनके घर पहुँच गयी तब तुम इतना खुश क्यों हुई ? इतना उत्साह क्यों दिखाया ? तब यह सब

तुझे नहीं सूझा। मैं विश्वास करता था कि तुम बदल गयी और हेग्गड़ती के साथ मैत्री बढ़ाकर ठीक रहोगी। मेरे मन से इन तावीज़ों की बात ही लुप्त हो गयी थी। जब तुमने यह कहा कि वे हमारे हैं ही नहीं, तो यही सिद्ध हुआ कि तुम्हारा मन कितना नीच है। जब तक तुम अपने अन्तरंग का शोध करके उसे परिशुद्ध न बना लोगी तब तक तुम्हारा बचाव नहीं होगा। तुमने क्या किया है, जानती हो? आंचल में आग रख ली है। तुमने समझा उसे किसी पर फेंककर जलाकर भस्म कर लोगी। आज वह आग तुम ही को जलाकर राख किये दे रही है। बहुत दिनों से मैं यह सब कह देना चाहता था पर कहने से पीछे हटता रहा। आज सब स्पष्ट रूप से कह दिया है। अपने को सुधार लो तो तुम्हें भी शान्ति मिलेगी। बच्चे सुखी होंगे। मेरा भी अपना गौरव बना रहेगा। नहीं तो मैंने पहले ही कह दिया है कि हमें राजधानी छोड़ देनी पड़ेगी। अब चाहे तुम प्राण त्यागो या कुछ भी करो। तुम्हारे इस बरताव के कारण मैं अपने को दण्ड दे लूँगा। तुम्हारी तरफ से किसी से कुछ नहीं कहूँगा। समझी?"

दण्डनायिका कुछ नहीं बोली। उसका मौन सम्मति का ही सूचक मानना चाहिए। परन्तु उसका अन्तरंग खूब बिलो दिया गया था। उसने मन-ही-मन कहा, "अब मैं इस दुनिया में अकेली रह गई हूँ। सब मेरे विरोधी हैं। जो भी हो प्रतिक्रिया किये बिना चुपचाप मुँह बन्द कर मुझे पड़ी रहना होगा, आगे से। मैं सिर उठाकर सबके सामने इतराती हुई गर्व के साथ चलती रही। अब सिर झुकाकर सबके आगे रहना होगा; इससे बढ़कर दण्ड और क्या हो सकता है? हे भगवान्, कैसी दशा कर दी मेरी। बच्चों की भलाई चाहते-चाहते एक माँ की यह दशा! ठीक है, दूसरा कोई चारा नहीं। फिलहाल मौन रहकर समय बिताना होगा। हो सकता है आगे चलकर कोई रास्ता दिख जाये।" यों सोचकर अपने को सान्त्वना देती चामव्वे पनवट्टा का थाल उठाकर वहाँ से चुपचाप बाहर निकल आयी।



सर्वतोभद्र यन्त्र के उन तावीजों की बात वहीं ख़तम हो गयी थी। इनके बारे में फिर किसी ने आपस में कोई बात नहीं उठायी थी। सिर्फ पद्मला के मन में इनके प्रति कुतूहल अवश्य था। मगर इस कुतूहल का कोई कारण उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उसने बहिन चामला से इस बारे में विचार विमर्श करने की भी बात सोची। जब पिताजी ने यह कहा कि ये तावीज़ हमारे ही घर के हैं तो माँ ने क्यों कहा कि ये हमारे घर के नहीं। बिना कारण तो माँ ऐसा कहेगी

नहीं। उसके मन में आया कि इसके बारे में माँ से ही पूछ लें मगर इस डर से नहीं पूछा कि पता नहीं क्या उल्टा-सीधा बोल जाये। बहुत सोच-विचार के बाद उस विषय में पद्मला ने आकर चामला से बातचीत की। चामला को इस सम्बन्ध में कोई आसक्ति नहीं थी। अपनी आशा के सफल न होने के कारण वह मन-ही-मन बहुत दुःख का अनुभव कर ही रही है। उसके साथ यह धुन भी लगी है। इस अनावश्यक सनक को उसके मन से हटाना बहुत ज़रूरी है इसलिए इसके मूल को खोजने के बदले उस विषय को वहीं ख़तम कर देना अच्छा है—यह सोच कर चामला ने अपनी दीदी को सलाह दी, "दीदी, तुम्हें माँ के सब ढँग मालूम हैं। वह सदा हर बात में सन्देह करती रहती है, कह बैठती है। उसकी खोज करने की कोशिश करने लगेंगे तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। हवा में तलवार घुमाने से हवा कटती नहीं, घुमाने का श्रम ही हाथ रह जाता है। मेरा कहना मानो तो वर्तमान स्थिति में चुप रहना ही अच्छा है।" पद्मला को चामला की यह सलाह ठीक लगी। इसलिए यह बात यहीं ख़तम हो गयी। दोरसमुद्र में इस सम्बन्ध में किसी ने कोई बात नहीं उठायी।

दोरसमुद्र में इसकी चर्चा नहीं हुई, यह सच है। मगर यह तो नहीं कह सकते कि वेलापुरी में इस सम्बन्ध में बात न उठी हो। क्योंकि महादण्डनायक के घर की खाद के साथ इन तावीज़ों का हेग्गड़े के घर के अहाते में पहुँचाया जाना, फिर उन्हें प्रधान जी के समक्ष हेग्गड़े द्वारा दण्डनायक को दिया जाना आदि बातों का सारा वृत्तान्त महाराज बल्लाल को मालूम हो गया था। अपने पिता प्रभु के जीवित रहते हुए दण्डनायक के घर में घटी अंजन-क्रिया एवं इस क्रिया में दण्डनायिका की भूमिका आदि बातों के बारे में प्रधान जी के साथ प्रभु ने जब विचार विमर्श किया था तो उस समय वह स्वयं उपस्थित थे। इसकी याद भी महाराज के मन में हरी थी। अपना प्रेम अन्धा है और इससे भला नहीं होगा, कल महाराज बननेवाले की ग़लती के कारण राष्ट्र का अहित होना ठीक नहीं—इसी के ख्याल से खुद इस विषय को न बताकर, विचार-विनिमय करते समय समक्ष बिठाकर सारी बात करके जो दूरदर्शिता प्रभु ने दिखायी थी, उससे बल्लाल की आँखें खुल गयी थीं। फलस्वरूप इस अन्ध-प्रेम का बहिष्कार करने का निश्चय उसने कर लिया था। सीधे प्रधानजी को या महा-दण्डनायक को अपना निर्णय सुनाकर उन्हें दुःख नहीं पहुँचाना चाहता था। कुछ-न-कुछ बहाना बनाकर बात टालता रहा। महाराज विनयादित्य की मृत्यु से भी आवश्यक समय मिल गया। अगर इस अर्से में पद्मला का विवाह हो जाय तो अच्छा है, यह मामला खुद ही निपट जाएगा—यही वह सोचा करता। विवाह के बारे में भाई बिट्टिदेव ने सांकेतिक रूप से जिन बातों की ओर इशारा किया था और कहा भी था कि उनपर अमल कर अपनी प्रतिष्ठा को बचाये रखने में गौरव

भी है। अब उसी से पूछना चाहिए कि इससे कौन-सा गौरव मिल सकेगा? प्रभु के विरुद्ध चिन्तन करनेवाली और वामाचारी से गण्डा-तावीज़ बनवानेवाली दण्डनायिका और उसकी बेटियों के बारे में उसी से पूछ लेना चाहिए कि अब क्या करना है—बल्लाल ने सोचा।

महाराज को यों लगने पर विलम्ब कैसे हो सकता है? बिट्टिदेव और बल्लाल दोनों राजभवन के प्रकोष्ठ में मिले। किसी दूसरे विचार को न छेड़कर महाराज बल्लाल ने सीधा वही, दण्डनायक के घर की खाद में तावीज़ों के निकलने और हेग्गड़े के घर दण्डनायिका के द्वारा खाद के साथ इन के भिजवाने आदि के साथ, तावीज़ों का सारा इतिहास बताया और पूछा, "अब कहो अप्पाजी! इतना होने पर भी मुझे अपने वचन को रखना होगा? प्रभु की बुराई करने की इच्छा से वामचारी से गण्डा-तावीज़ बनानेवाली उस दण्डनायिका की कोख से उत्पन्न लड़की पोय्सल वंश की महारानी के पद पर प्रतिष्ठित होने योग्य है?"

"वचन देते वक़्त जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए थी। तब सन्निधान की भावनाओं की रीति ही कुछ और थी। सन्निधान अगर मुझे क्षमा करें तो मैं निवेदन करूँगा कि इस विषय में खुले मन से बातचीत कर लेना ही अच्छा है, विचार-विनिमय की दृष्टि से। निर्णय करने के लिए पहले की उन अनेक बातों और तब के सन्निवेशों और घटनाओं के बारे में पुनर्विचार करना होगा और समझना होगा कि तब जो कुछ हुआ वह सही है या गलत। सही है तो क्यों और गलत है तो क्यों? उस गलती के लिए ज़िम्मेवार कौन है? शान्त भाव से इन सब बातों पर विचार करना होगा। अब राज्य के प्रतिष्ठित सभी व्यक्तियों के मनोभावों से सन्निधान परिचित हो चुके हैं। इसलिए किसी तरह की कड़वाहट के बिना बात की जा सकती है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"दिल-ही-दिल में बातों को सड़ाते रहने से तुम्हारी सलाह के अनुसार चलना अच्छा होगा।"

"यह बात सन्निधान के ही मन में नहीं, कई दूसरे लोगों के मन में भी है। इसलिए सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को एकत्रित कर खुले मन से इन विषयों पर विचार-विनिमय करना ही उचित होगा।"

"सब को इकट्ठा कर विचार-विनिमय करना कैसे साध्य हो सकता है, छोटे अप्पाजी? जो द्रोही हैं क्या वे भी इसमें भाग लेंगे?"

"वह हमारी धारणा है। वह ठीक है या नहीं—कैसे कहा जा सकता? उनमें जो शंका उत्पन्न हो गयी है, उसका निवारण तभी हो सकता है जब वे अपनी गलती स्वीकार कर लेंगे। नहीं तो इस धारणा को गलत साबित कर दिखाना होगा। उन्हें शामिल न करेंगे तो यह कैसे हो सकेगा? सन्निधान ही सोच-विचार करें।"

"अगर कोई ऐसा मौका मिले तभी तो सबको इकट्ठा करके इस पर चर्चा

कर सकेंगे ?"

"अब तो साल बीतने को आया है। हम सबको तो दोरसमुद्र जाना ही है न ? तब कोई-न-कोई प्रसंग आएगा ही।"

"दोरसमुद्र जाने की बात हमने सोची नहीं। हाल में प्रधानजी और महादण्डनायक जब आये थे तब यह बात उठी थी। उस दिन तुम, उदय और माताजी सोसेऊरु गये थे वासन्तिका देवी की पूजा के लिए। तब प्रधानजी ने ही स्थानान्तर सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया था। हमने कहा कि वर्तमान व्यवस्था ही ठीक है, इसी तरह राज्य कार्य आगे बढ़े।"

"प्रधानजी ने क्या कहा ?"

"उन्होंने ऐसी मुख-मुद्रा बनायी मानो हमसे उन्हें इस उत्तर की अपेक्षा नहीं रही हो। क्षण-भर के लिए उसी भाव में रहे। फिर, 'जैसी आज्ञा' कहकर इस प्रस्ताव को वहीं ख़तम कर दिया।"

"तो क्या सन्निधान के विचार अपरिवर्तनीय हैं ?"

"परिवर्तन करने के लिए कोई कारण सूझता नहीं।"

"अभी मूल सिंहासन दोरसमुद्र में है। साल-भर यहाँ रहने के लिए कारण भी था। आगे भी यहीं रहने का निर्णय करना हो तो सिंहासन, प्रधानजी, महादण्डनायक सबको यहीं आना होगा। उन सबके बिना सन्निधान मात्र यहाँ रहें तो दुनिया इसके कई तरह के माने लगाएगी। कहेगी राज्य-सूत्र में ताल-मेल नहीं, मन सबके एक से नहीं, कहीं कुछ छेद या दरार है। तात्पर्य यह है कि पोय्सलों में भेदभाव पैदा हो गया है। यही वह समय है जब हम ऊँचे उठ सकते हैं। यह समझकर हम पर द्वेष रखनेवाले चेंगाल्व आनन्दनी, सान्तरों का जग्गदेव आदि हम पर हमला कर सकते हैं। इसलिए दोरसमुद्र जाने में ही कुशल है—यही मेरी भावना है। माँ से चाहे विचार-विनिमय कर सकते हैं। सन्निधान उचित समझें तो चिण्णम दण्डनाथ और डाकरस दण्डनाथ से भी विचार-विनिमय कर सकते हैं।"

"छोटे अप्पाजी, हमने स्थानान्तरण की इस बात पर इस दृष्टि से विचार नहीं किया था। वर्तमान व्यवस्था में कोई पेचीदगी नहीं, काम ठीक तरह से चल रहा है—इसी से हमने वह बात कही थी।"

"ठीक है। परन्तु दूसरों के मन में यह विचार उठेगा कि सन्निधान को दोरसमुद्र का वास ठीक नहीं जँच रहा है। यदि यह धारणा बन जाये तो इसके अनपेक्षित परिणाम भी हो सकते हैं। प्रधानजी को और दण्डनायक को यदि ऐसा लगे कि हमारी उपस्थिति सन्निधान नहीं चाहते तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। ऐसा मैं सोचता हूँ।"

"तो मतलब यही न कि हमारा दोरसमुद्र जाना ही उचित है। यही तुम्हारा

निश्चित मत है। है न ?"

"इस निश्चय पर पहुँचने के लिए, मुझे अपनी अल्पमति को जो कारण सूझ पड़े, उनको ही निवेदन किया है। इसके बाद सन्निधान की इच्छा।"

"हम माता जी से बातचीत करेंगे, बाद में निर्णय लेंगे। मगर एक बात निश्चित है कि हम अपने अधिकारियों से डरनेवाले नहीं, जिसे हम नहीं चाहेंगे उसे डरकर स्वीकार भी नहीं करेंगे।"

"राष्ट्रहित, राजनैतिक स्थिति को शुद्ध बनाए रखना प्रभु का कर्त्तव्य है। ऐसे मौक़ों पर खुद की इच्छाएँ और अनिच्छाएँ गौण हैं। यह राजनैतिक प्रज्ञा का एक लक्षण है। गुरुजी ने यह स्पष्ट समझाया था, शायद सन्निधान को स्मरण होगा।"

"यदि कभी स्मरण न हो तो याद दिलाने के लिए जब हमारे छोटे अप्पाजी साथ हैं तब हमें भूल जाने का डर ही नहीं है। उठो, माँ से अभी विचार-विनिमय कर लें।" कहकर बल्लाल ने घण्टी बजायी।

रेविमय्या ने प्रकोष्ठ का किवाड़ खोल दिया और परदा हटाकर उपस्थित हो गया।

बल्लाल ने कहा, "रेविमय्या, माताजी आराम कर रही हैं या बैठी हैं—जाकर देख आओ। हमें उनसे मिलना है।"

वह जाने को हो था कि इतने में गोंका वहाँ आया, और झुककर प्रणाम किया।

बिट्टिदेव ने पूछा, "क्या है ?" रेविमय्या वहीं खड़ा रहा।

गोंक ने कहा, "जरूरी काम पर सन्निधान के दर्शन करने के लिए डाकरस दण्डनाथजी आये हैं; बरामदे में बैठे हैं।"

"उन्हें यहीं बुला लाओ।" बल्लाल ने गोंक से कहा, और रेविमय्या से बोले, "तुम यहीं बाहर रहो, दण्डनाथ जी के चले जाने के बाद माताजी को देख आना।" रेविमय्या बाहर चला गया।

कुछ ही क्षणों में डाकरस दण्डनाथ ने आकर प्रमाण किया और महाराज के संकेत से आसन पर बैठ गये। डाकरस के साथ परदा हटाकर रेविमय्या अन्दर आया था। वह आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

बल्लाल ने कहा, "रेविमय्या किवाड़ बन्द करके तुम बाहर रहो, किसी को अन्दर न आने दो।"

रेविमय्या किवाड़ बन्द करके बाहर खड़ा रहा।

"कहिये दण्डनाथ जी, सुना कि किसी जरूरी काम पर आये हैं। क्या है, बताइये।"

"महादण्डनायक जी से गुप्त ख़बर आयी है। मालव जग्गदेव के नाम से अपने

को प्रकट करनेवाला पट्टिपोंबच्चुपुर के जगदेव भारी सेना के साथ दोरसमुद्र पर हमला करने के लिए चला आ रहा है। इसलिए सन्निधान भी वहीं रहेंगे तो सन्निधान की रक्षा और सन्निधान के साथ विचार-विनिमय करने में भी सुविधा होगी। इसलिए सन्निधान से राज-परिवार के साथ दोरसमुद्र के लिए तुरन्त रवाना होने की प्रार्थना करते हुए निवेदन करने का आदेश मिला है। बताया है कि प्रधान जी की सलाह के अनुसार यह सन्देश भेजा गया है। आज्ञा चाहिए।"

"इस हमले का कारण?" बल्लाल ने पूछा।

"इस सम्बन्ध में कोई विवरण मालूम नहीं। राजधानी से जो ख़बर मिली है, उससे ज्यादा कुछ भी मुझे मालूम नहीं।"

"वर्तमान राजनैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर आपको कुछ तो सूझना चाहिए न?"

डाकरस ने कहा, "शायद वे सोचते हों कि पोय्सल राज्य अब अप्रबुद्ध युवकों के हाथ में है, और उनकी शक्ति को कुण्ठित कर तोड़ डालने के लिए यही अच्छा मौक़ा है।"

"तो आपकी भी यही धारणा है?"

"बाहर की जनता की धारणा वस्तुस्थिति के ज्ञान से अपरिचित धारणा है। राज्य के अन्दर की राज्य-निष्ठा रखनेवाली, किसी प्रजा की यह भावना नहीं हो सकती। गुप्त सन्देश जिस ढंग से भेजा गया है, यही लगता है कि देर उचित नहीं। इसलिए यात्रा की तैयारी करूँ?"

"तो क्या यह निर्णय हो चुका है?"

"सन्निधान को परिस्थिति का बोध है और राजधानी से आग्रह भी जब हुआ है तभी इस विश्वास से पूछा कि सन्निधान की स्वीकृति होगी ही।"

"आपको मालूम है कि दोरसमुद्र में जाकर रहने की हमारी इच्छा नहीं है, तब भी यह बात कह रहे हैं?"

"हाँ, सन्निधान की इच्छा मुझे मालूम है। सन्निधान की व्यक्तिगत दृष्टि से यह जरूरी है—यह भी मैं जानता हूँ। परन्तु वर्तमान परिस्थिति में राष्ट्रहित की दृष्टि से राजधानी से प्राप्त सलाह मानने योग्य है।"

"क्या छोटे अप्पाजी, तुम भी दण्डनाथ की राय से सहमत हो?"

"प्रजा का हित राजा का प्रथम कर्त्तव्य है। दूसरे जब हमला करें तब महाराज वहाँ उपस्थित रहेंगे तो प्रजा में उत्साह और साहस होना स्वाभाविक है। अनुपस्थिति का परिणाम अनेक प्रसंगों में राजनैतिक दृष्टि से घातक भी हो सकता है। इसलिए राजधानी से जो सलाह अब पेश है वह मुझे भी ठीक जँचती है।"— बिट्टिदेव ने कहा।

"जैसे दण्डनाथ को कारण सूझा वैसे तुमको भी इस हमले का कारण कुछ

सूझा होगा न ?"

"जब प्रभु के सिंहासनारोहण के लिए मुहूर्त निश्चित हुआ था तब चालुक्य चक्रवर्ती विक्रमादित्य ने यह कहकर कि उन्हें यह बात पहले क्यों नहीं सूचित की गयी, प्रभुजी के अधिकार-सीमा में शामिल बलिपुर प्रदेश वापिस ले लिया था, वह घटना सन्निधान की स्मृति में होगी—ऐसा मेरा विश्वास है।"

"हाँ, स्मरण है। परन्तु उस घटना का प्रस्तुत जग्गदेव के इस हमले से क्या सम्बन्ध है ?"

"प्रभुजी चालुक्यों के दाएँ हाथ बने रहे। अपने प्राणों की परवाह न करके अनेक प्रसंगों में उनका साथ दिया, प्रभु ने। ख़ासकर धारानगर के हमले के संदर्भ में चक्रवर्ती और सम्राज्ञी की रक्षा करने में और उनके लिए विजय प्राप्त कराने में प्रभु ने जो बुद्धिमत्ता एवं सामर्थ्य दिखाया था, वह प्रसिद्ध ही है। पोय्सलों की मैत्री चालुक्यों की शक्ति का दूसरा मुख है। इसे दुनिया जानती है। बलिपुर के इस अधिकार परिवर्तन से लोगों को कुछ ऊहापोह करने के लिए एक मौक़ा मिल गया। वे अन्दाज़ लगाने लगे कि पोय्सल और चालुक्यों में कुछ अनबन है, इस कारण चालुक्यों का बल कुण्ठित हो गया है। अब चालुक्यों की पकड़ से छूटने की इच्छा सामन्तों में होना तो सहज ही है। शायद जग्गदेव का भी यही उद्देश्य रहा हो। जग्गदेव की इस अभिलाषा को जानकर चालुक्यों ने उसे प्रेरणा देकर इस तरफ हमला करने के लिए भेज दिया होगा। जग्गदेव को राज्य-विस्तार और स्वातन्त्र्य, यही चाहिए न ?"

"वह स्वतन्त्र बनें और राज्य का विस्तार करें तो इससे चालुक्यों का क्या फ़ायदा होगा ? कल वही चालुक्यों पर भी हमला कर सकता है ?"—बल्लाल ने सवाल किया।

"तात्कालिक रूप से बला तो टल जायेगी न। इससे सामयिक शान्ति तो होगी। बाद की बात के बारे में अभी चिन्ता क्यों ? विक्रमादित्य शक्रपुरुष बनने की चाह करनेवाले थे परन्तु उनकी कभी दूरदृष्टि नहीं रही। समय-समय पर अपने फ़ायदे के लिए गति बदलकर चलते रहनेवाले हैं। पहले भाइयों के साथ मिले-जुले रहे। फिर भाई-भाई में रगड़ पैदा हो गयी। प्रभुजी को सन्तुष्ट करके सिंहासन पाया। प्रभुजी जब शक्तिशाली रहे और स्वस्थ रहे तब तक उनसे इस चालुक्य चक्रवर्ती ने दोस्ती बनाये रखी। मलेपों के साथ के युद्ध में जख्मी होकर जब प्रभु दुर्बल हुए तब पोय्सलों की शक्ति कुण्ठित हुई समझकर उन्होंने अपना बल प्रदर्शित करना शुरू कर दिया। अब शायद इस जग्गदेव को नचा रहे हैं। उनकी यह नीति चालुक्यों की अवनति की बुनियाद होगी। अब हम पोय्सलों को सम्पूर्ण स्वतन्त्र बनने के लिए अपना संगठित बल और अपनी एकता को दिखाने के लिए कमर कसकर तैयार होना पड़ेगा। जब इस जग्गदेव को निर्मूल करेंगे तभी चालुक्य

चक्रवर्ती की आँखें खुलेंगी। प्रभुजी अपने से भी दस गुना अधिक बल अपने बच्चों को दे गये हैं और इनकी एकता अभेद्य है—इस बात की जानकारी इन चालुक्यों को मिलेगी। इसलिए दण्डनाथ के कहे अनुसार शीघ्र ही यात्रा की तैयारी करना उचित है।"—बिट्टिदेव बातें आवेश से भरी थीं।

"माँ को यह सब बताकर निर्णय लेंगे।" बल्लाल ने कहा और घंटी बजायी। रेविमय्या ने किवाड़ खोलकर परदा हटाया। डाकरस चले गये।

महामातृश्री एचलदेवी के साथ बल्लाल और बिट्टिदेव ने विचार-विनिमय किया इस नयी परिस्थिति के बारे में। प्रधानजी की सलाह से महादण्डनायक द्वारा प्रेषित सन्देश के अनुसार सलाह को मानकर महाराज के साथ सारे राजपरिवार को वेलापुरी से दोरसमुद्र जाने का विचार हुआ। यात्रा की तैयारी करने के लिए डाकरस को सूचित किया गया। सीमित रक्षा-दल के साथ महाराज, महामातृश्री और भाइयों के साथ पहले सोसेऊरु पहुँचकर अपनी इष्टदेवी वासन्तिका देवी की पूजा आदि समाप्त करके दोरसमुद्र की यात्रा करने का निर्णय हुआ। वेलापुरी के रक्षण-कार्य के लिए तात्कालिक रूप से चिण्णम दण्डनाथ रहें और दोरसमुद्र पहुँचने के कुछ समय बाद विचार-विनिमय करके सिंगिमय्या को वेलापुरी में नियुक्त कर चिण्णम दण्डनाथ को दोरसमुद्र बुला लेने का भी निर्णय लिया गया। इसी तरह सारी व्यवस्था हुई और डाकरस की निगरानी में महाराज, महामातृश्री आदि सब सोसेऊरु हो आये। बाद में दोरसमुद्र पहुँचे।

युद्ध सन्निहित था, इससे किसी तरह की धूमधाम के बिना राजमहल की परम्पराओं के अनुसार स्वागत के सारे कार्यक्रमों को राजमहल के अहाते ही में आयोजित कर राजपरिवार की आवभगत की गयी।

दोरसमुद्र पहुँचने के एक सप्ताह के अन्दर सिंगिमय्या ने वेलापुरी जाकर चिण्णम दण्डनाथ से अधिकार अपने हाथ में ले लिया और चिण्णम दण्डनाथ को विदा किया। चिण्णम दण्डनाथ अपनी गर्भवती पत्नी चन्दलादेवी के साथ वहाँ से रवाना होकर दोरसमुद्र पहुँच गये।

चारों ओर से राजधानी में समाचार पहुँचने लगे। जोरों से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। जग्गदेव की सेना कितनी है, वह किस रास्ते से आ रही है, उसकी शक्ति कितनी है आदि-आदि बातों का पता लगाने के लिए बहुत सूक्ष्म बुद्धिवाले गुप्तचरों को नियोजित किया गया। युद्ध के बारे में केवल उच्चस्तरीय अधिकारियों तक ही जानकारी रही, दोरसमुद्र की प्रजा को इसकी जानकारी नहीं रही और पौर जीवन यथाविधि सुव्यवस्थित रूप से चलता रहा।

चेंगाल्वों की तरफ से युद्ध की कोई चहल-पहल होती नहीं दिखती थी। इस बात का पता यादवपुरी से लगने के बाद एक सीमित रक्षा-दल को वहाँ रखकर शेष सेना के साथ माचण दण्डनाथ को दोरसमुद्र में बुलवा लिया गया और वहाँ की निगरानी के लिए सिंगिमय्या को यादवपुरी भेज दिया गया।

हिरिय चलिकेनायक के स्वर्गवास हो जाने के कारण उनके बेटे छोटे चलिके नायक को उस समय वसुधारा के साथ सखरायपट्टण की देखरेख के लिए तैनात किया गया था। जग्गदेव की सेना यदि सखरायपट्टण से होकर आये तो वहीं उसका मुकाबला किया जा सके, इसलिए आवश्यक संख्या में सेना को तैयार रखे रहने का आदेश छोटे चलिके नायक को दिया गया। वास्तव में उस मार्ग से आना जग्गदेव के लिए उतना आसान न था। क्योंकि उन्हें पहाड़, जंगल, नदी-नाले पार-कर आना पड़ता। परन्तु उस मार्ग से आने में एक सुविधा भी थी। उस मार्ग में बस्तियाँ कम थीं। वहाँ किसी से सामना करने की उन्हें आवश्यकता नहीं पड़ती और उनके आगे के मार्ग का पता लगना भी कठिन था। सखरायपट्टण का ध्वंस कर देवनूर पर हमला करके कलसापुर या यावगल पहुँच जाय तो उसे दोरसमुद्र पर हमला करना आसान है अतः वहाँ भी शत्रु का सामना करने के लिए तैयार रहना ज़रूरी था। इस बात का निर्णय दोरसमुद्र में आयोजित युद्ध-मन्त्रणा सभा में किया गया था। इस सभा में प्रधान गंगराज, मानवेग्गडे अमात्य, कुन्दमराय, अमात्य पोचिमय्या, सन्धिविग्रही नागदेव, महादण्डनायक मरियाने, चिण्णम दण्डनाथ, माचण दण्डनाथ और हेग्गड़े मारसिंगय्या थे। मन्त्रणा-सभा में शत्रुओं के हमले का सामना करना, उन्हें जड़-समेत नाश करना आदि के लिए क्या-क्या कार्य करने होंगे और किन-किन को कौन-कौन-सी ज़िम्मेदारी सौंपनी होगी आदि विषयों पर विचार-विनिमय हुआ। महाराज बल्लाल और बिट्टिदेव दोनों चर्चा के समय मौन बैठे सबकी राय सुनते रहे। किस-किसकी कौन-कौन-सी ज़िम्मेदारी होगी—इसका निर्णय किया गया। युद्ध सम्बन्धी सभी तैयारियों और उनके अमल का उत्तर-दायित्व दण्डनायक मरियाने को सौंप देने का भी निर्णय हुआ।

छोटे चलिके नायक की सेना में चिण्णम दण्डनाथ की सेना को शामिल करने का निर्णय लिया गया था। इन दोनों सम्मिलित सेनाओं की व्यूह-रचना और उनका नेतृत्व चिण्णम दण्डनाथ को सौंपा गया था।

यह भी निर्णय हुआ कि माचण दण्डनाथ को अपने नेतृत्व की सेना के साथ कलसापुर में मुकाम करना होगा और डाकरस दण्डनाथ को यावगल और बाणऊरु के बीच मुकाम करना चाहिए।

उम्र के लिहाज से अत्यन्त वृद्ध पोचिमय्या और नागदेव को राजधानी में ही रहकर समय-समय पर सूचना के अनुसार जनबल और रसद सैन्य-शिविर में भेजते रहने की व्यवस्था करने की सम्मिलित जिम्मेदारी सौंपी गयी।

प्रधान गंगराज को खुद राजधानी में रहकर महाराज और राजपरिवार की रक्षा और राजधानी की सुरक्षा-व्यवस्था के कार्य में रहने तथा हेग्गड़े मारसिगय्या को उनके सहायक बनकर कार्य करने का भी निर्णय लिया गया। राजधानी की सुरक्षा का कार्य बहुत ही मुख्य कार्य होने के कारण राष्ट्र की आधी सेना राजधानी में ही रखी गयी। शेष सेना को तीन टुकड़ियों में विभक्त कर सखरायपट्टण, कलसापुर और यावगल—इन तीनों स्थानों में भेज दिया गया।

बल्लाल महाराज का पट्टाभिषेक हुए एक साल बीत चुका था, इसलिए वार्षिकोत्सव के समारम्भ का आयोजन किया गया था। इसी बहाने शस्त्र-सज्जित सेना के जुलूस की भी व्यवस्था की गयी। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह था कि राजधानी के साधारण से साधारण पौर भी भावी युद्ध के कारण भयभीत न होने पावें। इस विशाल सेना को देखकर दोरसमुद्र की प्रजा कल्पनातीत आश्चर्य में डूब गयी। वह सोचने लगी कि इतनी बड़ी सेना कहाँ से आ गयी? और वह अब तक कहाँ रही? इतनी बड़ी सेना क्यों? उनके रख-रखाव के लिए कितना धन चाहिए? —आदि-आदि बातें पौर-जन करने लगे। जो भी कुछ बोले वह समाचार राजमहल में फौरन पहुँच जाता था। ऐसे चतुर गुप्तचरों की टोली प्रभु एरेयंग के समय में ही तैयार कर ली गयी थी।

वार्षिकोत्सव समारम्भ के दिन शाम को राजमहल के अहाते में एक बड़ी सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया था। इस सभा में स्वयं पोय्सल महाराज ने सार्वजनिकों को एक सन्देश दिया—

"पोय्सल राजधानी के पौरो, महायशस्वियो,

हमारी राजधानी में अब तक इस तरह का और इस संख्या में सशस्त्र सैन्य का जुलूस किसी ने नहीं देखा होगा। आप लोगों को चकित करनेवाले यह सशस्त्र अश्व दल, पदाति सैन्य समूह, ये सारे पोय्सल राष्ट्र की सुख-शान्ति को चाहनेवाले साधारण पौरजन ही हैं। महामुनि के आशीर्वाद और वासन्तिका देवी के अनुग्रह से पल्लवित इस कन्नड़-साम्राज्य ने पिछले एक साल के दौरान काफी प्रगति की है। राष्ट्र धीरे-धीरे विस्तृत होता, उन्नति कर रहा है।

पोय्सल वंशी सहज ही उदार प्रवृत्ति के हैं। उनमें असूया नहीं, वे सत्यवादी हैं—ये सब बातें राजपरिवार के ही लिए नहीं कही गयी हैं, बल्कि यह प्रत्येक नागरिक, जो भी इस राष्ट्र में है, के लिए लागू हैं। हम इस बात को गर्व के साथ कह रहे हैं। हम अभी छोटी आयु के हैं, हममें श्रद्धा, धैर्य और उत्साह भरने के लिए और राष्ट्र पर संकट आने पर राष्ट्र रक्षा के लिए आप सब तैयार हैं—इस बात की घोषणा करने हेतु इस वार्षिकोत्सव समारम्भ के संदर्भ में आप एकत्रित होकर राजधानी में पधारे हैं। आप सबने जिस प्रकार हममें धैर्य-स्थैर्य भरकर उत्साहित

किया वैसा ही आप लोगों में उत्साह है, ऐसा हमारा विश्वास है। जनता की सामूहिक शक्ति ही राष्ट्र की शक्ति है। कल आपमें बहुत से अपने-अपने स्थान पर लौटेंगे। कुछ लोग यहाँ राजधानी में ठहरेंगे। इसका कारण यह है कि राष्ट्र के अनेक युवकों ने सैनिक शिक्षण पाने की इच्छा प्रकट की है। ऐसे लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए यहाँ ठहराकर उन्हें शिक्षित करने की व्यवस्था की गयी है। राजधानी में ऐसे भी अनेक लोग होंगे जिन्हें इस बात की जानकारी न हो इसलिए हम खुद इस वारे में बता रहे हैं। राज्य के अधिकारियों को इस बात का निर्देश है कि प्रत्येक नागरिक को शिक्षित होने के लिए मौक़ा दिया जाये। अब भी जो शिक्षण पाना चाहेंगे, वे हेग्गड़े मारसिंगय्याजी को बता दें, वे इसकी व्यवस्था कर देंगे। हम केवल राष्ट्र और प्रजा के हितों की रक्षा करने के लिए ही प्रतिनिधित्व करते हैं। जनता ही राष्ट्र का बल है। पोय्सल सिंहासन के प्रति निष्ठावान् होने की प्रतिज्ञा हम सब आज करें। पोय्सल राज्य किसी के लिए काँटा बनकर न रहे और किसी के सामने झुके भी नहीं। इसीलिए हमारा शार्दूल-ध्वज सिर उठाकर आसमान में फहरा रहा है। उस ध्वज को सदा राष्ट्र पर विराजमान रखने के लिए निष्ठा के साथ सब एक होकर रहेंगे, जियेंगे। यह हमें तृप्ति, शान्ति, समाधान और सन्तोष देता रहेगा, इसी का आश्वासन देता हुआ फहरा रहा है यह हमारा शार्दूल लांछन युक्त ध्वज।"—कहकर बल्लाल महाराज ने अपने दाएँ हाथ का अँगूठा ऊपर उठाया। उस हाथ का कंकण, राजमुद्रा, अँगूठियाँ सब चमक उठीं। सम्पूर्ण जन-समूह एक कण्ठ से बोल उठा, "ध्वज की जय हो! पोय्सल राज्य चिरायु हो!" दसों दिशाएँ गूंज उठीं। भीड़ में से किसी ने ऊँची आवाज़ में घोषित किया, "महाराज बल्लालदेव—"

जनता ने उद्घोष किया, "चिरायु हों।" फिर नारा लगा, "पोय्सल साम्राज्य की" और जनता ने "जय हो" का घोष किया। "पोय्सल साम्राज्य विजयी हो, चिरायु हो" की घोषणा से आसमान गूंज उठा। महाराज बल्लाल ने हाथ जोड़कर वन्दन किया। जनता ने आनन्दित होकर ताली बजायीं। फ़िर महाराज वेदिका पर स्थापित उच्च आसन पर विराजमान हुए।

प्रधान गंगराज ने समारम्भ को सुचारु रूप से सम्पन्न करने में सहयोग देनेवाली जनता का अभिनन्दन किया और सभा विसर्जित हुई। लोग उठे। सभा विखर गयी। महाराज और उनके भाई वेदिका से उतरे और राजमहल में प्रविष्ट हुए।

अधिकारी वर्ग के परिवारियों के लिए वैठने का स्थान अलग था। वहाँ प्रधानजी और अमात्यों का परिवार—दण्डनायिका, हेग्गड़ती माचिकव्वे, शान्तला और दण्डनायक की पुत्रियाँ, सभी वैठी थीं। वह स्थान इतना दूर न था कि महाराज की दृष्टि वहाँ तक न पड़ सके। एक वार उस तरफ महाराज वल्लाल ने देखा।

शान्तला का ख्याल था कि महाराज दुबारा इधर दृष्टि डालेंगे, मगर निराश हुई। बेचारी पद्मला ! शान्तला पद्मला के साथ ही बैठी थी। महाराज के दाएँ बिट्टिदेव और उदयादित्य बैठे थे। उन्होंने कितनी ही बार इनकी ओर देखा, मुस्कुराये। महाराज ने जब एक बार उधर देख पद्मला को बैठा जानकर फिर नहीं देखा तो शान्तला के हृदय में पद्मला के प्रति करुणा भर आयी। उसने मन-ही-मन कहा, "इस तरह से इस प्रवृत्ति को बढ़ने नहीं देना चाहिए। बल्लाल और पद्मला के प्रेम की कुम्हलायी बेल में ताज़गी लानी होगी। ये पुरुष लोग बड़े कड़े दिल के होते हैं। इनकार भी स्त्री सह लेगी। परन्तु लापरवाही और उदासीनता सह्य नहीं होगी। इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्टता के साथ बिट्टिदेव से विचारविनिमय कर लेना होगा। समय पाकर यह कहने का निर्णय कर लिया शान्तला ने। मगर पद्मला के प्रति शान्तला के मन में जो भावनाएँ उत्पन्न हुई थीं, उन्हें उसने ज़ाहिर नहीं होने दिया। पद्मला की मानसिक वेदना की गहराई से वह परिचित हो गयी थी। ऐसी हालत में उसके मन को और अधिक दुखाना वह नहीं चाहती थी। इसलिए पद्मला के मन को अब एकान्त चिन्तन करने देना उचित नहीं समझकर उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे देखते हुए पूछा, "आज के सैन्य जुलूस को जब देखा तब मुझे कैसा लगा, जानती हो ?"

वह किसी धुन में अपने को भूली बैठी थी। शान्तला के सवाल को उसने समझा नहीं। इसलिए पूछा, "क्या कहा ?"

"महाराज बड़ी स्फूर्ति और उत्साह से बोलते हैं। मैंने नहीं समझा था कि वे इतनी अच्छी तरह बोल सकते हैं।" शान्तला बोली।

"क्या बोले ?" पद्मला ने धीमी आवाज़ में पूछा।

"तो आप स्वप्न लोक में रहीं अब तक ? रहिए। आज स्वप्न, कल सत्य।" कहकर अपनी तर्जनी से पद्मला का गाल दबाया।

पद्मला ने शान्तला के हाथ को अपने हाथों में लेकर दबाया मानो कह रही हो, "तुम्हारी बात सच हो और इसे सफल बनाने के लिए तुम मदद दो।" इधर उनमें आत्मीयता बढ़ती जा रही थी। पद्मला में यह भावना दृढ़ बन गयी थी कि हेग्गड़ती में ऐसा कोई अवगुण लेशमात्र भी नहीं जिनका आरोप उसकी माता ने उन पर लगाया था। उसके दिल में यह भावना घर कर गयी कि वे बहुत अच्छी हैं। अपनी इस भावना को पद्मला ने किसी के सामने व्यक्त नहीं किया था, तो भी उसका अन्तरंग कह रहा था कि शान्तला की सहायता से वह अपना खोया प्रेम दुबारा अवश्य पा लेगी। उसने शान्तला की ओर ऐसी दीन दृष्टि से देखा मानो कह रही हो—"शान्तला, तुम ही मेरे लिए एक सहारा हो।" शान्तला पद्मला की पीठ पर हाथ फेरने लगी मानो वह उसे आश्वासन और सान्त्वना दे रही हो। फिर शान्तला ने पद्मला के पास सरककर उसके कान में कहा, "कल आप

हमारे यहाँ आ सकेंगी ?" पद्मला ने मौन सम्मति दी।

वार्षिकोत्सव की समाप्ति राजमहल में शाम के भोजनोपरान्त हुई। प्रमुख-प्रमुख व्यक्ति इस भोजन के लिए आमन्त्रित थे।

रेविमय्या के द्वारा अकेले बिट्टिदेव से तनहाई में मिलने की व्यवस्था शान्तला ने कर ली थी। इस एक साल की अवधि में इस तरह की तनहाई में मुलाकात यही पहली बार थी। सबका ध्यान भोजन की ओर रहा, इसलिए इस ओर किसी की दृष्टि नहीं गयी। मुलाकात अल्प समय के लिए ही संभव थी इसलिए संक्षेप में विचार-विनिमय कर लेना था। बिना किसी भूमिका के शान्तला ने बात शुरू की, "यह मुलाक़ात मैंने अपने लिए नहीं की है।"

"फिर और किसके लिए ? क्या बात है ?"

"महाराज ने सैनिक शिक्षण के लिए युवकों का ही आह्वान किया है, युवतियों का क्यों नहीं ?"

"स्त्री-रक्षा जब राजा का कर्त्तव्य है तब कौन ऐसा राजा होगा जो युद्धक्षेत्र में जाकर स्वर्गारोहण के लिए स्त्रियों को आह्वान देगा।"

"तो क्या अब युद्ध का समय आ गया है ?" तुरन्त शान्तला ने पूछा।

बिट्टिदेव को खेद हुआ कि युद्ध की बात अनजाने ही उनके मुँह से निकल गयी। "तो छोटी हेग्गड़ती को हेग्गड़ेजी ने इस विषय की जानकारी नहीं दी ?"

"महाराज ने जब यह आदेश जारी किया है कि बात गुप्त रखी जाये तो बताएँगे भी कैसे ?"

"तुमको बताते तो क्या गलती हो जाती ?"

"अगर राजकुमारजी की यह भावना हो तो स्वयं बता सकते हैं न ?"

"परन्तु यह•••"

"मैं प्रकट न करूँगी। वचन देती हूँ, यदि चाहेंगे तो•••"

"जरूरी नहीं, तुम्हारे घराने की रीति से महाराज अच्छी तरह परिचित हैं।" कहकर बिट्टिदेव ने जगदेव के हमले की बात संक्षेप में बता दी।

ऐसी हालत में राष्ट्ररक्षा के लिए हमें भी मौक़ा क्यों नहीं देना चाहिए ?"

"इस कार्य के लिए अब तक स्त्रियों की सेवाएँ नहीं ली गयी हैं।"

"अब स्वीकार करें।"

"मैं महाराज नहीं हूँ, और फिर इसके बारे में सोचने-विचारने को बुजुर्ग लोग भी तो हैं ?"

"आप उन्हें सूचित करें।"

बिट्टिदेव हँस पड़ा। "यह भी कहीं हो सकता है ? मेरे सुझाने पर वे कहेंगे 'अभी बच्चे हो, तुम्हें क्या मालूम ?' स्त्रियों की रक्षा न कर सकनेवाले डरपोक पुरुष हैं पोय्सल राज्य के—इस तरह अपमानित होने के लिए वे तैयार होंगे

क्या ?"

"हूँ···ऐसी बात है ।" शान्तला ने कुछ व्यंग भरी ध्वनि में कहा ।

"व्यंग्य क्यों ? 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:'— यह आर्योक्ति इसलिए ही तो है ।"

"आर्योक्ति की बात ! स्त्रियों की अन्तरंग-वेदना को न पहचान सकनेवाले कठोर हृदय पुरुष इसी आर्योक्ति की आड़ में स्त्रियों को कितना दुःख दे रहे हैं—इस बात को नहीं समझते ।"

"तो क्या छोटी हेग्गड़ती को इस तरह का कोई क्लेश हुआ है ?"

"मैंने पहले ही निवेदन किया है कि यह मुलाक़ात अपने लिए नहीं ।"

"क्या साफ़-साफ़ नहीं बतायेंगी ?"

"राष्ट्र में अनेक स्त्रियाँ पुरुषों की कठोरता की शिकार हैं । दुःख भोग रही हैं । घुट-घुटकर जीर्ण होती जा रही हैं । उन्हें यों मारने से इस युद्ध के बहाने सैनिक शिक्षा देकर उन्हें पहली कतार में खड़ी करके वीरगति पाने का मौक़ा दें । घुटकर मरने से इस तरह की मृत्यु कहीं अधिक स्वागत योग्य है ।"

"इस तरह की स्थिति किसकी और किसके कारण हुई है ?"

"इसके लिए पद्मला से भी ज्यादा क्या प्रमाण चाहिए ? ऐसी और भी अनेक हो सकती हैं । उन सबको एकत्रित कर उन्हें सैनिक शिक्षण दें और राष्ट्र की बलिवेदी पर चढ़ा दें यह महाराज से आपको कहना चाहिए ।"

"शान्तला, तुम बहुत उत्तेजित हो गयी हो । यह नहीं कि मैं इस बात को नहीं जानता । महाराज को दण्डनायिका और उनकी बटियों के बारे में पता नहीं, ऐसी बात नहीं । ऐसा मत समझो कि मैंने यह बात उनसे छेड़ी न हो । यह विषय प्रत्यक्ष विचार-विनिमय करके ही निर्णय करने का है । व्यर्थ की खोजबीन करते रहने से यह निपटेगा नहीं । इस प्रत्यक्ष विचार-विनिमय के लिए व्यवस्था करने का निर्णय किया था कि इतने में युद्ध की बात उठ खड़ी हुई ।"

"उनकी उलझन का क्या कारण है ?"

"मैं भी पूर्णतया नहीं जानता । शायद दण्डनायिका के वामाचारी के साथ सलाह कर मन्त्र-तन्त्र जादू-टोना कराने के कारण ही ऐसा हुआ है । परन्तु मैं अधिक ब्योरा नहीं जानता । महाराज इस बारे में कुछ कहते नहीं । लगता है कि माँ को भी यह बात मालूम नहीं ।" इतना कहकर थोड़े में बात टरका दी बिट्टिदेव ने ।

"इसी पृष्ठभूमि में उधर से अर्थात् पद्मला से कुछ जानकारी लूँ ? उसका दुःख देखा नहीं जाता । वास्तव में पद्मला अच्छी है ।"

"एक समय उसी ने कहा था कि तुम बहुत घमण्डी हो ।"

"वह उसकी बात नहीं थी, किसी ने यह बात उसके मुँह में ठूँसकर कहलवा

दी थी। उसकी गुरु देवी हैं, बहुत विचारशील हैं और ज्ञानी भी। उनके शिक्षण में शिष्य खरा सोना बनेंगे। वे अपने ख़ुद का, किसी तरह का परिचय नहीं देतीं। स्वयं को एक अनाथ कहकर उस बात को टाल जाती हैं। वह महा-साध्वी और पवित्र हैं। कभी किसी ने उन्हें विचलित होते नहीं देखा, न हमने ही देखा है। उनकी शिष्या पद्मला अब पुरानी पद्मला नहीं। कुछ करना ही चाहिए।"

"ठीक है, परन्तु अभी नहीं, युद्ध के बाद ही संभव हो सकेगा।"

"मुझे तो सैनिक-शिक्षण मिला है। कम-से-कम मुझे युद्ध में ले चलिए।"

"वह सब महादण्डनायक के निर्णय का विषय है। अगर वे मानें तो हो सकता है।"

"राजकुमार अगर ऐसा प्रस्ताव रखें..."

"अभी इस युद्ध में महाराज की क्या भूमिका होगी—कुछ मालूम नहीं हुआ है? ऐसा लगता है कि महादण्डनायक हमें भी तुम्हीं लोगों के साथ मिला दें, यही दिखता है।"

इतने में रेविमय्या आया। दोनों अलग-अलग दरवाज़ों से होकर भोजन करने बैठे। शान्त रीति से भोजन हुआ। बाद में सब अपने-अपने निवास की तरफ चले गये।

महाराज बल्लाल के आह्वान की प्रतिक्रिया बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग से हुई। दोरसमुद्र के हज़ारों तरुण सैनिक शिक्षण के लिए आ आकर भरती होने लगे। इधर एक ओर शिक्षण चल रहा था और दूसरी ओर व्यवस्थित सैन्य की तीन टुकड़ियाँ सखरायपट्टण, कलसापुर और यावगल जा पहुँची थीं।

खुद महाराज बल्लाल ने बिट्टिदेव से विचार-विनिमय कर युद्ध के नेतृत्व को अपने ही ऊपर लेने का निर्णय किया था। परन्तु बुजुर्गों की ओर से एकमत सम्मति इसके लिए प्राप्त नहीं हो सकी थी। वीर पति की वीर पत्नी महामातृश्री ने भी युद्ध में अपने बच्चों को अगुवा बनने के बारे में प्रोत्साहन नहीं दिया।

"यह क्या माँ, उस दिन जब युद्ध के विषय में कुछ भी नहीं जानता था तब मैं युद्ध में जाने को तैयार हुआ तो सन्तोष से आशीर्वाद देकर भेजा; अब आपकी इस असम्मति का अर्थ मेरी समझ में ही नहीं आता?" बल्लाल ने पूछा।

"पोय्सल राज्य में अब जबकि स्त्रियाँ युद्धक्षेत्र में आने को तैयार हो रही हैं, तब क्षत्रिय रक्त के इन धमनियों में बहते हुए, समस्त सैनिक शिक्षण पाये हुए एवं

प्रजा संरक्षण की जिम्मेदारी को अपने ऊपर लेनेवाला राजघराना ही पीछे रह जाय तो प्रजा क्या कहेगी, माँ ?" बिट्टिदेव ने भी सवाल किया।

"क्या कहा—स्त्रियाँ युद्ध में आयेंगी ?"

"हाँ, दण्डनायक और आप लोग स्वीकार करें तो हेग्गड़ेजी की पुत्री सैनिक शिक्षण पाने के लिए युवतियों के जत्थे को तैयार करेंगी। दण्डनायक की पुत्रियाँ भी इस जत्थे में रहेंगी।" माँ को बताने के बहाने वह अपने भाई की प्रतिक्रिया भी देखना चाहता था। इसी मतलब से उसने भाई की ओर देखा।

बल्लाल को इसकी जानकारी नहीं थी, इसलिए उसने आश्चर्य से बिट्टिदेव की ओर देखा।

"पोय्सल वंशी पुरुष जब चूड़ियाँ पहन लेंगे तब स्त्रियाँ यह काम करेंगी।" एचलदेवी ने कहा।

"तो क्या यह गलत है माँ ?"

"मैं यह नहीं कहती कि यह गलत है। स्त्रियों की रक्षा करना पुरुषों का कर्तव्य है। जब पुरुष अपने कर्तव्य का पालन न कर सकें तो स्त्री इस कार्य को कर सकती हैं। महिषासुर को मार सकने वाले पुरुषों के न रह जाने ही के कारण देवी चण्डी ने चामुण्डी बनकर उसका संहार किया था। पोय्सल पुरुष ऐसे बने रहें जिससे स्त्रियाँ क्रोधित न होने पावें। बलिपुर में तुम्हारे जन्मदिन के अवसर पर जो वचन लिया था सो याद है ?"

"वह तो पोय्सल स्त्री-पुरुषों के आपस में लड़ने के विरुद्ध था। अब तो बात पोय्सल के विरोधियों का सामना करने की है न ?"

"तब देखेंगे जब यह साबित हो जाय कि आप लोग असमर्थ हैं।"

"तो आपका यही मतलब है न कि महाराज को जो असम्मति जतलायी वह अब नहीं रही। युद्ध में अपनी शक्ति दिखाकर जब तक हम जीवित हैं तब तक किसी पोय्सल नारी को चण्डी-चामुण्डी बनने की जरूरत नहीं—इस बात को दुनिया के सामने साबित करने के लिए आपकी सम्मति है; है न ?"

"तुम्हारी बात मैं समझ गयी, छोटे अप्पाजी। इस बात पर तुम लोग विचार करो कि अब मैं एक निस्सहाय माँ हूँ।"

"सिर्फ़ हम तीन ही तुम्हारे बच्चे नहीं हैं, माँ। राजमाता और महामातृश्री हैं आप। सारे पोय्सल साम्राज्य की प्रजा आपकी सन्तान है। हर एक का प्राण आपके लिए उतना ही मूल्यवान् है। इसलिए स्वीकार कर आशीर्वाद दीजिए, माँ। हम सब साबित कर दिखायेंगे कि प्रभु की सन्तान उनकी साधना से भी ज्यादा साध्य करने में समर्थ है।"

"इस बारे में मैं अब और कुछ नहीं कहूँगी। प्रधानजी, महादण्डनायकजी जैसा निर्णय करेंगे वैसा करो।" एचलदेवी ने कहा।

इस विषय पर चर्चा हुई और यों निर्णय हुआ : "महाराज पीछे रहकर आज्ञा देते रहें। उनकी उपस्थिति ही योद्धाओं के लिए उत्साहवर्धक है। हमारी सेना काफ़ी प्रबल और शक्तिशाली है। इसलिए शत्रुओं के पीछे हटने की भी संभावना है। यदि उनके राजधानी तक आगे बढ़कर आने का प्रसंग हो तब महाराज खुद नेतृत्व को अपने हाथ में ले सकते हैं। तब तक महादण्डनायक ही नेतृत्व करते रहें।"

इस निर्णय से न महाराज ही सन्तुष्ट हुए, न बिट्टिदेव ही। उत्साह के मारे उनका खून खौल रहा था। अब उनके उत्साह पर पानी फिर गया। बल्लाल को तो एक तरह से ग़ुस्सा भी आ गया। इस क्रोध के परिणामस्वरूप दोनों भाई जब तनहाई में रहे तब बल्लाल ने बिट्टिदेव से कहा, "छोटे अप्पाजी, दण्डनायक की बेटी से मैंने विवाह नहीं किया इससे क्रोधित होकर उन्होंने हमारे उत्साह को भंग किया है।"

"यदि उन्हें सचमुच क्रोध होता तो तुरन्त मान जाते और कह देते कि महाराज को ही सेना के आगे पहली कतार में विराजमान होना चाहिए। महाराज रहें या न रहें इससे उनका क्या मतलब होता। परन्तु उनकी दृष्टि में महाराज की रक्षा राष्ट्र की रक्षा है—ऐसा मेरा विचार है।"

"महादण्डनायक ने सिर्फ़ छोटे अप्पाजी से मन खोलकर कहा है। तुम्हें मालूम नहीं अप्पाजी, पहले एक बार महासन्निधान जब जीवित थे तब प्रभु का पट्टाभिषेक करना चाहते थे, उस समय इन्होंने अडंगा लगाया था। इनके व्यवहार से वे ऊब उठे थे और दोरसमुद्र से दूर ही रहे।"

"ओह, उसी समय न हम वेलापुरी गये और सन्निधान यहीं रहे? महादण्डनायक की लड़की और सन्निधान में प्रेम का अंकुरार्पण भी तभी हुआ न?"

"अप्पाजी, जो बात मुझे पसन्द नहीं उसे मत छेड़ो।"

"जब तक निश्चित रूप से यह नापसन्दगी साबित न हो तब तक निर्णय नहीं करना चाहिए। अब इस तरह घुट-घुटकर मरने से राष्ट्र के लिए लड़कर मरे तो जीवन सार्थक होगा—यह समझकर महादण्डनायक की बेटी ने निर्णय किया है ऐसा..."

"हेग्गड़े की बेटी ने कहा होगा शायद। वही हमारे छोटे अप्पाजी के लिए वेदवाक्य है न?" बल्लाल ने व्यंग्य किया।

"सच है। मुझे हेग्गड़े की बेटी की बात पर विश्वास है। परन्तु आज सन्निधान से बातचीत करने के लिए वही एक कारण नहीं है। सन्निधान महाराज हैं, वह दण्डनायक की बेटी है। इस बात को भूल जाइये। एक पुरुष और एक नारी परस्पर प्रेम करके एक होकर जीने का निर्णय करें और उसके सफल होने से पहले, किसी अज्ञात और काल्पनिक कारणों से प्रभावित होकर यदि दूर हो जावें तो

कितनी दुःखदायक स्थिति हो जायेगी—यह विचारणीय है।"

"कारण अज्ञात और काल्पनिक हैं—ऐसा कहने के लिए क्या आधार है?"

"मैं नहीं जानता।"

"सकारण निर्णय हो चुका है कहने पर छोटे अप्पाजी को विश्वास करना चाहिए न?"

"सन्निधान यह न समझें कि मुझे उनकी बात पर विश्वास नहीं। इस संदर्भ से किसी दूसरे को दुःख का अनुभव करना पड़े तो वह दुःख सकारण है या नहीं इस बात का निश्चय होना आवश्यक है न?"

"किसे निश्चय होना चाहिए? छोटे अप्पाजी को?"

"इस निर्णय से जिसको दुःख हुआ है उस दुखी हृदय को 'यह निर्णय सही है' इस बात का निश्चय होना चाहिए।"

"जिन्होंने गलती की है उन्हें इस बात का ज्ञान रहता है।"

"किसी ने गलती की है तो मान भी लें, पर जिसने गलती न की हो तो भी यह मान ले?"

"इस वर्तमान संदर्भ में ऐसी संभावना ही नहीं, अप्पाजी। वह महाभयंकर अपराध है।"

"वह क्या है, सो सन्निधान बता दें तो अच्छा। माँ को भी इस विषय में कुछ भी जानकारी नहीं है।"

"प्रभु की आज्ञा रही है। इसलिए इस विषय को किसी से नहीं कहेंगे।"

"इसके माने?"

"इस प्रश्न के लिए कोई गुंजायश ही नहीं है। उसका जो भी नतीजा होगा, केवल हम अकेले भुगतेंगे।"

"तो क्या इसमें महादण्डनायक की बेटी का भी हस्तक्षेप रहा है?"

"घर में जो चलता है वह बच्चों को मालूम नहीं होता?"

"तो मतलब यह हुआ कि यह ऊहा मात्र है। प्रभु को और सन्निधान को जो बात मालूम हुई, वह उसी राजमहल में रहनेवाले मुझे या माँ को मालूम क्यों नहीं हुई?"

"राजमहल का सारा व्यवहार सदा सबको मालूम नहीं हुआ करता है। पहले से होशियार रहते हैं न?"

"उसी तरह महादण्डनायक की पुत्री को उनके घर में जो हुआ सो अगर मालूम नहीं पड़ा हो तो···?"

"महादण्डनायक का घर राजमहल नहीं।"

"फिर भी मालूम हुआ है या नहीं इस बात की तहकीकात करके ही निर्णय करना उचित होगा न?"

"छोटे अप्पाजी, सन्तान माँ-बाप के ही खून को बाँटकर जन्म लेती है ?"

"हाँ।"

"तो उनके गुण-स्वभाव बच्चों में आते ही हैं न ?"

"आ भी सकते हैं।"

"तो तुम्हारा मतलब हुआ कि नहीं भी आ सकते हैं, यही न छोटे अप्पाजी ?"

"जन्म से कुछ गुण आ सकते हैं। सभी नहीं। वास्तव में मानव बढ़ते-बढ़ते अपने-अपने गुण और व्यवहार को रूपित कर लेता है।"

"वही, जिस तरह वरदान पानेवाले भस्मासुर ने वर देनेवाले शिव के ही सिर पर हाथ रखना चाहा था।"

"सन्निधान ही बतावें कि हिरण्यकशिपु का बेटा प्रह्लाद कैसे बनता ?"

"उसकी माँ कयादु महासाध्वी थीं।"

"परन्तु दुष्ट राक्षस की पत्नी होने पर भी उसकी सात्विकता नष्ट नहीं हुई न ? गुण, व्यवहार, स्वभाव हमेशा माँ-बाप के ही जैसे होते हैं या जिस वातावरण में पाले-पोसे गये, उसी वातावरण के अनुसार प्रभावित होते हैं—ऐसा माना नहीं जा सकता। प्रत्येक मानव को उसके स्वभाव और व्यवहार को देखकर उसी के अनुसार उसका मूल्यांकन होना चाहिए। राक्षस रावण की पत्नी मन्दोदरी पतिव्रता शिरोमणियों की पंक्ति में विराजमान है। वह भी तो राक्षस कुमारी है।"

"वह पौराणिक समय की बात है।"

"समय क्या करेगा ? मानव-स्वभाव वही है। सन्निवेश, परिसर, परिस्थिति, वातावरण आदि कारणों से वह रूपित होता है। उसी पुराण काल का अनुशीलन करेंगे तो हम देखेंगे राक्षस कुमारी होकर मन्दोदरी ने महापतिव्रता के रूप में ख्याति पायी है तो गौतम-मुनि के वंश में जन्म लेकर जटिला ने सात-सात शादियाँ कीं। यों अनेक उदाहरण मिलेंगे। इसलिए सन्निधान वचन भंग के दोषी न बनें, एक बार सन्निधान खुले दिल से महादण्डनायक की पुत्री से मिलें और बातचीत करें तो दोनों के लिए वह हितकर होगा। यह मेरी अल्पमति की सूझ है। आज्ञा हो तो ऐसी व्यवस्था मैं कर दूँगा।"

"उसका नतीजा क्या होगा सो हमारा अन्तरंग जानता है। तुम्हारे मन में यह भाव होना कि हमने गलती की है—हम दोनों के हित की दृष्टि से अच्छा नहीं है। इसलिए अब जो युद्ध का प्रसंग आ गया है, इसके समाप्त होने के बाद जैसा सूझे करो। परन्तु इस सम्बन्ध में माँ से विचार-विनिमय कर उनकी राय तुम्हें ही जाननी पड़ेगी।"

"माँ की इच्छा के विरुद्ध भला हम कोई काम करेंगे ? कुछ भी नहीं करेंगे और कभी नहीं करेंगे। सन्निधान की इच्छा के अनुसार माताजी की राय मैं स्वयं जान लूँगा।"

"युद्ध के प्रसंग के समाप्त होने तक इस बात को लेकर हमारे मन को बिलोडना नहीं। अब केवल जग्गदेव को ख़तम करना एकमात्र हमारा प्रथम कर्तव्य है।"

"उसमें पोय्सल स्त्रियों को भाग लेने की आशा है न?"—बिट्टिदेव ने फिर छेड़ा।

"माँ की राय तो तुम जान ही चुके हो?"

"ठीक है।"

बात वहीं ख़तम हो गयी। दोनों मौन बैठे रहे। थोड़ी देर बाद महाराज बल्लाल ने कहा, "छोटे अप्पाजी! गुप्तचरनायक मादेय ने पता लगाकर बताया है कि जग्गदेव की सेना की अग्रिम पंक्ति गजसेना है। हमारी सेना में गजबल नहीं है इसलिए महादण्डनायक और प्रधान कुछ आतंकित हैं।"

"तो मतलब हुआ कि इस बात का भी पता लग गया है कि उसकी सेना कहाँ तक आ पहुँची है।"

"सुनते हैं कि वह बाणऊर के मार्ग में वेदावती नदी के उस पार पड़ाव डाले हुए है।"

"यानी सखरायपट्टण की ओर नहीं आये।"

"हाँ।"

"तो वहाँ की सेना को देवनूर बुलालें तो ठीक होगा?"

"महादण्डनायक सोच रहे हैं कि सेना को यावगल बुलाया जाय।"

"अत्यधिक वर्षा के कारण वेदावती भरपूर बह रही है। इस वजह से पार करने की हठ जग्गदेव ने नहीं की और वहीं पड़ाव डाल लिया। प्रवाह के कम होने तक प्रतीक्षा करने के बदले वे किनारे-किनारे पश्चिम की ओर सेना को रवाना करें और जहाँ धार पतली हो वहाँ से इस तरफ आने की सोचें तो हमें उस परिस्थिति में तैयार रहना होगा न? हमने पहले सोचा था कि सखराय-पट्टण पहुँचे तो देवनूर का रास्ता नजदीक पड़ेगा—यह अन्दाज़ गलत होगा और इससे देवनूर के लोग शत्रुसेना की आहुति बन जायँ तो वह अच्छी बात नहीं होगी। इसलिए चिण्णम दण्डनाथ को आदेश दें कि वहाँ की सेना को तुरन्त देवनूर भेज दें। इस काम को अभी कर देना अच्छा है। मान लें, गुप्तचरों द्वारा यह बात जग्गदेव को मालूम हो जाये और फिर वह सखरायपट्टण की तरफ मुड़ गया तो वहाँ के लोगों पर मुसीबत टूट पड़ेगी। इसलिए उन सब लोगों को तब तक सुरक्षित स्थान में रखने, उनके साज-सामान आदि को साथ ही ले जाने का आदेश देना उचित होगा।"—बिट्टिदेव ने बताया।

तुरन्त बल्लाल उठ खड़े हुए, बिट्टिदेव भी उठ खड़ा हुआ।

"छोटे अप्पाजी, यह संभव है कि वैसा हो जैसा तुमने बताया। परन्तु किसी

को यह सूझा नहीं होगा—ऐसा ही लगता है। इसलिए आओ, अभी मन्त्रणा कर आगे के कार्य का निर्णय कर लें।" कहकर घण्टी बजायी। दरवाज़ा खुला। मन्त्रालय की ओर महाराज चल दिये। बिट्टिदेव ने उनका अनुसरण किया।

बिट्टिदेव की सलाह को मन्त्रणा-सभा में अभूतपूर्व समर्थन मिला। इस आशय का आदेश-पत्र अश्वारोही पत्रवाहक के ज़रिये तुरन्त सखरायपट्टण भेज दिया गया। जगदेव की सेना के आने के मार्ग पर पड़नेवाले छोटे-छोटे गाँवों के लोगों को बिट्टिदेव की सलाह के अनुसार सुरक्षित स्थानों में रखने की व्यवस्था भी की गयी।

पट्टिपोंबच्चुपुर के जगदेव के साथ होनेवाले युद्ध के बारे में मालूम होने पर भी शान्तला ने इस सम्बन्ध में अपने पिता से अनजान में भी कुछ नहीं कहा। यों भी हेग्गड़े मारसिंगय्या आजकल घर पर बहुत कम मिलते थे। एक दिन हेग्गड़ती माचिकब्बे ने भोजन के समय पूछ ही लिया, "मालिक को शायद आजकल इतना अधिक काम हो गया है कि कुछ आराम करने के लिए भी समय नहीं मिल रहा है। अथवा परिश्रम कराने में हमारे दण्डनायक बहुत आगे हैं, यही लगता है।" —इस तरह पिता-माँ और बेटी बहुत दिनों के बाद एक साथ भोजन करने बैठे थे।

हाथ के कौर को आधे ही में रोककर मारसिंगय्या ने हेग्गड़ती की ओर एक तरह से देखा; उस दृष्टि में एक तीक्ष्णता दिखी जिसे उसने कभी अनुभव नहीं किया था।

"माँ, बहुत दिन के बाद आज हम यों एक साथ भोजन करने बैठे हैं। इस वक़्त बाहरी कामों के बारे में बातें क्यों छेड़ें। अब समय बदल गया है। यह एरेयंग प्रभु का समय नहीं। यह बल्लाल महाराज का समय है। वे तुनक मिज़ाज हैं। जल्दी ग़ुस्से में आ जाते हैं। राजमहल के कार्यकर्ता को कौन बात कहनी चाहिए, कौन-सी बात नहीं कहनी चाहिए इस पर, सुनते हैं, कड़ी आज्ञा और आदेश हैं। राष्ट्र को बहुत जल्दी प्रगति करनी है, इसलिए सभी से चौगुना काम क़रवा रहे हैं। है न पिताजी?" शान्तला ने अयाचित व्याख्या की।

"किसने ऐसा कहा?"

"आपके मौन ने। पहले तो आप राजमहल के विषयों को कह दिया करते थे। परन्तु आजकल, ख़ासकर महाराज के वेलापुरी से दोरसमुद्र में पधारने के बाद, राजमहल की कोई बात आप नहीं कह रहे हैं। इसीलिए हमें लगता है कि

महाराज ने आपके मुँह पर ताला लगा दिया है। है न माँ ?"—माँ की प्रतिक्रिया को भाँपने की दृष्टि से शान्तला ने उनकी ओर देखा।

"वे शीघ्र-कोपी, तुनक मिज़ाज हैं—यह तुमसे किसने कहा ? छोटे अप्पा जी···?"

"अब तो यह बहुत अच्छा हुआ, आपके कार्याधिक्य के कारण यदि फुरसत न मिले तो माँ महादण्डनायक को उसके लिए ज़िम्मेदार ठहरावें, ऐसे ही आप उन्हें ज़िम्मेदार बनाने चले तो क्या वह ठीक होगा, पिताजी ?"

"तो तुम्हारी यही राय है कि तुम्हारी माँ की बात असंगत है।" मार-सिंगय्या बोले।

"अब इस वक़्त यह सब क्यों अप्पाजी ? अब पहले सारी दुनिया को भूल जावें, सिर्फ़ भोजन पर ध्यान दें। खुशी से भोजन हो जाये। बाद में वह बातचीत करेंगे।" शान्तला ने कहा।

"हाँ, वही करें। परन्तु यह कहना होगा कि महादण्डनायक की राज-निष्ठा अद्भुत है।" कहते हुए मारसिंगय्या ने कौर उठाया।

"जब आप ऐसा कह रहे हैं तो उन्होंने ज़रूर ही कोई महान् कार्य किया होगा ?"

"वह सब समय आने पर अपने आप ही मालूम हो जायेगा। अब इस बारे में बात करना ठीक नहीं है।"

"मैंने कहा न, माँ। राजमहल का—नहीं, नहीं—महाराज का कड़ा आदेश है।"

"दूसरी बात न करने को कहकर फिर तुम ही ने उसे छेड़ना शुरू कर दिया है, अम्माजी ?"

"यों ही कुछ कहा तो आपको ऐसा लगा कि मैंने महाराज की टीका की है; है न पिताजी ?"

"मुझे क्या लगता है, सो सच कह दूं, बेटी ?"

"हाँ, कहिए, पिताजी।"

"तुमसे कुछ मैंने छिपा रखा है, यह तुम्हें लग रहा है। यह बात सीधी न बता-कर राजमहल, आज्ञा, महाराज का आदेश वगैरह-वगैरह कर रही हो। तुमने कहा कि महाराज शीघ्रकोपी हैं। बताओ तो ऐसा कहने का क्या कारण है ?"

"उतना प्रेम करने के बाद उदासीन होना यही सिद्ध करता है कि वह असंयमी हैं। ऐसे असंयमी ही शीघ्र क्रोधित हो सकते हैं।"

"यह बात इतनी आसान नहीं कि चर्चा की जा सके। यह तुम्हारी समझ से कहीं अधिक गहरी बात है।"

"कितनी गहरी है, जान सकती हूं ?"

"मुझे भी ज्यादा ब्योरा मालूम नहीं। उस दिन हमारे घर में खाद की ढेरी में से जो तावीज़ निकले, शायद इसमें उनकी भी कोई भूमिका रही हो। प्रधानजी भी महादण्डनायकजी की लड़की के सम्बन्ध में बहुत चिन्तित हो गये हैं।"

"खाली चिन्तित होने से क्या होता है, पिताजी ? एक पवित्र निर्दोष लड़की का जीवन जलकर खाक बन जाना चाहिए क्या ?"

"कोई यह नहीं चाहता कि ऐसा हो। परन्तु वर्तमान स्थिति ही कुछ ऐसी बन गयी है कि इस समस्या का कोई हल ही नहीं मिल रहा है। उसे हल करना असाध्य कार्य है। अब समय भी ऐसा आया है कि इस सम्बन्ध में सोचने के लिए फुरसत भी नहीं है। सुना कि इस बात का तुमने छोटे अप्पाजी से पता भी लगा लिया है। इसलिए अब इस बात पर चर्चा की ज़रूरत ही क्या है।"

पिता-पुत्री की बातचीत सुनती माचिकब्बे खाना भूल बैठी और थाली में ही उसका हाथ ज्यों-का-त्यों रह गया। उसने एकदम कहा, "तो अब पिता और पुत्री गुप्तचरी के काम में लगे हैं। आप राजनीति-निपुण हैं, वह बुद्धिमती लड़की है। आप दोनों के बीच में मुझ जैसी बेवकूफ के लिए जगह कहाँ ? कैसे कैसे मौक़ों पर कितने ही रहस्यपूर्ण विषयों को मैंने गुप्त रखा है। उस समय मुझ पर विश्वास था तो अब मैंने ऐसा क्या किया जो मुझ पर अविश्वास हो गया ?" इस बात से उनके दिल को कुछ चोट भी लगी थी।

"तुम अपनी तुलना किसी से न करो। अभी जो क्रोध तुम्हें आया है वह अकारण ही प्रतीत होता है। अब तुम्हारी समझ से ऐसा क्या हुआ है कि तुमने विश्वास खो दिया ?"

"मुझे क्या मालूम ? आप और आपकी बेटी जो कुछ जानते हैं, सो मुझे मालूम नहीं। इतना तो आप मानेंगे न ?"

"हाँ तुम्हें मालूम नहीं। मगर इससे तुम्हें असन्तोष क्यों महसूस हुआ ?"

"इसका मतलब यही न कि मैंने आपका विश्वास खोया है।"

"वह उल्टा ही अर्थ हुआ। अम्माजी, मैंने कभी तुम्हें कुछ बताकर कहा कि अपनी अम्मा से मत कहना ?"

"न, न, ऐसा कहनेवाले…"

"बात को इतनी दूर तक ले जाने की ज़रूरत नहीं। तुमने छोटे अप्पाजी से जान लिया और उन्होंने जैसा कहा वैसा ही व्यवहार किया। मैंने भी प्रभु की आज्ञा के अनुसार काम किया। इसमें तुम्हारी माता को उलझन पैदा करने वाली या उनके प्रति मेरे अविश्वास की भावना कैसे दिखायी दी ? यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। तुमने अपनी अम्मा पर विश्वास नहीं कर बिट्टिदेव ने तुम्हें जो बताया उसे अपनी अम्मा से नहीं कहा क्या ?"

"अम्मा पर अविश्वास का माने हुआ मुझे अपने पर ही विश्वास नहीं। इस

बात को अब रहने दें मां, मैं तुमसे एक प्रश्न करूँगी। तुम्हें खुले मन से उत्तर देना होगा।"

"पूछो।"

"चालुक्य पिरियरसीजी जब हमारे यहाँ आयीं तब वे कौन थीं, इसका पता आपको और पिताजी को मालूम नहीं था ?"

"मालूम था।"

"मुझसे कहा ?"

"नहीं।"

"तब मैं यह कह दूं तो कैसा होगा कि आपको अपनी बेटी पर विश्वास नहीं था ?"

"उस समय का प्रसंग ही ऐसा था, अम्माजी। वास्तव में पिरियरसीजी को भी इस बात का पता नहीं लगने दिया कि हम जानते हैं कि वे कौन हैं।"

"अब भी वैसा ही समझिये, मां। राजनीति ही ऐसी होती है। अप्पाजी का, राजाज्ञा का उल्लंघन करना आपके लिए क्या स्वीकार्य होगा, मां ?"

"राजसत्ता ने मुझसे न कहने की आज्ञा दी है।"

"किसी से न कहने का जब आदेश दिया तो उस 'किसी' में आप भी शामिल हैं। आप न भी चाहें तो भी वह अभी थोड़े ही समय में आपको मालूम हो ही जायेगा। मालूम होने पर आप स्वयंही हमारे बरताव को स्वीकार कर लेंगी।"

इतने में बाहर से बूतुगा भागा-भागा आया और एक पत्र उसने दिया। उसे देखकर माचिकब्बे के हाथ दे, मारसिंगय्या उठकर चले गये। भोजन भी समाप्त नहीं किया। माचिकब्बे ने पढ़कर बेटी को थमा दिया और खुद भी पतिदेव के पीछे-पीछे चली गयीं। मारसिंगय्या यह कहकर "शाम को मेरी प्रतीक्षा न करें, और जो बात तुमसे छिपा रखी थी वह उस चिट्ठी में है" राजमहल की तरफ चले गये।

युद्ध सन्निहित है—यह ख़बर केवल कुछ ही लोग जानते थे। परन्तु वह अब राजधानी के घर-घर की बात बन गयी थी। राजधानी में एक नागरिक संरक्षक-दल का संगठन किया गया। इस दल का कार्य था कि आपत्कालीन परिस्थिति के उत्पन्न होने पर राजधानी के उत्तर-पूर्व में एक कोस दूर वाले जंगल में विशेष रूप से तैयार सुरक्षा-स्थलों पर स्त्रियों और बच्चों को तथा उनकी मूल्यवान वस्तुओं

को सुरक्षित पहुँचाना।

मरियाने दण्डनायक के घर की अध्यापिका ने इस सन्दर्भ में एक सलाह दी थी; उस सलाह के अनुसार इस नागरिक संरक्षक दल में दोरसमुद्र की महिलाओं को कुछ योग्य दायित्व देना था। इसके लिए महाराज से स्वीकृति भी मिल गयी थी। इतना ही नहीं, उस स्त्री-दल के नेतृत्व का उत्तरदायित्व भी उन्हीं को सौंप दिया गया था। वृद्ध एवं अशक्त महिलाएँ, गर्भिणी स्त्रियाँ, सद्यःप्रसूता आदि उस दल में नहीं थीं। सिर्फ़ सैनिकों की जवान व स्वस्थ पत्नियों व इसी तरह की अन्य महिलाओं को ही दल में शामिल किया गया था। हाँ, कुछ स्त्रियाँ जो संकोच और लज्जावश शामिल नहीं हुईं, उन्हें छोड़ दिया गया। इन स्त्रियों की सहायता के लिए सिपाहियों का एक दल भी तैनात था और तीव्रगतिवाले वाहनों की भी व्यवस्था की गयी थी। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि इस व्यवस्था में शान्तला भी थी। वास्तव में वह उस अध्यापिका का दायाँ हाथ बन गयी थी। हालाँकि दण्डनायिका चामब्बे ने समझाया कि हम जैसे स्तर के लोगों को गंभीर भाव से अपने घर में रहना ही शोभा देता है, फिर भी पद्मला हठ करके शान्तला के साथ जा मिली। इससे उसका एकांतिक चिताजन्य दुःख कुछ कम हुआ। चामला ने भी पद्मला का अनुकरण किया। बोप्पिदेवी उत्साह न होने के कारण पीछे रह गयी, और फिर वह छोटी भी तो थी।

पद्मला राजधानी के संरक्षक दल की सदस्या बनी। उस दल की सदस्याओं को उनका कर्त्तव्य विस्तारपूर्वक समझा दिया गया कि संकट के समय लोगों को शत्रुओं से बचाकर सुरक्षित स्थान पर तुरन्त भेज देना ही उनका कार्य मुख्य है। पद्मला समझ नहीं पा रही थी कि यह शरणस्थान होते क्या हैं। सबके सामने किसी से पूछना भी उसे अच्छा नहीं लग रहा था। इसलिए मौक़ा पाकर जब शान्तला अकेली मिली तो उससे पूछा। शान्तला ने समझाते हुए कहा कि आमतौर पर हर गाँव की आबादी को दृष्टि में रखकर गाँव से बाहर कुछ दूर पर ये शरणस्थान बनाये जाते हैं। वे पत्थरों के बने गोलाकार निवास-स्थान होते हैं और उनके चारों ओर झाड़-झंखाड़ और जंगली बेल वगैरह पैदाकर उनपर फैला दिया जाता है ताकि किसी को इस बात का शुबहा न हो कि यहाँ निवास-स्थान भी है। उसने समझाया और बताया कि दोरसमुद्र की रक्षा के लिए मज़बूत किला-खन्दक के होते हुए भी यहाँ की असंख्य जनता की रक्षा के लिए ऐसे शरण-स्थान बनवाये जा रहे हैं। महाराज के पट्टाभिषेक महोत्सव के वार्षिकोत्सव के बाद सैनिक शिक्षण के साथ इन शरणस्थानों के निर्माण कार्य को भी तेज़ी से शुरू किया गया। युद्ध में हार-जीत तो भगवान की इच्छा पर निर्भर है। इसलिए आम जनता की रक्षा बहुत ही मुख्य काम है। इसी बात को ध्यान में रखकर पोय्सल राज्य के गांव-गांव में ऐसे शरण-स्थान निर्माण करने की व्यवस्था की

गयी है। ऐसे प्रत्येक स्थान में कितने लोग सुरक्षित रह सकते हैं, इसका भी निश्चय रहता है। इन शरण-स्थानों में निवास करने के लिए जानेवालों को साल-भर के लिए ज़रूरत पर रसद भी जमा करके रखना पड़ता है। आस-पास कुएँ खुदवाये रहते हैं जिससे रात के समय में पानी का संग्रह होता है। अन्धेरे के वक़्त जंगल में जा-आ सकते हैं। इस तरह शान्तला ने पद्मला को विस्तृत जानकारी दी।

"साल-भर के लिए रसद जमाकर रखने का यह माने हुआ कि युद्ध साल-भर चलता रहेगा। यही न ?" पद्मला ने पूछा।

"इतनी लम्बी अवधि तक चलने की संभावना कम है, फिर भी अगर युद्ध घिसटता जाये तो लोगों को खाने-पीने के अभाव के कारण मरना न पड़े।"

"तो मतलब यह कि राज्य-संचालन बहुत पेचीदा है। मुझे तो युद्ध की नाम मात्र जानकारी है, इसका परिणाम आम लोगों पर होगा—यह मैं नहीं जानती थी। अब तो वह घर के दरवाज़े तक भी पहुँच गया है।"

"तो डर किसका ?"

"शायद पहले डरती थी। अब मुझे किसका डर ?"

"इस 'अब' का क्या माने ?"

"स्पष्ट है निराश जीवन बिताते हुए जीने से मरना बेहतर है। इसलिए मरण से डर नहीं।"

"छिः, छि, बात को कहाँ पहुँचा दी। मैं आपसे एक बात कहूँ ?"

"कहो।"

"मेरी बात पर आप विश्वास करेंगी तो कहूँगी।"

"अविश्वास करने का एक समय था। अब पूर्ण विश्वास करती हूँ।"

"सो क्यों ?"

"तब मैं अन्धी थी। अब आँखें खुल गयी हैं।"

"आँखें खोल रखी हैं, ऐसा तो मैं विश्वास नहीं करती।"

"क्यों ?"

"क्योंकि आप महाराज को आँखें खोलकर नहीं देख रही हैं।"

"मैं देख रही हूँ। वही नहीं देखते।"

"एक ही बात हुई। आपने उन्हें खोलकर देखें, ऐसा नहीं बनाया।"

"मैं क्या करूँ ?"

"उनसे मिलिये और जानने की कोशिश कीजिए कि उनके इस परिवर्तन का क्या कारण है ?"

"वे न कहें तो ?"

"ऐसी शंका से आपकी समस्या कभी सुलझ नहीं पायेगी। आपका मन तो

अटल है न ?"

"हाँ, अटल है ।"

"आप से व्यक्त रूप में तो कोई ऐसी बात नहीं हुई कि जिससे प्रत्यक्षतः महाराज के मन पर बुरा असर पड़ा हो ? ऐसा नहीं हुआ है न ?"

"नहीं ।"

"इस बात को जब चाहें, जहाँ चाहें, धीरज के साथ कह सकती हैं न ?"

"झूठ बोलनेवाले को डरना चाहिए । मैं अधीर क्यों होऊँ ? क्यों डरूँ ?"

"तो फिर मुझे कुछ बातें बताइये । क्या आप सच-सच बताएँगी ?"

अपने दोनों हाथों से शान्तला के हाथ पकड़कर वह "शान्तला, माँ की सौगन्ध···" कहने ही वाली थी कि शान्तला ने उसके मुँह पर अपना हाथ रख दिया और कहा, "यों माँ की सौगन्ध नहीं खानी चाहिए । यह अच्छी बात नहीं । मुझे कोई सौगन्ध या प्रमाण की जरूरत नहीं । एक बात साफ़-साफ़ समझ लीजिए । किसी भी बात में मैं आपकी प्रतिस्पर्धिनी नहीं । आपकी भलाई में मुझे अन्तरंग से रुचि है । इसके लिए मैं जो कोशिश कर रही हूँ उसे बताना नहीं चाहती । वह किसी दिन मालूम हो ही जाएगी । उस बात को रहने दें । मैं वास्तव में एक बहुत पेचीदा सवाल करती हूँ । माँ पर सौगन्ध खाने से रोकनेवाली मैं ही इस तरह का सवाल कर रही हूँ, यों आप उसका कोई अन्यथा अर्थ नहीं निकालेंगी । बताइये, आपके घर क्या कोई वामाचारी आया करते थे ?" धीरे से पूछा शान्तला ने ।

"वामाचारी को हमारे घर क्यों आना चाहिए, शान्तला ?"

"क्यों आना चाहिए, क्यों बुलवाना चाहिए, यह सवाल मुख्य नहीं । आते थे क्या ? सो बताइये ।"

"नहीं ।"

"सत्य कह रही हैं ?"

"क्यों, मेरी बात विश्वसनीय नहीं ? चाहो तो मेरी बहिन से पूछ लो ।"

"मैं कुरेदकर पूछ रही हूँ, इससे आपको ऊबना नहीं है । आपके लिए, आपकी तरफ से मुझे बात करनी हो तो कुछ बातों के बारे में निश्चित ज्ञान मुझे होना चाहिए । इसलिए सवाल असम्बद्ध लगें तब भी उत्तर दें ।"

"ठीक है ।"

"आपने कहा वामाचारी नहीं आते थे, ठीक है ? वामाचारी आपके घर नहीं आते होंगे । पर आपके यहाँ से कोई उसके यहाँ गये थे ?"

"शान्तला, मेरे पिताजी महादण्डनायक हैं । जिसे चाहें अपने यहाँ बुला ले सकते हैं । इसलिए हमारे यहाँ से उसके यहाँ किसी के जाने का सवाल ही नहीं उठता ।"

"आप ठीक कहती हैं मगर एक बात की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगी। आपको याद है कि उस दिन हमारे घर में खाद की ढेरी में से चार सोने के तावीज़ निकले थे।"

"ओह, वह···वह तो याद है।"

"आपको मालूम है कि वे क्या हैं?"

"नहीं।"

"आपने घर पर किसी से पूछा कि वे क्या हैं?"

"नहीं।"

"इस सम्बन्ध में आपको जान कर कुतूहल पैदा नहीं हुआ, यह आश्चर्य की बात है। वे उस वामाचारी द्वारा निर्मित यन्त्र हैं। वे आपके घर के गोवर में कैसे आये, किसके ज़रिये आये, यह राजमहल के वातावरण के परिवर्तन का कारण वना हुआ है। आपसे पूछने पर लगता है कि आप यह सब कुछ नहीं जानतीं। इसकी जड़ कहाँ है इसका पता लगाया जाये, तव यह सोचा जा सकता है कि आगे क्या करना चाहिए।"

पद्मला मौन हो गयी। शान्तला ने भी आगे कुछ कहा नहीं। उसे परिस्थिति की सन्दिग्धता मालूम हो गयी थी। पद्मला कुछ नहीं जानती, फिर भी वह इसके मूल का पता लगाने की कोशिश करेगी। जानकर बतावे, यही सोचकर वह चुप रही।

हमारे घर के गोवर की ढेरी में वामाचारी के यन्त्रों के मिलने पर राजमहल के वातावरण को क्यों बदलना चाहिए? इन यन्त्रों का मूल कहाँ है? हमसे उनका क्या सम्बन्ध है? यह घुमा-फिराकर नाक पकड़ने का चक्कर क्यों? महाराज खुद ही मुझसे पूछ सकते थे। यह तो ऐसा हुआ कि गाय बीमार हो और बछड़े की चिकित्सा करें। ऐसा क्यों?—यों पद्मला का मन कई सवालों में उलझता ही चला गया। तभी उसे याद आया कि उस दिन हेग्गड़े के घर मिले तावीज़ों के वारे में माता से कहने पर उनका यह कहकर साफ़ इनकार करना कि ये हमारे नहीं, और पिता का यह कहना कि ये हमारे ही हैं, इन सवके वाद इन तावीज़ों के वारे में सबका मौन हो जाना—ये सब घटनाएँ एक-एक करके मानस-पटल पर अंकित होती गयीं। वह फिर सोचने लगी—क्या इन में मेरी माँ का हाथ है? वही मेरे भविष्य के लिए रोड़ा वन गयीं क्या! वैसा हुआ हो तो आगे मेरा क्या होगा?

शान्तला ने सोचा, इसको यों चिन्ता करते वैठे रहने देना ठीक नहीं। इसलिए उसने कहा, "राजमहल का वातावरण केवल ऊहापोह के कारण वदल गया हो तो उसे ठीक किया जा सकता है। लक्ष्य साधन करनेवालों को समस्या का साहस के साथ सामना करना चाहिए, डरकर पीछे नहीं हटना चाहिए। इस विषय में

आपकी बहिन भी मदद दे सकेंगी, मेरी यह धारणा है।"

"हो सकता है।" पद्मला के मुँह से इतना ही निकला। उसने शान्तला की ओर देखा तक नहीं। इतने में इन्हें ढूँढ़ती चामला भी आ गयी। बोली, 'ओह, आप दोनों को कितनी देर से ढूँढ़ रही हूँ। आप लोग यहाँ बैठी हैं!"

"क्यों, कोई काम था?" शान्तला ने पूछा।

"हमारी गुरुजी बुला रही हैं।...यह क्या दीदी मुँह फुलाकर गुमसुम बैठी है?" कहती हुई चामला ने पद्मला की ओर देखा।

"इसके बारे में घर पहुँचकर तुम्हें बतायेंगी। आप दोनों को उसके हल के रास्ते ढूँढ़ने होंगे। अब चलें। गुरुजी के पास चलेंगी?" कहती हुई शान्तला पद्मला के कन्धे पर हाथ रखकर उठ खड़ी हुई। तीनों गुरुजी के पास चली गयीं।

सोच-विचारकर त्रिट्टिदेव ने जैसी सलाह दी, वैसा ही किया गया। घटनाएँ भी उसी तरह हुईं। जग्गदेव ने अपनी बड़ी सेना के साथ वेदावती नदी के उत्तर में किनारे-किनारे चलकर डेढ़-दो कोस आगे नदी पार करके देवनूर पर हमला कर दिया था। शत्रु-सेना का सामना करने के लिए चिण्णम दण्डनाथ के नेतृत्व में वहाँ सेना तैयार थी। उनकी मदद के लिए छोटे चलिकेनायक और रावत मायण तैयार थे। चिण्णम दण्डनाथ की सेना इतनी बड़ी नहीं थी कि वह शत्रु का सीधा सामना कर सके। इसलिए उसने छद्म युद्ध शुरू कर दिया जिससे शत्रु-सेना आगे भी न बढ़े, और आतंक भी फैला रहे। इस बीच उसने जग्गदेव की सेना की गतिविधि का पता भी गुप्तचरों द्वारा लगा लिया। इतना सब करने के बाद उसने कलसापुर के मुकाम पर अपनी सेना के साथ तैयार बैठे माचण दण्डनाथ को स्थिति की जानकारी देकर उससे मदद माँगी थी। माचण दण्डनाथ की सेना के पहुँचने तक प्रतीक्षा भी करनी थी। इस दौरान देवनूर की प्रजा को वहाँ की पहाड़ी उपत्यका में निर्मित शरण-स्थलों में भी सुरक्षित पहुँचा दिया गया था।

शत्रु-सेना को ग्राम की ओर न आने देने की पूर्व-योजना के अनुसार देवनूर के पूर्व की ओर एक कोस की दूरी पर पोय्सल सेना की कतारें तैयार रखी गयी थीं।

माचण दण्डनाथ आगे की युद्ध-योजना की गतिविधियों के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने और मौजूदा परिस्थिति को समझाकर आगे के कार्यक्रम का निश्चय करने के उद्देश्य से रातोंरात दोरसमुद्र चल पड़े। तब तक गुप्तचरों द्वारा शत्रु-

सेना का परिमाण और उसकी शक्ति-सामर्थ्य का अन्दाज़ राजधानी को लग गया था। राजधानी के अधिकारी वर्ग व युद्ध-विशेषज्ञ इस उलझन में पड़े थे कि जग्गदेव इतनी बड़ी सेना जमा कैसे कर सका। वे इस समस्या को हल न कर सके थे। सेना के विवरण के साथ, रसद, भोजन आदि की व्यवस्था, सैनिकों में उत्साह भरने के लिए आवश्यक मनोरंजन के कार्यक्रम और अन्य दिल-बहलाव की व्यवस्थाएँ आदि सभी बातों की जानकारी दोरसमुद्र में पहुँच गयी थी। प्रमुख दल-नायकों के मनोरंजनार्थ भारी स्त्री-समूह भी तैयार था। चालुक्य विक्रमादित्य की प्रेरणा से काकतीय प्रोल को हराकर इस जग्गदेव ने गौरव प्राप्त कर लिया, यह खबर भी गुप्तचरों से मालूम हो गयी थी। सैन्य के दल-नायकों के मनोरंजन के लिए नियोजित स्त्री-समूह में अधिकतर काकतीय राज्य से अपहृत स्त्रियाँ हैं, यह इन गुप्तचरों की राय थी। सांतरों की सेना की सहायक बनकर चालुक्य सेना की टुकड़ियाँ भी आयी हैं या नहीं, इस सम्बन्ध में निश्चित खबर अभी नहीं मिल सकी थी। फिर भी इस बड़ी सेना को नेस्तनाबूद करने के लिए क्या-क्या करना होगा, इस विषय को लेकर तुरन्त अमात्यों की बैठक बुलायी गयी।

चूंकि बिट्टिदेव के पूर्व अनुमान के अनुसार ही शत्रु सेना अग्रसर हुई थी। इस मन्त्रिपरिषद् में उसकी राय जानने के अनेक प्रसंग आये। मन्त्रणा के बाद यों निर्णय हुआ: "अभी जिस तरह सेना चार हिस्सों में विभाजित है उससे हमारे लिए शत्रु-सेना को जीतना संभव नहीं होगा। हमें सम्पूर्ण पोय्सल-सेना को मिलाकर जग्गदेव की सेना पर हमला करना होगा।" इस पर बिट्टिदेव ने एक सुझाव दिया, "यह तो ठीक है कि हमारी सेना एक साथ होकर शत्रुओं का सामना करेगी। डाकरस दण्डनाथ अपनी सेना के साथ राजधानी आ जायें। यहाँ जो सेना है वह और उनके साथ आनेवाली सेना दोनों सम्मिलित हों। यह सम्मिलित सेना मुख्य सेना होगी और यह राजधानी की रक्षक-सेना बनकर रहे। चिण्णम दण्डनाथ की सेना अचानक शत्रु-सेना पर धावा बोल दे और उसे पीछे हटने का मौका दिये बिना देवनूर की ओर से हटाकर दोरसमुद्र की ओर आने दे। पीछा किये जाने से बचने की जल्दी में शत्रु-सेना इस ओर ज्यादा ध्यान नहीं दे पायेगी कि पीछे क्या हो रहा है। बची हुई शत्रु-सेना रसद, भण्डार आदि के साथ धीरे-धीरे पीछे-पीछे आने लगेगी। मांचण दण्डनाथ अपनी सेना को दो भागों में विभक्त करें। एक टुकड़ी को शत्रु-सेना के बीच हमला करने भेजें और युद्ध करनेवाली शत्रु-सेना को रसद की आपूर्ति न हो सके, ऐसा इन्तज़ाम करें। दूसरी टुकड़ी शत्रु-सेना पर पीछे से आकर धावा बोले और उसकी रसद पर कब्ज़ा कर ले। अपने क्षेत्र का परिचय हमें जितना है, उतना शत्रुओं को नहीं, इसलिए उनकी वह रसद, भण्डार और उन स्त्रियों का जत्था---यह सब राजधानी के उत्तर-पूर्व के शरण-स्थानों में इस तरह भेज दिया जाय कि शत्रुओं को इसका पता भी न चले। बाद में राजधानी की सेना

के साथ आकर मिल जायें।"

"जब रसद, भण्डार उन शत्रुओं को नहीं मिलेगा तो समझ लीजिए कि उनकी आधी शक्ति तो यों ही समाप्त हो जायेगी। लेकिन ध्यान रहे कि इससे वे क्रोधित होंगे और अनेक निरपराधियों को उनका शिकार बनना पड़ेगा।" नागिदेव ने कहा।

"ये निरपराधी कौन ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"माचण दण्डनाथ की सेना को दो भागों में विभक्त कर एक भाग को शत्रु-सेना के बीच में भेज दें तो वह शत्रु-सेना के बीच अटक जायेगा या नहीं ? आहार-सामग्री के न मिलने पर तो शत्रु-सेना की दृष्टि पीछे की ओर पड़ेगी। रसद की रक्षक-सेना और उसके लिए पीछे लौट आनेवाली शत्रु-सेना, इन दोनों के बीच में हमारी सेना की टुकड़ी अटक जायेगी। उस समय हमारी उस सेना का वह भाग यदि नष्ट हो गया तो दूसरा भाग युद्ध में ख़त्म हो जायेगा या नहीं ? इसके बाद वह शत्रु-सेना रास्ते में पड़नेवाले छोटे-छोटे गाँवों को बेरहमी से मिटा देगी। ऐसी सम्भावना है न !" नागिदेव ने अपनी सूझ के अनुसार राय दी।

"यों डरने से युद्ध में जीतना सम्भव होगा क्या ? युद्ध का मतलब है कि उसमें कुछ योद्धाओं को और कुछ निरपराधियों को मरना ही पड़ता है। शत्रुओं की शक्ति को ख़त्म करने के लिए राजकुमार की सलाह बहुत ही उचित और ठीक लगती है। चिण्णम दण्डनाथजी से विचार-विनिमयकर हम उनकी सेना को अपनी सेना में सम्मिलित कर लेंगे और इस सम्मिलित सेना को राजकुमार के आदेश और आवश्यकता अनुसार तीन-चार भागों में विभक्त करेंगे। मैं, चिण्णम दण्डनाथ, छोटे चलिकेनायक और रावत मायण, सब मिलकर विजय पायेंगे। उनकी गज-सेना को ऐसी जगह लायेंगे जहाँ से वह आगे बढ़ने न पाये। उसे यों लाचार कर राजधानी के पास ले आयेंगे और तब हमारी सेना उसका सामना करेगी।" माचण दण्डनाथ ने कहा।

इस तरह की व्यवस्था करने के बाद माचण दण्डनाथ जैसे आया था वैसे ही लौट पड़ा। अपनी पत्नी और बच्चों तक को देखने नहीं गया। उसने युद्ध-शिविर में पहुँचते ही चिण्णम दण्डनाथ, छोटे चलिकेनायक और रावत मायण, इन तीनों को बुलवा भेजा और विचार-विनिमय किया। यों व्यवस्था की गयी—ख़ुद पहले हमला शुरू करेंगे और शत्रु-सेना को राजधानी की ओर ले चलने की कार्रवाई करेंगे। इधर चिण्णम दण्डनाथ अपनी सेना के साथ रसद-रक्षक सेना और शत्रु-सेना के बीच धावा बोल देंगे, शेष दोनों पीछे से शत्रु-सेना शिविरों पर आक्रमण करेंगे। मायण की सेना अधिकांशतः घुड़सवारों की ही थी। चिण्णम की सेना में घुड़सवार भी थे और पैदल सिपाही भी। दोरसमुद्र में जैसे बिट्टिदेव ने सलाह दी थी, वैसी ही सारी व्यवस्था हुई। एक परिवर्तन हुआ था यह कि चिण्णम के

पोय्सलों को एक बात की जानकारी नहीं रही। जग्गदेव साधारण व्यक्ति नहीं था। काकतीय प्रोल को हराते समय उसने जिस युद्ध-तन्त्र का उपयोग किया था, उसी तन्त्र से काम लेने की योजना उसने बना रखी थी। जिरह-बख्तर से लैस होने पर भी सिपाही साधारण नागरिक जैसे रहें, खासकर व्यापारियों की तरह अनेक दलों में गाँव-गाँव के बाजारों में दूकानें फैलाकर व्यापारियों का-सा स्वांग रचकर सबकी आँखों में धूल झोंकते हुए ये दल बढ़ते जायें और दोरसमुद्र और कलसापुर के बीच के जंगल में पहुँचकर अपने साथ लाये हुए शस्त्रास्त्रों को तैयार रखकर नायक की आज्ञा की प्रतीक्षा करें, ऐसा निर्देश उन्हें दिया गया था। वे उसी तरह प्रतीक्षा में रहे।

माचण के हमला करते ही शत्रु-सेना ने भारी प्रमाण में उन पर धावा बोल दिया। माचण भयंकर युद्ध का प्रदर्शन करते हुए अचानक पीछे हटने लगा। इसे देखकर जग्गदेव अपनी सेना के गज विभाग को कुछ पीछे हटाने की आज्ञा दे, अपनी अश्वसेना को पोय्सल सेना का पीछा करने का आदेश देकर शेष सेना के साथ अश्व-सेना के साथ हो लिया। जग्गदेव को इस बात का अहसास भी नहीं हुआ था कि पोय्सल सेना अचानक उसकी सेना के बीच आ सकती है। अपने गुप्तचरों से उसे मालूम हो गया था कि कलसापुर, सखरायपट्टण और यावगज में पोय्सल सेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी है। उसका उद्देश्य था कि रास्ते में जितना संभव हो सके, कम से कम हानि लेते हुए बढ़ते जायें और दोरसमुद्र पर ही हमला करें। इसीलिए उसने सखरायपट्टण का रास्ता ही छोड़ दिया और दूसरे ही मार्ग से चला। यदि वेदावती में प्रवाह न होता तो पूर्व-नियोजित रीति से आगे बढ़ जाता और अब तक दोरसमुद्र ही पहुँच गया होता। वहाँ विलम्ब हो गया। उधर से प्राप्त समाचार और रास्ता बदल जाने के कारण उसे अपनी योजना भी बदल देनी पड़ी। उसने वेदावती के उत्तरी किनारे-किनारे डेढ़ कोस पश्चिम की तरफ सेना भेज दी। इस कारण वेषान्तर में मौजूद सेना इस सेना से अलग-थलग हो गयी।

माचण की सेना पीछे हट गयी थी। उसने समय फिजूल गवाँना उचित समझा और मौक़ा भी ऐसा था। इसलिए पीछा करनेवाली शत्रु-सेना पर सीधा हमला न करके छिपकर तीर बरसाना शुरू कर दिया। उस समय शत्रु-सेना के नायक ने सोचा कि उसके साथ जो सेना मौजूद है, वह शत्रु पर धावा बोलने के लिए अपर्याप्त है। अतः वह थोड़े समय के बाद आकर मिलनेवाली पैदल-सेना और हस्ति-सेना की प्रतीक्षा करते हुए तटस्थ रहा। वह सेना भी आ गयी, परन्तु रसद नहीं आयी। रसद के न आने का कारण जानने के लिए जो दो सवार गये थे, वे भी भागे-भागे लौट आये। उन्होंने घबड़ाते हुए जग्गदेव को खबर दी, "हमारी रसद को शत्रुओं ने रोक रखा है और भारी युद्ध हो रहा है।"

जग्गदेव अब इस दुविधा में पड़ गया कि रसद पाने के लिए सेना को पीछे चलावें या शत्रु-सेना का पीछा करने के लिए आगे बढ़ावे। लेकिन उसके लिए सोचने बैठने का समय नहीं था इसलिए उसने यही ठीक समझा कि शत्रु-सेना का पीछा किया जाये ताकि अग्रिम रक्षक-सेना भी रास्ते में साथ हो ले और अपनी रसद हमें मिल जाये।

इधर दण्डनाथ माचण की सेना जग्गदेव की सेना के बीच अटक गयी। इस स्थिति की जानकारी मिलते ही तुरन्त दोरसमुद्र को उन्होंने ख़बर भेज दी। वे लोग तब दोरसमुद्र से बहुत दूर पर नहीं थे। राजधानी की रक्षा के लिए क़िले के अन्दर पर्याप्त मात्रा में सेना को रखकर स्वयं महादण्डनायक मरियाने युद्ध में जाने के लिए तैयार हुए। गंगराज ने उन्हें राजधानी ही में रोककर खुद सेना का नेतृत्व करने की सूचना दी। महाराज ने गंगराज के नेतृत्व का विरोध नहीं किया और ख़ुद वे और छोटे अप्पाजी बिट्टिदेव सेना के साथ जायेंगे—इस बात की घोषणा कर दी। वह जिज्ञासा करते बैठने का समय न था। तत्काल निर्णय हो जाना ज़रूरी था। महामातृश्री एचलदेवी से निवेदन कर उनका आशीर्वाद पाकर वे दोनों जग्गदेव का सामना करने के लिए निकल पड़े।

महादण्डनायक को दोरसमुद्र में ही रहना पढ़ा। पकती उम्र के कारण उन्हें राजधानी में ही रहने को कहा गया और इस विषय पर चर्चा करने के लिए मौक़ा ही नहीं दिया। जब महाराज ने यह स्पष्ट कर दिया तो मरियाने ने कहा, "मेरे रहते महाराज ख़ुद आगे बढ़ें तो बदनामी मेरी होगी।"

"प्रभुजी मलेपों के साथ युद्ध के समय आपकी आयु का ख़्याल करके आप को राजधानी में ही रहने देकर ख़ुद गये थे या नहीं? अब हम आपको युद्धक्षेत्र में जाने देंगे तो बदनामी हमारी होगी। इसजिए आपका जाना संभव ही नहीं।" बल्लाल ने स्थिति और भी स्पष्ट कर दी।

"परन्तु जब इस युद्ध की सूचना मिली थी तब मंत्रणा-सभा में यही निश्चय हुआ था कि नेतृत्व के लिए मुझे ही नियोजित करेंगे। रोक दें तो, इसका यही माने है कि सन्निधान मुझपर विश्वास नहीं रखते। पोय्सल के राजघराने ने मुझे निचले स्तर से ऊपर उठाया। ओहदा देकर गौरवान्वित किया। इसलिए राजपरिवार का विश्वास प्राप्तकर, युद्ध में मेरे प्राणों का चला जाना मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूँ। मेरी निष्ठा में शंका हो तब जीते रहने से मरना ही बेहतर है।" —कहते-कहते मरियाने का गला भर आया।

गंगराज ने ही उन्हें सान्त्वना दी, "आपकी निष्ठा पर शंकित होकर यह निर्णय नहीं किया गया है। वास्तव में आपके स्थान पर मैं स्वयं युद्ध का संचालन करूँगा। आप निश्चिन्त होकर राजधानी की निगरानी करते यहाँ रहें। सन्निधान की आज्ञा के पालन करने में हमारा और राष्ट्र का हित है।"—इतना

समझाकर इस चर्चा को समाप्त किया। और फिर महाराज आदि युद्धक्षेत्र की ओर चल पड़े।

चाहे कोई कुछ कहे, जितनी भी सांत्वना दे, मरियाने का दिल नहीं मान रहा था। उन्हें अपने ही ऊपर घृणा होने लगी। राजधानी के लोगों को अभी शरण-स्थानों में भेजने का निर्णय नहीं लिया गया था। युद्धक्षेत्र से सूचना की प्रतीक्षा थी और उस कार्य की जिम्मेदारी संरक्षकदल की थी। उसे भी मरियाने की ही देख-रेख में कार्यरत होना था। प्रतिदिन पद्मला इस बात की ख़बर बड़े उत्साह के साथ देती थी कि क्या काम हुआ और क्या नया काम उसने सीखा। वास्तव में पद्मला को शान्तला की शक्ति, उसका सामर्थ्य, औचित्यज्ञान आदि का पूर्ण परिचय मिल गया था। खुले दिल से पद्मला अपने माँ-बाप के सामने शान्तला की प्रशंसा किया करती। महादण्डनायक के परिवार को यही मालूम था कि उनका युद्धक्षेत्र में जाने का समय सन्निहित है, परन्तु स्वयं महाराज और उनके भाई ही गये, मरियाने को पीछे छोड़ गये—यह ख़बर सुनकर पद्मला का उत्साह भंग हो गया। भावी जीवन के बारे में पद्मला और शान्तला के बीच जो बात-चीत हुई थी, उसकी पृष्ठभूमि में पद्मला व्याकुल हो उठी। मरियाने तो एक-दम निराश हो गये थे और वह उसे छिपा भी न सके थे। पिता का चेहरा देखते ही पद्मला उनकी निराशा जान गयी।

दण्डनायिका को इससे बहुत क्षोभ हुआ, उसे ग़ुस्सा आया। उसने आकर अपनी बेटी से कहा, "देखो बेटी, तुम जिस की प्रशंसा कर रही थी उसी हेग्गड़े परिवार का यह प्रसाद है।"

"मुँह बन्द कर!" मरियाने ने गरज कर डाँट दिया।

यह गर्जन सुन पद्मला की छाती धड़कने लगी। अपने पिता को इस तरह क्रोध में ज़ोरदार झिड़की देते उसने कभी नहीं देखा था।

"मुझ पर क्यों ग़ुस्सा करते हैं? सच्ची बात कही तो इतना शोर क्यों?"

"अगर सच्ची बात कहना-समझना इस जिन्दगी में तुम सीख लेती तो मेरी और मेरी बेटियों की ज़िन्दगी यों बरबाद न हुई होती, इस बुढ़ापे में मेरे जीवन पर कलंक नहीं लगता।"

"उन्होंने ऐसा भी किया?"

"उन्होंने नहीं; इस सबका कारण तो तुम हो। अम्माजी, मुझे क्षमा करना बेटी। तुम्हारा भविष्य संदिग्ध स्थिति में पड़ा है, इसका कारण क्या है यह तुम नहीं जानती। इसका कारण तुम्हारी माँ के कार्य हैं। उसने जो किया, उसके साथ मैंने जो सहानुभूति दिखायी, उसी का यह परिणाम है। वास्तव में महाराज, महामातृश्री हमारे पूरे परिवार को ही शंका की दृष्टि से देखने लगे हैं। वे उदार हैं, इसलिए हमें दण्ड न देकर चुपचाप बैठे हैं। उनकी उदारता और बड़प्पन की

हम बराबरी नहीं कर सकते। तुम्हारी माँ के स्वार्थ ने उससे ऐसा कराया जिसे करना नहीं चाहिए। उसके इस नीच-कार्य के कारण अब हमें मुँह छिपाकर कहीं भाग जाना होगा। इस आख़िरी वक़्त पर यदि यह कहा जाये कि मेरे सेनानायकत्व की उन्हें ज़रूरत नहीं तो यही समझना चाहिए कि उनका हमपर विश्वास नहीं रह गया है। महारानी केलेयब्बरसीजी के प्रेम, आदर तथा औदार्य में पलकर यह शरीर बढ़ा है, और यह आज राष्ट्र-रक्षा के कार्य के लिए अनुपयुक्त माना गया है। अब जिन्दा रहने का क्या प्रयोजन ?" फिर दण्डनायिका की ओर मुड़कर बोले, "तुम अकेली प्रधान की बहिन और दण्डनायिका बनकर अकड़ती रहो। मैं और मेरी बेटियाँ कहीं दूर चले जायेंगे। यों अपमानित होकर जीवन बिताते यहाँ रहना मुझसे सम्भव नहीं। इस सबका कारण हो तुम। तुम्हारा उस वामाचारी का आश्रय लेना, तुम्हारा उसके यहाँ जाना, उसे रहस्यमय ढंग से अपने यहाँ बुलवाना—उसी सबका यह नतीजा है। पागल बनकर वह अंजन लगवाने का काम क्यों कराया ? मेरी और मेरी बच्चियों की इस दुर्दशा का मुख्य कारण यही है। बेटी, चलो, क्या सब ग़ुज़रा है उसे बता देने से मेरे दिल का बोझ कम हो जायेगा, चलो सब कुछ बता दूँगा।" यह कह दण्डनायक बच्चों को लेकर चलने लगे।

अब इतनी लम्बी अवधि तक जिस बात को बेटियों से गुप्त रखा था, उसी को क्षण भर में इस ढलती उम्र में खोल दिया जाये इससे चामव्वे झुँझला उठी, "पूरी घटना बताने पर कुछ अनहोनी हो जाय तो क्या होगा ? आपकी सम्मति से ही तो गुज़री होंगी। उनके कुछ परिणामों को हमें ही भुगतना होगा। बच्चों को यह सब बातें नहीं बतानी चाहिए। अब भी मैं भगवान् की सौगन्ध खाकर कहूँगी कि मैंने जो भी किया, अपनी बच्चियों के हित की दृष्टि से ही।"

"नहीं, तुमने जो कुछ किया वह हेग्गड़े परिवार के प्रति ईर्ष्या के कारण। इसीलिए तुमने हमारे घर के गोबर के साथ उन मनहूस तावीज़ों को हेग्गड़े परिवार की बुराई चाहकर उनके घर भेज दिया और खुशी मनायी ! निर्दोष की बुराई चाहने पर तो उसका उल्टा असर बुराई करनेवाले पर ही पड़ता है—इस बात को अच्छी तरह याद रखो।" मरियाने ने कहा।

"इसलिए तुमने यह झूठ कहा कि वे हमारे नहीं। है न ?" पद्मला ने माँ से कुछ गरम होकर पूछा। शान्तला ने जो सवाल उससे किये थे, वे मूर्तिमान होकर उसके दिल में उठ खड़े हुए। इसीलिए शायद पद्मला की बातों में इतनी कठोरता थी।

"उसका रहस्य न खुले, इसलिए ऐसा कहा था।" चामव्वे बोली।

"तुम समझती हो कि वह रहस्य है ! उसके बारे में सारा राजमहल जानता है। हेग्गड़े के घर में सब जानते हैं। अगर कोई नहीं जानती रही तो मैं और मेरी

बहिनें। अब मेरी समझ में आया है। तुमने पदकवाला हार इन्हीं मनहूस यन्त्रों के लिए बनवाया है। पिताजी को शायद पहले से ही शंका रही होगी इसीलिए जब बोप्पि ने दिखाया तो उन्हें पसन्द नहीं आया था। तुमने इसीलिए कहा था कि उसे हमेशा पहने रहना चाहिए।" यह कहते हुए पद्मला ने अपने गले के उस हार को निकाल कर फेंक दिया। ज़ोर से फेंकने के कारण उस पदक का ढक्कन खुल गया।

"अब उसमें वह यन्त्र नहीं है, अम्माजी। हार पर ग़ुस्सा क्यों करती हो?" मरियाने ने कहा।

"वही मेरे गले के मंगल-सूत्र के लिए बाधक बन रहा है, पिताजी। इसलिए निकाल फेंक दिया। यदि इससे आपका मन दुखी हुआ हो···"

"मुझे तनिक भी दुख नहीं। मेरी केवल एक ही इच्छा है कि तुम्हारी आशा-आकांक्षा सफल हो। लेकिन आज के वातावरण को देखने से लगता है, यह आशा केवल आकाश-कुसुम है।"

"अप्पाजी, मुझे अपना भविष्य ख़ुद बनाना है। इसलिए क्या सब गुज़रा है, उसे कृपा करके मुझे बता दीजिए। बाद में···"

चामब्बे बीच में बोल उठी, "आप कुछ न कहें। मैं ही सब बता दूँगी, क्योंकि आपको भी सब मालूम नहीं है।"

"तुम्हारे कहने में कोई बाधा नहीं। परन्तु मुझे ही पहले बताने दो, क्योंकि तुम्हारा नमक-मिर्च लगा किस्सा अम्माजी के भविष्य को कभी अच्छा नहीं बना सकता।"

"तो क्या आप भी मुझपर विश्वास नहीं रखते? जो कुछ मैं कहूँगी वह सब नमक-मिर्च लगाकर ही कहूँगी यही आप सोचते हैं? मुझे सताना ही आपको पसन्द है न?"

"बको मत, ज़रा ज़बान पर काबू रखो। जो चाहे कहने के लिए आज़ाद हो गयी न? मैं भी कहूँगा, तुम भी कहो। बच्चियाँ अब सयानी हो गयी हैं। वे ही निर्णय कर लेंगी।"

"तो क्या सभी बच्चियों से कहेंगे?"

"हाँ, मेरे घर में क्या सब गुज़रा है, वह सभी बच्चियों को मालूम होना चाहिए। मालूम होने पर ही भावी परिस्थितियों का सामना करने के लिए उन्हें साहस होगा। दडिगा, दडिगा···!"

मालिक की इस ऊँची आवाज़ को सुनकर नौकर दडिगा भागा-भागा आया।

"बच्चियाँ कहाँ हैं?" मरियाने पूछा।

"हेग्गड़तीजी की बेटी के साथ कमरे में हैं।"

"शान्तला आयी है ? कब आयी ?" पद्मला ने पूछा ।

"आपको खोजती हुई आयीं, कुछ देर पहले ही । मैंने जब कहा कि आप मालिक से बातचीत कर रही हैं तो वहीं कमरे में बैठ गयीं ।"

पद्मला ने पिता की ओर इस तरह देखा मानो पूछ रही हो कि अब क्या करें ?

"दडिगा, जाओ, सबको मेरे कमरे में ले आओ ।" मरियाने ने कहा ।

"मैं ख़ुद जाकर बुला लाऊँगी" कहकर पद्मला चली गयी ।

दडिगा लौट कर अपने काम पर लग गया ।

"उससे सब कह देंगे ?" चामव्वे का फिर वही सवाल था ।

"मैं कुछ भी करूँगा । तुम्हें मतलब ?" दण्डनायक गरज पड़े ।

"आपकी विचारशक्ति लुप्त होती जा रही है, इसीलिए शायद महाराज ने आपको युद्ध-क्षेत्र में जाने नहीं दिया ।"

मरियाने ने ग़ुस्से में लाल होकर दण्डनायिका की ओर देखा । उनके होंठ काँप रहे थे । एक-दो मिनट तक इसी तरह देखते रहने के बाद कुछ बोले बिना झटके से अपने कमरे में चले गये ।

असह्य दुःख से बोझिल हो दण्डनायिका घुटनों के बीच सिर रखकर सिसक सिसक कर रोने लगी ।

शान्तला को देखते ही पद्मला समझ गयी कि वह शरण-स्थानों के पास ले जाने के लिए आयी है । उसने अपने पिता की इच्छा के बारे में बताया तो सब एक साथ दण्डनायक के कमरे की ओर चल पड़ीं ।

मरियाने चिन्तामग्न हो पलंग पर बैठे थे । बच्चों के आने का भान होते ही किवाड़ की ओर देखा और बोले, "आओ !"

सब अन्दर आ गयीं । मरियाने ने शान्तला की ओर देखकर पूछा, "क्यों शान्तला, किसी काम से आयी हो बेटी ?"

"हाँ, एक ज़रूरी काम था । शरण-स्थानों के पास हमें जाना था । वहाँ पद्मला की गुरु जी हमारी प्रतीक्षा कर रही हैं ।"

"ठीक है । मुझे भी वहाँ काम है । अब हम सब ही चलेंगे । वहाँ पादत्राण और ढाल-तलवार, खुखड़ी-खड्ग, अंकुश-भाले आदि के निर्माण का काम हो रहा है । मुझे उसकी देखभाल करने जाना है । शत्रुओं की अग्रिम सेना में हस्ति-बल होने के कारण हमारे मामूली तीर उतने उपयुक्त नहीं होंगे, इसलिए इन तीरों को तेज बनाकर तैयार कराने का काम हो रहा है । नये किस्म के तीर तैयार कराये जा रहे हैं । इसके लिए उपयुक्त लोह मिश्रण का भी काम चल रहा है । तोमरों को भी ऐसे लौह से तैयार कराने का विचार है । कल की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त सामग्री तैयार हुई है या नहीं—इसे भी देखना है । युद्ध

अब राजधानी के पास तक पहुँच रहा है, इसलिए हथियार तैयार करने का कारख़ाना अब पश्चिम-दक्षिण के कोने के एक गुप्त स्थान पर स्थानान्तरित कर रखा है। हेग्गड़े मारसिंगय्याजी उसकी देख-भाल के काम में लगे हैं। उन्हें तो वहाँ से हिलना-डुलना तक भी नहीं। उन्हें घर से गये एक सप्ताह से भी अधिक समय हो गया होगा; है न?" महादण्डनायक मरियाने ने कहा।

"अप्पाजी घर आये नहीं, सच है, परन्तु वे इस कारखाने की निगरानी कर रहे हैं, यह बात हमें मालूम नहीं थी।" शान्तला ने कहा।

"उन्होंने घर पर नहीं बताया?"

"राजाज्ञा के अनुसार यह तो बहुत ही गुप्त विषय है न? इसीलिए नहीं कहा होगा।" शान्तला ने सहज ढंग से ही कहा।

महादण्डनायक की बच्चियों ने शान्तला और कुछ चकित हुए अपने पिता की ओर देखा।

महादण्डनायक उठकर चलने लगे तो सब उनके साथ हो लीं। सबके सवार होते ही घोड़े का रथ चल पड़ा। उन्होंने रास्ते में बच्चियों को उतार कर कार-ख़ाना देखने के लिए भेज दिया और ख़ुद हेग्गड़े से मिलने चले गये। वहाँ युद्ध-क्षेत्र से सन्देशवाहक आये हुए थे। हेग्गड़े मारसिंगय्या पत्र पढ़ रहे थे। सन्देशवाहक दूतों ने वह पत्र उन्हें दिया था। हेग्गड़े पत्र पढ़ ही रहे थे कि दण्डनायक वहाँ पहुँच गये। उन्हें देखते ही हेग्गड़े उठ खड़े हुए, प्रणाम किया, पत्र को पूरा पढ़े बिना ही तहकर दण्डनायक के हाथ में देने को आगे बढ़े।

"आप पढ़ चुके?" मरियाने ने पूछा।

"अभी नहीं।"

"आप पढ़ लीजिए, मैं बाद में पढ़ लूँगा। कोई ख़ास बात है?"

"लगता है कि कुछ ख़ास बात है।" कहकर खड़े-खड़े ही मारसिंगय्या पढ़ने लगे।

मरियाने एक आसन पर बैठ गये। हेग्गड़े से भी कहा, "बैठिये!"

मारसिंगय्या को शायद बात सुनाई नहीं पड़ी, वे पत्र पढ़ने में मग्न थे। पढ़ चुकने के बाद तहकर मरियाने के हाथ में दे दिया।

उसे लेकर मरियाने बोले, "बैठिए!"

मारसिंगय्या बैठ गये।

मरियाने पत्र पढ़ चुकने के बाद बोले, "ऐसा नहीं होना चाहिए था, हेग्गड़े जी। महामातृश्री को बड़ा सदमा पहुँचेगा। प्रभु जब तक जीवित रहे तब तक चिण्णम दण्डनाथ उनके प्राण समान थे। प्रभु का उन पर सबसे अधिक विश्वास था। महामातृश्री चिण्णम दण्डनाथ के विषय में बहुत आदर भाव रखती हैं। यह बात दूसरी है कि उन्होंने इसे प्रदर्शित नहीं किया था। वे कभी अपने भावों को

प्रकट रूप से प्रदर्शित नहीं किया करती हैं। सगे भाई से भी ज्यादा उनपर अपनापन रखती रहीं। अब उनके न होने से बहुत बड़ा हृदयाघात महामातृश्री को होगा। न, न, ऐसा नहीं होना चाहिए था। उनके बदले मैं मर जाता तो मेरा जीवन सार्थक हो जाता।"

"किस प्रसंग में कौन-सी बात आप कह रहे हैं? पोय्सल राज्य के महादण्डनायकजी के प्राण राष्ट्र के लिए रक्षा-कवच की तरह हैं, अमूल्य हैं।"

"मैं अपनी कीमत जानता हूँ। विश्वास खोये हुए पदाधिकारी का पद वरदान नहीं, हेग्गड़ेजी, वह एक शाप है। पता नहीं, किसी प्रसंग में एक गलती हुई, उस गलती ने मेरे समूचे जीवन को घृणित जैसा बना दिया है।" यों ही बातें अधीरतावश दण्डनायक के मुँह से निकल गयीं।

"ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है। आप अकारण गलत-सलत भावनाओं के वशीभूत होकर ऐसी बातें कर रहे हैं। आयु, अनुभव और जानकारी—सभी दृष्टियों में आप इस राष्ट्र में बहुत बड़े हैं। स्वर्गवासी महाराज विनयादित्य और प्रभु एरेयंग को जिन बातों का ज्ञान था, उन सभी की आपको भी भली-भाँति जानकारी है। आपको युद्धक्षेत्र की विपरीत घटनाओं के बीच फँसा देने से राष्ट्र के ख़ज़ाने को लूटने के लिए मौक़ा देने जैसी स्थिति हो जायेगी। इसीलिए आप को युद्ध में न ले जाने का निर्णय किया गया। जहाँ तक मैं जानता हूँ, मेरी ये बातें अक्षरशः सत्य हैं। आप व्यर्थ ही चिन्तित न हों। आपसे राष्ट्र को बड़ी-बड़ी अपेक्षाएँ है। आपसे राष्ट्र का हित जुड़ा हुआ है। आपको निर्देश देकर हम लोगों को आगे बढ़ाते रहना होगा। आपकी मनःस्थिति का पता हमें अम्माजी द्वारा चल गया है। युद्ध समाप्त होने तक हम संयम से काम लें, बाद में एक-एक कर सब ठीक हो जायेगा। महाराज अभी छोटी आयु के हैं। कभी उन्होंने जवानी के जोश में कुछ कहा हो या कह दें तो उसका गलत अर्थ नहीं निकालना चाहिए। फिलहाल अपनी वैयक्तिक बातें हम न करें। अब यह जो ख़बर मिली है, इसे महामातृश्री और दण्डनायिका चन्दला के पास कैसे पहुँचायी जाय? खासकर ऐसे समय में जब दण्डनायिका गर्भवती है। प्रसव का समय निकट है। उन्हें यह समाचार सुनायें भी तो कैसे?" मारसिंगय्या ने कहा।

"हाँ, मेरा ध्यान उस तरफ गया ही नहीं। भगवान दयालु हैं—ऐसा किस मुँह से कहें हेग्गड़ेजी? देखो न, भगवान ने ऐसा क्यों किया? इस बात को हेग्गड़तीजी के द्वारा महामातृश्री के पास पहुँचाने की व्यवस्था आप ही करें। वे दण्डनायिका चन्दला जी को कैसे बतायेंगी—खुद महामातृश्री ही सोचकर तय करें। हम इस ख़बर को छुपा कर भी नहीं रख सकते। दण्डनायकजी का पार्थिव शरीर राजमर्यादा के साथ राजधानी में आनेवाला है।" मरियाने ने बताया।

* राष्ट्र-गौरव के साथ राजधानी में लाने के बारे में [illegible] हुई है

न ?" कहती हुई शान्तला वहाँ आयी। दण्डनायक की बेटियाँ भी साथ थीं। वे कार्यागार को देखकर आयी थीं।

"हाँ शान्तला, जीत हमारी ही हुई है यह तो निश्चित है परन्तु इसके लिए अभी युद्ध करना है। हेग्गड़ेजी, आप इस विषय को घर पर सोचें और उसपर विचार-विनिमय कर लें, और तब उचित रीति से सन्निधान को बतावें। आपकी बेटी साथ रहेगी तो अच्छा होगा। उसकी सूक्ष्म बुद्धि को भी कुछ सूझेगा। आपने इस कार्यागार की ख़बर घर पर नहीं दी, मालूम पड़ता है।" महादण्डनायक ने कहा।

"प्रभु की आज्ञा का पालन करना मुख्य है। जिन्हें जानना है वे जानते ही हैं। आज्ञा हो तो चलूं ? चलो अम्माजी।" मारसिंगय्या ने आदेश प्राप्त किया।

"तुम्हारा घोड़ा है, अम्माजी ?" महादण्डनायक ने पूछा।

"वह भी इसी घोड़े पर चलेगी।" मारसिंगय्या बोले।

दोनों चले गये।

"शान्तला को भी हेग्गड़ेजी के साथ जाना चाहिए था, अप्पाजी ? अभी तो हम सबको गुरुजी के पास जाना था !" पद्मला ने पूछा।

"गुरुजी को मैं ख़बर दे दूंगा। तुम लोग चिन्ता मत करो। यदि बेटी की ज़रूरत नहीं होती तो हेग्गड़ेजी अकेले ही चले जाते। बैठो, जो बातें अब तक तुम लोगों को नहीं बतायीं उन्हें अब बता देता हूँ। मैं जो बताऊँ उसे अपनी अम्मा से नहीं कहोगी और वह क्या कहती है, सब सुन लिया करो, बाद में आगे की सोचेंगे।" मरियाने बोले।

"हाँ, वैसा ही करेंगी। अभी युद्ध का समाचार···" पद्मला ने बात शुरू की।

"आप लोगों तक पहुँचाने लायक कोई समाचार नहीं है। मैं जो कहता हूँ ध्यान से सुनो।" कहकर उस वामाचारी की समस्त बातें हू-ब-हू बता दीं। पिता से सारी बात सुन बेटियाँ भौंचक्की रह गयीं।

"ईर्ष्या मनुष्य को कितना नीचे गिरा सकती है—इसके लिए इससे बढ़कर दूसरा प्रमाण नहीं मिलेगा, पिताजी।" पद्मला ने कहा।

"तुम को तो ईर्ष्या नहीं है न ?"

"थी, एक समय। अब नहीं है।"

"हेग्गड़ेजी तो खरा सोना हैं। इसे समझने के लिए मुझको ही काफी समय लगा। मनुष्यों को कसौटी पर कसकर देखने में प्रभुजी निपुण थे। वे व्यक्ति के स्थान-मान पर नहीं, उसके सच्चे व्यक्तित्व का मूल्य समझते थे। यह कितना महान् गुण है ! यह हमने समझा नहीं। इसीलिए हम ठोकरें खाकर गिरते गये। फिर भी उन्होंने क्षमा दी थी। समझो कि वे कितने उदार थे ! ऐसे प्रभु का बुरा सोचा गया ! अब इसका कौन-सा प्रायश्चित होगा ?" मरियाने बोले।

"जो क्षमाशील होते हैं, वे सदा क्षमाशील ही रहेंगे। अब हमें राज परिवार

के अन्तस् में यह भाव लाना होंगे कि वास्तव में हम क्षमा योग्य हैं।" पद्मला ने कहा।

"तुम्हारी माँ को यह काम करना चाहिए। बेटी, तुम लोगों का तो कोई अपराध नहीं। अपराध किया उसने। उस अपराध से तुम लोगों को बेखबर रख सकने वाली तो वह है। उसे ही यह काम करना होगा। परन्तु उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।"

बेटियों को माँ के व्यवहार से उसके प्रति नफ़रत की भावना पैदा होने लगी। उनकी दृष्टि में वह माँ नहीं, कोई और ही लग रही थी। सभी बेटियाँ मौन हो बैठी रहीं।

ऐसे बैठे रहना कब तक संभव था? महादण्डनायक भी अपना काम समाप्त-कर लौट आये। तब तक बच्चियों की अध्यापिका भी वहाँ आ गयी थी? सब उठकर महादण्डनायक के महल की ओर चल पड़े।

इधर घोड़े को सरपट दौड़ाते मारसिंगय्या और शान्तला घर पहुँचे और हेग्गड़ती माचिकव्वे को ख़बर सुनायी। सुनते ही उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। कुछ देर बाद आँसू पोंछती हुई अवरुद्ध गले से बोली, "भगवान् के घर न्याय नहीं रहा। अच्छों को जीवित नहीं रहने देता। दण्डनायिका चन्दलादेवी का क्या हाल होगा? उन्हें यह समाचार सुनावें तो कैसे?

"चाहे जो भी हो, समाचार तो पहुँचाना ही होगा। पहले महामातृश्री को समाचार से अवगत करा देते हैं। फिर जैसा कहेंगी वैसा ही करेंगे। आप दोनों भी गाड़ी से वहाँ आ जायें।" मारसिंगय्या ने कहा।

और तुरन्त उनकी गाड़ी राजमहल की ओर चल पड़ी।

शान्तला और माचिकब्बे के वहाँ पहुँचने से पहले ही अपने घोड़े पर सवार होकर मारसिंगय्या राजमहल में पहुँच गये थे। वह अन्तःपुर में ख़बर पहुँचाकर सन्निधान के दर्शन की अनुमति पा चुके थे। गाड़ी से उतरते ही माचिकब्बे और शान्तला हेग्गड़े के साथ अन्तःपुर की तरफ़ चली गयीं।

रेविमय्या वहीं खड़ा था। उसकी ओर देखे बिना ही शान्तला जब तेजी से चली गयी तो वह एकदम चकित हो गया। शायद कोई महत्त्वपूर्ण समाचार होगा, दिल को झकझोरने वाला। मन-ही-मन ऐसा सोचता वह भी धीरे-धीरे उनके पीछे चल पड़ा।

आदेशानुसार हेग्गड़े, हेग्गड़ती और शान्तला, तीनों अन्तःपुर के बरामदे में जा बैठे। बैठने के एक-दो क्षण के अन्दर ही महामातृश्री एचलदेवी वहीं आ गयीं।

तीनों ने उठकर प्रणाम किया।

"हेग्गड़तीजी, बहुत समय के बाद चन्दलदेवी दण्डनायिका के गर्भ हुआ।

आज बहुत कष्ट झेलने के बाद पुत्ररत्न को जन्म दिया है। तुरन्त मुझसे मिलने के इरादे से बुलवा भेजा है। मैं हो आती हूँ। तब तक आप लोगों को यहाँ मेरी प्रतीक्षा करनी होगी।" एचलदेवी ने कहा।

"यदि ठीक समझें तो हम भी सन्निधान के साथ चलें।"—माचिकब्बे ने कहा।

"चलिए, जच्चे-बच्चे को आप भी देख लेंगी। आप लोगों के आने का समाचार मिलने से पहले यह खबर हमारे पास आयी थी। यह समाचार भी मिला कि बहुत रक्तस्राव के कारण दण्डनायिका अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं।"

"हे परमेश्वर!" माचिकब्बे के मुँह से निकला।

"क्यों? क्या हुआ?" एचलदेवी ने पूछा।

शान्तला और मारसिंगय्या दोनों ने हेग्गड़ती की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा। माचिकब्बे ने अपनी गलती को तुरन्त समझ लिया और कहा, "बहुत रक्तस्राव की बात सुनकर कुछ घबड़ा गयी।"

बात वहीं रुक गयी। सब दण्डनायिका चन्दलदेवी को देखने के लिए आतुर हो उठे थे। सो उनके घर जा पहुँचे।

तब तक पता नहीं कितनी ही बार चन्दलदेवी ने अत्यन्त क्षीण स्वर में पूछा था कि अभी महामातृश्री आयी नहीं? जब ये सब प्रसूतिका-गृह में पहुँचे उस समय भी यही पूछ रही थीं। जब चन्दलदेवी की दृष्टि उन पर पड़ी तो उनके मुख पर एक तृप्ति की छाया झलक आयी। उसने बड़ी कठिनाई से धीरे-धीरे अपने दोनों हाथ छाती पर लाकर जोड़ लिये, उन्हें उठा न सकी। फिर धीरे से एक हाथ थोड़ा उठाकर बैठने का अनुरोध किया। माचिकब्बे और एचलदेवी दोनों उनके दोनों तरफ़ बैठ गयीं। शान्तला दूर खड़ी रही।

चन्दलदेवी ने बहुत परिश्रम से अपना दायाँ हाथ धीरे से एचलदेवी जी की गोद में सरकाकर, प्रयास से सांस लेकर धीमी आवाज में कहा, "भगवान् ने कम से कम मुझपर इतनी कृपा तो की।"

"भगवान् ने आपको सब कुछ दिया है। आप बड़ी भाग्यवती हैं।" स्नेह व सहानुभूति से एचलदेवी बोलीं।

"वही, कुछ सान्त्वना है! परन्तु···

"परन्तु क्या?"

"परन्तु···" कहते-कहते उसका गला भर आया।

उधर माचिकब्बे मन में उमड़ती पीड़ा को रोकने की अथक कोशिश कर रही थी। उससे जब नहीं रहा गया तो वह फफक पड़ी।

एचलदेवी ने माचिकब्बे और चन्दलदेवी, दोनों को ढाढस बँधाया। थोड़ी देर वहाँ मौन छाया रहा।

कुछ देर बाद अपने सूखे होंठों को जीभ से तर करते हुए चन्दलदेवी ने कहा, "बच्चा···कहाँ ?"

"बगल के कमरे में सोया है।" धाय ने कहा।

"उठाकर ले आओ।"

"सो रहा है। हम ख़ुद जाकर देख आयेंगे। आप चिन्ता न करें।"—एचलदेवी ने समझाया।

"इस समय वे भी तो सामने नहीं हैं। अब इस वक़्त जब आख़री सांस ले रही हूँ बच्चे को देखे बिना कैसे रहूँ ? हाय, बच्चे को लाइये। उसको देखते हुए अन्तिम सांस निकल जाये।" एक सांस में बोल न पाने के कारण चन्दलदेवी रुक-रुक कर बोलीं।

धाय ने महामातृश्री की ओर देखा। उन्होंने कहा, "माँ की सहज इच्छा होती है कि बच्चा पास रहे। बच्चे को जगाये बिना धीरे से उठा लाओ। यहीं लाकर सुला दो।"

धाय गयी और बच्चे को ले आयी।

शान्तला धाय के पीछे यन्त्र चालित-सी गयी और लौटकर महामातृश्री के निकट खड़ी हो गयी। बच्चे को बगल में लिटाते देख चन्दलादेवी ने कहा, "बच्चे को सन्निधान के हाथों में दो।"

धाय ने फिर महामातृश्री की ओर देखा। महामातृश्री ने दोनों हाथ आगे बढ़ाकर बच्चे को ले लिया।

बच्चे को देखकर महामातृश्री एचलदेवी ने कहा, "आपका बेटा बड़ा सुन्दर है। दण्डनाथिनीजी, मेरी कामना है कि आपका बेटा आयुष्मान् और कीर्तिशाली हो।" बच्चा इतने में जाग गया, आँखें खोल दीं। हाथ उठाकर हिलाने लगा। शान्तला ने थोड़ा-सा झुककर उसका हाथ पकड़ा, बच्चा हँसने लगा।"

"सन्निधान का आशीर्वाद पूर्ण हो। मेरी दो विनती हैं। मैं अपने पतिदेव से कहकर उनकी सम्मति ले आपकी सेवा में निवेदन करना चाहती थी। लेकिन अब वह नहीं हो सकता। वे युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के ख़ून बहाने में मस्त हैं। युद्ध समाप्त होकर उनके लौट आने तक मैं जीवित नहीं रहूँगी।"

"ऐसा मत कहिए, दण्डनाथिनीजी। कुछ कमज़ोर होने मात्र से आपको यह सब नहीं सोचना चाहिए। सब ठीक हो जायेगा।" एचलदेवी ने कहा।

"मैं अपनी हालत अच्छी तरह समझती हूँ, राजमाता। इसलिए मैं आपकी सेवा में अपनी विनती प्रस्तुत करना चाहती हूँ। यह मेरी अन्तिम आकांक्षाएँ हैं; आप इन्हें पूरा करेंगी, ऐसा मुझे भरोसा है।" चन्दलदेवी ने धीमी से कहा।

"राजघराने ने कब किसकी सात्त्विक आकांक्षाओं को पूरा नहीं किया है, दण्डनाथिनीजी ! राजघराना आपकी आशा-आकांक्षाओं को पूर्ण करेगा।"

"अगर मेरी हैसियत से भी अधिक की आकांक्षा हो तो ?"

"ऐसी कोई आकांक्षा आपके मुँह पर आवेगी ही नहीं। आप अधिक बातचीत करने से थक जायेंगी।"

"यह थकावट जल्दी ही सदा के लिए मिट जाएगी, मेरा अन्तरंग यही कह रहा है। इसलिए जो कहना चाहती हूँ उसे कह डालने की आज्ञा दीजिए।"

"कहिए।"

बच्चे को इस तरह लिये रहने से महामातृश्री के हाथ न थक जायें यह सोचकर शान्तला ने धीरे से कहा, "मैं बच्चे को अपने हाथों में ले लूँ?"

चन्दलदेवी की दृष्टि शान्तला की ओर गयी। "ले लो अम्माजी। अच्छे पुण्यवानों के हाथों में पलकर बच्चा बड़ा हो और अपने वंश की कीर्ति बढ़ाये मैं यही चाहती हूँ। दण्डनाथ को छोटे अप्पाजी पर बहुत गर्व है। अपना बच्चा भी उनके जैसा बने, यही उनकी आकांक्षा है। युद्धक्षेत्र से लौटने पर वे स्वयं यह प्रार्थना करेंगे। उन्होंने कुलदेवता की मनौती की थी कि यदि इस बार पुत्र-संतान हो तो उसका नाम 'बिट्टि' ही रखेंगे। यह शायद अनुचित आशा हो, फिर भी निवेदन कर रही हूँ डरते-डरते। उसे इस नाम से अभिहित करने का अनुग्रह राजघराना करे—यही निवेदन है। मेरे न होने अथवा दण्डनाथ के युद्धभूमि से न लौटने की स्थिति में मेरी प्रार्थना है कि बच्चे का यही नाम रखा जाये। यह तो हुई मेरी पहली प्रार्थना। मेरी दूसरी प्रार्थना यह है कि बच्चा अच्छा योद्धा और राष्ट्रभक्त बने, इसके लिए राजघराना उचित शिक्षा की व्यवस्था करे। मेरी दो बच्चियाँ हैं उन्हें··· न, न, मेरे मुँह से ऐसी बात; दण्डनाथजी योग्य वर ढूँढ़कर उनका विवाह कर देंगे। मेरी ये दो आशाएँ सफल करने का आश्वासन मुझे मिले तो मेरे प्राण निश्चिन्त होकर निकलेंगे।" कहती हुई चन्दलदेवी ने अपना हाथ एचलदेवी की गोद में रख दिया। उनकी आँखें एचलदेवी को ही देखती रहीं। तब तक शान्तला ने बच्चे को अपने हाथों में ले लिया था।

एचलदेवी ने चन्दलदेवी का हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, 'आपके कहे अनुसार ही करेंगे। आप आराम कीजिए। अब हम चलेंगे।" और चन्दलदेवी का हाथ धीरे से एक ओर कर एचलदेवी उठ खड़ी हुईं।

माचिकब्बे भी आँसू पोंछती उठीं और एचलदेवी से पहले ही कमरे से बाहर आ गयीं। बच्चे को धाय के हाथों में देकर शान्तला भी एचलदेवी के पीछे-पीछे चली आयी। माचिकब्बे जो पहले ही बाहर आ गयी थीं, वहीं बैठी सिसक-सिसककर रोती रहीं। शान्तला माँ के पास जाकर बोली, "उठो माँ, सन्निधान चलने को तैयार खड़ी हैं।"

हेग्गड़े मारसिंगय्या वहाँ आये। बोले, "अम्माजी, तुम सन्निधान के साथ आगे चलो। मैं तुम्हारी माता जी को ले आऊँगा।" उन्हें पहले ही सब समाचार

मालूम हो गया था। वास्तव में चिण्णम दण्डनाथ के वीरगति पाने का समाचार अभी तक सन्निधान को मालूम नहीं कराया गया था। अभी मालूम करावें या नहीं—इसके बारे में वह सोच रहे थे। पत्नी के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"उठो, सन्निधान के समक्ष हमें संयम से रहना चाहिए।"

"क्या करें, मेरा हृदय फट रहा है। हृदयांतराल को इस बात का ज्ञान नहीं कि सन्निधान पास में हैं। मैं क्या करूँ ?"—सिसकती हुई माचिकब्बे ने कहा। इच्छा के विरुद्ध उनकी आवाज़ ऊँची हो गयी थी। आवाज़ एचलदेवी को भी सुन पड़ी होगी, इसलिए वे लौट पड़ीं।

"देखो, सन्निधान को भी लौटना पड़ा।" मारसिंगय्या ने फुसफुसाया।

"हेग्गड़तीजी, यहाँ की सारी हालत हम सबने एक साथ देखी है। परिस्थिति जैसा आपने कहा, दिल दहलानेवाली है। हम ही अगर अधीर हो बैठे तो उस बच्चे की माँ की क्या दशा होगी ? अच्छा किया कि आप बाहर आ गयीं। उनके सामने ऐसा करतीं तो शायद उसे देखकर ही उनके प्राण पखेरू उड़ जाते। मैं देख रही हूँ कि आप कुछ असहनीय दुःख का अनुभव कर रही हैं। इस दुःख भार को हलका करना हो तो उसे दूसरों के साथ बाँट लेना चाहिए।" एचलदेवी बोलीं।

वहाँ के नौकर-चाकरों को बाहर भेजकर किवाड़ बन्द करके मारसिंगय्या ने धीरे से एचलदेवी को समाचार बताया।

सुनते ही एचलदेवी एकदम स्तम्भित हो गयीं। माचिकब्बे कुछ ढाढस के साथ उठ खड़ी हुईं। एचलदेवी फिर प्रसूतिगृह की ओर चल दीं।

मारसिंगय्या ने जल्दी-जल्दी आगे बढ़कर किवाड़ धीरे से सरकाया। चन्दल देवी मौन लेटी थीं। उसके सिरहाने पर कोने में धाय बच्चे को गोद में लिटाये बैठी थी।

किवाड़ के खुलते ही घबड़ा कर धाय ने पूछा, "कौन ?"

"सन्निधान फिर आ रही हैं।" मारसिंगय्या ने कहा। वह घबराकर खड़ी हो गई। एचलदेवी अन्दर गयीं। मारसिंगय्या ने अपनी पत्नी को बाहर ही रोक रखा। पिता के उद्देश्य को समझकर शान्तला माँ के साथ बाहर ही खड़ी रही। वहाँ एक तरह का गम्भीर मौन छाया रहा।

एचलदेवी चन्दलदेवी के बगल में बैठकर सोच में डूब गयी। इस बुरी ख़बर को कैसे सुनायें ? इसी चिन्ता में वे अन्यत्र देखने लगीं। फिर चन्दलदेवी का हाथ अपने हाथ में लिया। फिर हाथ को तुरन्त छोड़कर ओढ़नी निकालकर उनका पैर छूकर देखा, गाल पर हाथ रखा, ठुड्डी पकड़कर हिलाया। पुकारा, "दण्ड-नाथिनीजी।" और उनकी आँखों की ओर एकटक देखने लगीं। उस समय चन्दलदेवी की दृष्टि ही ऐसी लगती थी।

"दण्डनाथिनीजी, ऐसा क्यों देख रही हैं? बोलिए।" कहती हुई चन्दलदेवी के शरीर को एचलदेवी ने हिलाया। चन्दलदेवी का सिर निराधार-सा एक तरफ़ लुढ़क गया। एचलदेवी ने उनकी नाक के पास अँगुली रखकर देखा। बोली, "जल्दी जाकर वैद्यजी को बुला लायें।"

मारसिगय्या भागे और तुरन्त वैद्य को बुला लाये। इतने में शान्तला और माचिकब्बे अन्दर जाकर हाथ बाँधे खड़ी हो गयीं। वैद्य ने नब्ज देखी, आँखों के पलक उठाकर देखने की कोशिश की। कई तरह से जाँच करने के बाद वह उठ खड़े हुए, और सिर झुका लिया।

सब समझ गये, दण्डनाथिनी चन्दलदेवी अब नहीं रहीं। पुत्रोत्सव की खुशियाँ मनाता घर दुःख में डूब गया। इतने में चन्दलदेवी की दोनों बेटियाँ भी वहीं आ गयीं और माँ के शरीर पर लोट-लोटकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। मरण से कभी विचलित न होनेवाले हेग्गड़े भी दीवार की ओर मुँह कर रो पड़े।

धाय की छाती से चिपका शिशु निश्चिन्त सो रहा था। जन्म देनेवाली माँ के प्रेम का उष्ण-स्पर्श उसे अन्यत्र प्राप्त हो रहा था। एक बार फिर सब सजग हो उठे। एचलदेवी ने कहा, "हेग्गड़ेजी, महाराज के लौटने तक बच्चा आपके यहाँ रहे। ये दोनों बच्चियाँ मेरे साथ राजमहल चलेंगी। मृत देह को दण्डनाथजी के शव के आने तक सुरक्षित रखवाने की व्यवस्था कीजिए। उसके आने के बाद इन दोनों, नहीं,नहीं, एक जीव के दो कलेवरों का राष्ट्रमर्यादा के साथ संस्कार हो। यह एक अपूर्व दाम्पत्य है। हम कितनी भी सोचें या रोयें, वे तो लौटेंगे नहीं। परन्तु भगवान् ऐसा क्यों करता है? क्यों सत्पुरुषों को अस-मय ही इस धरती से उठा लेता है? पर हाँ, कम से कम इतनी कृपा तो उसने की कि एक की मृत्यु की जानकारी दूसरे को न हो पायी और इस तरह दोनों को एक साथ अपने पास बुला लिया। इतने से हमें अपने को दिलासा दे लेना होगा। उफ़। अब समय नष्ट न करें। दण्डनाथिनीजी को अच्छी तरह हल्दी-रोरी तथा फूलों से सजाकर सुमांगल्य पूर्वक अन्तिम-यात्रा के लिए तैयार रखें। इतने में दण्डनाथजी का भी शव आ जाएगा। उनकी अन्तिम-यात्रा की समाप्ति तक हम यहीं रहेंगे। जिन-जिन प्रमुख व्यक्तियों के पास ख़बर भेजनी हो, भेज दीजिए। दण्डनाथिनी की मृत्यु का समाचार युद्धभूमि तक पहुँचाने की आवश्यकता नहीं है। यह ख़बर महादण्डनायकजी को भी दे देनी चाहिए।"

हेग्गड़े मारसिगय्या "जो आज्ञा" कह वहाँ से चले गये। हेगड़ती और शान्तला वहीं रही आयीं। महादण्डनायिका चामव्वे, उसकी बेटियाँ और बाकी लोग भी शीघ्र वहाँ आ पहुँचे। दण्डनाथ के शव को जिस रथ पर ले आया गया था, उसीमें दण्डनाथिनी चन्दलदेवी के भी शव को रखा गया और अन्तिम

संस्कार के लिए ले जाया गया। मरियाने और मारसिंगय्या की देखरेख में दोनों भौतिक देहों का यथाविधि अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ।

युद्ध दिन-ब-दिन भयंकर रूप धारण करता गया। प्रति दिन दोनों तरफ अगणित सैनिक एकत्रित होते। पोय्सलों ने शत्रुओं को रसद पहुँचाने से रोक दिया। फिर भी उनके गजदल को पीछे हटा नहीं सके। गंगराज, डाकरस, महाराज बल्लाल और उनके भाई शत्रुओं का सामना करने में डटे रहे। उधर शत्रुओं को पीछे से नाश करते हुए उनकी आहार सामग्री को रोककर माचण, छोटे चलिके नायक और रावत मायण आगे बढ़ रहे थे। जग्गदेव के दो सैन्य दलों के बीच पड़कर चिण्णम दण्डनाथ के मृत-कलेवर को, उसी के साथ घायल होकर गिरा दल-नायक जन्निगा हिले-डुले बिना पड़ा रहकर, रात को युद्ध-विराम के वक़्त किसी तरह अपने मुकाम पर पहुँचकर, इस मृत्यु-समाचार को बताकर मर गया था। रातों-रात चिण्णम दण्डनाथ के मृत-शरीर को युद्धभूमि से राजधानी पहुँचा देने का कार्य हो चुका था।

कारखाने में विशेष लौह से तीरों के नोक तैयार कर उनका हस्ति-दल पर प्रयोग भी किया गया, फिर भी वे तीर उन हाथियों की चमड़ी को न छेद सके थे। महाराज बल्लाल की सहनशक्ति अब जवाब दे चुकी थी। उन्होंने अब पीछे रहना उचित नहीं समझकर आगे बढ़ने में बिट्टिदेव से विचार-विनिमय किया। आगे बढ़ने के लिए बिट्टिदेव भी सहमत हो गये। परन्तु गंगराज और डाकरस दोनों ने इस तरह आगे बढ़ने नहीं दिया। उन लोगों ने स्पष्ट अनुरोध किया, "महाराज, जब तक हम जीते हैं तब तक आपको आगे आने की ज़रूरत नहीं होगी।"

दोनों ओर से मरनेवालों की संख्या बहुत बढ़ गयी। पोय्सलों के लिए एक सहूलियत यह रही कि उन्हें समय पर रसद मिल जाती और नयी युद्ध-सामग्री भी प्राप्त हो जाती। इनके अतिरिक्त, नये सैनिक भी थोड़ी-बहुत संख्या में आकर सेना के साथ हो लिया करते थे। इन सब कारणों से शत्रु को अग्रसर होने से रोकने में मदद मिली। परन्तु यह नहीं हो सका कि इतने से शत्रु-सेना को पीछे हटा दें या क़ैद कर सकें।

अपनी रसद को रोक रखनेवाली पोय्सल सेना को निर्मूल करने के बाद आगे हमला करने की बात सोचकर जग्गदेव ने एक दिन अपनी आधी से ज़्यादा सेना को

पीछे की तरफ हमला करने भेज दिया। परन्तु उस सेना के कुछ भी हाथ न लगा।

माचण दण्डनायक और उसकी पार्श्वसेना महाराज के आदेश से मूल सेना के साथ आ मिली।

अनन्तर एक रात पोय्सल युद्ध-शिविर में मन्त्रिपरिषद् की बैठक हुई। बल्लाल ने सलाह दी, "मृत्यु की परवाह न कर हमें अपनी सम्पूर्ण अश्व-सेना को शत्रु-सेना पर धावा बोलने के लिए भेज देना होगा। वह सीधे शत्रु-सैनिकों की कतारों को काटते हुए घुसकर धावा कर दे। खासकर सामने के हस्ति-बल की कतारको तोड़ना होगा।

गंगराज ने कहा, "सन्निधान की सलाह तो अच्छी है। इस तरह ही अचानक ज़ोरदार हमला करने पर शत्रुसेना तितर-बितर हो सकती है। मगर यह भी सम्भव है कि उनकी हस्तिसेना मजबूत रहकर सामना करे और हमारी अश्व-सेना हताहत हो कमज़ोर होकर पीछे हट जाय। इसलिए इस विषय पर कुछ गम्भीर होकर सोच-विचारना होगा।"

"जगदेव की कही एक बात हमारे सुनने में आयी है। उसे सुन कर भी हम चप बैठे रहें, यह नहीं हो सकता।" बल्लाल ने कहा।

"हम जान सकते हों तो…"

"हाँ-हाँ क्यों नहीं ? वह कहता फिरता है कि वह महायोद्धा है। व्यूह-रचना में उसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता। खुद को अभेद्य हस्ति-बल का नायक बताता है और हमें छुट-पुट घोड़ों पर फुदकते फिरनेवाले डरपोक कह रहा है। अगर हम अपनी शक्ति और अपने युद्ध-कौशल को न दिखावें तो क्या फ़ायदा ?"

"फिर भी अकारण जानबूझकर मुसीबत मोल ले लेने से क्या लाभ ?" गंगराज ने निवेदन किया।

"ये सब बातें मृत्यु से डरनेवालों के लिए हैं, हमारे लिए नहीं। राष्ट्र का गौरव हमारे जीवन से बड़ा है। कल के युद्ध के महादण्डनायक हम होंगे। समझ गये ? रातों-रात सारी तैयारी हो जाय; सूर्योदय होते ही शार्दूल-पताका लेकर हमारी अश्व-सेना एकदम शत्रुसेना पर धावा बोल देगी और उसे छिन्न-भिन्न कर देगी। सभी दल-नायकों और सेना-नायकों को अभी तुरन्त बुलवा लें।" बल्लाल ने कहा।

"सन्निधान और कुछ सोचें तो बेहतर होगा ?" धीरे से गंगराज ने कहा।

"सन्निधान का कहना मुझे ठीक लग रहा है। मुझे अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि इन सांतरों की सेना में कुछ आतंक फैला दें तो वह जल्दी वश में आ जाएगी।" माचण दण्डनाथ ने कहा।

"सन्निधान की सलाह मुझे भी मान्य है। प्रभु कभी-कभी कहा करते थे कि ऐसी परिस्थिति में जब कुछ समझ में न आये तो ऐसी कार्ययोजना अच्छा फल देती है। परन्तु सन्निधान का अग्रसर होकर जाना मेरे लिए स्वीकार्य नहीं।"

डाकरस ने कहा।

"क्यों ? इसलिए कि मुझे प्राणों का डर है" बल्लाल ने पूछा।

"सन्निधान के प्राण राष्ट्र के लिए अनमोल हैं। राष्ट्र का अस्तित्व जितना महत्त्व रखता है, सन्निधान की सुरक्षा भी उतनी ही मूल्यवान् है।" डाकरस ने जवाब दिया।

"महादण्डनायक की भी राय यही होगी ?"

"हमको इस लायक तैयार करनेवाले तो वे ही हैं। उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन में जो आचरण किया, उसी को सिखाया हम सब लोगों को। प्रभुजी इन मलेपों के साथ हुए युद्ध में हमारी बात मान जाते तो कितना अच्छा होता ! सन्निधान भी तब प्रत्यक्षदर्शी रहे।

"दण्डनाथजी, आपमें महादण्डनायक का खून बह रहा है, उन्हीं की तरह आप बात करते हैं। हम में प्रभुजी का ख़ून बह रहा है, हम उनकी तरह बरतेंगे। मेरी समझ में चर्चा अब बहुत हो गयी। दल-नायक और सेनानायकों को बुलवाइये।" बल्लाल ने आज्ञा दी।

उन लोगों को बुलाने के लिए कुछ सैनिकों को भेजा गया। जल्दी ही सब इकट्ठे हो गये। ख़ुद बल्लाल ने दूसरे दिन के हमले के बारे में विस्तार से समझाया। सब लोगों को अपने साथ नये कुठार, नई धारदार तलवार और मुगदर लेने के लिए कहा गया। हाल में तैयार हुए जिरह-बख्तर पहनने का आदेश दिया गया। "सूर्योदय होते ही दसों दिशाओं में युद्ध के बाजे बज उठेंगे। तुरन्त सब योद्धाओं को प्रवाह की तरह आगे बढ़कर शत्रु-सेना पर एकदम धावा बोल देना होगा। हमारी शार्दूल-पताका लेकर आनेवाली सेना जयघोष करते हुए पीछे-पीछे चले। सभी तीरंदाज सेना आड़ के ठावों में छिपकर चारों ओर से तीरों की वर्षा करे। कल का दिन पोय्सलों के लिए विजय का दिन होगा और जग्गदेव के पराजय का। अब चल दीजिए। बहुत वक्त हो गया। इस सीमित समय के अन्दर जितना हो सके आराम कर लीजिए। प्रातः के भुरभुरे में ही सबको तैयार हो जाना होगा।"—बल्लाल के ये बोल आवेशपूर्ण थे। उन्होंने फिर कहा, "हम भी आप लोगों के साथ आगे चलेंगे। समझ गये न ? जीवित रहे तो कल का दिन गर्व करने का होगा, नहीं तो वीर गति प्राप्त होगी। सब आप ही लोगों के हाथ है। हम केवल निमित्त मात्र हैं।" कहकर उठ खड़े हुए।

दल-नायक और सेना-नायक सब उठ खड़े हुए और प्रणामकर चले गये।

गंगराज मौन प्रेक्षक बनकर सब देख रहे थे। वह उठकर वहीं खड़े रहे, गये नहीं।

"हमारे व्यवहार से आप को परेशानी हुई, प्रधानजी ?" पास जाकर बल्लाल ने पूछा।

"नहीं सन्निधान। मुझे, माचण और डाकरस—हम तीनों को कल आपके अंगरक्षक बनकर आप के साथ रहने के लिए अनुमति मिलनी चाहिए।" गंगराज ने कहा।

"आप लोग नायक हैं, अंगरक्षक नहीं। इसलिए आप लोग नायक ही का काम कीजिए। अंगरक्षक तो साथ रहेंगे ही।"

"ऐसा नहीं हो सकता। सन्निधान को हमारी परिस्थिति भी समझनी चाहिए। हमने स्वर्गवासी प्रभु को और महामातृश्री को वचन दिया है; उस वचन का पालन करने के लिए हमें मौक़ा दिया जाना चाहिए।"

"सो क्या है ?"

"जब तक हम जीवित हैं तब तक सन्निधान की रक्षा करेंगे।"

"हम आपके वचन पालन में बाधक नहीं होंगे। परन्तु युद्धभुमि की गति-विधियों पर हमारा काबू नहीं रहता, यह तो आप जानते हैं।"

"आप साथ रहने की आज्ञा दें, बाकी बातें हम ख़ुद देख लेंगे।"

"वही कीजिए। अब समय हो गया। आप सब अब आराम कीजिये।" बल्लाल ने कहा।

गंगराज धीरे-धीरे चले गये। वहाँ अब केवल तीन लोग बच रहे—बल्लाल, बिट्टिदेव और उदयादित्य।

"छोटे अप्पाजी, उदय, अब चलें, सोवें।"—बल्लाल ने कहा। तीनों आराम करने चले गये।

सवेरा होने से पहले ही, पोय्सल सेना-शिविर फुर्ती से तैयारी में लग गया। पिछली रात को बल्लाल महाराज की जैसी आज्ञा हुई थी, उसी प्रकार सारी सेना का नियोजन हुआ।

विशेष ढंग से बने अंगरी (बख्तर) महाराज और उनके भाइयों ने धारण किये। अश्व-सेना की अगली कतार में महाराज और बिट्टिदेव रहे; उदयादित्य पैदल सेना की पृष्ठवर्ती घुड़सवार-सेना की कतार में छोटे चलिके नायक के साथ सुरक्षित हुए।

सूर्योदय के साथ-साथ चारों ओर से रणभेरियाँ बज उठीं। उन्हें सुनते ही युद्ध सन्नद्ध अश्वदल एक बार हिनहिनाकर आगे बढ़ने को तैयार हो गया।

पताकाधारियों ने जय-जयकार किया। सैनिकों का विशाल प्रवाह महाराज के नेतृत्व में आगे चला। उधर शत्रु-सेना अभी तैयारी में लगी थी। जग्गदेव तब तक अपने हाथी पर हौदे में धनुष-बाण लिये बैठा था। उसकी सेना आगे बढ़ने के लिए फरमान की प्रतीक्षा में थी। जग्गदेव के फरमान देने के पहले ही पोय्सल सेना ने धावा बोल दिया। नये तेज़ हथियार होने के कारण शत्रु-सेना के हाथी घायल हो गये और चिंघाड़ने लगे। कुछ हाथी पोय्सल के नये हथियारों के आघात

से आहत होकर पथरा गये। पोय्सल वीरों ने बख़्तर पहन रखा था, इसलिए शत्रुओं के तीर उनका कुछ न बिगाड़ सके। कुल मिलाकर जग्गदेव की सेना में आतंक-सा फैल गया। जग्गदेव के सैनिकों में यह भावना हो गयी कि वे शत्रु-सेना के अश्वारोहियों के धावे का सामना कर नहीं सकते। इसी बीच पोय्सल धनुर्धारी-सेना ने बाण-वर्षा शुरू कर दी जिससे अश्वसेना को मदद मिली।

जग्गदेव स्थिति की गंभीरता को समझते हुए पीछे खिसककर अपनी सेना के बीच में आ गया था। बल्लाल ने इसे देखा, बिट्टिदेव को इशारे से बताकर आगे बढ़ा। उनके साथ ही, काफी संख्या में अश्वसेना भी घुस पड़ी। कहीं से एक तीर आया और जग्गदेव के हाथी की आँख में घुस गया। वह हाथी बुरी तरह से चिंघाड़ने लगा। इतने में बल्लाल का तोमर उस हाथी के पेट में घुस गया। उनके पक्ष की तलवारों ने उस हाथी के पैर पर भी प्रहार किये। जग्गदेव ने बल्लाल की छाती पर लक्ष्य कर तीर छोड़ा। वह उन्हें लगकर खनखनाकर नीचे जा गिरा। इसे देख जग्गदेव हक्का-बक्का रह गया।

"मैं खाली सिपाही मात्र नहीं हूँ। मैं वीर बल्लाल हूँ।" पोय्सल महाराज ने गर्जना की।

जग्गदेव भौचक्का होकर देखने लगा। फिर धनुष पर तीर चढ़ाया ही था कि हाथी लुढ़क गया। हौदा झुक गया। हाथी के पैरों के नीचे गिरने के डर से वह हौदे से कूद पड़ा और तलवार ले उसे चमकाने लगा। बल्लाल भी अपने घोड़े से कूदकर अपनी तलवार ले लड़ने को आ डटे। महाराज को घोड़े से उतरते देख गंगराज ने अपने घोड़े को उसी तरफ घुमा दिया। गंगराज के घोड़े को दूसरी ओर घूमते देख डाकरस ने भी अपने घोड़े को उसी तरफ मोड़ दिया। उनके आते-आते बल्लाल ने जग्गदेव की तलवार को उड़ाकर उसकी छाती पर लटके पदक को खींच लिया था। पदक के ज़ोर से खीचे जाने के कारण जग्गदेव नीचे लुढ़क गया।

राजा को नीचे गिरते देख सांतरों की सेना पीछे हटने लगी। सांतरों के चार-छह सैनिक उस तरफ भागे-भागे आये। उनमें से एक कूदकर जग्गदेव के सामने आकर खड़ा हो गया। यह सब क्षणभर में हो गया था। "देखो, जग्गदेव उधर भागा जा रहा है।" कहता हुआ बिट्टिदेव उधर आ ही रहे थे कि इतने में वहाँ एक छोटा युद्ध ही शुरू हो गया। जग्गदेव अपनी सेना की आड़ में जान बचाकर लापता हो गया था। उसे भागने का समय मिल जाय इसी ख़याल से इन सांतरों के सैनिकों ने युद्ध का स्वांग रचा था। बाद में वे भी चंपत हो गये।

पोय्सलों की सेना ने शत्रु-सेना के जितने लोग हाथ लगे, उतनों को गिरफ्तार कर लिया, जो भी शस्त्रास्त्र हाथ लगे सब बटोर लिये गये। शत्रुओं के हाथी, घोड़े, भण्डार सब बटोरकर जय-जयकार करते हुए गाजे-बाजे के साथ राजधानी

सब के परिवारों से एक-एक युवक को सेना में भी ले लिया जायेगा।

विजयोत्सव तथा चिण्णम दण्डनाथ की बेटियों के विवाह के अवसर पर महादण्डनायक की पुत्रियों ने जिस उत्साह से काम किया था, उसे देखकर बल्लाल चकित था। शान्तला जितने उत्साह और श्रद्धा से ही उन्होंने काम किया था। हाँ, चामव्वे ज़रूर दोनों ही अवसर पर अनुपस्थित रहीं।

तब एक बार बल्लाल ने महादण्डनायक मरियाने से ख़ुद पूछ लिया। दण्डनायिकाजी बिलकुल दिखायी नहीं दीं ?"

"उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं।" मरियाने ने संक्षेप में जवाब दिया।

"क्या हुआ ?"

"कामला है।"

"चिकित्सा ?"

"चल रही है। दवा लगती नहीं।"

"राजमहल के वैद्य को ले जाइये।"

"जो आज्ञा।"

"महामातृश्री को मालूम है ?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं बताया ?"

"ऐसी मामूली-सी बातों को महामातृश्री तक बताते फिरना उचित नहीं। चामव्वे की भी यही राय थी।

"महामातृश्री को बताना चाहिए था।"

"जैसी आज्ञा।"

"हमें ख़बर मिली है कि हमने आपको युद्धक्षेत्र में आने से मना कर दिया, आप असंतुष्ट हैं।"

"असन्तोष नहीं, परेशानी हुई।"

"मतलब ?"

"इस राजमहल का अन्न खाकर पला यह शरीर वक़्त पर काम नहीं आया तो इसका क्या लाभ ? इसलिए परेशानी है। मुझे अपने ही ऊपर घृणा हो गयी है।"

"यहाँ आपने जो काम किया वह किसी दूसरे को तो करना ही पड़ता न ?"

"मैं योद्धा हूँ। मेरा काम युद्ध-भूमि का है जबकि इसके लिए मैं अयोग्य माना गया।"

"ऐसी भावना आपके मन में क्यों आयी ?"

"उसे समझाकर बता सकने की शक्ति मुझमें नहीं है।"

"आप अकारण परेशान हो रहे हैं। आप की ही तरह और भी अनेक लोग राजधानी में रहकर काम करते रहे। नागदेव, पद्मनाभय्या, मारसिंगय्या आदि तो यहीं रहे।"

"उनमें से कोई पोय्सल राज्य का महादण्डनायक नहीं। युद्ध के आरम्भ के समय जो विश्वास सन्निधान का मुझ पर रहा, उसे वैसा ही रखने का भाग्य मेरा न रहा।"

"क्या कहकर समझाने से आप सन्तुष्ट होंगे ? राजकुल ने कभी आप पर अविश्वास नहीं किया। प्रभु के जीवित रहते समय किसी प्रसंग में सन्देह हुआ जरूर परन्तु सच बोलकर आप उनके गौरव के पात्र बने रहे। ऐसी दशा में अविश्वास का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? जो बात है नहीं उसकी कल्पना क्यों कर लेते हैं ? आप लोग तो राष्ट्र के रक्षा-कवच हैं।...आप राजमहल के वैद्य को बुला ले जाइये।"

"जो आज्ञा।"

"वहाँ से आकर वैद्य जी मुझे भी बता दें—उन्हें कह दीजिए।"

"जो आज्ञा।" प्रणाम करके मरियाने चले गये।

बल्लाल ने समझ लिया कि मरियाने के दिल में कुछ दर्द है अवश्य। इस सम्बन्ध में उन्होंने बिट्टिदेव से बात छेड़ी। तब तक बिट्टिदेव को यह सब मालूम हो चुका था। अपने पिता से सारा घटनाचक्र जानने के बाद बेटियाँ अपनी माँ से भी सारा ब्यौरा जान चुकी थीं। उन सब बातों को सहज भाव से इन लोगों ने शान्तला से भी कह दिया। और, शान्तला ने वह बिट्टिदेव को सुना दिया। सारी बातें कह चुकने के बाद शान्तला ने बिट्टिदेव से कहा, "अब यह बात समझ में आ रही है कि गलती किसकी है। अपराध किसी ने किया और दण्ड किसी और को दिया जा रहा है; यह कैसा न्याय है ? आप किसी तरह से इस स्थिति को ठीक कर दें।"

"मैं अवसर मिलते ही सन्निधान को जितना उचित होगा, बताऊँगा। सबसे पहले मैं उनके पूर्वाग्रह दूर करना चाहता हूँ। उससे पहले माताजी को भी इस बारे में पूरी जानकारी देनी होगी जिससे माताजी उनको क्षमा कर सकें। इसके बाद ही कुछ किया जा सकता है। यह सब कैसे हो पायेगा यह मुझे सूझ नहीं रहा है, क्योंकि सुनने में आया है कि दण्डनायिका का स्वास्थ्य ठीक नहीं। यह प्रकारान्तर से माताजी को मालूम हो गया है, फिर भी इस बारे में कोई विशेष

उत्सुकता नहीं दिखाकर उन्होंने इतना भर कहा, "बेचारी, जल्दी अच्छी हो जायें।"

शान्तला की त्योरियाँ चढ़ आयी थीं। बिट्टिदेव आगे कहते जा रहे थे, "चन्दलदेवीजी ने जब देखना चाहा तब माताजी का जैसा व्यवहार था उससे तो तुम परिचित हो। तब की औरअब की रीति में बहुत फ़र्क है न? तुम ही कहो! क्योंकि तुमने प्रत्यक्ष रहकर देखा है और जो देखा उसे बताया भी है तुमने।"

"चामव्वे की बात ही अलग है। देखने की इच्छा रहने पर भी प्रार्थना करने के लिए मन में संकोच है। इन दोनों में तुलना नहीं हो सकती। जल्दी ही इस बारे में कुछ करना चाहिए।"

"मेरी इच्छा को तुम जानती ही हो। मैं सु-अवसर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"—बिट्टिदेव ने कहा।

शान्तला से हुई बातचीत को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उचित अवसर समझ कर बिट्टिदेव ने सन्निधान से पूछा, "सन्निधान का विचार है कि महादण्डनायक के मन में शायद ऐसी कुछ वेदना है, है न?"

"हमें मालूम कैसे होगा? राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा में लेशमात्र भी सन्देह नहीं, लेकिन जग्गदेव के साथ के युद्ध के समय उन्हें राजधानी ही में रहने दिया, इससे उन्हें शंका हो गयी है कि उनकी निष्ठा में हमें विश्वास नहीं और इसी वजह से वे दुखी हों तो हम क्या करें?" बल्लाल ने कहा।

"अगर वही अकेला कारण होता तो वे अपने दुख या परेशानी को व्यक्त नहीं करते। वे व्यवहार-कुशल हैं। बात उससे अधिक मार्मिक रही होगी।"

"हर किसी की कोई न कोई आशा-आकांक्षाएँ रहती ही हैं। उन सभी को हम कैसे पूरा कर सकेंगे? इसके कारण अगर दुखी हों तो हम कैसे उसके ज़िम्मेदार होंगे?"

"यानी युद्धभूमि में न भेजे जाने के अलावा भी कोई कारण हो सकता है उनके दुःखी होने का—यही सन्निधान का मन्तव्य है?"

"शायद यही।"

"क्या मेरा यह सोचना ठीक होगा कि सन्निधान का उनकी बेटी से विवाह भी एक कारण हो सकता है?"

"शायद हो!"

"पहले एक बार मैंने इस विषय पर बातचीत की थी।"

"याद है। कोई नयी बात मालूम हुई?"

"बहुत-सी। मेरे विचार से हमें आपस में मिलकर विचार-विनिमय करना चाहिए। वस्तु स्थिति समझ लेना चाहिए ताकि गलतफहमियाँ दूर हो सकें।"

"मनुष्य का स्वभाव ही है अपनी नाक की सीध में कुछ कहना, है न?"

"सन्निधान भी मानव हैं, मैं भी मानव हूँ, माताजी भी मानव हैं, ऐसे ही प्रधानजी, महादण्डनायकजी, दण्डनायिकाजी, उनकी पुत्रियाँ—सभी मानव ही हैं। सब अपनी-अपनी नाक की सीध में बोलते जायें तो सत्य कैसे प्रकट हो सकता है? इसीलिए खुले दिल से विचार-विनिमय करने की बात मैंने कही।"

"छोड़ो यह सब! यह बताओ कि तुम्हें क्या बात मालूम हुई?"

"मेरे बताने का कोई लाभ नहीं होगा। मुझे जो मालूम हुआ है, उससे यही निवेदन करना चाहूँगा कि सन्निधान जल्दबाज़ी में कोई निर्णय न लें। पहले जिनकी बात है उन्हीं से पूरी तरह जान लेना चाहिए।"

'ऐसे तुम्हारा कहना ठीक लगता है, फिर भी वामाचारी से मदद पानेवाले से सम्बन्ध रखना ठीक है या नहीं—यह तो सोचना ही होगा न? हमारी दृष्टि में ऐसा सम्बन्ध ठीक नहीं है।"

"वामाचारी का सम्बन्ध किससे था? कैसा था? क्या सन्निधान को पूरी जानकारी है?"

"हमें केवल इतनी ही जानकारी है कि सम्बन्ध था। अंजन की भी बात मालूम है। अधिक ब्योरा अभी ज्ञात नहीं किया। जानने की इच्छा भी नहीं हुई। वास्तव में प्रभु को भी यह आचरण पसन्द नहीं आया था। उनका यह उद्देश्य रहा होगा कि हम उनसे हेलमेल न रखें इसीलिए शायद उन्होंने मुझे बुलाकर वामाचारी से सम्बन्धित स्थिति को बताया था।'

"वह सन्निधान का अनुमान होगा। क्या प्रभु ने स्पष्ट कहा था कि यह सम्बन्ध नहीं होना चाहिए?"

"नहीं!"

"तो हम क्यों सोचें कि उनका यही उद्देश्य था।"

बल्लाल कुछ न बोले।

"और फिर दण्डनायक की बेटी को सन्निधान ने स्वीकार करने का निर्णय कर जब वचन दिया था तब पहले प्रभु की सम्मति लेने की बात सोची थी?"

इस बार भी बल्लाल चुप रहे आये।

"पुरुष नारियों को चाहकर, अपने साथ कईयों को रख लें, परन्तु नारी··· कोई चाहे ठीक लगे या न लगे, एक बार जिससे पाणिग्रहण हो जाये उसी को देवता मानकर उसी के साथ जीवन-यापन करने की उदारता दिखाती है। सारे जीवन में उसी एक के साथ रहती और अपना सर्वस्व उसे समर्पित करती है। ऐसी समर्पिता नारी को छोड़ने का भी कोई कारण होना चाहिए न?"

इस बार भी बल्लाल ने कुछ नहीं कहा। शायद वह अपने अंतरंग को टटोल रहे थे।

"सन्निधान जानते हैं कि हमारी संस्कृति में नारी को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यह स्थान उसे उसकी निष्ठा के कारण, उसके त्याग के कारण

उसकी उदारता के कारण, उसकी करुणा के कारण, उसकी क्षमाशीलता के कारण मानव जीवन में पड़ सकनेवाली दरारों को पाटकर समतल कर सकने की शक्ति रखने के कारण, उसे सहज ही प्राप्त है। ऐसी नारी को दुःख देना क्या उचित है ?"

' नारी होने के नाते वह कुछ भी करे, उसे क्षमा कर देना चाहिए छोटे अप्पाजी ?"

"मैंने यह नहीं कहा। क्या गलती है इसे जाने बिना, और साबित हुए बिना कोई निर्णय लेना ठीक होगा ? सन्निधान को सोचना चाहिए।"

"अब तुम्हारी क्या सलाह है ? इस विषय में हमें स्वतन्त्रता नहीं होगी ?"

"सन्निधान की स्वतन्त्रता छीनना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं चाहता हूँ कि लोग यह न कहें कि सन्निधान की गलतफहमी के कारण एक नारी के साथ अन्याय हुआ। प्रत्यक्ष को भी प्रमाणित होना चाहिए। विशेषकर हम जैसे जिम्मेदार लोगों को इतनी स्वतन्त्रता नहीं होती है।

"हमारी विशेषता क्या है ?"

"राज-पद। राजपद के माने यह नहीं कि हम पूर्णतः स्वतन्त्र हैं, जो जी में आये करें। हमारा ऐसा बरताव होना चाहिए जो लोगों को जँचे। इसलिए हमें बड़ी सतर्कता से व्यवहार करना होता है।"

"यानी जनता की इच्छा-अनिच्छा को समझकर हमें अपनी अर्धांगिनी को चुनना होगा।"

"जनता कभी यह नहीं चाहती। हमें ही यह देखना होगा कि एक नारी यह न कहे कि राजा ने उसके प्रति अन्याय किया। राजाओं के प्रत्येक काम को जनता ध्यान से देखती है। जनता की हार्दिक पसन्दगी राष्ट्र-निष्ठा के लिए प्रेरकशक्ति है। जनता अपनी नापसन्दगी व्यक्त न भी करे तो भी वह अच्छा नहीं है।"

"नापसन्दगी को अव्यक्त ही क्यों रखते हैं ?"

"अधिकार के डर से, शक्ति से डरकर। इसलिए राष्ट्र की जनता में किसी के भी मन में किसी भी तरह की नापसन्दगी का कारण हमें नहीं बनना चाहिए। अगर नापसन्दगी कहीं दिखे तो हमें उसका निवारण करना होगा।"

"तो हमें दण्डनायक के मन में उत्पन्न हुए असन्तोष से डरकर सिर झुकाना होगा ?"

"इस प्रसंग में सब के दिमागों में केवल ऊहापोह या काल्पनिक विचारों ने घर कर लिया है और पता नहीं क्या-क्या परिवर्तन इन विचारों ने ला रखा है। मैं सिर्फ़ इतना चाहता हूँ कि सन्निधान जो भी निर्णय लें, वास्तविक स्थिति को जानकर लें।"

"क्या हम वास्तविक स्थिति को जान सकते हैं? कोई सच न बोले तो?"

"हमें ऐसी शंका ही नहीं करनी है। बात कहने के ढंग से झूठ-सच का पता लग जाएगा। हमें भी खुले दिल से विषय का परिशीलन करना होगा। सन्निधान अगर गलत न मानें तो एक बात पूछना चाहता हूँ।"

"पूछो, छोटे अप्पाजी।"

"क्या माँ ने कहा है कि यह विवाह नहीं होना चाहिए?"

"माँ ने ऐसा कुछ नहीं कहा। कभी बात उठी तो इतना ही कहा था कि 'तुम्हारा निर्णय ही मेरा निर्णय है।' सो भी बहुत दिन पहले, तब जब प्रभु जीवित थे। इधर माँ से इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं हुई है।"

"सन्निधान जिस कन्या का पाणिग्रहण करें उसे माताजी भी स्वीकार करें—यही सन्निधान का विचार है न?"

"माँ के निर्णय पर हमें विश्वास है। पहले से हम इसी अभिप्राय पर दृढ़ रहते तो यह पेचेदगी ही नहीं होती। हमें अब लगता है कि हमारी चंचलता और जल्दबाजी के कारण ही ऐसी सन्दिग्ध स्थिति आयी है। वास्तव में कवि नागचन्द्र जी के शिष्य बनने और प्रभु के साथ युद्धभूमि में जाकर लौटने के बाद, हम और ही व्यक्ति बन गये हैं। उस पुराने विचार पर अटके रहना मानो अविवेकपूर्ण जल्दबाजी के निर्णय से बँधे रहना ही होगा। ठीक है न?"

"जब विचार गलत मालूम हो तब उसे बदलना अनिवार्य हो जाता है। मगर इसे बदलने के लिए भी स्पष्ट और निश्चित कारण होना चाहिए। एक बार दण्डनायक के घर पर इनके यहाँ की शिक्षिका ने जो बात कही थी, वह याद आ रही है। एक दिन 'शाकुन्तलम्' पढ़ा रही थीं, प्रसंग दुष्यन्त की विस्मृति का था। गौतमी की संरक्षकता में शकुन्तला आयी तो दुष्यन्त ने उन्हें नहीं पहचाना था। इसे पढ़ाते समय शिक्षिका ने बताया था कि पूर्ण गर्भिणी के साथ ऐसा अन्याय नहीं होना चाहिए था। तब दण्डनायकजी की बेटी ने कहा कि शायद सभी पुरुष ऐसे ही होते हैं। तब शिक्षिका ने समझाया था कि किसी पुरुष द्वारा परिस्थिति विशेष में किया गया आचरण सभी पुरुषों का आचरण मान लेना उचित नहीं। यहाँ प्रारम्भ में जल्दबाजी कर प्रेम करना, और बाद में ऐसा व्यवहार करना कि परिचय ही नहीं, दोनों बातें स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के ही बारे में हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जल्दबाज़ी के प्रेम में ऐसी संदिग्धता उत्पन्न हो सकती है। इसलिए प्रेम के विषय में जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए—यह इस पहलू की मुख्य बात है। संदिग्धता उत्पन्न होने पर भी अधीर न होकर दृढ़-विश्वास रखें कि अन्त में प्रेम सार्थक हो, यह इस पहलू की दूसरी मुख्य बात है। प्रेम का शीघ्र उत्पन्न हो जाना जितना सत्य है, उसे उतना ही सुदृढ़ बनाना भी भारतीय रीति है। शिक्षिका ने ऐसा ही समझाया था।"

"छोटे अप्पाजी, तुम दूसरों की दृष्टि से विचार कर रहे हो। मेरी जगह यदि तुम होते तो क्या कहते ?"

"अब मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह सब सन्निधान के हित की दृष्टि से। इसकी सचाई का पता लगाने के लिए मैं जो प्रयत्न करता हूँ उसमें मदद देने की कृपा करें और अनुमति देने का अनुग्रह करें। सच्ची बात सामने आ जाये तो इससे सम्बन्धित सात-आठ लोगों के अलावा पोय्सल राज्य की भी भलाई होगी।"

"छोटे अप्पाजी, हमें मालूम है कि तुम्हारे प्रयास से कौन-सा सत्य सामने आयेगा। फिर भी तुमको निराशा न हो, इसलिए अनुमति देते हैं।"—महाराज बल्लाल ने कहा।

"सन्निधान ने उस वामाचारी को देखा था, जिसे देश-निकाले का दण्ड दिया गया ?"

"हाँ।"

"जग्गदेव के साथ युद्ध में जिन लोगों को गिरफ्तार किया गया था, उन्हें सन्निधान ने देखा है ?"

"एक बार तुम्हारे ही साथ गया था।"

"प्रत्येक को आपने निकट से तो नहीं देखा न ?"

"सच है।"

"मैंने सब को देखा है। मैं तीन लोगों को उन कैदियों में से चुनकर दिखाऊँगा। इन तीनों को अलग-अलग रखिये। महादण्डनायक की पुत्रियों को बुलवाकर फिर एक-एक करके इन लोगों को भी बुलवाकर उनसे सन्निधान पूछें कि वे उन्हें जानती हैं या नहीं।"

"हम यह काम नहीं कर सकते।"

"तो मेरे प्रयत्न के लिए आपका सहयोग नहीं रहा, है न ?"

"हम ही क्यों पूछें, तुम ही उनसे पूछ लो।"

"परन्तु इस काम को सन्निधान के समक्ष ही करना होगा।"

"वह काम तुम खुद करो और अपना निर्णय बता दो; हम स्वीकार करेंगे।"

"ऐसी ज़िम्मेदारी को मैं उठा नहीं सकता। सब सन्निधान की उपस्थिति में ही होना चाहिए।"

"ठीक है, ऐसा ही हो।"

दूसरे ही दिन बिट्टिदेव के विचार क्रियान्वित हुए। महाराज बल्लाल के अलावा, शान्तला, पद्मला, चामला और बोप्पिदेवी वहाँ उपस्थित थीं। बिट्टिदेव के आदेश से एक कैदी हाज़िर हुआ।

बिट्टिदेव ने उससे पूछा, "यहाँ बैठी इन लड़कियों से तुम परिचित हो ?

बताओ, ये कौन हैं ?"

उसने कहा, "नहीं जानता, मालिक ।"

फिर चारों लड़कियों से अलग-अलग बिट्टिदेव ने पूछा, "इसे जानती हो ?"

"मैं नहीं जानती", अलग-अलग सभी ने कहा ।

फिर बिट्टिदेव ने पूछा, "सन्निधान इस व्यक्ति को पहचानते हैं ?"

"हाँ, हम जानते हैं ।" महाराज बल्लाल ने कहा ।

"ठीक, इसे अलग ले जाओ ।" बिट्टिदेव बोले ।

फिर बिट्टिदेव के आदेश से दूसरे कैदी को लाया गया ।

बिट्टिदेव ने उससे भी वही प्रश्न किया, "तुम इन लड़कियों को जानते हो ?"

उसने कहा, "हाँ जानता हूँ ।"

फिर उन्होंने पहले की तरह प्रत्येक लड़की से पूछा, "क्या, इसे जानती हैं ?"

दण्डनायक की बेटियों ने कहा, "हाँ, हम जानती हैं ।" पर शान्तला ने कहा, "मैं नहीं जानती ।"

उसे भी दूसरी जगह ले जाकर रखा गया । बाद में एक स्त्री कैदी को लाया गया ।

उसने बताया कि इन लड़कियों को वह जानती है, परन्तु उन लड़कियों को इस स्त्री का परिचय नहीं था । तब उस स्त्री को एक अलग जगह बैठाने को कहा गया ।

बिट्टिदेव ने पद्मला से पूछा, आपने कहा कि उस दूसरे आदमी को आप जानती हैं । कहाँ देखा था ?"

"और कहाँ, अपने ही महल में; वह हमारे यहाँ पालकी ढोनेवाला नौकर था । उसका नाम चोकी है ।"

"इसे जानती हो तो उस पहले आदमी का भी परिचय होना चाहिए ।" बिट्टिदेव ने छेड़ा ।

"न मैं उसे जानती हूँ, न वह मुझे जानता है । फिर भी कोई कहे कि हमें परिचित होना चाहिए तो मैं क्या कर सकती हूँ ?" पद्मला ने कहा ।

"महादण्डनायक की बेटी को झूठ नहीं बोलना चाहिए । वह बताता है कि कई बार आपके घर आया है ।"

"हो सकता है । हमने देखा नहीं । उसने भी हमें नहीं देखा । तभी तो वह पहचानता नहीं ।" पद्मला ने कहा ।

"देखिये, एक बात हम सब को मालूम है । अगर कोई पुरुष घर आवे तो यह संभव है कि घर की स्त्रियाँ उसे न दिखें । परन्तु आगत पुरुषों को घर की स्त्रियाँ किसी तरह से, कम से कम परदे की आड़ से ही सही देख ज़रूर लेती हैं ।"

"ठीक है। लेकिन यह सच है कि हमने उसे देखा नहीं।"

"आप लोग कितना ही कहें मुझे आपकी बातों पर भरोसा नहीं हो रहा है। हो सकता है कि देखा होने पर भी किसी कारण से नहीं देखा कह रही हो।"—बिट्टिदेव ने कहा।

"अगर हमने झूठ कहा हो तो यहीं सन्निधान के सामने अपनी जीभ हम काटकर रखने को तैयार हैं। हमें झूठ बोलना नहीं आता।" चामला ने कुछ खिन्न होकर कहा।

"अभी जो लोग आये थे, शत्रु सेना से क़ैद किये हुए हैं। वे आपके घर के बारे में बहुत कुछ कहते हैं। उनकी बातों की सत्यता को जानने के लिए आप लोगों को भी इस तरह कड़ी परीक्षा से गुज़रना पड़ेगा। दूसरा मार्ग नहीं। आप लोगों को असंतुष्ट न होकर धैर्य पूर्वक उत्तर देना होगा।"

"हम सन्निधान के सामने हैं। सत्य ही कहना चाहिए—इस बात को हम जानती हैं। हमने वही सीखा है। सत्य कहने पर भी अगर यह कहें कि विश्वास नहीं होता तो यह सत्य का अपमान ही हुआ न ?" चामला ने कुछ ढीठ होकर कहा।

"राजसत्ता यदि सत्य को जानना चाहे, तो इस तरह से व्यवहार करना ही पड़ता है। यों व्यंग्य करने से छिपी बात बाहर निकलने की संभावना रहती है। इससे खिन्न नहीं होना चाहिए।" शान्तला ने बीच में कहा। इसपर बात वहीं रुक गयी।

तभी रावत मायण आया, झुककर प्रणाम किया और बोला, "आपने आने का आदेश भेजा था। क्या आज्ञा है?"

"हाँ, बैठिये।" बिट्टिदेव ने कहा। फिर चोकी और उस औरत को बुलवाया।

"इन दोनों को आप जानते हैं रावतजी?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"इन चाण्डालों को क्यों दिखा रहे हैं? यही हैं जिन्होंने मेरे पारिवारिक जीवन को आग लगायी। मेरी इस औरत को उड़ा ले गये। इसे मैंने युद्धभूमि में औरतों के शिविर में, आमने-सामने देखा और जैसे ही इसका सिर उड़ा देने के लिए तलवार उठायी कि इतने में यह रफूचक्कर हो गया। हाथ नहीं लग पाया। सन्निधान मुझे इसकी गर्दन उतारने की अनुमति दें।" मायण उत्तेजित हो उठा था। शान्तला को सारी पुरानी बातें याद आ गयीं। बिट्टिदेव पहले ही सब समाचार जान चुका था। इसी वजह से मायण को बुलवाया था।

"मायण! तुम्हारे साथ अन्याय हुआ होगा, परन्तु उतने भर से मृत्युदण्ड नहीं दिया जा सकता। लेकिन इसके राजद्रोही होने का अपराध प्रमाणित हो जाय तो इसे मृत्युदण्ड जरूर दिया जाना चाहिए। अगर तुम चाहो तो तुम ही यह काम कर सकते हो।" बिट्टिदेव ने कहा।

तब वह औरत आगे आयी। बोली, "अगर ऐसी आज्ञा हो तो सन्निधान मुझे मौक़ा दें। मुझे धोखा देकर मेरे कौटुम्बिक-जीवन को बरबाद करने वाला है यह। मेरे पतिदेव मुझसे बहुत प्रेम करते हैं। वे मेरे प्राण हैं। परन्तु पता नहीं क्यों मुझपर भगवान् ने कृपा नहीं की। मुझे सन्तान नहीं दी। किसी धर्मात्मा ने कहा कि एक मण्डल (अड़तालीस दिन) तक पीपल की परिक्रमा करो। इसके बाद नागदेव की प्रतिष्ठा करो। तब सन्तान होगी। मैंने बड़ी भक्ति और निष्ठा के साथ वह सब भी किया। यह सब मैंने अपने पतिदेव की अनुमति लेकर ही किया। यह मेरे पतिदेव भी जानते हैं। नागदेव की प्रतिमा बनाने के लिए शिल्पी को भी कह दिया था। तभी एक दिन यह आदमी आया। इसने कहा, 'सन्तान चाहिए तो इतना कष्ट करने की क्या ज़रूरत? एक महात्मा हैं। उनसे अभिमन्त्रित भस्म लेकर तुम और तुम्हारे पति दोनों पानी में घोल कर पी लो। एक क्या, जुड़वे बच्चे पैदा हो जाएंगे।' महादण्डनायक के घर का नौकर होने के कारण मैंने उसकी बात पर विश्वास कर लिया। फिर भी मैंने तुरन्त सम्मति नहीं दी। मैंने कहा, 'मेरे पतिदेव से कहो।' इसपर वह बोला, 'यह सब तुम्हारे पति से कहें और वे स्वीकार न करें तो? हमारी दण्डनायिका चामब्बे ख़ुद अपने पति से न कहकर उस महात्मा के पास जाती आती रहती हैं। फिर तुम क्यों डरती हो?' यह मेरा दुर्भाग्य ही था कि मैंने इसकी बात पर विश्वास कर लिया और इसके साथ चली गयी। पता नहीं यह किसके पास ले गया। उसने चिकनी-चुपड़ी बातें करके जैसा इसने कहा था, अभिमंत्रित भस्म दिया। दोनों ने आधा भस्म वहीं खा लेने के लिए मुझसे कहा। उसे खाने के बाद क्या हुआ, मुझे कुछ भी पता नहीं। मुझे जब होश आया तो मैं नहीं समझ पा रही थी कि मैं कहाँ हूँ। मैं क़ैद कर ली गयी थी। निस्सहाय होकर मुझे अपने शील की बलि देनी पड़ी। हर क्षण शाप देती मैं बन्धन में दिन काटा करती थी। बाद में पता चला कि यह शत्रुओं का गुप्तचर है। भस्म देने वाले भी गुप्तचर हैं, यह भी पता चल गया। दोनों, रात के वक़्त जहाँ मुझे कैद बनाकर रखा था, वहाँ मिलते थे। दोनों ने मेरा शील बिगाड़ा। यह सब मैं असहाय ही सहती रही। दूसरा कोई चारा नहीं था। मरना भी चाहा मगर इन लोगों की मुझपर कड़ी नज़र होने के कारण वह भी नहीं हो सका। शील भंग होने के कारण मुझमें तीव्र प्रतिकार की ज्वाला भभक उठी। इन लोगों का षड्यंत्र हमारे पोय्सल साम्राज्य के सर्वनाश करने के लिए चल रहा है—जब मुझे यह स्पष्ट हो गया तो मैंने निश्चय किया कि मेरा शील भंग तो हो ही गया, कम से कम राज्य की रक्षा के लिए तो कुछ कर सकूँ। इसी इरादे से मैंने इनसे ऐसा व्यवहार रखा कि उन लोगों को मुझपर पूरा विश्वास हो गया। पोय्सल राज्य के हित की रक्षा के उद्देश्य से मैं स्वयं गुप्तचर बन गयी। जगदेव के सैन्य शिविर में उनका भण्डार कहाँ है और रसद किस जगह है, सेना

की गतिविधि कैसी है आदि, सभी बातों का पता लगाकर पोय्सल गुप्तचर चाविमय्या के ज़रिये ख़बर भेजती रही। चाहें तो चाविमय्या को बुलवाकर दर्याफ़्त कर सकते हैं।" एक बार लम्बी सांस लेकर अन्त में वह बोली, "मैं शील भ्रष्ट और पतिता हूँ, लेकिन विश्वास कीजिए मैंने राजद्रोह नहीं किया।"

बिट्टिदेव ने बल्लाल से एकान्त में कुछ बातचीत की। बाद में आदेश दिया, "अब इन सबको जहाँ क़ैद में रखा गया है, वहीं ले जाओ।"

क़ैदियों को यथा स्थान ले जाया गया।

"अब आप लोग भी विदा ले सकती हैं। किसी वैयक्तिक विचार-विनिमय करने के इरादे से आज यहाँ हम एकत्रित हुए थे। परन्तु इसमें कहीं कोई ऊँचा राजनीतिक षड्यन्त्र दिखाई दे रहा है। इसलिए विस्तार के साथ इन बातों की तहकीक़ात करनी होगी। और इस कार्य के लिए ऊँचे पद के राज्याधिकारियों की उपस्थिति की आवश्यकता सन्निधान महसूस करते हैं अतएव बैठक कल तक के लिए स्थगित कर रहे हैं। आप लोगों की आवश्यकता होगी तो बुलवा भेजेंगे।" पद्मला की तरफ मुड़कर बिट्टिदेव ने कहा।

चारों उठीं और महाराज को झुककर प्रणाम किया। महाराज कुछ सोच रहे थे, इसलिए उस तरफ उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

शान्तला ने बिट्टिदेव की ओर देखा। उन्होंने जाने की अनुमति इशारे से ही दे दी। चारों चलने लगीं। आँचल संभालकर चलते वक़्त हाथ के कंगन और पैरों के नुपुर महाराज की उपस्थिति की परवाह न करके बजने लगे। आवाज़ सुन बल्लाल ने जानेवालों की तरफ सिर उठाकर देखा। सबसे पीछे पद्मला थी। ड्योढ़ी पार करते वक़्त एक बार सुखासनासीन महाराज की ओर उसने दृष्टि डाली। पलक झपकते पद्मला समझ गयी कि महाराज देख रहे हैं। आँखों से ओझल होते ही दरवाज़े पर परदा लग गया।

बल्लाल एकदम उठकर कुछ सोचते हुए चहलकदमी करने लगे। बिट्टिदेव वह चुपचाप देखते रहे। थोड़ी देर बाद महाराज ने प्रश्न किया, "छोटे अप्पाजी, इसकी जड़ कहाँ और अन्त कहाँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

"सन्निधान अभी दिमाग न खपावें। मौन प्रेक्षक बने रहिए, काफ़ी है। हम सब मिलकर इसके मूल का भी पता लगा लेंगे और बिना किसी उलझन के सुलझा भी देंगे। अभी आप काफ़ी थके हैं। आराम कीजिए।"

"नहीं। अब विषयान्तर की ज़रूरत है। कविजी को बुलवाकर उनसे किसी विषय पर कुछ देर चर्चा करेंगे। चलो, पाठशाला में चलें।"

दोनों पाठशाला में गये। गोंक कविजी को बुलाने चला गया।

उधर शान्तला पद्मला और उनकी बहनों को उनके महल में छोड़कर, रेविमय्या के साथ अपने घर पहुँच गयी। उस दिन जो कुछ हुआ, उससे शान्तला

को कुछ सान्त्वना मिली। सभी बातों को स्वयं जानते हुए भी अपने मुँह से न बताकर, अन्यत्र कहीं से किसी दूसरे के मुँह से कहलाने की बिट्टिदेव की बुद्धिमत्ता शान्तला को बहुत पसन्द आयी। पद्मला का भविष्य अब ठीक मार्ग पर आगे बढ़ता हुआ लगने लगा था। फिर भी उसे इस बात की चिन्ता हुई कि यह सारा प्रसंग राजनीतिक मामला बन गया। एक कुलीन स्त्री को धोखा देकर उसे भ्रष्ट करनेवाले ऐसे धूर्त लोगों से सम्पर्क महादण्डनायक मरियाने के घरवालों का है, यह बात पहले से ही उनके बारे में असन्तुष्ट महाराज और महामातृश्री एचलदेवी जान जाएँ, तो भगवान् जाने क्या होगा? यह चट्टला—इसकी क्या दशा होगी? इसी प्रसंग के कारण रावत मायण स्त्री-जाति से ही द्वेष करने लगा है। परन्तु अब इसकी पत्नी किसी दूसरे के साथ भागी नहीं, वह धोखे में आ गयी—यह बात मालूम होने से शायद यह अपना मन बदल ले। मगर यह इतनी उदारता दिखा सकेगा कि उसे अपनाकर पहले जैसा परिवार बसा ले? शान्तला इसी तरह सोचती रही। अपने सारे विचार तथा राजमहल में जो कुछ घटा, वह सब अपनी माता को भी उसने बताया। हेग्गड़ती माचिकब्बे ने बेटी की सारी बातें सुनकर कहा, "अम्माजी, त्याग के अनेक रूप हैं। चट्टला का त्याग बड़ा महान् त्याग है। उसे राज-सम्मान मिलना चाहिए।"

"माँ, उसे अब राज-सम्मान नहीं चाहिए, उसे चाहिए कौटुम्बिक सुख। यदि उसे प्राप्त करा दें तो वही उसके त्याग का उचित मूल्य होगा।"

"शीलभ्रष्ट स्त्री के साथ परिवार बसाना कैसे हो सकता है, अम्माजी?"

"वह तो इच्छापूर्वक उसने नहीं किया न?"

"सच है, उसके प्रति सहानुभूति हो सकती है। परन्तु जैसा तुम कहती हो वैसा होना सम्भव नहीं लगता।"

"तब तो यही कहना होगा कि समाज अंधा है। माँ, धोखा खाकर अहिल्या का भी तो शील भंग हुआ था। वह स्तुतिपाठ की पंच-कन्याओं में एक बनी या नहीं? प्राचीन काल का वह औदार्य आज हमें अनुकरणीय नहीं?" शान्तला ने तर्क दिया।

"तुम बहुत पढ़ी-लिखी हो, अम्माजी। तुम से वाद-विवाद करने की योग्यता मुझमें नहीं है। वह सब देवताओं और ऋषियों का जमाना था। यह हम मानवों का कलिकाल है। दोनों में बहुत फर्क है। अनजाने कुछ कर जाने पर भी उसने शाप भोगकर ही उससे मुक्ति पायी थी न? चट्टला शाप-ग्रस्त है। उसके शाप के विमोचन के लिए राम जैसे का अवतार तो सम्भव नहीं। मानवों का लालच बढ़ता जा रहा है। दण्डनायिका जी को भला किस बात की कमी थी कि उन्होंने उस वामाचारी की मदद ली? एकबार यह भी मान लिया जाय कि वह इन सांसारिक प्रपंचों से अपरिचित थी, परन्तु दण्डनायकजी तो उसे समझा

सकते थे। इन वामाचारियों का अस्तित्व ही अन्याय को आश्रय देने के लिए है।" शायद उसकी बात और आगे चलती, इतने में पालने में से बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी। "बच्चे को दूध पिलाने का समय हो गया है," कहती हुई माचिकब्बे चली गयीं।

शान्तला उस रोते बच्चे को उठा लायी। उसे खिलाने लगी। रोना कुछ कम हुआ। माचिकब्बे तब तक दूध और पिलाने का पात्र ले आयीं और एक खम्भे से पीठ सटाकर बैठ गयीं और बोलीं, "ला, बच्चे को इधर ला।"

शान्तला "मैं ही दूध पिलाऊँगी," कहकर बच्चे को अपनी गोद में लिटाकर पात्र से दूध पिलाने लगी। बच्चा धीरे-धीरे दूध पीने लगा और पीते-पीते हाथ-पैर हिला-डुलाकर खेलने लगा। "अरे, एक दूसरे भी तुम्हारे ही नामवाले हैं। बहुत बुद्धिमान हैं वे। तुम्हें उनसे भी बढ़कर बुद्धिमान बनना है। लो पियो!" ऐसे ही कुछ बोलती शान्तला दूध पिलाती रही। इतने में हेग्गड़े मारसिंगय्या आये। अपने कपड़े उतार हाथ-मुँह धो आये। तब तक दूध पिलाना हो चुका था।

"छोटा दण्डनाथ क्या कहता है?" मारसिंगय्या ने कहा।

"अभी तो छोटा है। बाद में यह सेर का सवासेर हो जाएगा। यह कोई साधारण नहीं। इसकी जन्म-पत्री लिखनेवाले ज्योतिषी ने कहा है कि यह बहुत प्रतिभावान्, शूर-वीर बनेगा।"

"तुम्हारे हाथ से दूध पीने के बाद उसे ऐसा ही बनना होगा।" मारसिंगय्या ने चुटकी ली। फिर राजमहल में जो सब गुजरा वह विस्तार से शान्तला ने पिताजी को कह सुनाया।

उधर महादण्डनायक के घर में एक दूसरा ही अध्याय शुरू हो गया था।

कामला से पीडित दण्डनायिका चामब्बे ने पूरी तरह से बिस्तर पकड़ लिया था। प्रधानजी के वैद्य गुणराशि पण्डित ने चिकित्सा की, परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। राजमहल के पण्डित चारुकीर्तिजी की चिकित्सा हुई, मगर उससे भी कुछ लाभ नहीं हुआ। उसका सारा शरीर पीला पड़ गया था। आँखें एकदम पत-झड़ के पत्ते की तरह बन गयी थीं। ओंठ सूखकर सूखे छिलके की तरह हो गये थे। पहले हमेशा चमकती रहनेवाली उसकी आँखें गड्डे में धँसकर तेज हीन हो गयी थीं। इधर कुछ समय से वह कम ही बोला करती थी। जिस बात को वह बच्चों से छिपा रखना चाहती थी, वह सब-कुछ बच्चों को मालूम हो जाने के कारण अपने पति और बच्चियों के सामने भी उसे शरम से सिर झुकाना पड़ा था। वह अपनी दुर्दशा के कारण बहुत दुःखी थी। अपने अधिकार के बल पर जो बड़े गर्व से दूसरों के सामने इतराती हुई, ऐंठकर चलती थी, आज भगवान् ने उसकी ऐसी दशा कर रखी थी कि जो कुछ नहीं होना चाहिए था, वही हो रहा था। प्रेम में पगे पतिदेव और अपनी कोख की बच्चियाँ भी अगर कभी-कभी पूछ-ताछ करतीं

तो उसमें औपचारिकता मात्र दिखती थी, पहले जैसी आत्मीयता नहीं। उसे अपने आप से घृणा होने लगी थी। उसे भी राजमहल की घटना का पता लग गया था। उसके मन में यही दुख था कि बच्चियों को महाराज के सामने खड़े होकर गवाही देनी पड़ी। उसने अपने पतिदेव के सामने इसका जिक्र भी किया, "बच्चियों से ऐसी गवाही के बाद उनसे उनके पाणिग्रहण की प्रार्थना कैसे हो सकेगी? क्या इस स्थिति से बचने के लिए कुछ नहीं किया जा सकता?"

"तुमसे कितनी बार कहा है कि राजमहल की बात मत पूछो, फिर भी तुम नहीं मानती हो; इस बीमारी की हालत में भी तुम्हारा यह दखलन्दाज़ स्वभाव नहीं छूटेगा?" दण्डनायक झिड़की देकर वहाँ से उठकर चले गये।

बच्चियों से भी पूछा, "जाना ही होगा क्या?"

"जाना तो होगा ही, जो करना चाहा सो सब किया और अब पूछती हो—'जाना ही होगा?' न जाएँगे तो हथकड़ी पहनाकर ले जाएँगे। अब तुम्हारी बात मान लूँ तो वह भी हो जायेगा।" पद्मला तुनक पड़ी।

'ओफ़" एक लम्बी साँस लेकर उसने करवट ले ली। बेटियों का सामना करने की उसकी हिम्मत नहीं हुई।

राजमहल जाने के पहले जो यह बातचीत हुई, उसका चामव्वे के मनपर बहुत प्रभाव पड़ा। अब तो वह एक तरह से संतान के प्रेम से वंचित माँ हो गयी थी। पड़े-पड़े वह भगवान् से प्रार्थना करने लगी, "हे भगवान्! संतान भी अब मुझसे प्रेम नहीं करती। ऐसी माँ होकर जीवित रहने का भी क्या प्रयोजन? शायद मेरा जीवित रहना ही मेरी बेटियों की भलाई के लिए भारी अड़चन का कारण हो। भगवन्! मुझे अब इस धरती से उठा लो। वे सुखी रहें। इतना काफ़ी है। यह सच है कि एक समय था जब कि मैं महत्त्वाकांक्षा रखती थी। मैं चाहती थी कि पोय्सल महाराज की सास बनकर इतराती इठलाती फिरूँ। शायद भगवान् की यह इच्छा नहीं रही। मुझे इसलिए बीमार बना दिया। जल्दी बुला लो भगवन्! इतनी कृपा करो भगवन्!"

राजमहल से बेटियाँ लौट आयीं। मरने की चाह रखनेवाली चामव्वे को यह जानने की इच्छा हुई कि राजमहल में क्या-क्या बातें हुईं। उसे लगा कि इसी बहाने महाराज से बेटी की कुछ बातचीत तो हुई होगी। उसने पूछा, "बेटी, महाराज ने तुम से बात की?"

"हाँ, इतनी देर तक हम दोनों का ही एकान्त चला। तुम ने तो इसके लिए बहुत ही अच्छी भूमिका बना रखी है न?" पद्मला ने बहुत कड़वे ढंग से कहा।

"जाने दो। मैं कुछ बोलती हूँ तो सब पर गुस्सा सवार हो जाता है।" एक लम्बी साँस ली चामव्वे ने।

"माँ, हम विश्वासपात्र नहीं। कहते हैं कि हम झूठ बोलनेवाली हैं।" चामला

चोली।

“हाँ, क्यों न कहेंगे। बड़ों का पाप घर-भर का शाप।” व्यंग्य करती पद्मला ने कहा।

चामव्वा गुस्से से लाल होकर उठ बैठी। उसी आवेश में उसने पूछना चाहा, “क्या कहा?” परन्तु दम घुटने के कारण आवाज़ नहीं निकली।

“कुछ नहीं। तुम चुपचाप आराम से पड़ी रहो।” कहती हुई पद्मला वहाँ से निकल गयी। दोनों बहनों ने भी उसीका अनुकरण किया।

चामव्वे विमूढ़-सी उस तरफ देखती बैठी रही जिधर बेटियाँ गयी थीं।

बेटियाँ अपने पिता के कक्ष में पहुँची और राजमहल में जो तहकीकात हुई वह सब विस्तार से कह सुनायी। सब सुनकर वह भौंचक्का हो गये। वह वामाचारी और दण्डनायक के घर का पालकी-वाहक चोकी दोनों दुश्मनों के गुप्तचर हैं—यह जानकर आश्चर्य तो होना ही था। एक राज्य के महादण्डनायक ने अपने घर में शत्रुओं के गुप्तचरों को आश्रय दिया हो तो ऐसे व्यक्ति के बारे में क्या राय हो सकती है? पहले अपनी ही पत्नी पर गुप्तचर रखे जाने की बात थी जिस पर ख़ुद वही चकित हो गयी थी। जो निगरानी उस पर रखी गयी, वही इस वामाचारी पर क्यों नहीं रखी गयी? उस नौकर चोकी के बारे में पहले से विचार किये बिना काम पर क्यों लगाया गया था? अगर कल की महासभा में यह सब सवाल पूछे गये तो मैं क्या उत्तर दे सकूँगा। इस मनहूस औरत के कारण मेरी यह हालत हो गयी है। उसी ने तो कहा था कि चोकी को काम पर लगा लें। सच है, उसे आदमियों के स्वभाव, गुण आदि का पता लग भी कैसे सकता है, वह इतनी समझदार कहाँ है? उसकी गति-विधि और चाल-चलन पर निगरानी रखनी चाहिए थी। नवागन्तुक होने के कारण उस पर ध्यान रखना ज़रूरी था। मैंने बहुत भारी गलती की। इस गलती के लिए क्षमा मिल सकना संभव नहीं। पैदा होते ही मर जाता तो अच्छा होता। युद्ध में अगुआ बनकर मैं चिण्णम दण्डनाथ की तरह लड़कर प्राण दे देता तो मेरी कीर्ति स्थायी हो जाती। अब कीर्ति की बात जाने दो, इतने दशकों का जीवन भी व्यर्थ हो गया। अपमानित होकर मृत्यु की प्रतीक्षा करते जीने से बढ़कर दण्ड एक योद्धा के लिए क्या हो सकता है? यह सब इस औरत के कारण हुआ। उपनयन के निमन्त्रण-पत्र को छिपा रखा और क़दम-क़दम पर अपमान से सिर झुकाते रहने की हालत पैदा कर दी—यह सब सोचते विचारते मरियाने को क्रोध बढ़ आया। इसी क्रोध में वे अपनी पत्नी के कमरे में जा पहुँचे।

दण्डनायिका चामव्वे को उसी हालत में बैठी पाया। उसके मन में क्या क्या विचार चल रहा था इसकी ओर उनका ध्यान नहीं गया। गुस्से से वह लाल-बबूला तो हो ही रहे थे, सो गरजकर बोले, “अब तुमको सन्तोष हुआ? हमें तुमने ऐसी

हालत में ढकेल डाला। इतना अपयश! जिनका नमक खाया, उन्हीं से नमक-हरामी की इस मरियाने के वंशजों ने! अब तो तुम आनन्द से रह सकती हो!"

पति की इन रोप-भरी बातों को सुनकर दण्डनायिका की सारी देह थर-थर काँपने लगी। धीरे से पति की ओर मुड़कर देखा। कुछ कहना चाहती थी मगर बात नहीं निकली।

"क्यों, ऐसे उल्लू की तरह देख रही हो? तुम्हारा वह चोकी और वह वामाचारी पोय्सल राज्य के शत्रुओं के गुप्तचर बनकर आये थे—इस राज्य को शत्रुओं के हवाले करने के लिए। उठो, बिस्तरा-बकुचा बाँध-बूधकर तैयार हो जाओ। कल महासभा में अपमानित होने से पहले यहाँ से हम दोनों किसी निर्जन प्रदेश में जाकर फांसी से लटककर मर जांय या फिर ज़हर खाकर प्राण त्याग कर दें", मरियान ने कहा।

दण्डनायक की बात पूर्णतया उसे सुनाई दी या नहीं, पर उसके बाद ही वह बिस्तर पर लुढ़क गयी। उसका हाथ अपने गले पर था। जीभ निकल आयी थी।

"जितना बिगाड़ करना था वह सब कर लेने के बाद अब यों ढोंग करो तो उससे क्या लाभ? अब भुगतो।" कहकर दण्डनायक वहाँ से चले गये। उसकी बातों पर पत्नी की क्या प्रतिक्रिया हुई है इसे देखे-समझे बिना वहाँ से निकल गये थे।

दवा देने का समय हो गया था, इसलिए थोड़ी ही देर में देकव्वे वहाँ दवा लेकर आयी। मालकिन को इस हालत में पड़ी देख वह घबरा गयी। "मालिक, मालिक" चिल्लाती हुई वह भागी-भागी आयी, मरियाने के कमरे की ड्योढ़ी से टकराने वाली ही थी कि इतने में मरियाने दरवाज़े तक पहुँचे और उसे गिरने से बचा लिया।

"मालिक, मालकिन के मुँह से फेन निकल रहा है, और वह बेहोश पड़ी हैं।" घबराहट से नौकरानी हकलाती हुई बोली।

"दडिगा को जल्दी वैद्य को बुला लाने के लिए भेजो, "कहकर मरियाने अपनी पत्नी के कमरे की ओर गये और विचित्र दशा में पड़ी अपनी पत्नी को देखा। नौकरानी देकव्वे की घबराई हुई आवाज़ सुनकर बेटियाँ भी घबराकर हड़बड़ाती हुई आयीं।

पिता को देखते ही, "पिताजी···माँ···" पद्मला का गला रुँध गया।

घबराई बेटियों को देखकर खुद भी घबरा जाऊँ तो इन्हें दिलासा कौन देगा? यह सोच मरियाने ने कहा, "घबराने की की जरूरत नहीं। यह विचित्र बीमारी है। अभी वैद्यजी आएंगे, सब ठीक हो जाएगा...।"

सब वहीं रहे। वैद्य चारुकीर्ति के आने तक कोई कुछ न बोला। एक गम्भीर

मौन छाया रहा कि तभी दडिगा वैद्यजी को लेकर आ गया। यदि वैद्यजी घर पर ही होते तो शायद और जल्दी आ जाते। वे राजमहल गये थे। नौकर दडिगा ने बीमार की हालत का जो परिचय दिया था उससे वैद्यजी को मालूम हो गया था कि बीमारी क्या है। इसलिए घर से निकलते समय उसके लिए आवश्यक बुकनी की पुड़िया साथ ले गये थे। जाते ही उन्होंने नब्ज़ देखी। नाड़ी की गति का क्रम ठीक नहीं था। कुछ न कहकर, जो पुड़िया साथ लाये थे, उसे खोलकर बुकनी सुंघायी और नाक के अन्दर फूँका। बुकनी के अन्दर जाते ही चामब्बे ने सिर इधर-उधर हिलाया। "कोई घबराने की बात नहीं। दण्डनायिका जी जल्दी सचेत हो जायेंगी। हम अब तक केवल कामिला की दवा कर रहे थे। हमें यह मालूम नहीं था कि इन्हें अपस्मार की बीमारी है। ऐसा कितने दिनों के बाद होता है ?" पण्डितजी ने पूछा।

"जहाँ तक मेरी जानकारी है, पहले कभी ऐसा नहीं हुआ।" मरियाने की आवाज़ में कुछ घबराहट थी।

"तो क्या यही पहली बार है ?" पण्डितजी ने फिर पूछा।

"हाँ, छुटपन में शायद ऐसा रहा हो, न भी रहा हो, मैं नहीं जानता। प्रधान जी से पूछने पर मालूम पड़ सकता है।" मरियाने ने कहा।

"कुछ ज़रूरत नहीं। अगर छुटपन में होता तो कभी-कभी असर दिखाई देते। आपका विवाह हुए कम-से-कम दो दशक तो बीत गये होंगे ?"

"करीब-करीब तीन दशक कहिए।"

"तो मतलब हुआ कि इन्हें अपस्मार बीमारी नहीं थी। कामिला भी मनुष्य को कमज़ोर बना देती है। दण्डनायिकाजी की यह बीमारी कई तरह की दवाइयाँ करने पर भी कम नहीं हुई। काढ़ा-कषाय कई किस्म के पिलाये तब भी कम नहीं हुई। कामिला स्पष्ट दिखता है। मेरी समझ में जितनी दवाइयाँ इसके लिए योग्य मालूम हुईं सब कुछ किया। कोई फ़ायदा नहीं हुआ। निष्कर्ष यह हुआ कि इन्हें और भी कोई ऐसी बीमारी है जो हमारी समझ के बाहर है। इनकी इस बीमारी को समझने की बहुतेरी कोशिश की फिर भी सफलता नहीं मिली। पर ऐसा मालूम पड़ता है कि इन्हें कुछ मानसिक आघात हुआ है और मस्तिष्क पर उसका असर हुआ है। मैंने जिस चूर्ण का प्रयोग किया वह षाण्मास कल्प है जो नीम और काली मिर्च के बीज से निर्मित रसायन है। यह बहुत जल्दी दिमाग़ को सचेत करेगा। यदि दिमाग़ के अन्दर कोई कीड़े पैदा हुए होंगे तो उनका नाश कर देगा। आपको घबराने की कोई ज़रूरत नहीं होगी। उन्हें पूरा आराम चाहिए। उनके दिमाग़ पर असर हो ऐसी कोई बात उनके कानों में न पड़े। यदि वे स्वयं कुछ चाहेंगी तो उसे उन्हें उपलब्ध करायें। उस सम्बन्ध में कोई

सवाल उनसे न करें। उनके मन को और आघात न लगे ऐसा वातावरण बनाये रखें। तब उन्हें धीरज बँधेगा। मन में यदि अधैर्य होगा तो उन्हें लगेगा कि सारी दुनियां विरोध कर रही है। ऐसे विचार आते ही उनको पुनः ऐसी स्थिति हो सकती है। मैं यह कह नहीं सकता कि यह हालत इसलिए हुई। आगे ऐसा न हो, इसका खयाल रखकर व्यवहार करना होगा। यह आवश्यक है। मैं कल सुबह स्नान-पूजा-पाठ के बाद जल्दी आऊँगा। इन्हें ठण्डा-पानीय इनके जागने के बाद दीजिए। छाछ, डाभ आदि दीजिए। बीच में कोई तकलीफ़ नहीं होगी, ऐसी मेरी आशा है। अगर मेरी जरूरत महसूस हुई तो कहला भेजें, मैं आ जाऊँगा"—यह कहकर पण्डितजी उठ खड़े हुए।

"अच्छा।" मरियाने बोले।

चारुकीर्ति पण्डित जी चले गये।

"अम्माजी, तुम लोग जाओ। मैं यहीं रहूँगा। दडिगा और देवले यहीं बाहर रहें।" यह आदेश देकर मरियाने पत्नी के पास बैठ गये। बेटियाँ चली गयीं।

पण्डित चारुकीर्ति ने जो बताया उसे सुन मरियाने चिन्तामग्न हो गये। बेटियों के कहने से उन्हें मालूम हो चुका था। उन्होंने भी माँ को अपनी बातों से दुखाया होगा। इसके अलावा मेरी भी झिड़कियों ने उसके दिमाग पर आघात किया होगा। यही सोचकर वह व्यथित हुए। वे नरम-दिल थे, और पत्नी तथा बेटियों पर विशेष स्नेह रखते थे। वे सदा इन लोगों से ऐसा व्यवहार करते जिससे किसी का दिल न दुखे। इसका यह मतलब नहीं कि कभी-कभी गुस्से में आकर कुछ कहा न हो। कहा जरूर है। फिर उन्हें मना भी लिया है। परन्तु एक बात में वे सदा सतर्क और कठोर रहा करते। कहीं कभी राज्य-निष्ठा के विषय में कोई शंका की बात सुन पड़ती तो वह उन्हें सहन नहीं होती थी। ऐसी राज-द्रोह की बात सुनते तो सुनानेवाले पर पिल पड़ते। आज भी उनकी बातें उनके स्वभाव के अनुरूप ही थीं। परन्तु यह उनकी कल्पना में भी नहीं आया था कि उनकी पत्नी का स्वास्थ्य इस हद तक बिगड़ जायेगा। वे अपनी करनी पर पछताने लगे।

दण्डनायिका ने धीरे से कराहा। हाथ कुछ हिलने-डुलने भी लगे। 'हाय माँ' करती हुई उसने करवट ली। धीरे से आँखें खोलीं। अँगुली से संकेत कर पूछा, "वहाँ कौन खड़े हैं?"

"मैं···देकव्वा···पीने के लिए कुछ···"

"सिर फटा जा रहा है···ठण्डा···पानी···सिर···पर डालो···" चामव्वे का दम घुट रहा था।

मरियाने ने और नजदीक सरककर उसके माथे पर हाथ रखा। कहा, "वैद्य जी ने दवा दी है। घबराने की बात नहीं। जल्दी अच्छी हो जाओगी—कह गये

हैं। तुम्हारे जगने के बाद कुछ ठण्डा पेय देने को भी कह गये हैं। देकव्वे को बताने पर ला देगी।"

मरियाने के स्पर्श ने शायद दण्डनायिका के शरीर में कुछ गरमी पैदा की हो, उसे वह हितकारी भी लगा हो, उसने अपने पति की ओर देखा। उसकी आँखें डबडबा आयीं। वह सिसक-सिसककर रोने लगी।

मरियाने ने और पास सरककर कहा, "देखो, इस तरह अगर तुम करोगी तो थक जाओगी और उससे हालत और ज़्यादा बिगड़ जाएगी। इसलिए अपने को सँभालो। अब हुआ क्या है जो तुम रोओ। "देकव्वा, जाओ, छाछ ला दो।" यह सुन देकव्वे जल्दी-जल्दी चली गयी।

"दडिगा, जाओ, बच्चियों को बुला लाओ। कहो कि तुम्हारी माँ जग गयी है"—कहकर मरियाने अपने अँगरखे के छोर से उसके आँसू पोंछने लगे। चामव्वे ने अब पतिदेव को दूसरे ही रूप में पाया।

देकव्वे छाछ लेकर भागी-भागी आयी।

"थोड़ा-थोड़ा कर पिलाओ।" कहकर दण्डनायक कुछ पीछे हट गये।

चामव्वे ने मुँह खोला; देकव्वे थोड़ा-थोड़ा करके छाछ पिलाने लगी। पहले-पहल तो निगलना मुश्किल हो रहा था। निगलने में कुछ तकलीफ़ हो रही थी। तीन-चार बार गले से छाछ के उतरने के बाद कुछ आसानी हो गयी। चामव्वे ने बीच में देकव्वे के हाथ को रोककर सूचना दी कि अब और नहीं।

"आज दिन भर पेट में कुछ भी तो नहीं गया है। थोड़ा-सा बचा है। इसे पी लें। पेट ठण्डा रहेगा।" कहकर सारा छाछ जो लायी थी, पिला दिया।

इतने में बेटियाँ भी वहाँ आ गयीं। देकव्वे पात्र खाली लेकर खड़ी हुई ही थी कि तभी "देकव्वे, तुम और दडिगा अपना-अपना दूसरा काम देखो।" मरियाने ने कहा। वह बाहर जाकर दडिगा को मालिक की आज्ञा सुनाकर अपने काम पर चली गयी।

चामव्वे ने बच्चियों की ओर देखा। बोली, "आओ।" होंठ मात्र हिले। आवाज़ नहीं निकली। बेटियों ने देखा कि माँ का सिर विचित्र ढंग से लुढ़का पड़ा है। बेटियाँ पास आयीं तो चामव्वे ने कुछ सरककर हाथ से इशारा कर बैठने को कहा।

माँ की इच्छा के अनुसार वे बैठ गयीं। मरियाने जो उसके बगल में बैठे थे, उठकर सिरहाने आ बैठे तो उन तीनों को बैठने के लिए जगह हो गयी।

बोप्पिदेवी उसके पास बैठी थी। उसकी जाँघ पर चामव्वे ने हाथ रख अपने पति और बच्चियों को बारी-बारी से देखा। उसके निर्जीव चेहरे पर एक तरह के समाधान की भावना झलकी। अपने पति की ओर देखकर वह बड़ी मुश्किल से धीरे-धीरे बोलने का उपक्रम करने लगी, "मेरी एक आशा..." मुँह से शब्द छूटे

निकल नहीं रहे थे, एक-एक अक्षर बोलकर इतना कह पायी।

"एक क्यों? तुम्हारी सारी आशाओं को पूरा करूँगा। अब कुछ मत बोलो, आराम करो। कल सुबह वैद्यजी आएंगे। तुम्हारे गले की नसों की ऐंठन ठीक करने की दवा देंगे। नसों के ढीला हो जाने पर कल जो कहना हो सो कहना।" मरियाने ने कहा।

"क···ल···राज···महल···"

"इन सब के बारे में क्यों सोचती हो? अब इन विचारों को छोड़कर अपने मस्तिक को विश्राम दो। तुम अब आँख मूँदकर आराम से लेट जाओ। नींद आ जाएगी। अम्माजी, उस बेंच पर खस का पंखा है। उसे लेकर झलाओ।" मरियाने ने कहा।

पद्मला पंखा झलने लगी। चामव्वे ने बोप्पिदेवी की जाँघ पर से अपना हाथ उठाकर पतिदेव की जाँच पर रखा और उनकी दृष्टि को अपनी ओर आर्कषित किया। अपनी तर्जनी दिखा संकेत किया "एक अभिलाषा!···"

"अब कुछ नहीं कहो, आराम से सो जाओ।" मरियाने ने फिर कहा।

वह आँख मूदकर पड़ी रही। उसके श्वासोच्छ्वास की गति कभी तेज़ कभी धीमी होती रही। फिर एक साधारण गति पर आ गयी। धीरे-धीरे आँख लग गयी। माँ को सोया पाकर पद्मला ने पंखा झलना बन्द कर दिया। सभी बेटियाँ उठ खड़ी हुईं। चामला ने माँ के पैरों के पास पड़ी ओढ़नी को उठाकर धीरे से माँ के शरीर को गले तक ढंक दिया।

मरियाने भी उठ खड़े हुए और बोलें, "दडिगा को यहीं रहने के लिए आदेश दूँगा। तुम लोगों में से कोई एक देकब्बे को यहाँ भेजो, और जाकर सो जाओ।"

पद्मला ने कहना शुरू ही किया कि भोजन···कि तुरन्त मरियाने बोले, "अम्माजी, आज कुछ नहीं चाहिए। मुझे भी नींद आ जाये तो अच्छा। तुम लोगों की भी यही हालत हो रही होगी। जाकर सोने का यत्न करो। कल की महासभा में जाना हो तो हमें आज रात आराम करना चाहिए ही। अब जाओ।" कहकर मरियाने ने पत्नी की ओर एक बार देखा और चले गये।

दडिगा और देकब्बे के आने पर वे भी सोने चली गयीं।

पिता-पुत्रियों को बहुत देर तक नींद न आ पायी होगी, उनके उठने के पहले ही वैद्यजी आ गये। मरियाने वैद्यजी के आने की बात जानकर प्रातः कालीन सभी कृत्यों से निपटकर हाथ-मुँह धो वहाँ जल्दी ही आ गये। उनके आने से पहले वैद्यजी देकब्बे से पूछताछ कर जान चुके थे कि चूर्ण सूँघने के बाद दण्डनायिका की कैसी हालत रही। तब दण्डनायिका जागी न थी। दण्डनायक को आते देखकर पण्डितजी उठने की कोशिश में लगे तो मरियाने "बैठिये, बैठिये, मैं भी बैठूंगा," कहते हुए गलीचे पर पण्डितजी के पास ही बैठ गये।

"चूर्ण का प्रयोग करने के बाद क्या सब हुआ यह देकब्बे के द्वारा मालूम पड़ा। सुना कि रात को एक बार जगी थीं। जागते हुए भी एक तरह की बेहोशी छायी रही। सुना कि फिर जल्दी सो गयीं। इसलिए यह मालूम होता है कि चूर्ण ने अच्छा असर किया है। पहले की बीमारी कामिला जो स्थाई रूप से घर कर चुकी थी, शायद दूर हो जाय। ऐसी सम्भावना तो है फिर आपका और इन बच्चियों का भाग्य है।" पण्डित ने कहा।

"यह सब आपके हाथ का प्रभाव है, वैद्यजी।" मरियाने ने हार्दिक भाव से कहा।

"अगर इसे मेरे हाथ का प्रभाव मानें तो वह केवल अहंकार की बात होगी। इसी हाथ से एरेयंग प्रभु को भी दवा खिलायी थी न? तब वह हाथ का गुण कहाँ गया था? यह सब उन उनके भाग्य की बात है, सब पूर्व-नियोजित है। प्रभुजी की कोई ढलती उम्र तो नहीं थी; वह और कुछ दशाब्दियों तक जीवित रह सकते थे। यह पोय्सल राज्य का दुर्भाग्य था कि हम ने उन्हें खो दिया। यह कितना बड़ा नुकसान है, इस बात को आप मुझसे अधिक समझते हैं।" पण्डितजी ने कहा।

"सच है।" मरियाने ने कहा। उसे लगा कि इस वक़्त पण्डित के मुँह से यह बात क्यों निकलनी चाहिए थी। जब हमारा मन कहीं अन्यत्र किसी दूसरी बात की चिन्ता में लगा रहता है तब किसी की कही प्रासंगिक बात का विपरीत अर्थ निकालना मनुष्य का स्वभाव होत ा है। इस पण्डित को शायद सभी बातों की जानकारी हो गयी होगी। मेरे सामने, इस वक़्त, यह बात क्यों कहनी थी? व्यंग्योक्ति क्यों कहनी थी? इस बात का आज होनेवाली महासभा के साथ कुछ-न-कुछ संबन्ध होना चाहिए। राजमहल के वैद्य को चिकित्सा कराने के लिए कहने वाले महाराज ने इस पण्डित को शायद मेरे घर में गुप्तचरी का काम करने के लिए भेजा होगा क्या?—यों मरियाने की विचारधारा कहाँ से कहाँ बहने लगी। वह कुछ कहना चाहते थे कि इतने में पद्मला ने आकर कहा, "माँ, जाग गयी।"

"उनके हाथ-मुँह धुलवा दीजिए।" पण्डितजी ने कहा।

"सब हो चुका है आप पधारिये।" पद्मला बोली।

उसके साथ पण्डितजी और मरियाने दोनों अन्दर गये।

पण्डित ने नब्ज़, जीभ, आँख का मुआइना किया और "हाँ अच्छा" कहकर अपनी दवा-दारू की पेटी खोली। चूर्ण की दो पुड़ियाँ और दवा की चार गोलियाँ दीं, और कहा, "कुछ लघु आहार दे दें। उसके बाद चूर्ण की एक पुड़िया शहद में मिला चटवा दें और उसके दो घड़ी बाद इन गोलियों में से दो का चूर्ण बनाकर शहद में मिला कर चटवा दें। इसी तरह मध्याह्न के बाद भी करें।...अभी मुझे राजमहल जाना है, आज्ञा दें।" कहकर पण्डितजी उठ खड़े हुए।

"माँ बात करने में बहुत कष्ट का अनुभव कर रही है। गले की इन नसों की ऐंठन ढीली हो सके—ऐसी कोई दवा दी जा सकेगी ?" पद्मला ने पूछा।

"यह चूर्ण इसी के लिए दिया है, अम्माजी। इसे खाने के कुछ समय के बाद ध्वनितंतु ठीक होते जायेंगे। कुछ प्यास ज्यादा लगेगी। डाभ पिलाइये। अब मैं चलूँ ?" मरियाने की ओर मुड़कर पूछा।

"अच्छा पण्डितजी," कहते हुए मरियाने वैद्य के साथ आगे बढ़े। दरवाजे तक पहुँचने पर पण्डितजी खड़े हो गये। कुछ इधर-उधर देखा। किसी को न देख मरियाने के पास आये, और धीरे से सिर झुका लिया।

मरियाने ने पण्डित की ओर देखकर पूछा, "कुछ चाहिए था क्या ?" फिर इधर-उधर देखकर बोले, "कुछ संकोच करने की ज़रूरत नहीं, कहिए।"

"आज दण्डनायिकाजी के पास ही आप रहें," पण्डित जी ने कहा।

"तो···?" घबड़ाकर मरियाने ने पण्डित की ओर देखा।

"दण्डनायिकाजी की नाड़ी की गति सन्तोष जनक नहीं। पित्त का प्रकोप बहुत अधिक हो गया है। आज का दिन अगर बीत जाय तो फिर हृदय की गति के ठीक हो जाने की संभावना है। इस पित्त के प्रकोप को शमन करने के लिए अच्छी और प्रभावशाली दवा दी है। अगर वह दवा दण्डनायिका जी को लग जाती है तो वे बीमारी से जल्दी ही मुक्त हो जाएँगी। इसलिए आपको आज उन्हीं के पास रहना चाहिए।" पण्डितजी ने कहा।

"ऐसा ही होगा पण्डितजी।" मरियाने ने कहा।

उनके कहने के ढंग को देख पण्डितजी ने धीरज धारण करने को कहा, "दण्डनायकजी घबड़ायें नहीं। स्थिति को धैर्य के साथ सामना करना होगा। बच्चियाँ घबड़ा जायँ ऐसी कोई बात न कहें। आपका धैर्य दण्डनायिकाजी को नया जीवन भी ला सकता है। मैं राजमहल से लौटते हुए फिर यहाँ आऊँगा। ठीक है न ?"

मरियाने ने सिर हिलाकर सम्मति की सूचना दी। पण्डितजी चले गये। मरियाने फिर अपनी पत्नी के कमरे में आ गये। बच्चियाँ भी माँ के पास ही बैठी रहीं।

"अम्माजी, नाश्ता तैयार हो गया होगा, तुम सब जाकर नाश्ता कर लो। देकब्बे से कहो कि वह तुम्हारी माँ के लिए आहार ला दे। आहार और चूर्ण खिलाने के बाद मैं भी नाश्ता कर लूँगा, फिर तुम लोग यहाँ रह सकती हो।" मरियाने ने समझाया।

"वैद्यजी ने यहाँ कोई विशेष बात नहीं की, बाहर आपको कुछ बताया अप्पाजी ?" पद्मला ने पूछा।

"हाँ बेटी, कहा कि कुछ घबड़ाने की ज़रूरत नहीं। आज कुछ प्रभावशाली दवा दी है। गोलियाँ भी दी हैं। इन दवाओं के लेने से हृदय और पित्तकोश के

क्रियाशील होने में मदद मिल जाएगी। उनके पास हमेशा किसी न किसी को रहना चाहिए। जब प्यास लगे तब कोई ठण्डा पेय देते रहना चाहिए। इसलिए मैं यहाँ रहूँगा। तुम लोग हो आओ।" दण्डनायक ने कहा।

बच्चियाँ चली गयीं।

चामब्बे ने कराहते हुए धीरे से कहा, "और भी पास आ जाइये।"मरियाने और नज़दीक आकर बैठ गये। चामब्बे ने अस्पष्ट स्वर में कहा, "मुझे राजमहल ···जाना···है।"

"अच्छा, कुछ सुधर जाने के बाद चलेंगे।"

"न, न, आज ही···जाना···चाहिए।"

"हाँ, वही हो। अभी वैद्यजी आएँगे। तब उनसे पूछकर ले चलूँगा। ठीक है न?"

"इतना···करें···ब···हु···त उप···कार···हो···गा।"

"वैद्यजी ने कहा है कि अधिक बात नहीं करनी चाहिए। बात किये बिना आराम से लेटी रहिए।"

सिर हिलाकर दण्डनायिका ने सम्मति जतायी।

देकब्बे कांजी ले आयी। पित्त को शान्त करने में यह सहायक है और जल्दी हजम भी होती है, इस बात को वैद्यजी पहले ही बता गये थे। देकब्बे ने छोटे वर्तन में थोड़ा थोड़ा करके पिलाया। पतली होने के कारण दण्डनायिका को निगलने में विशेष तकलीफ़ नहीं हुई। देकब्बे जितनी काँजी लायी थी उसमें आधी के करीब पी जा चुकी थी, तब दण्डनायिका के माथे पर, नाक पर और होठों पर पसीना निकलने लगा। दूसरी ओर बैठे दण्डनायक ने पास पड़े तौलिए से पसीना पोंछ दिया।

"देकब्बे, अब आध घड़ी बाद चूर्ण खिला देना।" दण्डनायक ने कहा। देकब्बे वहाँ के बर्तन-बासन उठा कर ले गयी और थोड़ी देर बाद चूर्ण को शहद में मिला कर ले आयी। उसे मरियाने ने अपने हाथ में लिया और बोले, "मैं खुद खिलाऊँगा। बच्चियों का नाश्ता हो चुका हो तो वे यहाँ आ जायें।"

वह चली गयी।

दण्डनायक ने गजकर्ण पलाश के पत्ते पर शहद में मिलाये चूर्ण को अपनी अँगुली से ले कर दण्डनायिका को चटाया। उन्होंने उसे निगल लिया। थोड़ी देर में बेटियाँ भी वहाँ आ गयीं और पिताजी को जाने के लिए छुट्टी दी। वह चले गये फिर स्नान आदि से निबटकर, नाश्ता करके वहीं लौट आये। बच्चियों से बोले, "हाँ, मैं आ गया, अब तुम लोग जाओ और नहा-धोकर कपड़े बदलकर कंघी-अंघी कर आओ।" बेटियाँ चली गयीं।

थोड़ी देर बाद देकब्बे शहद में गोली मिलाकर ले आयी। उसे अपने हाथ

में लेकर मरियाने ने देकव्वे को भेज दिया और खुद पत्नी को वह दवा चटायी। पत्नी ने दवा चाटने के बाद दो बार ज़ोर से खांसा।

"देखिये ? आपने कहा कि वैद्यजी आएँगे, आकर दवा दे जाएँगे। आपको यहाँ क्यों बैठा रहना चाहिए बेकार। दडिगा से कहिए वह यहाँ रहेगा। आप जाकर अपना काम देख लीजिए।" चामव्वे ने अपने पति की ओर नज़र डाली। वास्तव में उसका गला और ध्वनितंतु कुछ खुल गये थे। बात बोलने पर पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप से सुन पड़ सकती थी। भारी श्वास कुछ आसानी से ले सकने की स्थिति हो गयी थी। आसानी से बात कर सकने की हालत न होने पर भी पहले की अपेक्षा ज़्यादा सुगम-सा महसूस हो रहा था।

"मुझे कोई ज़रूरी काम नहीं है। वैद्य ने कहा है कि उनके आने तक मैं तुम्हारे ही पास बैठा रहूँ। नौकर जो सेवा करेगा वह प्रतिफलाकांक्षी होकर की जाने वाली सेवा है। हम जो करते हैं वह प्रेम और आदर की सेवा है। अब तुम्हें ऐसे ही प्रेम और आदर से की जानेवाली सेवा की ज़रूरत है। वैद्य ने यही कहा है।"

"मेरे लिए इस सब से बढ़कर सेवा मुझे राजमहल ले जाना है।"

"मैंने पहले ही कहा न कि ले जाएँगे।"

"वैद्यजी से अनुमति लेकर ही जाना होगा ?"

"तुमको आराम से रखने के लिए कहा है। इस जगह से अभी हिलना-डुलना नहीं चाहिए। अब तुम कुछ अच्छी होती जा रही हो, तुमको यह महसूस हो रहा होगा। उनके आने तक और अच्छी हो जाओगी। वे देख लें और कहें तो हमें ढाढस बँधेगा।" मरियाने बोले। उन्हें लगा कि पूछें—राजमहल क्यों जाना है। लेकिन यों पूछकर उसे बातों में घसीटना इस स्थिति में अनुचित समझकर चुप रहे। परन्तु उनके मन में तरह-तरह के सवाल उठने लगे, "राजमहल इसे क्या काम है ? वहाँ इसका आदरपूर्वक कौन स्वागत करेगा ? अब यह कुछ बात कहे और उसकी प्रतिक्रिया कुछ और हो जाय तो उसका क्या पर्यवसान होगा ? वैद्य ने आसानी से कह दिया कि उसकी इच्छा पूरी करो। उसकी इस इच्छा को पूरा करें कैसे ? इच्छा पूरी करें भी लेकिन यदि हित के बदले अहित ही हो तो ऐसी इच्छा को पूरा करना उचित होगा ?"

इतने में दडिगा दौड़ा-दौड़ा आया और बोला, "मालिक, राजमहल की पालकी आयी है।"

"तुम यहीं रहो," कहकर मरियाने बाहर दरवाज़े के पास जल्दी-जल्दी गये। उनके मन में कई सवाल उठे, "मेरे घर पर राजमहल की पालकी ? कौन आये होंगे ? क्यों आये होंगे ?" यों सवालों में उलझे हुए ही दरवाज़े पर पहुँच गये।

दडिगा ने देकव्वे को सूचना दे दी थी। दण्डनायक की बेटियाँ भी फाटक तक जा पहुँचीं। महामातृश्री एचलदेवी और बिट्टिदेव दोनों पालकी से उतरकर फाटक

की ओर आ रहे थे। मरियाने ने झुककर उन्हें प्रणाम किया।

"सन्निधान के आने की सूचना पहले मालूम नहीं हुई।" संकोच के साथ मरियाने बोले।

"दण्डनायिकाजी की तबीयत कैसी है? उनका स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया मगर हमको ख़बर नहीं! सो भी वैद्य जी से मालूम करना था?" एचलदेवी ने कहा।

"कल शाम के बाद अचानक ही स्वास्थ्य बिगड़ गया। वैद्यजी ने कहा कि मुझे यहाँ से हिलना नहीं है, उन्होंने भी भरोसा दिया है। कल रात से अब बहुत अच्छी है। सुबह से एक ही बात कह रही है, "राजमहल ले चलिए।" दोपहर को राजमहल जाने से पहले वैद्यजी यहाँ आने की बात कह गये हैं। अब उनके आने के बाद, उनसे पूछकर अगर ले जाने को कहते तो ले आना चाहता था। इतने में सन्निधान ही यहाँ दैवी प्रेरणा से पधार गयी हैं। हम बड़े भाग्यवान् हैं कि सन्निधान की कृपा के पात्र बनें।" यों कहते गये दण्डनायक। अब तक वे दण्डनायिका के कमरे तक पहुच चुके थे। उन दोनों का बिट्टिदेव, पद्मला, चामला और बोप्पदेवी ने अनुसरण किया।

किवाड़ को सरकाकर मरियाने अन्दर गये और अपनी पत्नी से कहा, "महामातृश्री, सन्निधान यहीं पधारे हैं। तुम चाहती थीं कि राजमहल जावें। राजमहल ही यहाँ आया है।" इतने में एचलदेवी अन्दर आ चुकी थीं।

मरियाने उनके बैठने के लिए आसन ठीक कर ही रहे थे कि इतने में एचलदेवी ने कहा, "रहने दीजिए। अभी इस उपचार की जरूरत नहीं।" वह पास की एक आसन पर बैठ गयीं। दडिगा ने दूसरा आसन लाकर कमरे में रखा। बिट्टिदेव उस आसन पर बैठ गये।

चामव्वे अपनी ही आँखों पर विश्वास न कर सकी। एकटक महामातृश्री को देखती रह गयी। दण्डनाथिनी चन्दलदेवी के यहाँ जा सकने वाली वात्सल्यमयी माता का यहाँ आने में आश्चर्य ही क्या है? परन्तु सद्यः इस परिस्थिति में खुद भी जाते तो भी महामातृश्री का दर्शन पाना जहाँ संभव नहीं लग रहा था वहाँ वे स्वयं आकर दर्शन दें—इस बात ने उसे एक बड़े भ्रम में डाल दिया था। वे अप्रार्थित होकर आयीं तो इस पर विश्वास ही कैसे कर सकते हैं? ऐसी स्थिति में भी उसमें हर्ष का संचार हुआ। वह पलंग पर उठकर बैठ गयी और उतरने का प्रयत्न करने लगी।

"दण्डनायिकाजी, आप चुपचाप लेटी रहेंगे तो हम यहाँ रहेंगी। ऐसे थक जाएँगी तो हम चले जाएँगे।"

"वैद्यजी ने भी यही कहा है। यह मानती नहीं।" मरियाने ने बीच ही में कहा।

नहीं, आप ही पर अधिक निर्भर करती है। पण्डितजी ने भी यही कहा है। अब आप निश्चिन्त होकर आराम करें। समझीं?"

"सन्निधान मुझे क्षमा करें। मैं छोटी बच्ची नहीं हूँ। मुझे सब याद है। मैंने अच्छा-बुरा जो भी किया मुझे मालूम है। अभी सन्निधान से जैसा निवेदन किया मुझे जीने की आशा नहीं। मरने से पूर्व मुझे अपनी गलती के लिए क्षमा मिले, यही मेरे लिए भाग्य की बात होगी। सन्निधान यहाँ तक पधारीं इस उदारता के लिए मैं सर्वथा योग्य नहीं हूँ—यह मुझे मालूम है। जो मैं कहूँगी उस सबको आप सुन लें तभी मेरे लिए संतोष होगा। मैंने गलत काम करने की बात कभी सोची ही नहीं। मेरे स्वार्थ ने मुझसे कुछ गलत काम कराया है। उस समय यह मालूम होता कि यह गलत है तो शायद करती भी नहीं। अब यह साबित हो गया है कि यह सब मेरी गलती से हुआ, अन्यथा मेरे पतिदेव और मेरी ही बेटियाँ मुझे दोषी कह दूषित न करते।"—इतना कहकर उसने दम लिया और फिर पिछले दिन पति-पुत्रियों से जो बातचीत हुई थी उसका सारा किस्सा सुना डाला। फिर कहने लगी, "मैंने जिस पत्तल में खाया उसी में छेद किया। राजद्रोहियों के साथ मिलकर राजद्रोह का काम मैंने किया—यह दोष मुझ पर लगाया गया है। मैं अपनी बेटियों की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैंने राजद्रोह का कोई काम नहीं किया। मैंने जो भी किया उसका एक ही लक्ष्य था। वह यह कि मैं अपनी बेटियों को सन्निधान की बहुएँ बनाना चाह रही थी। वे जीवन भर सुखी रहें, एक यही मेरा स्वार्थ था। स्त्री का सुख ब्याहे घर में ही निहित है। सो मेरी एक यही आकांक्षा थी और उसे ही सफल बनाने की मैं कोशिश करती रही।"

एक क्षण रुककर चामव्वे ने आगे कहा, "मुझे एक बार ऐसा लगा कि हेग्गड़ती की बेटी मेरी इच्छा के पूर्ण होने में काँटा बनी हुई है। इस कारण से असूया उत्पन्न हो गयी। यह गलतफ़हमी है इसका ज्ञान मुझे बहुत देर बाद हुआ। जब मैं उन वामाचारी के पास गयी तब भी मैंने किसी के बारे में कोई बात नहीं कही। उनने अपनी सारी बुद्धिमानी से मेरे विरोधियों के बारे में पूछा। कोई भी हो तुम्हें उनसे क्या मतलब? हमें रक्षा चाहिए। मैं और मेरा परिवार सुखी हो, मेरी बेटियाँ सुख से जीएँ— इतना ही कहा। उसने हमारी रक्षा के लिए सर्वतोभद्र यंत्र बनाकर दिया। मैंने और मेरी बेटियों ने उसे धारण किया। लेकिन यह सारी बात अपनी बेटियों से गुप्त रखी। उन्हें मालूम न हो ऐसा ही इन्तज़ाम किया था। मेरे घर का नौकर और वह वामाचारी दोनों शत्रुओं के गुप्तचर थे, यह बात बाद में मुझे मालूम पड़ी।"

आवाज़ कुछ तेज़ भी हो जाती थी। बात कर चुकने के बाद उसे थकावट मालूम हुई। खाट पर ही हाथों के सहारे बैठी रहने की कोशिश की, परन्तु कमज़ोरी के कारण ऐसा न हो सका।

चामब्बे की यह दशा देख एचलदेवी ने स्वयं उठकर उसकी भुजाओं पर हाथ रखकर धीरे से लिटाते हुए कहा, "लेट जाइये, आप बहुत थक गयी हैं। यह अच्छा हुआ कि आपने खुले दिल से सब कुछ कह दिया। राजघराने की नीति-रीति रही है—राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर, ऊँच-नीच के भेद-भाव के बिना, असूया रहित होकर एक परिवार की तरह रहना। इस आदर्श के लिए सहयोग करनेवालों की आशा-आकांक्षा की पूर्ति में न्यूनता न होगी। अब दण्डनाथजी की पत्नी चन्दलदेवी का बच्चा हेग्गड़तीजी के घर में उनकी प्रेमपूर्ण देख-रेख में पल रहा है न? अपनी बेटियों की देख-रेख करने के लिए आप स्वयं जल्दी ही अच्छी हो जायेंगी—ऐसा भरोसा है। आप दुनियाँ-भर की चिंता न करें।"

"मुझे तो बचने की आशा नहीं।" चामब्बे ने अपनी सूखी आँखों से अपनी मालकिन की ओर निहारा।

फिर वही बात! ऐसा न कहें। कहकर खुद एचलदेवी ने उठकर किवाड़ खोला। खुलने से कुछ आवाज़ हुई। भीतरी प्रकोष्ठ से उठकर सब अन्दर आ गये। तब तक पण्डितजी भी आ चुके थे। उन्हें देखकर खुद बाहर आ एचलदेवी ने कहा, "दण्डनायिकाजी ने जी भरकर बातचीत की। उन्हें बात करने से रोक नहीं सकी। शान्ति से बैठकर सुनने के सिवा कोई चारा न था। आप ज़रा उनकी हालत देख लीजिए।"

पण्डितजी और मरियाने दोनों अन्दर चले गये।

महामातृश्री को अकेली छोड़कर जाना उचित न समझकर पद्मला ने एक आसन दिखाकर उस पर बैठने के लिए निवेदन किया। एचलदेवी ने दण्डनायकजी की तीनों मुग्ध बेटियों को देखा। धीरे से आसन की ओर जाकर बैठ गयीं और बोलीं, "छोटे अप्पाजी, बैठो। पण्डितजी के आने के बाद हम चलेंगे।"

दण्डनायक की बेटियाँ खड़ी ही रहीं। "तुम लोग भी बैठो, खड़ी क्यों हो!" एचलदेवी ने कहा। वे भी वहाँ बिछी दरी पर कुछ दूर पर संकोच से बैठ गयीं।

माँ को मौन देख बिट्टिदेव ने समझा कि माँ किसी गम्भीर बात पर विचार कर रही हैं। अन्दर दोनों में क्या बातचीत हुई—जानने का उनके मन में कुतूहल जगा। फिर भी यह उचित स्थान न समझकर चुप रहे।

देकब्बे दो बार स्नानगृह में गयी और दोनों बार थाली-लोटा लायी थी जल्दी में। सबका ध्यान उसी कमरे की ओर लगा था। अन्दर से कै करने की आवाज़ सुन पड़ी। बाद में देकब्बे होशियारी से थाली लेकर पिछवाड़े की ओर चली गयी।

तभी मरियाने कमरे से वाहर आये और वेटियों से बोले, "वेटी, तुम लोग अन्दर जाओ, तुम्हारी माँ वुला रही है।" वे उठीं और अन्दर चली गयीं।

मरियाने वाहर के प्रकोष्ठ के एक खम्भे से सटकर खड़े हो गये। विट्टिदेव ने उन्हें देखा। लगा कि उनके अन्तरंग में कुछ तुमुल चल रहा है। वह पास गये। उनका ध्यान आकर्षित करने के इरादे से कहा, "खड़े क्यों हैं? आइये दण्डनायक जी, वैठिये।"

"हाँ, हूँ···" कहते हुए दण्डनायक गलीचे पर वहीं वैठ गये। विट्टिदेव भी उन्हीं के बगल में जा वैठे।

बिट्टिदेव ने पूछा, "दण्डनायिका जी वहुत थक गयी हैं?"

"हाँ, उल्टियाँ करने से थकावट आ गयी है। उसकी तकलीफ देखी नहीं जाती। भगवान् उसे पार लगा दे, काफी है। लगता है, मैं ही उसकी मृत्यु का कारण वन रहा हूँ।" उनका गला रुँध गया।

उस पुष्ट बलवान व्यक्ति का यों विह्वल होना देख विट्टिदेव का अन्तरंग मानो घुलकर द्रवित होने लगा। वह कुछ कह न सके।

तव एचलदेवी ने सान्त्वना देते हुए कहा, "दण्डनायकजी, दण्डनायिकाजी ने मुझे वह सारा वृतान्त कह सुनाया है। आप दोनों के बीच और उसके पहले वेटियों और उनके बीच जो कुछ भी वातचीत हुई थी वह सव भी वता दी है। मृत्यु भगवान् की इच्छा है। उसका दूसरा कोई व्यक्ति कारण नहीं वन सकता। प्रभु की मृत्यु के लिए दण्डनायिकाजी को कारण ठहराना जितना निराधार है, यह भी उतना ही अर्थहीन है। दण्डनायिकाजी मन-ही-मन जिन वातों के कारण घुल रही थीं, उन्हें खुलकर व्यक्त करने के लिए आप स्वयं प्रेरक रहे हैं। उसी का फल है कि आज उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हुई है। वे दीर्घायु होंगी। लेकिन यदि मृत्यु हो भी गई तो हम यही कहेंगे वे शान्ति और सन्तोष के साथ चल दीं। इसलिए आपने उनका उपकार ही किया है। आप दुखी न हों। उल्टी होते समय तकलीफ तो होती ही है लेकिन वाद में आराम हो जाता है। भगवान् की इच्छा होगी तो वह जल्दी ही अच्छी हो जायेंगी।"

"बात कहनेवाला मैं था। मैं जानता हूँ कि वह कैसी चुभती-सी वात थी।"

"तो मैं भी कह सकती हूँ बिना वुलाये आ गयी और उनके थकने तक उनसे वातें करवाकर और थकाने का कारण बनी या कि उनकी मृत्यु का कारण बनी। ऐसा नहीं है। हमें वुद्धि से काम लेना है। हमें ऐसा नहीं विचारना चाहिए। हर काम के पीछे कोई अदृश्य हाथ क्रियाशील है, हम इस वात को मानते हैं। हम तो केवल करणमात्र हैं, कारण नहीं। करण को कृति-दोष नहीं लगता। काटने वाले हाथ को जो दोष है वह तलवार को नहीं लगता। अव आपको यों घवड़ाना नहीं चाहिए। अगर आप ही संयम खो वैठेंगे तो इन बेचारी अवोध वच्चियों का

क्या होगा ? आपका संयम बच्चियों को ढाढस बँधाने के लिए बहुत आवश्यक है—हम बड़े लोगों को यह बात नहीं भूलना चाहिए।" एचलदेवी ने फिर से समझाया।

बात समाप्त हो गयी। दण्डनायक मौन ही बैठे रहे। शायद महामातृश्री की सान्त्वना भरी बातों से उन्हें काफी बल मिल गया था।

पण्डितजी अपनी दवाओं की पेटी को लेकर बाहर आये। एचलदेवी, मरियाने और बिट्टिदेव उठ खड़े हुए।

एचलदेवी ने पूछा, "पण्डितजी, क्या हाल है ?"

"सन्निधान को पहले जो बताया है उससे भिन्न कोई विशेष बात नहीं कह पा रहा हूँ। भगवदिच्छा को कौन जानता ?" पण्डितजी ने कहा।

"अभी कैसी हैं ?"

"शान्ति से लेटी हैं। उल्टी होने से गला कमज़ोर हो गया है। बोलने पर भी आवाज़ साफ़ सुन नहीं पड़ती, फुसफुसाती-सी सुन पड़ती है। पूछ रही थीं कि क्या सन्निधान राज महल चली गयीं। मैंने कहा कि यहीं हैं, मिलना है ? इस पर वह बोलीं—दिख नहीं रहीं सो यों ही पूछ लिया।" इतना कह पण्डितजी मौन हो गये।

"चलो छोटे अप्पाजी, जाने से पूर्व एक बार और उन्हें देख लें।"—कहकर एचलदेवी बिट्टिदेव के साथ कमरे के अन्दर गयीं।

लड़कियाँ उठ खड़ी हुईं। दण्डनायिका की दृष्टि एचलदेवी और बिट्टिदेव की ओर गयी। उसने दोनों हाथ जोड़े। "बेटियों को आपकी गोद···" कहना चाहती थी। होंठ मात्र हिले, बोल न सकी।

"आप आराम कीजिए। हम फिर आवेंगे" कह एचलदेवी वहाँ से निकल आयीं। बिट्टिदेव भी चले आये। उन लोगों को विदा करने के लिए सब के सब पालकी तक आये। पालकी चढ़ते वक़्त बिट्टिदेव ने कहा, "आज की सभा स्थगित की गयी है, दण्डनायिकाजी का स्वास्थ्य अच्छा होने के बाद सभा बुलाने का निश्चय सन्निधान ने किया है।"

"अच्छा !" मरियाने बोले। एचलदेवी और बिट्टिदेव राजमहल की तरफ और पण्डितजी अपने घर की ओर चले गये और दण्डनायक और उनकी बेटियाँ अपने महल में।

देकब्बे ने बताया कि मालकिन को नींद लग गयी है।"

"दडिगा वहीं रहे। हम जल्दी भोजन कर आते हैं। देकब्बे, जितनी जल्दी हो सके भोजन तैयार करो और हमें सूचित करो।" मरियाने ने कहा और वहीं झूले पर बैठ गये। बेटियाँ अपनी माँ को देखकर कमरे में लौट आयीं।

देकब्बे से सूचना मिलते ही सब गये और भोजन कर आये। घर की हालत ऐसी थी कि शिक्षका को भी नौकर से सूचना दिला दी गयी कि अध्यापन के लिए

आज नहीं आना है। ऐसी दशा में बच्चियों का मन भला अध्ययन में लगता ? इसलिए पिताजी को आराम करने के लिए कहकर वे सब माँ के कमरे में आ गयीं।

दूसरे दिन दण्डनायिका ने अपनी इस भौतिक देह को छोड़ दिया। उसने महामातृश्री से 'बेटियों को आपकी गोद में...'कहा था सो वे ही उसके आखिरी शब्द बनकर रह गये थे। इस अवसर पर महाराज बल्लाल सहित पूरा राजपरिवार पार्थिव देह को देखने आया और श्रद्धांजलि अर्पितकर राजमहल वापस चला गया।

दण्डनायिका ने जब आखिरी साँस ली थी तब मरियाने और उनकी बेटियाँ वहीं उपस्थित रहे। उन्हें इस बात का समाधान रहा कि वे वहाँ अन्त तक रहे। परिवार के सदस्य तथा अन्य सभी जन वहाँ थे, इस बात का ज्ञान दण्डनायिका को अपने आखिरी क्षणों में रहा या नहीं—मालूम नहीं। मृत्यु के बाद जो-जो संस्कार आदि होने चाहिए थे सो सब विधिवत् हुए। इस मृत्यु के कारण महासभा पन्द्रह दिन के लिए स्थगित कर दी गयी।

दण्डनायिका की मृत्यु के समय हेगड़ती और शान्तला बिट्टिगा के साथ वहाँ उपस्थित रहे। प्रधानजी और उनकी पत्नी लक्कलदेवी भी वहाँ थीं। मरियाने की पहली पत्नी का पुत्र माचण और डाकरस तथा उनकी पत्नियाँ भी उपस्थित रहीं। इन सबके होने से दण्डनायक की बेटियों को ढाढस बँधा रहा। ख़ासकर आत्मीया माचिकब्बे और शान्तला की उपस्थिति उनके लिए बहुत ही सहायक सिद्ध हुई।

पद्मला और चामला को, माचिकब्बे से परिचय होने के कारण उनके प्रति और अधिक आदर और गौरव-भाव उत्पन्न हो गया। ऐसी करुणामयी के बारे में हमारी माँ ने क्यों ऐसे बुरे विचार हममें उत्पन्न किये थे? सब बातों को जानती हुई भी, क्षमाशीलता का प्रतीक बन यहाँ आकर, हम सबको अपना ही मानकर, हम सब की कुशल कामना करती हुई, हमारी देखभाल करनेवाली है यह करुणामयी आदर्श माँ। इसी वजह से उनकी बेटी इतनी गुणवती है। ऐसे लोगों का प्रेम, आदर प्राप्त करना भी एक भाग्य की बात है—दण्डनायक की बेटियों के दिलों में ऐसी भावना घर कर गयी थी। इस भावना ने उन्हें और भी निकट ला दिया था। माँ को खोने के दुःख को भुलाकर, माँ का प्रेम देकर माचिकब्बे ने दण्डनायिका की बेटियों के हृदयों में ऊँचा स्थान पा लिया था।

मरियाने का मन दुःख से भर गया था। मारसिंगय्या ने उनके प्रति अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट की और उनके इस दुःख को हलका करने का प्रयास किया।

एचलदेवी ने सभी बातें बिट्टिदेव को नहीं बतायी थीं। अब आगे का कार्यक्रम क्या हो, बिट्टिदेव यह सोच ही रहे थे कि दण्डनायिका चल बसीं। इसी वजह से महासभा के कार्यक्रम स्थगित कर दिये गये थे। वह स्थगित सभा आज बुलायी गयी थी। अब इस सभा के सम्मुख चोकि, वामाचारी और चट्टला की सुनवाई होनी थी। सभा में प्रधान गंगराज, महादण्डनायक, मन्त्रिगण, दण्डनाथ, हेग्गड़े मारसिंगय्या, शान्तला, मरियाने की बेटियाँ, रावत मायण तथा अन्यान्य अधिकारी मौजूद थे। महाराज बल्लाल और उनके भाई भी थे। पिछली बार की तरह इस बार भी सभा के सारे कार्य का निर्वहण बिट्टिदेव को ही करना पड़ा।

अबकी बार महासभा के समक्ष चोकी और वामाचारी को एक साथ उपस्थित किया गया था। वे केवल एक-दूसरे को देख सकते थे, आपस में बातचीत नहीं कर सकते थे। दोनों दूर-दूर पर खड़े किये गये थे। चोकी और वामाचारी दोनों को हथकड़ी पड़ी हुई थीं।

बिट्टिदेव ने चोकी से कहा, "इस महासभा के सामने झूठ कहकर पार नहीं हो सकोगे इसलिए सत्य बोलना होगा। उस दिन जिस स्त्री को तुमने देखा था, वह कौन है—जानते हो?"

"जानता हूँ।"

"उस दिन उसने जो कुछ कुहा, वह सत्य है?"

"पति के सामने कोई विवाहिता अपनी करनी स्वीकार करने को तैयार होगी?" चोकी ने भी सविनम्र प्रश्न किया।

"तो तुम्हारा कहना है कि उसका कथन सरासर झूठ है।"

"सच और झूठ को मिलाकर कहा है।"

"क्या झूठ और क्या सच है?"

"पीपल की परिक्रमा करना सच है। मैं रोज़ देख-देखकर तरस खाता रहा। एक बार उस बेचारी पर दया आ गयी तो मैंने उससे पूछा। उसने सन्तान प्राप्त करने का अपना उद्देश्य प्रकट किया। मैंने पूछा, 'अगर तुम्हारा पति हिजड़ा हो तो सन्तान कैसे होगी? तुम्हें पति चाहिए या सन्तान?' वह बोली, 'जो पति सन्तान नहीं दे सकता उससे क्या प्रयोजन?' मैंने अपनी सहानूभूति जतायी। वह सुन्दर थी, मुझे अच्छी भी लगी। उसके पास वशीकरण के लिए भस्म लेकर गया। मैंने उससे यह नहीं कहा कि मैं कौन हूँ, बस उस पर भस्म का प्रयोग कर दिया। वह नकेल लगी गाय की तरह जिधर घसीटा उधर चलने लगी। बाद में उससे उसके पति की बात छेड़ता तो वह शायद चिढ़ जाती। मैंने उसे छोड़ देने की बात कही तब भी वह मुझ से चिपकी रही। यह बदचलन औरत ही तो है। युद्धशिविर में किसी और के साथ प्रेम हो लिया, उसके साथ रंगरेलियाँ मनाती रही। इसने आपकी तरफ के एक गुप्तचर को अपने जाल में फँसा लिया और सेना की गति-

विधियों का पता लगाकर बता देने का काम स्वीकार कर लिया और अन्त तक वही काम किया। इस वजह से वह जी रही है। वह एक बदजात औरत है, वह विश्वास-पात्र नहीं है" चोकी ने बताया।

"तो तुम ने उस पर बलात्कार नहीं किया ?"

"ख़ुद-ब-ख़ुद आकर पैरों पड़नेवाली औरत पर बलात्कार ही क्यों करें ?"

"जो तुम कह रहे हो उसे सत्य कैसे मानें ? सत्य साबित करने के लिए कोई गवाह है ?"

"दूसरे गवाह की क्या जरूरत ? चाबुक लेकर दो-चार लगा दिये जांय तो ख़ुद ही बक देगी।"

"तो इस चाबुक का प्रयोग पहले तुम पर ही क्यों न हो ?"

"मैंने झूठ तो नहीं कहा !"

"हमें मालूम तो पड़ना चाहिए कि तुमने झूठ नहीं कहा। अच्छा, यह बात अभी रहने दो, पहले यह बताओ कि तुम हमारी इस राजधानी में कब और किस की आज्ञा से आये ? अकेले आये या और भी ?"

"मैं और वामशक्ति दोनों साथ आये। हम उनके काम पर आये जिनका हम नमक खा रहे हैं। उनका कार्य हमने पूरी तरह समर्पित होकर किया है इसलिए हमें कोई दुख नहीं।"

"तुम लोग गुप्तचर बनकर ही आये थे ?"

"हाँ।"

"हम किसी से सरोकार नहीं रखना चाह रहे थे। हम पर तुम्हारे मालिक की यह कार्रवाई क्यों ?"

"मालिक के आदेश का पालन मात्र हमारा काम है। उनसे सवाल करने-वाले हम कौन होते हैं ?"

"तुम्हारा मालिक वह जग्गदेव ही है न ?"

"हमें आप सूली पर ही क्यों न चढ़ा दें, लेकिन हम से यह बात आप जान नहीं सकेंगे।"

"जग्गदेव हो या कोई दूसरा, जिस किसी ने भी उसे युद्ध के लिए प्रेरित किया है वह ख़ुद-ब-ख़ुद प्रकट हो जाएगा। तुमने दण्डनायक के घर में काम पाया कैसे ? उन्हीं के घर को क्यों चुना ?"

"राजमहल के विषयों की जानकारी यदि मालूम करना पड़े तो बहुत ऊँचे अधिकारियों के घरों से ही सम्भव है। प्रधानजी का घर, मन्त्रियों के घर, दण्डनायक का घर—ये ही समाचार संग्रह करने के योग्य ठिकाने हैं। आपके महा-दण्डनायक के घर को चुनने का कारण उनकी छोटी पत्नी है। और फिर वह प्रधानजी की बहन भी है।"

"बस, इतना ही कारण रहा ?"

"इतना ही।"

"तो क्या हमारे यहाँ के अधिकारियों के घरवालों पर कोई नियन्त्रण नहीं, वे जो चाहे कह सकते हैं—तुम्हारा यही ख़याल है ?"

"ऐसे लोग पोय्सल राज्य में कम हैं। एरेयंग प्रभु के पट्टाभिषेक के विषय में मतभेद रहा, यह बात सारी दुनियाँ तक पहुँच चुकी थी। यह मतभेद क्यों और कहाँ से है इसका पता लग गया था। उस भेद को और अधिक बढ़ाने के लिए हमने जिस स्थान को चुना वह बहुत ही उपयुक्त था। दण्डनायिकाजी किसी बात पर बहुत जल्दी विश्वास कर लेती थीं। इसलिए मुझे आसानी से जगह मिल गयी। इसके अलावा, छोटे नौकरों पर किसी का विशेष ध्यान नहीं रहता। यह भी मेरे लिए अनुकूल स्थिति रही।"

"एरेयंग प्रभु और सिंहासनासीन होने के विरुद्ध विचार रखनेवालों में वैर-भाव है तुमने यही सोचा होगा ?"

"हाँ, लेकिन यह बात गलत निकली। हमारे कार्य के निर्वाह में इसीलिए विलम्ब हुआ। किसी-किसी विषय में अभिप्राय भिन्नता के होने पर भी राज्यनिष्ठा के विषय में किसी पर कोई शंका नहीं की जा सकती थी। जिस प्रयोजन से हम यहाँ आये उसमें यदि सफलता नहीं मिल सकी तो जीना ही व्यर्थ है, इसलिए अपने कार्य की सिद्धि के लिए एक नयी योजना पर विचार कर ही रहे थे कि इतने में हमें मालूम पड़ा कि दण्डनायिका का कहीं किसी से विरोध चल रहा है। इसी सूत्र को हमने पकड़ा और पता लगाने की कोशिश की कि कहीं राजद्रोह है या नहीं। अगर हो तो इसी भावना को और अधिक विस्तार देना उपयुक्त होगा। हमने ऐसा ही किया। हमारा पहला क़दम यह था कि दण्डनायिका का मन वामाचारी की सलाह लेने के लिए तैयार किया जाय। इसमें सफलता प्राप्त करने पर हमने बड़ी युक्ति से उनसे उन बुराई करनेवालों का पता-ठिकाना लगाने की कोशिश की। मगर कुछ भी पता नहीं लगा। हमारे पण्डित ने अपने तरकस के सारे तीर छोड़ डाले। 'हमें बाधा न हो ऐसे यन्त्र दो' यही उन्होंने कहा। उनका सन्देह किस पर रहा यह नहीं बताया। अंजन लगाने का नाटक रचा गया, उससे भी कुछ पता नहीं लगा। दण्डनायिका ने क्या देखा सो उन्होंने नहीं बताया। इतना ही कहा कि हमने अपने वैरी को नहीं देखा। अपनी सारी युक्तियों एवं कोशिशों के बाद हम इसी निर्णय पर पहुँचे कि हमें निराशा होने के सिवाय कुछ और नहीं मिलेगा। अन्त में पण्डित को देश निकाले का दण्ड मिला। उनके बिना मैं अकेला कुछ कर नहीं सकता था, इसलिए मैं भी चला गया। परन्तु एरेयंग प्रभु और महाराज विनयादित्य दोनों के निधन के बाद, हमें लगा कि राज्य छोटे बालकों के हाथ में पड़कर कमज़ोर हो जाएगा। ऐसी दशा में हमला करें तो अच्छा होगा।

यही सोचकर हमला करने का निर्णय किया गया। परन्तु इस बार भी हमारे विचार गलत साबित हुए। राष्ट्र-निष्ठा में पोय्सल राज्य की जनता की कोई बराबरी नहीं कर सकता—यह प्रमाणित हो गया।

"तुम लोगों ने गुप्तचर बनकर क्या काम किया?"

"अधिकारी वर्ग में मेल-मिलाप है या वैमनस्य—यह जानकर खबर भेजते रहना; सेना की गतिविधियों की समय-समय पर जानकारी देते रहना, रसद का संग्रह कितना हुआ है, राष्ट्र में वर्षा और पैदावार एवं उसकी सुरक्षा आदि बातों का पता लगाकर समाचार पहुँचाना, हमलों की सम्भावना हो तो पता लगाकर अपने मालिक को आगाह कर देना, जहाँ सम्भव हो वहाँ द्वेष पैदा करना, द्वेष को बढ़ाने की कोशिश करना—आदि-आदि।"

"दोरसमुद्र पर सीधा हमला करने क्यों आये?"

"महाराज वेलापुरी में हैं। दक्षिण-पश्चिम की ओर से चेंगाल्वों के हमले के डर से सेना के एक हिस्से को यादवपुरी में रखा गया। राज्य का भण्डार राजधानी में है उसे अपने वश में करने पर बल घट जाएगा। उधर चेंगाल्वों को उकसा कर भेज दिया जाय और जो सेना है उसे दो भागों में विभक्त कर दें तो आपकी पराजय निश्चत है, यही समझकर यह निर्णय किया गया। इधर चेंगाल्व पीछे हटे, उधर हमने सेना संचालन में भी कुछ गलतियाँ कीं। सबसे अधिक आप की एकता प्रशंसनीय है जिसके कारण आपकी जीत हुई। राज्य का भविष्य भी अच्छा है।"

"हम ने जग्गदेव के प्रति क्या अन्याय किया था?"

"उन्हें अपने राज्य को विस्तृत बनाने की आकांक्षा है।"

"राज्य-विस्तार के लिए जिस किसी पर हमला, हत्या—ये ही साधन हैं?"

"उत्तर देने के लिए ये प्रश्न मेरी शक्ति के बाहर हैं। पोय्सल चालुक्य चक्रवर्ती के सामन्त ही तो हैं। फिर भी सिंहासनारोहण के समय उनकी सम्मति के बिना पट्टाभिषिक्त होना चक्रवर्ती के लिए मानहानि की बात होगी न? इस मानहानि को वे भला कैसे सह सकते थे? जग्गदेव की उस महत्त्वाकांक्षा को उन्होंने इसीलिए प्रोत्साहित किया और इसी कारण से उन्होंने हमला किया।"

"चालुक्यों के लिए अपने प्राण-अर्पण करने को पोय्सल तैयार रहे हैं। धारानगरी के युद्ध में चालुक्यों की विजय के लिए एरेयंग प्रभु ही कारण नहीं थे?"

"आवश्यकता पड़ने पर चक्रवर्ती की सहायता करना सामन्त का धर्म है। सहायता देने मात्र से वह सर्वाधिकारी नहीं बन जाते। जो गौरव मिलना चाहिए वह अगर न मिले तो क्षुब्ध होना सहज ही है। और, शंका भी उत्पन्न हो सकती है। चक्रवर्ती की यही आकांक्षा है कि चालुक्य साम्राज्य यथावत् बना रहे। जहाँ तहाँ रहनेवाले सामन्त अपने आप स्वतन्त्र व्यवहार करने लग जायें यह एक सम्राट् को कैसे सह्य हो सकता है? अपने बल, अधिकार और सार्वभौम प्रभुत्व

की रक्षा के लिए वे कुछ भी कर सकते हैं।"

"तो क्या तुम लोग कल्याण के गुप्तचर हो ?"

"मैंने ऐसा तो नहीं कहा। मात्र वस्तु-स्थिति को बताया। मैं किस का गुप्तचर हूँ उसे आप नहीं जान सकेंगे।"

"सो ऐसा तुम सोचते हो, छोड़ दो उस बात को!" कहते हुए बिट्टिदेव वामाचारी के पास आये और बोले, "इस चोकी ने जो कुछ कहा सो सब तुमने सुना? वह सब सच है?"

"जिसे मैं नहीं जानता उसके सत्यासत्य का निर्णय कैसे कर सकता हूँ?"

"मतलब?"

"मतलब यह कि उसने जो कहा उसके लिए वही जिम्मेदार है।"

"तुम भी इससे सम्बन्धित हो ऐसा बताया न?"

"बताया, उसने बताया। मैं सम्बन्धित हूँ यह कहाँ सिद्ध होता है?"

"शत्रु-सेना में तुम मिले रहे, यह झूठ है?"

"झूठ कहकर मैं अपनी जीभ को क्यों ख़राब करूँ? सच है।"

"तो यह प्रमाणित हुआ न कि तुम हमारे शत्रुओं के गुप्तचर हो?"

"मैं गुप्तचर भी नहीं, कुछ भी नहीं, मैं शुद्ध वामाचारी हूँ।"

"वामाचार ही अशुद्ध है।"

"शुद्ध-अशुद्ध यह सब व्यक्ति विशेष के विश्वास पर अवलम्बित है। मैं युद्ध-शिविर में जगदेव प्रभु की रक्षा मात्र के लिए था।"

"तो अब तुम्हारी रक्षा कौन करेगा?"

"मैं जिस शक्ति पर विश्वास रखता हूँ वही मुझे बचाएगी।"

"तो क्या उस शक्ति से दूसरों को तुम मार सकते हो?"

"बेशक।"

"मुझे विश्वास नहीं।"

"अनुभव होने पर भी विश्वास न हो तो क्या कहूँ?"

"मतलब?"

"मतलब यह कि एरेयंग प्रभु की मृत्यु के लिए मेरी शक्ति ही कारण है।"

"उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?"

"उन्होंने कुछ नहीं किया। दूसरों के हित के लिए मैंने किया।"

"किसके हित के लिए?"

"धारानगरी के राजा भोज के हित लिए। एरेयंग प्रभु के रहते विक्रमादित्य की हार नहीं हो सकेगी—यह जानकर उन्होंने इस काम के लिए मुझे नियोजित किया। मैं यहाँ आ बसा। राजमहल में दण्डनायिका की आवाजाही के लिए कहीं कोई अड़चन नहीं, इस बात का पता लगाया। चोकी से मैत्री बढ़ायी। वशीकरण

में उसे मदद देकर उसी के द्वारा दण्डनायिका के मन में विश्वास जगाया। चोकी से मैंने झूठ कहा कि मैं शत्रुओं का गुप्तचर हूँ। यह इसलिए कि मैं उसका विश्वास-भाजन बन जाऊँ। दोनों एक ही व्यक्ति द्वारा नियोजित मान उसे मुझ पर विश्वास हो गया। चोकी की बातों से पता लगा कि दण्डनायिका को कुछ चिन्ताएँ हैं, उनके स्वभाव में कुछ दुर्बलताएँ हैं। यह सब मेरे कार्य के लिए अनुकूल पड़ा। एक दिन ख़ुद दण्डनायिका मेरे घर आयीं। उन्होंने बताया कि कोई उन्हें बुरा बनाने के लिए उनके प्रयत्नों को विफल करने में लगे हैं। उन विफल करने वालों को समझने की बहुत कोशिश की परन्तु सफलता नहीं मिली। उन्होंने कुछ कहा नहीं। बस, वामाचार के प्रयोग से उन्होंने अपनी बाधाओं को दूर करने की इच्छा प्रकट की। मैंने सर्वतोभद्र यन्त्र तैयार कर देने की बात कही। उन्होंने बताया कि यह यन्त्र अपनी बेटियों के लिए भी चाहिए। मैंने कुल चार यन्त्र बनाकर दिये। मेरे कार्य को उससे चौगुना बल मिला। मैंने जानबूझकर इन चारों यन्त्रों में एरेयंग प्रभु के विरुद्ध मन्त्र-शक्ति का प्रयोग किया था; क्योंकि मैंने सोचा कि ये लोग किसी बाधा या रोक-टोक के बिना राजमहल में चल-फिर सकती हैं और उससे एरेयंग प्रभु के विरुद्ध ग्रहशक्तियों को प्रबल बनने में सहायता मिलेगी। यही हुआ। ग्रहपीड़ा अधिक क्रियाशील बनी। वे स्वयं यह नहीं जानती थीं कि वे क्या कर रहीं हैं; अनजाने ही वे चारों मेरी मदद के लिए बड़ी आसानी से हाथ आ गयीं। अंजन-क्रिया चली। उस दिन दण्डनायिका ने जिसे देखा, वह एरेयंग प्रभु ही थे—यह मैं जानता था। मैं चाहता भी यही था। उन्होंने बताया नहीं, फिर भी मेरे लिए समाधान की बात थी, क्योंकि मैं जो चाहता था उसे देखकर मुझे तृप्ति मिली थी।"

बीच में महाराज बल्लाल बोल उठे, "उस दिन तो गंगराज प्रधानजी के सामने कुछ और ही बक रहे थे!"

"हाँ, अपनी जान बचानी थी, इसलिए झूठ बोलना ही पड़ा था। मेरे इस झूठ बोलने के लिए दण्डनायिका एक अस्त्र की तरह मेरे हाथ लगी थीं। मेरे लिए दूसरा चारा ही नहीं था। अपनी यन्त्र-शक्ति का सीधा प्रयोग करने में मुझे सहायता मिली सो मैंने उसका सीधा प्रयोग किया। इसके बाद देश-निकाले का दण्ड मुझे वरदान के रूप में मिला। उस महात्मा ने, जिसे मार डालने के लिए, मैं आया था, मुझे अमृत ही पिलाया।"

"तुम्हारा काम तो बन गया न? अब यह सब क्यों?"

"बिना किये रह नहीं सकता। जो शक्ति मेरी वशवर्तिनी है उसे अन्यत्र काम करने नहीं लगाऊँ तो वह मुझे ही खा जाएगी। उसे काम देना ही था। पोय्सल राज्य में मेरे लिए जगह नहीं रही। यहाँ की गति-विधियों का थोड़ा-बहुत परिचय तो हो ही गया था। इस चोकी से मदद मिल सकने की संभावना भी

थी। इसलिए मैं इसे भी साथ लेकर पट्टिपोंबुच्चपुर गया। वहाँ मुझे आसानी से राजाश्रय भी प्राप्त हो गया।"

"अब उतनी ही आसानी से राजकोष भी तुम को मिलेगा।" बल्लाल ने कहा।

"उससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। मैंने जो किया है वही मेरी शक्ति की गवाही दे रहा है। मेरा विरोध करके आप लोग तकलीफ में फँसने को तैयार नहीं हो सकते—यह मैं जानता हूँ।"

"अपनी शक्ति की ठींग मत मारो। डींग मारना केवल ढोंग है—यह हमें मालूम है। तुम जो भी कहो, हम इस बात पर विश्वास नहीं रखते कि तुममें मारने या मरने से बचाने की शक्ति है। कमज़ोर मनवालों को जाल में फँसाकर, उन्हें वश में करके, युक्ति से गुप्तचरी का काम करना मात्र तुम्हारा काम है, यह हम अच्छी तरह समझ गये हैं।" बल्लाल ने कहा।

वामाचारी ने कहकहा लगाकर हँस दिया। बोला, "आपकी सूझ का कोई जवाब नहीं।"

बिट्टिदेव ने आदेश दिया, "उस औरत को बुला लाओ।"

दो सिपाही चट्टला को ले आये।

"तुम इस औरत को जानते हो ?"

"हाँ।"

"कहाँ ? कैसे ?"

"इस चोकी के द्वारा। उसने इसे एक घर में रखा था। मेरी इच्छानुसार इसने कई रात मेरे साथ बितायी हैं।"

"इसपर भी तुमने अपने वशीकरण का प्रयोग किया ?"

"अपनी शक्ति का उपयोग अपने लिए करने पर वह नाश हो जाती है, इस-लिए स्वार्थ के लिए हम किसी स्त्री पर वशीकरण मन्त्र नहीं चलाते।"

"तो फिर यह तुम्हारे वश में कैसे आयी ?"

"वह सब पूर्व-नियोजित है। वह चोकी की व्यवस्था है। उसके हाथ में यह अकेली ही नहीं, और भी कई स्त्रियाँ थीं।"

"तुम जैसों के लिए तुम से ही भस्म पाकर यह वश में कर लेता था ?"

"वशीकरण से जो वश में आती है वह स्त्री उस अकेले की वशवर्तिनी बनती है। वह दूसरों के वश में नहीं होती।"

"तो यह तुम्हारे भस्म से वशीकृत नहीं ?"

"बिल्कुल नहीं।"

चोकी ने तरेर कर वामाचारी की ओर देखा। लेकिन वामाचारी ने चोकी की ओर निहारा तक नहीं।

चोकी चिल्ला उठा, "वह जो कुछ कहता है सब झूठ है।"

"खामोश ! यह राजसभा है।" कहकर बिट्टिदेव चोकी के के पास आये और बोले, "क्या सत्य और क्या झूठ—इसे कैसे प्रकट कराना होता है इस सभा को मालूम है। जब पूछा जाय तब जवाब दोगे। बीच में बोले तो जीभ काट ली जाएगी। और यह भी समझ लो कि झूठ बोले तो कष्ट में पड़ोगे और अन्त में सच बोलने के लिए विवश हो जाओगे। इसलिए इससे तो अच्छा यही है कि पहले ही सब सच-सच कह दो। तुम दोनों को अभी अवसर है कि जो कुछ घटित हुआ है उसे खुलकर बता दें।"

"तो क्या उस स्त्री ने जो कहा उसे सत्य मानकर निर्णय लिया जा चुका है?" चोकी ने पूछा।

"हमारी रीति पर प्रश्न करने की धृष्टता भी तुझमें है? रेविमय्या, जाकर शस्त्रधारी ताड़कों को बुला लाओ! इसके नाक-कान दबाये जायें तो सत्य अपने आप बाहर आ जायेगा। पीठ पर चाबुक मारने से यह ज्यादा आसान है। देखने वालों को भी अच्छा लगेगा।" बिट्टिदेव ने कहा।

आदेश मिलते ही शस्त्रधारी आ गये।

"हाँ अब बोलो, सच बोलोगे या सच कहलवावें?"

"पीड़ा दीजिए। उसे सहन न कर यदि जो चाहे, जैसा चाहे, झूठ ही बोले, उसी को सत्य मानकर विश्वास कर लेंगे?"

"पीड़ा से बचने के लिए झूठ बोले तो वह सत्य कैसे हो जाएगा? प्रत्येक पहलू से हर एक के मुँह से एक जैसा ज्ञात पड़ने पर ही सत्य का स्वरूप दिखेगा। उससे तुम्हें क्या मतलब? स्वयं प्रेरित होकर सत्य को छिपाये बिना कह देना या न कहना तुम्हारी इच्छा पर है। इसके लिए तुम्हें थोड़ा-सा समय और दिया जाता है। इतने में और लोगों की भी तहक़ीकात करना है।" बिट्टिदेव ने कहा। फिर चट्टला की ओर देखकर बोले, "इस सभा के सामने और भी कहने लायक बात हो तो उसे बताने के लिए अभी मौक़ा है। जो कहना बाकी है सो सब बता दो।"

उसने पुनः अपना बयान दिया: "मेरा शील भ्रष्ट हुआ है यह पहले ही बता चुकी हूँ। राष्ट्रभक्ति का काम मैंने जिस तरह निबाहा है, सो सब गुप्तचर चाविमय्या को मालूम है। बेहतर यही होगा कि वही यहाँ आकर कहे। मेरे शील-भ्रष्ट होने के विषय में इन दोनों ने सम्मति दी है। इस चोकी ने मुझ पर जबरदस्ती की और शीलभ्रष्ट किया, भ्रष्ट हुई। अब रह ही क्या गया था इसलिए राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर कुछ कर गुजरने के लिए मैंने, इस चोकी ने जैसा कहा, वैसा किया, किसी तरह का विरोध किये बिना। संख्या प्रधान नहीं। जिस स्थिति में वैसा किया वह मुख्य है—यही मैं मानती हूँ। परदे के पीछे रहकर मैंने

इस चोकी की सारी बातें सुनी हैं। सन्निधान चाहें तो पीठ पर चाबुक लगवा सकते हैं। उस समय भी मेरे मुँह से वही सत्य निकलेगा। मुझे इस जिन्दगी में अब कोई आशा नहीं है स्त्री होकर जन्मी, भरपूर प्रेम करनेवाले पति को पाया था। माँ बनकर घर को संजोने की अभिलाषा रखनेवाली मुझको भगवान् ने ऐसा दण्ड क्यों दिया सो मालूम नहीं। यह शायद किसी पूर्वजन्म कृत पाप का फल हो सकता है। मैं पतिता बनी। फिर भी राष्ट्रप्रेम का पवित्र कार्य किया—इस बात की तृप्ति मुझे मिली है। यह महासभा मुझे चाहे जो दण्ड दे, मैं भुगतने के लिए तैयार हूँ। मुझे भयंकर मनोवेदना देकर मेरे शरीर का उपयोग अपने सुख के लिए करनेवाले इन लोगों से बदला लेने की मेरी इच्छा है। मेरी इस एकमात्र अभिलाषा को सफल बनावें—यही मेरी प्रार्थना है।"

चाविमय्या तब तक वहाँ पहुँच चुका था। उसने बताया—

"चोकी और वामाचारी दोनों गुप्तचर का ही काम करनेवाले हैं। यह वामाचार आमाचार सब कुछ केवल ढोंग और नाटक है। दुर्बल मन के लोगों को नचाने की युक्ति है। यह सब नाटक रच रखा है। इनको यह मालूम नहीं पड़ा कि मैं पोय्सल राज्य का गुप्तचर हूँ। इस चट्टलदेवी के महान् त्याग से शत्रुओं के अनेक रहस्य जानने में सहायता मिली, और शत्रुओं की सेना को आड़े-तिरछे मार्गों में चलने-चलाने के लिए उकसाने में मदद मिली। वास्तव में पहले इस चट्टलदेवी पर मैंने विश्वास ही नहीं किया। इस भ्रष्ट स्त्री के कारण मेरे लिए अनिष्ट की संभावना हो सकती है—यह सोच मैंने बहुत सावधान रहकर इसका हर तरह से, हर पहलू से निरीक्षण किया। उसके बदला लेने की प्रबल इच्छा से स्पष्ट हो गया कि वह राष्ट्र-निष्ठा सहज स्वभाव-गत है और सुभद्र है। राष्ट्रनिष्ठा के ध्येय को साधने में अपनी देह को भी दाँव पर लगा कर इसने शुद्ध और स्वस्थ मन से शत्रुओं की अनेक गुप्त गतिविधियों का पता लगाया। इस जग्गदेव को दबाने और पकड़ लेने में चट्टलदेवी की राज्यनिष्ठा ही सबसे अधिक सहायक रही है।"

चाविमय्या ने आगे कहा, "इस वामाचारी का धारानगरी के भोज से कोई सम्बन्ध नहीं। उसने जो किस्सा सुनाया वह सब सरासर झूठ है। परदे के पीछे रहकर मैंने, इसने जो कुछ भी कहा, सब सुना। ये दोनों एक ही शत्रु के गुप्तचर हैं। ये चोल-प्रतिनिधि आदियम के गुप्तचर हैं। राजनीतिक गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए समयानुकूल रीति से बात करने में ये बड़े चतुर हैं। जग्गदेव के हमले की बात जानकर, हो सका तो उन्हीं से हमारी शक्ति को कुण्ठित कराने के इरादे से, उनके पास जाकर अपनी वामाचार शक्तियों की डींग मारकर, एरेयंग प्रभु के मारने को अपनी मन्त्र-शक्ति का प्रताप बताकर, उसे अपने वश में करके तात्कालिक रूप से उसकी सेना में इन्होंने प्रवेश पाया और

उसके गुप्तचर बनकर काम किया। इनका सारा किस्सा हमें मालूम है। ये दोनों हमारे बन्दी हो गये—इस बात का पता उस आदियम को कैसे लगा, पता नहीं। अभी परसों यात्रार्थी के भेष में एक व्यक्ति आया था। कहता था कि उसकी पत्नी को कोई भूत-पिशाच की बाधा है। इस बहाने वह वामाचारी पंडित का पता लगाने के लिए इधर-उधर पूछताछ करता रहा। उस पर शंका हुई तो उसे पकड़ लिया, ज्यों-त्यों करके उससे सच्ची बात निकलवायी। उसका नाम इसकय्या है। वह जग्गदेव के युद्ध-शिविर में, जब ये लोग थे, इनसे मिलने आया था। यहाँ से आदियम के पास ख़बर भेजने की बात चट्टलदेवी जानती हैं। इस इसकय्या के चाल-चलन की गतिविधि पर शंका उत्पन्न होने के कारण जब मैंने इसे पकड़कर दर्याफ़्त किया तो इसने अपना नाम प्रभुवय्या बताया और कहा कि तुला संक्रमण के अवसर पर स्नान करने तलकावेरी की यात्रा कर, वहाँ से उद्‌भव होनेवाले पवित्र गंगाजल को लाकर उसे अपनी पत्नी पर छिड़केगा तो उसकी भूत-पीड़ा का परिहार हो जाएगा—यों उसे उसके गुरु ने बताया है। और यह भी उसने बताया कि दोरसमुद्र रास्ते में पड़ता है। महावैभवशाली नगर है यह भी सुन रखा था। दोरसमुद्र आया तो यहाँ किसी ने वामशक्ति पण्डित के बारे में बताया इससे उसे देखने का कुतूहल हुआ—यों उसने मनमाने कुछ किस्से गढ़े। उसने यह भी कहा कि मान्यखेड का है। राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, केवल यात्रार्थी है। फिर भी मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने अपने साथी गुप्तचरों को दिखाकर, चट्टलदेवी को भी संकेत कर दिया। चट्टलदेवी को देखते ही इसकी छाती फट गयी। उसके सामने उसने सच बात कह दी। आदेश हो तो उसे अभी बुलवाया जा सकता है।"—चाविमय्या ने विस्तार के साथ सारा किस्सा, किसी तरह की शंका के लिए मौक़ा ही न हो, इस तरह स्पष्ट रूप से सुना दिया।

इसकय्या का नाम सुनते ही चोकी और वामाचारी एकदम फक पड़ गये। अन्य बातों को उजागर करने के लिए साक्षी बनकर खड़ी चट्टला की मौजूदगी में झूठ कहकर बच निकलना सम्भव नहीं था।

"हाँ, तो अब सारी सच्चाई को सीधे-सीधे सामने रख दो। अन्यथा प्रताड़ना देने पर सब कुछ उगलवा लिया जाएगा।" बिट्टिदेव ने कहा।

"हमें सूली पर चढ़ा दीजिए हम तैयार हैं। गुप्तचर चाविमय्या ने जैसा बताया, हम दोनों आदियम के ही गुप्तचर हैं। हम वामाचार नहीं जानते। वह सब एक ढोंग था, एक नाटक था।"

"तुमने कहा, अंजन के प्रयोग में एरेयंग प्रभु को देखा।"

"उस नाम को बताने पर विश्वास करने की स्थिति थी। एरेयंग प्रभु को किसी बात पर मरियाने दण्डनायक पर सन्देह है, यह हमें मालूम था।"

"दण्डनायिका जी ने जिसे देखा बताया वह झूठ था?"

"७न-उनकी कल्पना के अनुसार कुछ देखने का-सा आभास होता है। जिनका मन दुर्बल होता है उन्हें जैसा कहोगे वही आभास होने लगता है।"

"तो यह अंजन-क्रिया सब झूठ है?"

"मैं इसे नहीं जानता। जो इस वृत्ति को जानते हैं उनसे ही दर्यापत करना होगा। उनमें प्रसिद्ध अंजन-क्रिया करनेवालों को मैंने देखा है। उनके सवाल के ढंग को गौर से देखा है। जीवन में पहली वार मैंने महादण्डनायक के ही घर में इसका प्रयोग किया।"

"तो फिर वशीकरण?"

"वह सब मैं कुछ नहीं जानता। मुझे इतना भर पता था कि इस वशीकरण के लिए भस्म दिया करते हैं, सो मैंने भी दे दिया। मुझे कोई भी मन्त्र-सिद्धि नहीं। मैं तन्त्र मात्र जानता हूँ।"

"ठीक है। फिर एकबार पूछता हूँ, ये चार लड़कियाँ कौन हैं जानते हो?"

"नहीं, इनमें कोई मेरे पास नहीं आयीं। मैंने इन्हें कहीं नहीं देखा है।"

"तो वे जो कहती हैं कि तुमको देखा नहीं···यह सच है?"

"मैंने नहीं देखा—यह सच है। उन्होंने मुझे मेरी नज़र बचाकर अगर देखा हो तो मैं कैसे कहूँ कि नहीं देखा। उनकी बातों पर विश्वास करना-न-करना आप की इच्छा और सन्दर्भ पर निर्भर है।"

फिर बिट्टिदेव महाराज के पास गये। दोनों ने आपस में बातचीत की।

"किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि हमारे पीठ पीछे कुछ हुआ, इसीलिए यह महासभा बुलायी गयी। इस विषय में जल्दबाज़ी से कोई निर्णय देना सन्निधान की इच्छा नहीं है। सबसे एक साथ या प्रत्येक से अलग-अलग चर्चा करने के बाद ही कोई निर्णय लिया जा सकेगा। तब तक ये तीनों और इसकव्या बन्धन में ही रहेंगे। आज की यह महासभा विसर्जित की जाती है।" बिट्टिदेव ने कहा।

घण्टी बजी। सैनिक बन्दियों को ले गये। सभासदों ने झुककर प्रणाम किया और पीछे-ही-पीछे की ओर सरकते विदा हुए।

महाराज बल्लाल और बिट्टिदेव अन्तःपुर की ओर चले गये।

किसी वैयक्तिक विषय को लेकर विचार करने के लिए महासभा का आयोजन किया गया था, परन्तु सुनवाई के होते-होते बहुत दूर-दूर के राजनीतिक सवाल

उठ खड़े हुए। मन्त्रि-मण्डल की सलाह के अनुसार, चोकी और वामाचारी को सूली पर चढ़ाने का निर्णय हुआ। इसकय्या को देश निकाले का दण्ड दिया गया और फिर वह आये तो पहचानने के लिए उसके दाएँ हाथ पर लोहे की गर्म शलाक से दो बार दाग भी दिया गया।

चट्टला की सबने प्रशंसा की और सबने उसके प्रति सहानुभूति दिखायी। उसे स्वीकार करके फिर से परिवार बसाने की सलाह रावत मायण को देने का निर्णय करने का किसी को साहस नहीं हुआ, क्योंकि यह सीधे उसके वैयक्तिक जीवन से सम्बद्ध विषय था। किसी की जबरदस्ती या अनिवार्य परिस्थिति के वशीभूत होकर आज उसे वह स्वीकार कर ले और कल उसके पारिवारिक जीवन में सामंजस्य न हो पाये तो क्या होगा? यह शंका उत्पन्न होने के कारण चट्टला के भविष्य के बारे में निर्णय करने का उत्तरदायित्व उन्हीं दोनों पर छोड़ दिया गया।

इधर मायण सोचने लगा: 'यदि मैं स्त्री होता और क्षमा-याचना करने की हालत उत्पन्न हुई होती तो क्या होता? क्या सहानुभूति एवं उदारतापूर्ण व्यवहार की आकांक्षा न करता?' स्वभाव से वह अच्छा आदमी था। उसका मन साफ था। बहुत सोच-विचार करने के बाद उसने चट्टला से कहा, "हम पहले की ही तरह पारिवारिक जीवन बिताएँगे।"

चट्टला ने कहा, "आप में पहला का-सा ही प्रेम मुझपर है, वह कभी मलिन नहीं हुआ। परन्तु मेरा यह शरीर कलंकित हो चुका है। बड़े प्रेम से पाणिग्रहण करनेवाले के साथ मैंने धोखा किया और भाग खड़ी हुई—आपने अब तक यही सोचा होगा। ऐसा सोचना गलत भी नहीं। परन्तु मैं धोखेबाज नहीं, इच्छापूर्वक नहीं भागी। आपके उस पवित्र प्रेम को कलंकित करनेवाली नहीं। ऐसा मानकर आप मुझे क्षमा-दान देकर अनुग्रह करें, यही मेरे लिए पर्याप्त है। कोई पूर्व जन्म का पुण्य था सो मेरा आपसे विवाह हुआ, मैं आजीवन आपकी सेवा करती रहूँगी। आपके साथ पारिवारिक जीवन में योगदान दे सकने की योग्यता मैं खो बैठी हूँ। आप दूसरा विवाह कर लें। मुझे आप दोनों की सेवा करते रहने की स्वीकृति देकर मुझपर अनुग्रह करें।"

"दूसरा विवाह करके तुम्हें दासी बनाकर रखना मुझसे संभव नहीं।"

"आपका जीवन निरर्थक न जाय। आप दूसरा विवाह करके सुखी जीवन बितावें। मैं अपने जीवन को, सन्निधान की आज्ञा के अनुसार, राष्ट्र-सेवा के लिए धरोहर के रूप में समर्पित कर दूँगी। पास रहकर, पुरानी बातों को यादकर, बदहज़मी के डकार लेकर स्वादिष्ट भोजन के स्वाद को बिगाड़ने की भाँति, आप अपने जीवन को क्यों बिगाड़ें? दूर-दूर रहकर ही उस प्रेम के स्वरूप को ज्यों-का-त्यों बचाये रखेंगे।" चट्टला ने अनुरोध किया।

चाविमय्या द्वारा यह सारा समाचार सन्निधान को विदित हो गया। चाविमय्या ने निवेदन किया, "उस महिला को हमारे गुप्तचरों के दल में सम्मिलित कर लें तो बड़ा उपकार हो सकता है। वह बहुत सूक्ष्म-मति है।" फिर भी महामातृश्री की इच्छा के कारण चाविमय्या की सलाह कारगार नहीं हो सकी। महामातृश्री एचलदेवी ने स्पष्ट कह दिया, "पोय्सल राज्य की नारियों को अपना शील भंग करने की ज़रूरत नहीं।" इसलिए विचार-विनिमय के बाद अन्त में उसके जीवन-यापन के लिए आवश्यक थोड़ी-सी खेती और कुछ मासिक वेतन देने का निश्चय हुआ।

अब एक तरह से राजधानी और राजमहल का वातावरण शुद्ध और परिष्कृत बनकर सहज हो रहा था।

ऐसे ही एक दिन बिट्टिदेव ने अपने बड़े भैया से ख़ुद के बारे में बात छेड़ी। दण्डनायिका चामब्बे ने महामातृश्री से क्या कहा था, यह मालूम नहीं था। इसे छोड़कर तब तक और जो-जो भी बातें हुई थीं उनसे तो सब परिचित ही थे। सुनवाई के बाद दूसरे दिन मरियाने दण्डनायक ने महाराज बल्लाल के दर्शन कर निवेदन किया, "भगवान् ने हमारे राज्य पर कृपा बरसायी, सब कुछ ठीक चल रहा है। राज्य का महादण्डनायक होकर भी उस वामाचारी के बारे में, वह नया व्यक्ति होने के कारण, विशेष जानकारी प्राप्त न करने की भारी गलती की। ऐसा अपराध करने पर भी इस महादण्डनायक के पद पर मेरे बने रह जाने का औचित्य नहीं रह जाता। इस बात को मैंने प्रधानजी से भी निवेदन किया है। सन्निधान और वे—दोनों ही मुझसे छोटे हैं। उम्र अधिक होने पर भी छोटों के सामने गलती को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं। मुझे इस पद से मुक्त कर दें तो मैं कृतज्ञ होऊँगा। इस भारी गलती का बोझ ढोकर इस ज़िम्मेदारी का निर्वहण नहीं हो सकता।"

"अनजान में गलतियाँ हो जाएँ तो कोई क्या कर सकते हैं? आपने मन-वच-तन से कभी भी राष्ट्रहित की उपेक्षा नहीं की। आपका जीवन राष्ट्र के लिए ही समर्पित रहा है। इसलिए पिछली सब बातों को भूलकर जैसा अब तक चला है वैसे ही चलना चाहिए। किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं—यह हमारी राय है। प्रधानजी ने क्या कहा?"

"इस विषय में तो सन्निधान ही निर्णय ले सकते हैं—कहकर वह खिसक गये।"

"उन्हें आपकी सलाह जँची नहीं। सन्निधान की ओर इशारा कर दिया।"

"रिश्ते-नाते में, निर्णय करने में संकोच होता है, इसलिए वे खिसक गये। इस पद के त्याग करने में मुझे कोई परेशानी नहीं। ख़ुशी से मैं ख़ुद अपनी इच्छा से त्याग कर रहा हूँ, यह न्याय-संगत भी है।"

"आपने कहा और हमने स्वीकार कर लिया—इसका तो यही अर्थ होगा कि हमने आपको अपराधी मान लिया। जब तक हमें ऐसा नहीं लगेगा कि आप अपराधी हैं तब तक आपकी इस माँग को सुरक्षित रखे रहना होगा। आप अब विदा ले सकते हैं।" बल्लाल ने कहा।

यह वार्तालाप भी बिट्टिदेव के समक्ष ही हुआ था। इस संभाषण ने बिट्टिदेव को कुछ विशिष्ट बातों पर बातचीत करने के लिए सहूलियत पैदा कर दी, कहा जा सकता है। क्योंकि मरियाने के विषय में बल्लाल की राय भी मालूम हो गयी थी।

"क्या अब ऐसा मान सकता हूँ कि सन्निधान के मन में सारी बात स्पष्ट हो गयी है ?" बिट्टिदेव ने प्रश्न किया।

"कौन-सी सारी बात ?"

"वही, उस वामाचारी की, महादण्डनायकजी की, दण्डनायिकाजी की एवं उनकी बेटियों की।"

"हाँ, मैं वही सोच रहा हूँ। मनुष्य का मन कितना सूक्ष्म है ! कभी-कभी पूर्वापर विचार किये बिना कैसे-कैसी गलतियाँ कर बैठता है ! कैसे-कैसी बातों में फँस जाता है ! इसके कैसे-कैसे परिणाम होते हैं ! क्या-क्या ख़तरे उत्पन्न हो जाते हैं ! गलती किसी की और दण्ड किसी और को—ऐसी भी स्थिति हो जाती है। निरपराधी भी दण्डित हो जाते हैं—यह सब अच्छी तरह स्पष्ट हो गया।"

"तो पहले दिये हुए वचन का पालन कर सन्निधान पोय्सलों के सत्यवचन परिपालन की कीर्ति को चिरस्थायी कर सकेंगे न ?"

"मेरा मन पूर्वाग्रह से मुक्त है। फिर भी महामातृश्री की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकूँगा।"

"आपके ये विचार ठीक हैं। माताजी से ख़ुद सन्निधान बात करेंगे या मैं ही बात करूँ ?"

"तुम ही बात कर लो। माँ के मन की रीति से तुम मुझसे अधिक परिचित हो। परन्तु जिसने वचन लिया वे यदि न चाहें तब।"

"सन्निधान मुझे क्षमा करें। हम पुरुष इस विषय में उतने निष्ठावान् नहीं होते। वे ऐसी नहीं, एक बार किसी को दिल दे दिया तो बदलेंगी नहीं।"

"पुरुष होकर तुमको यह सब कैसे मालूम ?"

"निश्चित रूप से जानने से ही बता रहा हूँ।"

"तब तो आपका भी अभी…?"

"पहले जो आये उनका पहले, बाद की बात बाद में।"

"जैसा ठीक लगे करो, छोटे अप्पाजी। मेरा मन दुविधा में पड़कर भयंकर पीड़ा का अनुभव कर रहा था। कई बार यह अनुभव हुआ कि मैं भी सबकी तरह

सामान्य मनुष्य ही बनकर रहा होता तो कितना अच्छा होता ! जो मन में नहीं है, उसे मुँह से कहकर संदिग्धावस्था से पार होने की भी स्थिति आयी थी। असली रूप को छिपाकर कुछ बाहरी आवरण ढक लेना पड़ता था। हम जैसे हैं वैसे यदि नहीं दिखे तो दूसरों को दुःख होगा, उन्हें अच्छा नहीं लगेगा—इस वहज से जो हम चाहते हैं उसे छोड़ देना पड़े तो वह कितना कष्टदायक दण्ड होगा—जानते हो अप्पाजी ? परन्तु ऐसी सभी परिस्थितियों में तुमने सहारा दिया है। छोटे होने पर भी दूर तक की सोचने में तुम मुझसे श्रेष्ठ हो। तुम्हारे सहारे चलने पर सदा ही अनेक प्रसंगों में हमारा हित हुआ है। इसका प्रमाण मिल चुका है। हमारे हित के लिए, हमारे सुख के लिए तुमने जो सब किया उससे हम परिचित हैं, इसलिए जो तुम कहोगे हमारे राज्य में वही शासन की रीति होगी।"

"सन्निधान की प्रशंसा मेरे लिए आशीर्वाद है। मैंने माताजी को वचन दिया है कि मेरा जीवन सन्निधान की और राष्ट्र की सेवा के लिए समर्पित है। इस वचन के पालन करने के लिए सन्निधान मुझे आज्ञा और अवसर दें। मैं एक निष्ठावान् प्रभु-किंकर बनकर रहना चाहता हूँ।"

"प्रभु किंकर ये सब बात कवियों के लिए सुरक्षित रखो। अब आगे क्या करना है सो देखो।"

"जल्दी करेंगे तो कैसे होगा ?"

"अब आगे का कदम क्या हो इसके लिए सलाह-मशविरा करना होगा शायद। कब हेग्गड़ेजी के घर की ओर यात्रा होगी ?"

"वहाँ क्यों जाना होगा ? मुझे सभी अधिकार जब प्राप्त हैं तो यहीं बैठे-बैठे बुलवा सकता हूँ। परन्तु फिलहाल उसकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि महामातृश्री ने हेग्गड़तीजी को बुलावा भेजा है।"

"तो तुम्हारा कहना है कि छोटी हेग्गड़ती भी आएँगी—यही न ?"

इतने में किवाड़ सरकाकर रेविमय्या ने अन्दर की ओर झाँका।

"वह देखो, तुम्हारा प्रिय शिष्य झाँक रहा है। छोटी हेग्गड़ती ज़रूर आयी होंगी, जाओ।" कहकर बल्लाल ने जोर से घण्टी बजायी।

रेविमय्या ने किवाड़ खोलकर परदा हटाया। बिट्टिदेव बाहर निकल आये। परदा सरकाकर किवाड़ बन्द कर रेविमय्या भी उनके पीछे चला गया।

शान्तला के साथ बालक बिट्टिगा था। रेविमय्या को देखते ही बिट्टिगा उठकर रेविमय्या के पास चला गया। उधर अन्दर एचलदेवी और माचिकब्बे बातचीत कर रही थीं। इधर शान्तला बिट्टिदेव बातचीत करने लग गये। बातचीत का ढंग अलग होने पर भी दोनों तरफ से विषय एक ही था। कुशल प्रश्न के बाद उधर एचलदेवी ने कहना शुरू किया, "हेग्गड़तीजी, सहज आत्मीयता से बातचीत करके युग-युग बीत गया-सा लगता है। भगवान् ही जानता है कि

प्रभु जब से युद्ध-क्षेत्र से लौटे तब से अब तक मैंने समय कैसे गुज़ारा है। उसके पूर्व जो प्रशान्त वातावरण रहा वह एकदम कलुषित हो गया था। किसी एक के कारण ऐसा हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक उसे शक्त्यनुसार बिगाड़ने का काम व्यक्त या अव्यक्त रूप से करने के कारण बने हैं। बहुत दिनों के बाद अब यह वातावरण छनकर साफ हुआ है। अब लगने लगा है कि धीरे-धीरे प्रशांत बनेगा। वास्तव में मेरा मन बहुत कुण्ठित हो गया था। दण्डनायिका चामव्वे को उनकी मृत्यु से पहले जो देख आये, उसके बाद मन कुछ हलका हुआ है। छोटे अप्पाजी और आपकी अम्माजी के प्रयत्नों के फलस्वरूप सत्यांश प्रकट हो सका। उन दोनों ने वातावरण को शुद्ध बनाने के लिए क्या-क्या किया सो सब समय-समय पर रेविमय्या ने बताया है। छोटे अप्पाजी की बुद्धिमत्ता और चतुराई के कारण सभी के मन पूर्वाग्रह से मुक्त हो गये हैं। अब केवल एक बात रह गयी है जिसे मैं अकेली जानती हूँ, और कोई नहीं जानता। वह है मेरे और दण्डनायिका के बीच हुई बातचीत। वहाँ से लौटते ही छोटे अप्पाजी ने मुझसे पूछा भी, लेकिन मैंने उससे भी नहीं कहा। कह दिया कि स्त्रियों की बातें हैं, तुम लोगों से कहने की नहीं। वास्तव में चारुकीर्ति पण्डितजी ने कहा था कि दण्डनायिका का जीना कठिन है, इसलिए मैं ख़ुद देख आने के इरादे से गयी। मालूम हुआ कि दण्ड-नायिकाजी ने दण्डनायकजी से राजमहल में आने की इच्छा प्रकट की थी। उनकी स्थिति ऐसी नहीं थी कि उन्हें वहाँ से हिलने भी दिया जाये। मेरा जाना ही अच्छा हुआ।" कहकर एचलदेवी ने घण्टी बजायी। सेविका उपस्थित हुई। "दरवाज़ा बन्द करके बाहर ही रहो, किसी को अन्दर न आने दो" सेविका को आदेश दिया।

सेविका 'जो आज्ञा' कह बाहर चली गयी।

एचलदेवी ने जो बातें हुई थीं, सबकी-सब विस्तार के साथ हेग्गड़ती को बता दीं। उन्होंने भी बड़े कुतूहल से सुना। बाद में एचलदेवी ने कहा, "हेग्गड़तीजी आपको सारी हालत मालूम है। अभी हाल जो महासभा हुई उसमें सारी बातें प्रकट हो गयी हैं—यह भी आप जानती हैं। चामव्वेजी का यह कथन था कि 'बच्चियों को मैंने आपकी गोद डाल दिया।' शायद यही उनके आख़री शब्द थे। बाद को दो दिन सांस लेती रहीं, मगर बोली नहीं। उन्होंने तो बेटियों को मुझे सौंपकर छुट्टी पा ली। अब मुझे नहीं सूझ रहा है कि क्या करूँ? उन्हें अपनी बहुएँ बनानी होंगी, नहीं तो उन्हें मन्दिर की सेवा में समर्पित करना होगा। यह कैसी सन्दिग्ध स्थिति है!" कहकर वह मौन हो गयीं।

"महाराज की राय जानना अच्छा होगा न?"

"हो सकता है कि अब मन बदल गया हो। यह सच है कि पहले वह पद्मला को चाहता था। अगर वह अब भी चाहता हो तो मुझे सन्तोष है। मगर बाकी

दोनों को क्या करूँ ?"

"मातृश्री के तीन सुपुत्र हैं, इसलिए दण्डनायिकाजी ने सोचा होगा कि अपनी तीनों बेटियों को तीनों को दे दें तो ठीक हो जाएगा।"

"चामब्बे की बहुतेरी आकांक्षाएँ हो सकती हैं। मैं अपने बेटों की आशाएँ क्या हैं, सो मैं समझती हूँ। चाहे जो भी हो जाय छोटे अप्पाजी के विषय में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते, वह भगवान् की इच्छा है। एक बार नहीं, दस-दस बार इस सम्बन्ध में मन-ही-मन निश्चय हो चुका है। हो सकता है कि किसी ने व्यक्तरूप से बताया न हो। अब रहा उदय। वे सब लड़कियाँ उससे उम्र में बड़ी लगती हैं।"

"नहीं, आख़िरी लड़की एक-दो महीने छोटी ही होगी।"

"फिर भी यह कैसे हो सकता है ? कम-से-कम चार साल का अन्तर तो होना ही चाहिए न ?"

"हाँ, सो तो ठीक है, कुछ सूझता नहीं कि क्या करना चाहिए। मुश्किल है।"

"हेग्गड़ेजी से बातचीत करें। उन्हें हो सकता है कि कुछ सूझे। हमारा उस तरह स्वीकार कर लेना मृत्युशय्या पर पड़ी दण्डनायिकाजी को वचन दिया-सा हो गया। इस बारे में मरियाने दण्डनायकजी की राय क्या है, यह मालूम नहीं हो पा रहा है।"

"उन्होंने फिर इस विषय को छेड़ा नहीं ?"

"वे इन सभी बातों से काफी परेशान ही नहीं, बल्कि बहुत बड़ी मानसिक पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं। इस भारी गलती के कारण, अपनी वर्तमान ज़िम्मेदारी से मुक्त होना चाहते हैं। इसलिए ख़ुद महाराज के पास जाकर उन्होंने उनसे निवेदन किया कि भारी गलती हो जाने से अब ऐसी ज़िम्मेदारी के निर्वहण की योग्यता को खो बैठने के कारण उससे उन्हें मुक्त कर दें। इस मन:स्थिति में विवाह के सम्बन्ध में बात करने का साहस वे कैसे कर सकते थे ? उनके मन में क्या है, इस बात को हेग्गड़ेजी समझने की कोशिश करें तो अच्छा होगा।"

"दण्डनायिकाजी ने क्या कहा था—इस विषय की जानकारी दण्डनायक और उनकी बेटियों को है ?"

"नहीं, इस बात को जाननेवाली अब आप दूसरी हैं। किसी और को कुछ भी मालूम नहीं।"

"मैं अपने मालिक को यह बात बता सकती हूँ ?"

"बताइये। मैं भी आज छोटे अप्पाजी को बताऊँगी। यह समस्या हल हो जाय तो मैं तीर्थयात्रा पर जाने का विचार कर रही हूँ।"

"चन्दलदेवी के बच्चे की ज़िम्मेदारी न होती तो मैं भी तीर्थयात्रा पर चल

सकती थी।"

"उसके लिए दूसरी व्यवस्था कर ली जा सकती है। यों तो शान्तला यहीं राजमहल में ही तो रहेगी।" कहकर एचलदेवी ने घण्टी बजायी। नौकरानी उपस्थित हुई।

"देखो, राजमहल में बालक आया है। उसे दूध पिलाया या नहीं, मालूम नहीं हुआ। छोटे अप्पाजी कहाँ हैं ? हेग्गड़तीजी की बेटी कहाँ हैं ? वह रेविमय्या कहाँ है ?" एक साथ एचलदेवी ने प्रश्न कर डाले।

"रेविमय्या बाहर के बड़े प्रकोष्ठ में बालक को खिला रहे हैं। उन्होंने बालक को दूध भी पिला दिया है। छोटे मालिक और छोटी अम्माजी पाठशाला के कक्ष में हैं, ऐसा रेविमय्या ने बताया है।"

"ठीक, उन्हें यहाँ बुला लाओ। देरी हो गयी, हेग्गड़तीजी को जाना है।"

नौकरानी जल्दी जाकर उन्हें बुला लायी। शान्तला और बिट्टिदेव आ गये।

एचलदेवी नौकरानी से हल्दी-कुंकुम पान-सुपारी मँगवाकर हेग्गड़ती को दिलवाती हुई बोलीं, "देखिये हेग्गड़तीजी, बहुओं के आने तक इन लोगों से मंगल द्रव्य दिलवाना पड़ता है।"

"हर बात के लिए समय की प्रतीक्षा करनी ही होती है। हम सब उस विधि के हाथ की कठपुतली हैं। अच्छा, आज्ञा हो तो चलूं।" माचिकब्बे ने कहा। शान्तला ने एचलदेवी के पैर छूकर प्रणाम किया और कहा, "आज्ञा दें, हो आऊँ।"

"वांछित पति का पाणिग्रहण कर सुखी रहो बेटी !" एचलदेवी ने आशीर्वाद दिया। उसे मालूम था कि बिट्टिदेव वहीं है। शान्तला को सन्तोष हुआ। परन्तु उसे प्रकट न करके सिर झुकाकर बड़े संकोच से उसने बिट्टिदेव की ओर देखा और माँ के साथ चल दी। पालकी तक रेविमय्या बिट्टिग को उठा लाया और शान्तला के हाथों में दे दिया। पालकी चल दी।

पालकी के ओझल होने तक बिट्टिदेव दरवाज़े पर खड़े रहे।

विवाह की बात एक साथ कई कारणों से स्थगित हो गयी थी, लगता था इस से सम्बन्धित सभी व्यक्ति यही सोच रहे थे कि बात फिर उठेगी ही नहीं। किन्तु इस वामाचारी के विषय में लड़कियाँ कुछ जानती ही नहीं—यह स्पष्ट मालूम हो जाने पर, तथा शान्तला और बिट्टिदेव के प्रयत्नों के कारण, सो भी कई विचित्र संयोगों के जरिये, यह बात फिर से चेतना पा गयी थी। जिन परिस्थितियों के

कारण वात को स्थगित होना पड़ा था वे सब वातें अब छटती हुई नजर आ रही थीं। इससे चर्चा के फिर से छिड़ने में सहूलियत हो गयी थी।

मारसिंगय्या ने दण्डनायक से वातचीत करने के वाद फिर प्रधान गंगराज से भी विचार-विनिमय किया था। इसके वाद हेग्गड़ती माचिकव्वे द्वारा एचलदेवी को ठीक-ठीक सलाह दी गयी। दण्डनायिका ने आख़िरी सांस लेते हुए इच्छा प्रकट की थी, उसे पूरा करने के लिए एक ही मार्ग था। वह यह कि वल्लाल एक साथ तीनों लड़कियों से विवाह कर लें। तीनों को महाराज के हाथ सौंपने के के विरोधी नहीं थे दण्डनायक मरियाने। गंगराज ने भी कहा, "ऐसा होने में कोई दोष नहीं, इच्छा होने पर महाराज पट्टरानी के साथ और रानियों को भी रख सकते हैं। यह धर्म विरुद्ध भी नहीं। और किसी से विवाहकर सौतिया डाह के लिए मौक़ा देने से वेहतर यह होगा कि उन वहिनों से ही विवाह करलें लेकिन यह तभी सम्भव है जव महाराज, महामातृश्री तथा विवाह करनेवाली लड़कियाँ स्वीकार कर लें।"

एचलदेवी ने सारी ज़िम्मेदारी वल्लाल पर छोड़ दी। वल्लाल का प्रेम पद्मला पर था। दूसरों पर अपनी प्रेयसी की वहनें होने के नाते एक सहज वात्सल्य मात्र था। ऐसी स्थिति पैदा हो जाने की उसे कल्पना तक नहीं थी। उसे मालूम था कि महाराज की कई रानियाँ हो सकती हैं परन्तु वहनों से विवाह करके अधिक समय पद्मला के साथ व्यतीत करने पर दूसरी परेशान हों तो वहिनों में आपसमें ईर्ष्या के उत्पन्न होने का वह कारण वन सकती है। इसलिए इस वात के निर्णय का दायित्व उन्हीं पर छोड़ देने की सूचना वल्लाल ने दी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तीनों के साथ विवाह करने के विषय में उत्साह न होने पर भी, होना पड़े तो हर्ज नहीं—इस विचार का वल्लाल ने संकेत किया।

आगे की ज़िम्मेदारी पद्मला पर आ पड़ी। वह सोचने लगी: "मैं पट्टरानी वनूं और वहनें रानियाँ वनें और सौत वनें—इसे कैसे स्वीकार किया जा सकता है? स्वीकार करने के लिए कहें भी तो कैसे? उनकी भी अपनी-अपनी आशाएँ आकांक्षाएँ होंगी ही, ऐसी हालत में उनपर जोर डालें भी तो कैसे?" वड़ी दुविधा में पड़कर वह शान्तला के पास गयी। इस समस्या और उसके समाधान से चामला या वोप्पि दोनों वेख़बर थीं इसलिए उन्हें समझा-बुझाकर उनकी राय जानने का जिम्मा उसने शान्तला पर डाल दिया। परन्तु उन लोगों की स्वीकृति मिल जाने पर स्वयं पद्मला को कोई एतराज नहीं होगा—इस वात की जानकारी शान्तला को जव तक न हो तव तक वह इस काम में आगे वढ़े भी तो कैसे? शान्तला ने पद्मला से सीधा सवाल किया, "आपकी आशा को सफल वनाने के लिए हमने प्रयत्न किया वह तो सार्थक हुआ। आपको भी पोय्सल महारानी वनाने की आशा थी। आपकी माँ भी चाहती थी। यह सब ठीक है। महाराज का आप पर स्नेह है

प्रेम रहा है, उसे सफल बनने का रास्ता मिल गया। अगर आप यह चाहेंगी कि महाराज का प्रेम आप तक ही सीमित रहे तो आपकी बहनों की कल क्या गति होगी? अगर उन्हीं से उनको विवाह करना पड़े तब अपने पति के प्रेम को अपनी बहनों के साथ बाँटकर सन्तोष से रहने के लिए आपको स्वीकृति देनी होगी। उन दोनों की स्वीकृति आपके सुख-सन्तोष में बाधक नहीं होगी—इस बात पर भी आपको सहमत होना होगा। इस बारे में आपकी राय बिलकुल स्पष्ट होनी चाहिए। यह विश्वास हो जाय तो फिर मैं इस सम्बन्ध में उनसे बातचीत कर लूंगी···" शान्तला ने कहा।

"हमारी माँ होती तो क्या होता, कौन जाने? महामातृश्री माता से भी श्रेष्ठमाता बन सकेंगी। इसीलिए मेरी माता ने आख़िरी वक़्त कहा था कि 'बेटियों को आपकी गोद में डाल दिया है'। मैं अपनी बहनों के सुख के रास्ते में कांटा नहीं बनूंगी। पाणिग्रहण करनेवाले का प्रेम पाना उनका काम है। महाराज के व्यवहार पर हम सबका जीवन अवलम्बित है। मैं बड़ी होने के कारण मातृहीना अपनी बहिनों की माँ बनकर रह सकती हूं, सौत बनकर नहीं—इतना आश्वासन दे सकती हूँ।" पद्मला ने कहा।

पद्मला के साथ ही दोनों बहिनों को बिठाकर शान्तला ने प्रस्तुत प्रसंग की पृष्ठभूमि में युक्तियुक्त बातें समझाकर बताया, "आपकी माता की अन्तिम आशा को चरितार्थ करने के लिए महामातृश्री और आप सबके लिए एक ही मार्ग रह जाता है। अपनी दीदी सहित दोनों को महाराज से विवाह करना होगा। सोचकर देखो। दण्डनायकजी वृद्ध हो गये हैं। दण्डनायिकाजी की मृत्यु के बाद बहुत कमज़ोर भी हो गये हैं। आप सब के विवाह जब तक नहीं हो जाते, वे अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकेंगे। विवाह प्रत्येक के जीवन में भाग्य की बात है। भाग्य अच्छा रहा तो विवाह सुखकर होगा। नहीं तो वह दुःख का एक पुलिदा है। करुणामयी क्षमाशील महामातृश्री की बहू बनना भी बड़े भाग्य की बात है। आप सभी बहिनें महाराज से विवाह करेंगी और सौत न बनकर बहिनों की ही तरह महाराज के जीवन को सुखमय और सन्तोषप्रद बना सकतीं हैं। महाराज दूसरों से विवाहित होंगे तो उन रानियों से आपकी दीदी को वह प्रेम और आदर शायद नहीं मिलेगा जो आप लोगों से मिल सकता है। आप लोग सोचकर निर्णय कर लें।" शान्तला ने कहा।

उन दोनों के लिए यह अनिरीक्षित विषय था। उन लोगों के मन में कभी यह विचार उठा ही नही था। वे सोचने लगीं: रानी होने की आशा का होना तो सहज ही है, परन्तु अपनी दीदी जिससे विवाह करे उन्हीं से विवाहित होना ठीक है?

चामला को काफी दिन पहले घटी एक घटना की याद आ गयी। उस दिन उसके यहाँ, बल्लाल अतिथि बनकर गये थे। बल्लाल जब अकेले रहे तब उसने

पद्मला को बुलाने के लिए घण्टी बजायी लेकिन चामला अन्दर आ गयी; उसी को अनजाने में पद्मला समझकर, "मैं तुम्हें चाहता हूँ।" कह दिया था। जब देखा वह पद्मला नहीं, तो वह कुछ अकचका कर पूछने लगा, "तुम्हारी दीदी कहाँ है ?" तब उसने पूछा था कि "उसे ही चाहिए ? मैं ही आऊँ तो क्या···?" यही वह घटना थी। यह सब पुरानी और बचपन की बातें थीं। अब उसे लग रहा था कि वे बातें बहुत ही अर्थपूर्ण हैं। चामला पुलकित भी हुई। साथ ही उसी समय की और एक घटना याद आ गयी। तब उसने कहा था—"तब आपका हिस्सा मेरा बना, यहाँ दीदी के साथ मेरा हिस्सा आपका···"—इसी धुन में वह सोचने लगी थी।

"मेरी दीदी को कोई एतराज नहीं हो तो मैं विवाह के लिए तैयार हूँ।" चामला ने कहा। "अब मेरा क्या ? मुझे भी अपने साथ कर लो।" बोप्पि ने भी कहा।

अब यही निश्चय हुआ कि एक ही विवाह-वेदी पर महादण्डनायक मरियाने की तीनों बेटियों का विवाह महाराज के साथ हो।

लड़कियों के मामा प्रधान गंगराज ने ही तीनों बेटियों का कन्यादान किया। हाल के युद्ध के कारण राज्य का ख़ज़ाना खाली हो गया था। इससे विशेष धूम-धाम के बिना, विशेष आह्वानों के बिना, केवल दोरसमुद्र और उसके इर्दगिर्द ही आमन्त्रण-पत्र भेज देने का निर्णय महाराज बल्लाल ने सुनाया। उसी तरह व्यवस्था की गयी। शक संवत् 1025 के श्रीमत् स्वभानु संवत्सर, कार्तिक सुदी दशमी के दिन, शुभ मुहूर्त में गंगराज की बहन चामव्वे दण्डनायिका और मरियाने दण्डनायक की पुत्रियाँ पद्मलदेवी, चामलदेवी, और बोप्पदेवी—तीनों के साथ पोय्सल महाराज बल्लालदेव का शुभ विवाह सम्पन्न हुआ।

इसके पश्चात् राजमहल में महामातृश्री एचलदेवी को नौकरानियों से मंगल-द्रव्य दिलाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। राजमहल में अब तीन-तीन सुमंगलियाँ रह रहीं थीं।

इस विवाह के बाद महाराज ने ससुर को बुलवाकर कहा, "उस दिन आप ने विश्रान्ति पाने की इच्छा प्रकट की थी। आपको विश्राम की आवश्यकता थी इस बात को जानते हुए भी तब आपकी इच्छा पूरी न कर सका। तब आपकी आशा मैं पूर्ण करता तो उसका कुछ और अर्थ हो जाता, गलत-फ़हमी हो जाती। दोनों के मन में कड़ुआपन रह जाता। अब जो विश्राम आपको वास्तव में मिलना चाहिए उसे देने को शासन तैयार है, विश्राम-वेतन के रूप में आपको सिंदगेरे की जागीर दी जाती है।" बल्लाल ने कहा।

चामव्वे जीवित रहती तो कितना खुश हुई होती !

बल्लाल के विवाह के बाद राजमहल के वातावरण में शान्ति फैल गयी थी। जब बड़ी दीदी पद्मलदेवी को पटरानी घोषित किया तो रानी चामलदेवी और रानी बोप्पदेवी —दोनों को कोई परेशानी नहीं हुई। कुछ धार्मिक कार्यों के अवसर पर पटरानी के लिए अग्रस्थान देना स्वीकृत व्यवहार था। सिवाय इसके बल्लाल के उन जीवन-संगियों में कोई अन्तर नहीं दिख रहा था। अपने-अपने जीवन में समरसता लाने के लिए सबने महाराज को सुखी रखा था।

एक तरह का समाधान एचलदेवी को भी मिला गया था। किसी नयी समस्या के बिना चामव्वे दण्डनायिका की अन्तिम इच्छा पूरी हो गयी थी।

पूस के समाप्त होने के पहले एक दिन एचलदेवी ने बल्लाल के पास अपनी तीर्थ-यात्रा की बात छेड़ी।

"आपकी छाया में हम सुखी हैं। आप बुजुर्ग रहकर सदा हमें दिशानिर्देश देती रहेंगी तो अभी जो सुख-सन्तोष है वह ज्यों का त्यों बना रहेगा। किसी एक क्षेत्र की यात्रा कर लौटने की बात होती तो हम मान लेते। भारतवर्ष के सभी तीर्थों का संदर्शन कर लौटना हो तो कई साल ही लग जाएँगे। इस उम्र में इतना श्रम—यह हमें कुछ ठीक नहीं लगता।" बल्लाल ने कहा।

"शाश्वत क्या है? अपने जीवन में मैंने सुख-दुःख दोनों भोगे हैं। तुम सब की देख-भाल करते हुए राष्ट्र की उन्नति के सम्पूर्ण स्वाम्य तुम लोगों को दिला देने तक की जिम्मेदारी प्रभुजी ने मुझे सौंपी थी। पट्टाभिषेक को हुए एक वर्ष बीत गया। एक भीषण युद्ध में तुमने विजय प्राप्त की। तुम्हारे दाएँ हाथ जैसे दक्ष भाई तुम्हारे साथ हैं। अपनी इच्छानुसार विवाहित होकर तुम गृहस्थ भी हो गये। मुझे अब यहाँ रहकर कुछ करना भी नहीं है। अगर यह तुम समझते हो कि मुझे भी विश्रान्ति की जरूरत है तो मुझे सम्मति दो। सब झंझट भूल-भालकर मानसिक शान्ति पाने में मेरी मदद करो।"

"तो क्या यहाँ अब तक वह मनःशान्ति नहीं रही, माँ?"

"नहीं रही, यह तो कह नहीं सकती। फिर भी प्रभु से बिछुड़ने के बाद से मुझे वास्तव में शान्ति नहीं। उन्होंने जो जिम्मेदारी मुझे सौंपी थी उसके निर्वहण के लिए शान्ति रही हो ऐसा संयम से व्यवहार करती रही। मेरी माँ सदा कहा करती थीं कि नारी को संयम से बरतना चाहिए, ऐसा बरतने से कोई समस्या ही नहीं उठती। अगर कभी समस्या उठी भी तो वह समर्पक ढंग से हल भी हो जाएगी। प्रभु ने भी यही सब सिखाया। तुम लोग भी इसी तरह संयम से रहने का अभ्यास करो और सुखी रहो। मुझे इन सबसे मुक्ति चाहिए। इस राजमहल के झंझटों से कुछ समय तक दूर रहूँ तो अच्छा हो। तुम्हें जन्म देकर बड़ा किया, बदले में इससे अधिक मैं नहीं माँगती। इतनी अभिलाषा को पूरा करो।"

"ऐसा ही हो माँ, आपकी इच्छा को पूरा न करें—ऐसा स्वार्थ हममें नहीं

है। अब आप तीर्थयात्रा पर जाती हैं तो आपके लौटने तक छोटे अप्पाजी को कुँवारा ही रहना होगा। उसका विवाह होने में और अधिक विलम्ब करना उचित नहीं, ऐसा मेरा विचार है। उसे भी सम्पन्न कर देतीं तो अच्छा होता।" बल्लाल ने कहा।

तुरन्त ज्योतिषी को बुलाया गया, जन्म-कुण्डलियाँ मिलायी गयीं। बताया गया—"इस स्वभानु संवत्सर में समय अनुकूल नहीं। तारण संवत्सर के चैत्र-वैशाख में व्यवस्था कर सकते हैं।"

अब क्या किया जा सकता है? माघ मास में यात्रा आरम्भ करने की एचलदेवी की इच्छा थी, सो अब उसे चार-पाँच महीनों तक के लिए स्थगित कर देना पड़ा। माँ का सान्निध्य कम-से-कम तब तक तो रहेगा ही—यह सोच बल्लाल खुश हुए।

शान्तला और बिट्टिदेव का विवाह अब तक लोगों के केवल ऊहापोह की ही बात बनी रही। परन्तु अब सभी को मालूम हो गया कि यह निश्चित है।

हेग्गड़े मारसिंगय्या और माचिकब्बे तथा शान्तला को सामान्य जनता में पहले से भी अधिक गौरव का स्थान प्राप्त हुआ। सबसे अधिक आनन्द रेविमय्या को मिला। तारण संवत्सर का चैत्र-वैशाख जल्दी आवे यही मनौती भगवान् बाहुबली से रेविमय्या ने की थी। दोरसमुद्र के कार्यकलाप संतुलित रीति से चलने लगे थे। महाराज की तीन रानियाँ थीं और शीघ्र ही बिट्टिदेव का विवाह भी होने वाला था, इसीलिए दोरसमुद्र के राजमहल के अन्तःपुर के हिस्से को विस्तृत करना भी ज़रूरी हो गया था। बिट्टिदेव के विवाह के पहले इस विस्तरण कार्य को पूरा करने की व्यवस्था की गयी। नव-विवाहितों को स्वतन्त्र रहने की इच्छा का होना सहज ही है, इसलिए महाराज बल्लाल अपनी रानियों के साथ वेलापुरी में रहें और महामातृश्री, उदयादित्य और बिट्टिदेव दोरसमुद्र ही में रहें तथा साधारण राजकाज का निर्वहण बिट्टिदेव ही करें—यही व्यवस्था निर्णीत हुई।

युद्ध के बाद सिंगिमय्या वेलापुरी आ गये थे, इसलिए महाराज और रानियों की सुरक्षा आदि के लिए अन्य व्यवस्था करने की ज़रूरत नहीं पड़ी। महाराज के परिवार के साथ रानियों के गुरु और कवि नागचन्द्र दोनों वेलापुरी चले गये। उत्कल के नाट्याचार्य महापात्र दोरसमुद्र में ही रह गये। उनकी उपस्थिति का लाभ पूर्ण रूप से उठाया शान्तला ने। उसने औत्तरेय नृत्य-पद्धति में भी दक्षता प्राप्त कर ली। तब तक बिट्टिगा तुतलाने लगा था और थोड़ा चलने भी लगा था। वह शान्तला का अनुकरण करने लगा। "मैं भी नाचूँगा" कहता हुआ उछल-कूदकर गिर पड़ता। चोट लगने पर रोने लगता।

"बेटा, तुम्हें अपने पिता से भी उत्तम दण्डनाथ बनना है। तुम्हें यह नृत्य

क्यों ?" कहकर शान्तला उसे समाधान करती गोद में लेकर।

इसी बीच बिट्टिदेव का जन्मदिन आया। एक-दो दिन के लिए महाराज और रानियाँ वहाँ आ गयीं। उस दिन शाम को राजमहल में सीमित ढंग से बिट्टिदेव के सन्तोषार्थ नृत्य और संगीत का आयोजन हुआ।

शान्तला ने गीत के साथ दोनों प्रकार के नृत्य का प्रदर्शन किया। मृदंग और तबला महापात्र ने ही बजाया। उसकी बहुत दिनों की इच्छा आज पूरी हुई थी, वह बहुत तृप्त और सन्तुष्ट था। शान्तला के ज़ोर देने पर महामातृश्री और महाराज की अनुमति प्राप्त कर महारानियों ने भी गान एवं नृत्य किया। उन लोगों ने भी पर्याप्त दक्षता पा ली है—इसका साक्ष्य उस प्रदर्शन से मिल गया।

महाराज बल्लाल ने कहा, "शान्तलदेवी ने तो बचपन से यह विद्या सीखकर उसमें पाण्डित्य पाया है—ठीक है, पर उस स्तर तक पहुँचना साध्य न होने पर भी तुम लोगों ने भी जितना सीखा वह कम प्रशंसनीय नहीं है। बहुत कुछ दक्षता दिखायी दे रही है। पहले जब तुम्हारा नृत्य जैसा देखा था उससे इस अब के नृत्य की तुलना नहीं। यह मेरे लिए गर्व का विषय है। इस सम्बन्ध में तुम लोगों ने मुझसे कभी कुछ कहा नहीं ?"

"हमने तो इतना अच्छा सीखा नहीं जो कहने लायक रहा हो। आपने तब भी प्रशंसा की थी और आज भी कर रहे हैं। अगर उस समय की आपकी उस प्रशंसा से तृप्त हो गयी होतीं तो आज हम इतना भी नहीं सीख पातीं। सन्निधान के भाईजी शान्तला द्वारा गलती सुधारने का संकेत करते रहे, इस कारण से हमने कम-से-कम इतना तो सीख ही लिया। हम और चार जन्म ले लें तो भी इतना नहीं सीख सकेंगी जितना शान्तला ने सीखा समझा है। एक समय था जब हमारे अज्ञान और अन्य प्रचोदनों के कारण शान्तला के विषय में, उसकी शक्ति और सामर्थ्य के बारे में कुछ गलत-सलत ख़याल थे। कभी-कभी उसके प्रति हमने अनादर का व्यवहार भी किया था। उसके सुसंस्कृत सूक्ष्म और सुलझे हुए विचार हैं। हमारे अज्ञान के कारण जो गलती हुई उसके लिए हमें क्षमा करके उसने सच में ही हमारा उपकार किया है। उस उपकार को हम कभी भूल नहीं सकतीं। [illegible] नृत्य-कला में भी इतनी जल्दी इतनी अच्छी प्रवीणता पा सकेगी—इसकी कल्पना तक हमने नहीं की थी। शान्ति, संयम, प्रज्ञा—इस त्रिवेणी का संगम है शान्तला। वह शीघ्र ही राज-परिवार की सदस्या बनने जा रही है—यह राजपरिवार के भव्य भविष्य की शुभ सूचना है। इस शुभ अवसर पर शान्तला को '[illegible]' की प्रशस्ति से सन्निधान भूषित करें, यह हमारी प्रार्थना है।" रानी पद्मला ने निवेदन किया।

"मैंने प्रदर्शन करने के लिए विद्या नहीं सीखी और न उसका प्रदर्शन ही किया। मुझे किसी प्रशस्ति की अपेक्षा भी [illegible] नहीं। इस [illegible] के अवसर

पर यह मेरी अल्प सेवा है, समझकर मैंने नृत्य किया। सेवा का फल आत्मानन्द है। आत्मानन्द का मूल्य प्रशस्ति देने के रूप में निश्चित करना उचित नहीं। सन्निधान इतनी कृपा करें कि मेरा आत्मानन्द मेरे लिए बच रहे।" शान्तला ने विनीत होकर प्रार्थना की, और फिर हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

"किसी के आत्मानन्द को छीनने की हमारी इच्छा नहीं है। कला वृद्धि केवल आत्मानन्द तक ही सीमित नहीं। सहृदयों की प्रशंसा कला की वृद्धि के लिए एक तरह का साधन भी है। इसलिए कला की प्रगति और अभिवृद्धि को लक्ष्य में रखकर ही हम यह प्रशस्ति दे रहे हैं। इस प्रशस्ति को स्वीकार करना कलाकार की अभिरुचि पर निर्भर है।" बल्लाल ने अपना निर्णय दिया।

"जो आज्ञा" कहकर शान्तला महाराज के पास गयी। पैर छूकर उसने प्रणाम किया और निवेदन किया, "इस प्रशस्ति के फल-स्वरूप मुझमें अहंकार की भावना उत्पन्न न हो यही आशीर्वाद दें।"

अपने दोनों हाथ शान्तला के सिर पर रखकर महाराज बल्लाल बोले, "उठो, तुम्हारा नाम लेने मात्र से अहंकार डरकर दूर भागता है। वह तुम पर आक्रमण कैसे करेगा? गलती स्वीकार करने के फलस्वरूप टूटे मन जुड़ते हैं, एक होते हैं, इस बात को प्रमाणित कर दिखानेवाली तुम हो। एक समय था जबकि मैंने भी कहा था कि तुममें अहंकार है। वह मेरे अज्ञान के कारण कही गयी बात थी। मेरी इस गलत धारणा को जानती हुई भी तुमने उसकी परवाह नहीं की और प्रयासकर इधर के सारे बिखराव को बड़ी मज़बूती से जोड़ा, पुनः एक बनाया। तुम्हें अपने परिवार में सम्मिलित करना इस परिवार का महान् भाग्य है। पटरानी जी की इस बात से मैं सम्पूर्ण रूप से सहमत हूँ। छोटे अप्पाजी! तुम और शान्तला दोनों माँ के पैर छूकर एक साथ प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करो। माँ का आशीर्वाद ही भविष्य के मंगल-मुहूर्त के लिए सिद्धिदायक होगा।"

दोनों ने महाराज की आज्ञा का पालन किया। आनन्दाश्रु के साथ महामातृश्री एचलदेवी ने दोनों को आशीष दिया। रेविमय्या ने वहाँ अपनी उपस्थिति को भूलकर हर्ष विह्वल हो करतल ध्वनि की।

बिट्टिदेव का जन्मोत्सव मनाने के बाद महाराज बल्लाल फिर बेलापुरी चले गये। पत्नियों के सन्तोष के अनुरूप एक नियोजित ढंग से बल्लाल का जीवन मुग्ध-

मय वातावरण में व्यतीत होने लगा। एक दिन महाराज यगची नदी के तीर की अमराई पर पत्नियों के साथ गये। शाम की ठण्ढी हवा, नयी-नयी निकली कोंपल, आम्र मंजरियाँ, गुच्छों में लटकती अमियाँ—सबने मिलकर अमराई को एक नयी शोभा से अलंकृत किया था। नदी की सीढ़ियों से सटकर एक सुन्दर मण्डप बना हुआ था; उस में सुखासीन होकर सबने उपाहार किया। वसन्त का समय था। वर्षा में अंग भरकर बहनेवाली नदी तब मानों अपने सम्पूर्ण यौवन को आम्र-मंजरियों में बाँटकर खुद पतली हो गयी थी। इस अमराई के भरे सौन्दर्य को देखकर विस्मृत-सी होकर धीरे-धीरे पतली धार में आनन्द से बह रही थी। उपाहार के बाद हाथ-मुंह धोने के लिए रानियाँ सीढ़ियों से उतरीं। महाराज भी वहीं उपस्थित हो गये। पद्मला जो वहीं खड़ी होकर चारों ओर देख रही थी, बोली, "उधर फल-फूलों से लदे आम और इधर पतली होकर बहनेवाली नदी! काश, नदी भी भरकर बहती तो कितना सुन्दर होता!"

"हाँ भरे सौन्दर्य को देखने में आनन्द तो आता ही है," कहते हुए बल्लाल ने अपने से दो सीढ़ियाँ नीचे खड़ी अपनी रानियों की ओर देखा।

"ऐसे क्यों देख रहे हैं! भरे सौन्दर्य का आनन्द वहाँ उस अमराई में है। इस तरफ अभी जो कुछ है वह केवल पतली बनी यगची मात्र है—चामलदेवी ने कहा।

"वर्षाकाल जब तक न आवे, यगची भरे कैसे?" बोप्पदेवी ने सवाल किया और बहिनों की ओर न देखकर बल्लाल की ओर दृष्टि डाली।

"उधर क्या देखती हो आकाश की ओर? वहाँ तो बरसाकर रीते हुए बादल ही हैं।" चामला ने व्यंग्य किया।

सहज ही तो है, अंग भरने की अभिलाषा होना स्त्री के लिए सहज ही तो है। प्रकारान्तर से मन की अभिलाषा दूसरे ही ढंग से प्रकट होती है—बल्लाल को लगा। वह बोले, "आओ, आप लोगों को एक पुरानी बात बताऊँ। घटना इसी स्थान पर घटी थी। अचानक याद आ गयी। तब और अब में कितना अन्तर है! दृष्टिभेद और भाव भी भिन्न हैं—यही तो आश्चर्य है!" कहते हुए सीढियाँ चढ़कर मण्डप में प्रवेश किया और अंगरक्षक से कहा, "तुम जाकर पालकी के पास रहो, ज़रूरत होगी तो बुला लेंगे। यह सब भी उठा ले जाओ।"

रानियों के चढ़कर आते-आते अंगरक्षक चला गया था। थोड़ी देर सब मौन बैठे रहे। चामलदेवी ने बल्लाल की ओर देखकर कहा, "मौन क्यों? पुरानी बात का यही माने है?"

"कहाँ से और कैसे शुरू करें—यही सोच रहा था। हमारे छोटे अप्पाजी के उपनयन की बात आप सब को याद है न?"

"हाँ, हमारे पिताजी और माताजी ने ही तो उस समय सारे कार्यभार को

निबाहा था।"

"हाँ, हाँ, उन्होंने ही तो निर्वहण किया था इसीलिए इस जगह को एक ऐतिहासिक रूप प्राप्त हुआ है। उस उपनयन के अवसर पर हेग्गड़तीजी और शान्तला नहीं आयी थीं।"

"उसे हम कभी नहीं भूल सकेंगी। उनके न आने का कारण हमारी माँ ने कैसी चातुरी के साथ महामातृश्री को विस्तार के साथ समझाया था, इसे घण्टों तक हमें सुनाया है, तब हम कैसे भूलेंगी भला?"

"आप लोगों ने कभी शान्तला से पूछा भी था कि क्यों नहीं आयीं?"

"पूछे बिना रहेंगी कैसे? पूछा ही। छोटे अप्पाजी इनके न आने पर निराश मन से वेदी पर बैठे रहे। वह दृश्य हमारे दिलों पर छापे की तरह अंकित हो गया था।"

"तब शान्तला ने क्या कहा था?"

"उसने कहा था कि ठीक उसी वक़्त किसी से ख़बर मिली तो जल्दी में उसके पिता जी को अकेले ही आना पड़ा। जिस समय ख़बर मिली उस वक़्त सपरिवार निकलते तो ठीक मुहूर्त पर दोरसमुद्र नहीं पहुँच सकते थे। माँ-बेटी को साथ न ला सकने के कारण उन्हें बहुत दुःख रहा।"

"आप लोगों ने विश्वास कर लिया?"

"हमारी माँ की कही बातें जब मन में रहीं तब अविश्वास करना संभव नहीं था। यही सोचकर कि इस विषय पर हमें जिज्ञासा ही क्यों, हम चुप रह गयीं।" पद्मला ने बताया।

"तब हेग्गड़ेजी अकेले आये थे न, उस सम्बन्ध में मेरे और छोटे अप्पाजी के बीच एक विशेष चर्चा हुई थी।" कहकर बल्लाल ने उस दिन की सारी चर्चा को विस्तार के साथ ज्यों का त्यों कह सुनाया और बताया कि आपके और आपके घराने में जो गहरा विश्वास था उसका निशान है यह स्थान। वह विश्वास बाद में छिन्न-भिन्न हो गया। आज वह छिन्न विश्वास फिर जुड़ा है। वास्तव में राजमहल के वातावरण के बिगड़ने का मुख्य कारण वही था कि वे उपनयन के अवसर पर क्यों नहीं आयीं। शायद यह बात आप लोगों को मालूम नहीं।"

"नहीं।"

"हेग्गड़े परिवार के लिए जो आमन्त्रण था उसे भेजने से तुम्हारी माँ ने रोक रखा, यह बात मालूम हो गयी और यही वातावरण के विषाक्त होने का कारण बना।"

तीनों चकित हो उठीं। "क्या कहा? हमारी माँ ने रोक रखा? झूठ है। आमन्त्रितों की सूची में उनका नाम छूट गया था तो उसे, कहते हैं, मेरी माँ ने ही जोड़ा था। ऐसी हालत में कैसे विश्वास करें कि उन्होंने रोक रखा था?" पद्मला

ने कहा।

"यह विषय महामातृश्री को मालूम है। तुम्हारी माँ को भी मालूम था; बाद में महादण्डनायक जी को भी मालूम हो गया।"

"हमारे पिताजी को माता की बात पर पहले अवश्य अधिक विश्वास था। परन्तु इधर कुछ समय से वे माँ की बात को सुनते नहीं थे। यही शायद उसका कारण रहा होगा।" पद्मला ने कहा।

"जाने दो, आपकी माँ ने क्या किया, क्यों किया आदि सभी बातों को महामातृश्री से स्पष्ट कह दिया है। उस पर अब चर्चा करने की जरूरत नहीं। इस बात को मैंने इसलिए कहा कि इतना तीव्र मतभेद होने पर भी स्थान-माहात्म्य के कारण हम तीनों भाइयों के बीच मनमुटाव नहीं हो सका। आप तीनों बहिनें यहाँ मौजूद हैं। मुझ अकेले को आप तीनों को समान रूप से खुश रखना है। मैं भी मनुष्य ही तो हूँ। यदि आप लोगों को ऐसा लगे कि मैं आप सब के प्रति समानता का व्यवहार नहीं कर रहा हूँ तो, ऐसी स्थिति में आप लोगों में शंका उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। इस तरह नहीं समझा जाय कि 'उसके कहे अनुसार ही करते हैं, मेरी तरफ ध्यान ही नहीं देते'—आदि आदि। ऐसी भावनाएँ सहज ही उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए जब कभी किसी को ऐसा महसूस हो तो वह मुझे अवश्य बताएँ। मेरे व्यवहार के लिए किसी और को कारक मानकर अपने दिमाग़ को ख़राब नहीं करेंगी।"

"हम आपस में एक-दूसरे को अच्छी तरह समझी हैं इसलिए ऐसा मौक़ा ही नहीं आएगा। और फिर सन्निधान भी हम सबको समान रूप से देखते रहेंगे—इस बात का हमें विश्वास है।" पद्मला ने कहा।

"ठीक है। आप तीनों एक माँ-बाप की बेटियाँ हो। संयोग से मुझसे आप तीनों का विवाह हो गया है। फल भरे आमों को देखकर आप सभी में फल पाने की इच्छा उत्पन्न हो सकती है। ऐसा होना सहज भी है। कल आपके गर्भ-संभूतों को सिंहासन के लिए झगड़ा करने की स्थिति उत्पन्न न हो।"

"झगड़े की बात क्यों उठती है! पट्टमहादेवी के गर्भ-संजात ही पट्टाभिषिक्त होंगे न?" बोप्पदेवी ने प्रश्न किया।

"सो तो सच है। बचपन में आप लोग अपनी माँ जैसा नचाती वैसा नाचती रहीं। लेकिन अब आप पोय्सल वंश की रानियाँ हैं अतः आनेवाली सन्तान को आप बचपन से ही ऐसी शिक्षा देती रहेंगी जैसी कि हमारी माँ ने हमें दी। कैसी भी परीक्षा कर आजमाकर देखें, छोटे अप्पाजी महाराज बनने के लिए हमसे अधिक योग्य है। यह कहते हमें कोई संकोच नहीं, बल्कि अभिमान होता है। परन्तु वह हमारा अनुवर्ती बनकर रहता है। हम एक ही माता-पिता की सन्तान हैं। कल आपकी सन्तान के लिए पिता एक होने पर भी माताएँ भिन्न-भिन्न होंगी। ऐसा

होने पर भी उन शिशुओं को एक माँ की सन्तान की तरह बढ़ाना होगा। इसके लिए आप तीनों को सूत्रधार बनना होगा।"

"सन्निधान की सौगन्ध, हम वैसे ही बरतेंगी।" पद्मला ने कहा।

"कई बार कहा है कि सौगन्ध नहीं खानी चाहिए। बुरी आदत सीखी है, जायगी भी तो कैसे?" बल्लाल ने कहा।

"गलती हुई, क्षमा करें। बचपन से अभ्यस्त बात कभी-कभी मुँह से अनजाने निकल आती है। आग लगे ऐसी जीभ को।" कहती हुई पद्मला ने बल्लाल के पैर पकड़ लिये।

"ठीक है। उठो, कोई नौकर-चाकर देख न ले। मुझे और कुछ नहीं चाहिए, बस द्वेष रहित मनोधर्म हमारी सन्तान में बढ़े—ऐसा संकल्प आप लोगों का हो।"

"वैसा ही करेंगी।" तीनों ने कहा।

"राज्य बड़े बेटे को या पटरानी के बेटे को?" बोप्पदेवी ने पूछा।

बल्लाल ने संदिग्धता में अपनी रानी की ओर देखा और कहा, "पटरानी के बेटे को पट्टाभिषेक करने की रूढ़ि है। ऐसे ही बड़े बेटे को पट्टाभिषिक्त करने की भी परिपाटी है। आप बहिनें हो, स्वयं आप ही लोग निर्णय कर लो। फिर उसी तरह व्यवस्था कर लेंगे।"

"हम नहीं कहेंगी। पटरानी तो बड़ी दीदी है। वह जैसा कहेंगी वैसा ही हम करेंगी।" बोप्पदेवी ने कहा।

"पटरानी ही बड़े बेटे को जन्म दे तो कोई समस्या ही नहीं उठेगी न?" चामलदेवी ने कहा।

"मैं बड़ी हूँ, इसलिए पटरानी बनी। बहिन चामला ने अपनी सदिच्छा प्रकट की। फिर भी उस बात से यह ध्वनित होता है कि बड़ा बेटा हो। सन्निधान के बड़े बेटे को पट्टाभिषिक्त करने में कोई एतराज नहीं। अपनी तरफ से स्पष्ट कहती हूँ।" पद्मला ने कहा।

"शान्तला के साथ मैत्री का फल है तुम्हारा यह निर्णय, पद्मा। तुमसे प्रेम करके मैं धन्य हुआ।" बल्लाल ने कहा।

"मतलब?" चामल देवी ने पूछा।

"ऐसी पद्मला की बहिनों ने मुझसे पाणिग्रहण किया—यह महाभाग्य है, ठीक है न?"

सबके चेहरों पर मंदहास खिल उठा। अमराई से कोयल की कूक सुन पड़ी। एक दूसरी कोकिला ने उसका जवाब दिया। सबकी आँखें अमराई की ओर मुड़ गयीं। आवाज उसी ओर से आयी थी। फल-फूल से लदे आमों ने सब में एक भावी आशा उत्पन्न कर दी। सूर्यास्त का समय सन्निहित था इसलिए सब राज-

महल की तरफ रवाना हुए।

इधर राजमहल के विस्तरण का कार्य तीव्र गति से चल रहा था। महाराज का विवाह ही एक सीमित परिधि में जब सम्पन्न हुआ था तो बिट्टिदेव का विवाह भी इसी तरह सादे ढंग से ही सम्पन्न करने की व्यवस्था की गयी। इसी अवसर पर उदयादित्य के उपनयन को भी सम्पन्न करने की सलाह एचलदेवी ने दी जो स्वीकार कर ली गयी। ग्रहगति अच्छी होने के कारण विवाह से एक-दो दिन पूर्व उपनयन का मुहूर्त ठहराया गया। पुरोहितों ने प्रशस्त मुहूर्त दोनों के लिए ठहराकर निश्चित किया था। जिन-जिन को आमन्त्रण भेजना था, सबको भेज दिया गया।

इधर-उधर की बातों के सिलसिले में रेविमय्या ने एचलदेवी से कहा, "पिरियरसीजी के लिए भी आमन्त्रण भेजते तो अच्छा होता, यह विवाह उनके लिए बहुत प्रिय है।"

"वह सब राजनैतिक विषय है। आमन्त्रण भेजना न भेजना राजमहल के अधिकारियों से सम्बन्धित विषय है। परिस्थिति को देखने पर यही लगता है कि आमन्त्रण भेजने की संभावना नहीं। जैसा तुमने कहा पिरियरसीजी को यह विवाह प्रिय है। विवाह की बात उन्हें मालूम पड़े, और उन्हें स्वतन्त्रता मिले तो वे ज़रूर इस विवाह में पधारकर आशीष देंगी ही। परन्तु वे पराधीन हैं। फिर भी तुम्हारी यह बात छोटे अप्पाजी के समक्ष रखूँगी। चाहे कोई आवें, तुम रहो वही पर्याप्त है। पहले से यह तुम्हारी बड़ी आकांक्षा रही। वह अब सफल हो रही है।" एचलदेवी ने कहा।

वहाँ हेग्गड़े के घर में भी बूतुगा यही बात करता रहा: "मालिक किसी तरह से इस विवाह में पिरियरसीजी को बुला लाने का काम करें। अम्माजी उनके लिए प्राण समान हैं। मालिक और मालकिन तो उनके लिए बहुत आदरणीय हैं। वे और चक्रवर्तीजी दोनों आवें तो इस विवाह में चार चाँद लग जायेंगे।"

"वह सब राजमहल का काम है। फिर आजकल चक्रवर्ती हमारे विरोधी बन गये हैं, राजमहलवाले उन्हें बुलावेंगे कैसे?"

"मालिक, यही समझ में नहीं आ रहा है। तब उनकी जान बचाने और युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए हमारे प्रभु की आवश्यकता थी। पिरियरसीजी के गौरव को बचाने और उनकी सुरक्षा के लिए आप और मालकिन की आवश्यकता थी। अब एकदम यह विरोध क्यों? जब ज़रूरत पड़ी तो एक तरह से, जब ज़रूरत नहीं तो दूसरे ढंग से व्यवहार? यही है चक्रवर्ती की नीति? मुझे ही भेज दीजिए, मैं देखूँगा कैसे नहीं आएँगी? क्या पिरियरसीजी को मैं नहीं जानता?

पूछ लूँगा, यह कैसा न्याय है ?" बूतुगा की आँखों में हलका-सा रोष भर आया था।

"राजमहल ने यदि यह निर्णय लिया कि आमन्त्रण भेजेंगे तो फिर तुमको ही भेज दूंगा। ठीक है न ?"

"आप राजमहल में कहिए। ऐसी सब वातें राजमहलों को सूझती नहीं।"

"हाँ, कहेंगे। अब जाकर पहले अम्माजी को बुला लाओ।"

कुछ ही देर में बूतुगा के साथ शान्तला आयी। "अम्माजी, यह बूतुगा क्या कहता था, मालूम है ? अगर हम भेजेंगे तो यह बूतुगा ख़ुद जाकर पिरियरसी जी को तुम्हारे विवाह में बुला लाएगा। इसे भेज दें ?" मारसिंगय्या ने पूछा।

"बेचारे बूतुगा को वस्तुस्थिति क्या मालूम ? यह ठीक है कि उसने कहा, 'मैं बुलाने जाऊँगा।' अगर स्वतन्त्रता होती तो शायद पिरियरसीजी आ जातीं उसके साथ। परन्तु अभी आमन्त्रण ही नहीं गया है न ?"

"क्यों, इस सम्बन्ध में किसी ने सोचा नहीं ?"

"सोचा नहीं, ऐसा तो नहीं है। सोचकर निर्णय लिया गया कि भेजना नहीं है।"

"तो क्या, तुम कहती हो कि इस विषय में फिर से सुझाना नहीं चाहिए ?"

"मेरी भी यही इच्छा है कि वे आवें। अप्पाजी, मैंने सुझाया भी। किन्तु राज-नैतिक कारणों से आमन्त्रण न भेजने का ही निर्णय हुआ।"

"तुम्हारी बात पर बिट्टिदेव भी सहमत नहीं हुए ?"

"उन्होंने मेरे विचार को माना। अभी शत्रुओं के गुप्तचरों ने दोरसमुद्र में जो गड़बड़ी मचायी थी, उसकी वजह से एक हमला कर और आर्थिक दृष्टि से काफी हद तक कमज़ोर हुए हैं। विवाह के आमन्त्रण को स्वीकार कर यहाँ आने का बहाना करके गुप्तचरों का एक बड़ा जाल पोय्सल राज्य में फैल जाय तो क्या दशा होगी ? एक छोटी-सी बात को लेकर राष्ट्र के भविष्य को ख़तरे में डालना उचित नहीं। उनके कथन में काफी सत्यांश भी है, अप्पाजी। इसलिए इस विषय पर सोचने की जरूरत नहीं। हाँ, बूतुगा का निराश होना सहज है। बूतुगा, तुम एक काम कर सकोगे ? अगर वह काम कर दोगे तो मुझे और तुम्हें दोनों को तृप्ति होगी।"

"ऐसा ही हो, अम्माजी।" बूतुगा ने क़हा और यही प्रतीक्षा करता रहा कि वे क्या कहती हैं।

"बूतुगा, तुम्हारा विवाह करानेवाली पिरियरसीजी ही थीं न ?"

"हाँ"

"उन्होंने तुम्हें और दासब्बे को आशीर्वाद दिया था न ?"

"हाँ"

"इसलिए तुम एक काम करो। मेरे विवाह के दिन तुम और दासब्बे मुझे आशीर्वाद दो। तुम्हारे आशीर्वाद के द्वारा पिरियरसीजी का आशीर्वाद मुझे मिल जाएगा। इससे मुझे भी तृप्ति मिल जाएगी।"

"हाँ हाँ, यह सब बचपना क्यों कर रही हैं, यह सब होने जाने की बात नहीं।" कहकर बूतुगा वहाँ से चला गया।

थोड़ी देर बाद मारसिंगय्या बोले, "तो बात यह हुई अम्माजी, चालुक्य चक्रवर्ती और पोय्सल राजाओं में अब आगे स्नेह-सम्बन्ध संभव ही नहीं। एरेयंग प्रभु को भाई समझनेवाले विक्रमादित्य चक्रवर्ती आखिर ऐसे क्यों हुए—यह एक समस्या है। एक-बार किसी बहाने मिलें और खुले दिल से वार्ता करें तो फिर से वही स्नेह, वही बन्धु भाव आ सकता है, ऐसा मुझे अब भी लगता है। दोनों कर्नाटक राज्य एक बनकर रहे होते तो यह अजेय गढ़ बनकर रह सकता था।"

"अधिकार का दुरहंकार ही ऐसा होता है, अप्पाजी। लड़की को ब्याह देकर समधी बननेवाले राष्ट्रकूट भी तो कर्नाटकी ही थे न? उससे द्वेष करके उनका नामोनिशान मिटाकर चालुक्य वैभव से प्रतिष्ठित हुए। राष्ट्रकूटों की जैसी हालत कर दी, वही हालत उनकी भी कोई करेगा—यह सोच-विचार न करके अधिकार जतलाना अहंकार नहीं तो और क्या है? विक्रमादित्य ने अपना शक स्थापित किया ठीक है। उसे आचन्द्रार्क स्थायी बने रहना हो तो चालुक्य राज्य को बना रहना जरूरी है। इसके लिए स्नेह बढ़ाकर लोगों में सद्भाव बढ़ाना होगा। अधिकार-मद से वह साध्य नहीं होगा। अधिकार-दर्प के वशीभूत होना आदर्श राजा का लक्षण नहीं। राजा का यह निर्णय इस दृष्टि से ठीक है; ऐसा मैं सोचती हूँ।" शान्तला बोली।

"फिर भी स्नेह का हाथ बढ़ाना गलत नहीं, अम्माजी। स्नेह दिखाने का अर्थ झुकना नहीं। द्वेष बढ़ाने का अर्थ है युद्ध के लिए बुलावा देना। युद्ध का अर्थ है निरपराध जन-जीवन को संकट में डालना। स्नेह बढ़ाने पर युद्ध पीछे सरक जाता है। वह जितना टले उतना अच्छा। जनता को यह मुख्य नहीं कि कौन राज करता है, कैसा राज चलाता है। अपने सुख और खुशहाली के लिए यह राज्य-संचालन पोषक और पूरक है या नहीं, इसी को प्रजा देखती है। जगदेव की बड़ी सेना को हमने जीत लिया। परन्तु इस विजय के पीछे हमने कितनों के प्राण गंवाये, कितनी सम्पत्ति खोयी! फिर से इतना अर्जन करने के लिए कितना और समय चाहिए! यह सब सोचा है? चालुक्यों को निगलने के लिए चारों ओर लोग सशस्त्र हो समय की प्रतीक्षा में हैं। उनका निवारण करने के लिए सशक्त न होने के कारण, राजनीति की बुद्धिमत्ता दर्शाते हुए उन लोगों को इधर मोड़ दिया था। अभी हमने हार न मानकर अपनी शक्ति दर्शायी है। हमारी मदद

चालुक्यों के लिए हर समय रहेगी और उनकी मदद हमारे लिए है—यह मालूम होने पर मलेप, चेंगाल्व, कोंगाल्व सब जहाँ-के-तहाँ चुप हो जायेंगे। ऐसा करना बुद्धिमत्ता है या नहीं, तुम सोच देखो।" मारसिंगय्या ने कहा।

शान्तला ने तुरन्त कोई उत्तर नहीं दिया। पिता की चिन्तन-धारा कितनी व्यापक है, यह समझकर एक प्रशंसा की झलक के साथ पिता की ओर देखा। थोड़ी देर बाद बोली, "अप्पाजी, इस दृष्टिकोण से प्रभुसत्ता ने विचार नहीं किया। फिर एक बार इस बारे में उनसे विचार-विनिमय करना अनुचित न होगा।"

"मैं ही बात छेड़ूँ या तुम छेड़ोगी?"

"आप द्वारा बात छेड़ना ही उचित है। बात करने के विषय में आप यदि निर्णय करते हैं तो इसमें विलम्ब न करें। आमन्त्रण उनके पास पहुँचे और वे आने का मन करें—इस सबके लिए समय भी तो रहना चाहिए।"

"ठीक है, आज ही दोपहर को विचार प्रस्तुत करूँगा।" कहकर हेग्गड़े चुप हो गये।

"इसी के लिए मुझे बुलवाया?"

"विवाह के अवसर पर अपनी तरफ से देने के लिए एक अँगूठी और एक हार लाया हूँ। तुम अगर पसन्द करो तो रखेंगे, नहीं तो दूसरा बनवाएँगे। आओ"—कहते हुए अपने कमरे की ओर चल दिये।

"माँ नहीं देखना चाहेंगी?" शान्तला ने पूछा।

"उन्होंने देख लिया है।"

अपने कक्ष में पहुँचकर हेग्गड़े मारसिंगय्या ने उन दोनों चीज़ों को शान्तला को दिखाया। अँगूठी में नील पत्थर जड़ा था; लाल मणियों से मयूराकार बना था। और कमल के आकार के मणियों में जगमग पदक हथेली के बराबर चौड़ा था हार में। नवरत्न खचित पदक में विकसित कमल बने थे। दोनों चीज़ें शान्तला को पसन्द आ गयीं। उन्हें सुरक्षित रखकर मारसिंगय्या राजमहल की ओर चले गये।

महामातृश्री और बिट्टिदेव के बीच आमन्त्रण-पत्र भेजने के विषय में एक बार चर्चा चल चुकी थी। वह निर्णीत विषय मातृश्री द्वारा फिर उठ खड़ा हुआ देख बिट्टिदेव संकोच में पड़ गये। ठीक इसी वक़्त द्वारपाल ने आकर निवेदन

किया कि हेग्गड़े मारसिंगय्याजी महामातृश्री के दर्शन करना चाहते हैं। तुरन्त उन्हें अन्दर बुला लिया गया। नमस्कार प्रतिनमस्कार के बाद, मारसिंगय्या एक आसन पर बैठ गये। उनके बैठते ही बिट्टिदेव ने, "आप ठीक समय पर आये हैं। हमारे सामने जो समस्या उठ खड़ी हुई है, उसका समाधान करने में आप की उपस्थिति से मदद मिल जाएगी" कहते हुए समस्या उनके सामने प्रस्तुत की।

मारसिंगय्या ने बताया, "वास्तव में मैं भी उसी विषय पर बातचीत करने के इरादे से आया हूँ। अभी थोड़ी देर पहले हमारे यहाँ भी इसी बात पर चर्चा चली।" नौकर बूतुगा से जो सूचना मिली, तथा बाद में भी इस सम्बन्ध में जो भी बातचीत चली थी, हेग्गड़ेजी ने वह सब कह सुनायी और अन्त में निवेदन किया, "यद्यपि मेरा भी मन्तव्य इस चर्चा में निहित है लेकिन ऐसा ही करना यह मेरा मन्तव्य नहीं; इस पर विस्तार से विचार किया जाना चाहिए। अन्तिम निर्णय राजघराना ही करेगा। व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए दोनों बराबर हैं।" इतना कहकर मारसिंगय्या चुप हो गये।

बिट्टिदेव ने कहा, "सोच-समझकर ही विचार करना होगा। सन्निधान के के समक्ष पेश कर विचार-विनिमय करने के बाद ही निर्णय करना उचित है, यही ठीक होगा न, माँ ?"

महामातृश्री एचलदेवी ने कहा, "हम स्त्रियाँ हैं। ऐसे मांगलिक अवसरों पर हम ममता, आत्मीयता देखना चाहती हैं। राष्ट्रहित सर्वोपरि है इससे मैं सहमत हूँ परन्तु इस समस्या के दो पहलू हैं। अब तक तुमने जो बताया एक वह है और हेग्गड़ेजी जो बता रहे हैं वह दूसरा पहलू है। प्रधानजी के साथ तुम बेलापुरी जाओ और वहाँ निर्णय करो। मैं जानती हूँ कि तुम्हारे प्रभु सदा ही स्नेहपूर्ण व्यवहार करनेवाले हैं। यह उनका स्वभाव है। तब की स्थिति कुछ और थी अब उसमें कुछ परिवर्तन आया होगा। मैं यह कहने में असमर्थ हूँ कि यह ठीक है।"

बिट्टिदेव उठ खड़ा हुआ। मारसिंगय्या भी उठ खड़े हुए और विनीत होकर बोले, "आज्ञा हो तो मैं भी साथ हो आऊँ ?"

"न, हम ही दोनों हो आएँगे।" बिट्टिदेव ने कहा।

मारसिंगय्या दोनों को प्रणाम कर वहाँ से चल गये।

बिट्टिदेव गंगराज को साथ लेकर बेलापुरी पहुँचे और बल्लाल के साथ विचार विनिमय कर लौट आये। बल्लाल को लगा कि आमन्त्रण भेजना अपनी दुर्बलता का प्रतीक माना जाएगा, इसलिए उन्होंने अपना निर्णय सुनाया, "अपने पट्टाभिषेक एवं विवाह के अवसरों पर आमन्त्रण नहीं भेजा गया है। इसलिए अब आमन्त्रण न ही भेजना उचित होगा।"

इस निर्णय के साथ यह बात समाप्त हो गयी।

उपनयन संस्कार के लिए पहले मुहूर्त ठहराया गया था। एक सप्ताह पहले ही

महाराज वल्लाल अपनी रानियों सहित दोरसमुद्र पधार गये।

आमन्त्रित करीव-करीव सभी आये थे। छोटे चलिकेनायक अनेक तरह के भेंट-उपहार ले आये थे, वर-वधु के लिए वह परिवार सहित आये थे। नायक के साथ उनकी पत्नी और दोनों पुत्र आये थे। उसका वड़ा वेटा नोणवे नायक छः वरस का था। छोटा वेटा माचेनायक और चन्दलदेवी का वेटा विट्टिगा दोनों करीव समवयस्क थे।

जग्गदेव से हुए युद्ध के वाद, डाकरस दण्डनाथ यादवपुरी में ही रहे। पता नहीं, ये चेंगाल्व कव कैसे व्यवहार करने लग जाएँ—इसलिए उधर काफी सतर्क रहकर उस ओर की रक्षा का दायित्व दक्ष हाथों में रहे, ऐसी व्यवस्था की गयी थी। अव इस विवाह समारम्भ के लिए डाकरस दण्डनाथ तथा उनकी पत्नी एचियक्का और उनके पुत्र मरियाने और भरत भी आये थे। सिंगिमय्या और सिरियादेवी को तो आना ही था। सिंगिमय्या तो शान्तला के मामा ही थे और कन्यादान के समय मामा का उपस्थित रहना आवश्यक होता है।

एक समय था कि जब पद्मलदेवी यह सोचकर कि पटरानी पद के लिए अपनी प्रतिस्पर्धिनी के रूप में शान्तला वढ़ रही है उसके प्रति द्वेष भाव से अन्दर-ही-अन्दर जल रही थी, आज उसी पद्मला को अव स्वयं मंगलवेदिका पर वैठी शान्तला को राजमहल की वहू स्वीकार करना था। इसलिए आज उस द्वेष के वदले अखण्ड प्रेम और कृतज्ञता की भावना से उसका हृदय भर आया था।

उपनयन संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुआ। दो दिन के वाद ही विवाह समारम्भ था। विवाह वेदिका सर्वालंकार से सुसज्जित हो गई थी। मांगलिक तूर्यनाद से दिशाएँ गूंजने लगी थीं। यथाविधि वेदघोष होने लग गया। पुष्पमाला धारण, मांगल्य धारण, सप्तपदी आदि वैवाहिक विधियां यथाशास्त्र सम्पन्न हुईं। विवाह वेदी हर्षोल्लास से भर उठी। अव नज़राने, भेंट-चढ़ावे पुरोहितों के विधिवत् मन्त्र घोष के साथ वर-वधू के हाथ में देनेवालों के नाम घोषित करते हुए सौंपे जाने लगे। इस सिलसिले में श्रीदेवी के आशीर्वाद के साथ, एक सोने के परात में सफेद ज़रीदार रेशम की साड़ी, कंचुकी, मंगलद्रव्य, सोने का हार, कंगन आदि विवाह के उपलक्ष्य में वधू वनी शान्तला के हाथों में पुरोहितों ने श्रीदेवी का नाम घोषित करते हुए दिये। चकित होकर शान्तला और विट्टिदेव ने इस तरह पुरस्कृत करने वाली महिमामयी को अन्वेषण करती दृष्टि से चारों ओर निहारा। दूर से ही उन्होंने देखा कि रेविमय्या और वूतुगा श्रीदेवी को लिवाकर आ रहे हैं। उनके साथ एक सुन्दर वालक भी था।

उन्हें आते देख वल्लाल और उनकी रानियां, एचलदेवी, गंगराज आदि प्रमुख राजपुरुष उठ खड़े हुए। श्रीदेवी के पास आने पर वर-वधू दोनों ने एक साथ आगे वढ़कर उनके पैर छुए। श्रीदेवी ने झुककर उनकी पीठ सहलाते हुए कहा, "उठो,

भगवान् दयामय हैं। इसका एक प्रमाण यही है कि भगवान ने तुम दोनों को साथ कर दिया और एक यह कि इस मांगलिक अवसर पर उपस्थित रहकर दोनों को अपनी आँखों से देख सन्तुष्ट होने का अवसर मुझे दिया। मैं दो दिन यहीं रहूँगी। विधिवत् कार्यक्रम सम्पन्न होवे। अचानक इस अवसर पर मेरा आना आप लोगों को आश्चर्यजनक लगा होगा। सारी बात बाद में बताऊँगी। परन्तु कोई इस बात को न भूले कि मैं श्रीदेवी हूँ।" कहती हुई वे वहीं विवाह-वेदी के पास जाकर बैठ गयीं।

रेविमय्या और बूतुगा को को लगा कि अब विवाह वेदी एक नयी प्रभा से जगमगा रही है। श्रीदेवी के बारे में कुछ न जाननेवाले आपस में बातचीत करने लगे कि यह कौन हैं। जो जानते थे वे मौन रहे आये। 'श्रीदेवी' नाम सुन, कुछ सोच-विचारकर विवाहोत्सव की उस चहलपहल में भी छोटे चलिकेनायक उनके पास आये। उन्होंने हाथ जोड़कर सविनय अपना परिचय दिया, "मैं नायक का बेटा छोटे चलिकेनायक हूँ।"

"नायक जी आये हैं?" श्रीदेवी ने पूछा।

"वे तो प्रभु के साथ ही चल बसे।"

"क्या हुआ था?"

"उम्र भी काफी थी। आदर्श जीवन व्यतीत करते हुए हमें सन्मार्ग दिखाकर चल बसे इसलिए दुख की बात नहीं।"

"वह जिस तरह प्रभु के विश्वासपात्र बनकर रहे, तुम्हें भी उसी तरह इस नवविवाहित दम्पती के साथ रहना चाहिए, नायक।" श्रीदेवी ने कहा।

"जैसी आपकी आज्ञा।"

"अकेले ही आये हो?"

"नहीं, पत्नी और बच्चे सब आये हैं।"

"बाद में देखूँगी।"

नायक जैसा आया था वैसा ही लौट गया। वह बेचारा अपने उतावलेपन को रोक नहीं सका था।

शालिवाहन शक वर्ष 1027 श्रीतारण संवत्सर, उत्तरायण वसंत ऋतु, वैसाख शुक्ल पंचमी, मृगशिरा नक्षत्र युक्त शुभ कर्काटक लग्न में, लाभ स्थान में गुरु चन्द्र, भाग्यस्थान में उच्च शुक्र, कर्म स्थान में उच्च रवि के रहते विधिवत् यह विवाह सम्पन्न हुआ।

श्रीदेवी आते ही राजमहल के बाहर के साधारण निवास में ठहर गयी थीं, अब उन्हें राजमहल में बुलवा लिया गया। उनका सारा रक्षक दल वहीं ठहर गया।

विवाह के दिन सब अपने-अपने कार्यों में व्यस्त रहे, इसलिए श्रीदेवी को

विश्राम करने का मौक़ा मिल गया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी देख-रेख का दायित्व बूतुगा और दासब्बे पर ही छोड़ दिया गया था।

विवाह समारोह के काम-काज समाप्त होने के बाद, दोपहर के भोजनोपरान्त सब लोग अन्तःपुर के मुखमण्डप में एकत्रित हुए। यहाँ सब का अर्थ सीमित जनों से ही है। श्रीदेवी, नवदम्पती, एचलदेवी, हेग्गड़े दम्पती, सिंगिमय्या और उनकी पत्नी, रानियों सहित महाराज बल्लाल, उदयादित्य, छोटे चलिकेनायक और उनका परिवार, प्रधान गंगराज, मारियाने दण्डनायक—ये ही सब इकत्रित हुए थे। बम्मले, रेविमय्या, दासब्बे भी थे। विवाह के समय अन्य छोटे-मोटे काम संभालने के लिए चट्टला को बुला लाया गया था। उसे बिट्टिगा की देख-भाल में लगा दिया गया था। श्रीदेवी के साथ गालब्बे और लेंक तो आये ही थे। श्री देवी की एक दृष्टि सब पर पड गयी थी। तभी उन्हें नायक की पत्नी और बच्चे भी दिख गये थे। वहाँ जितने जन उपस्थित रहे सब-के-सब एक-न-एक तरह से श्रीदेवी से परिचित ही थे। वे जानती थीं, कि उपस्थितों में कोई ऐसे नहीं जो, कथित विषय जो भी रहे उसे, गुप्त ही रखेंगे। इन सब परिचितों में वही एक स्त्री, जो बच्चे को लिए हुए थी, श्रीदेवी के लिए अपरिचित जान पड़ी। वह यह चट्टला थी। उसके रहने से कोई हर्ज़ नहीं, मानकर ही उसे रहने दिया होगा—यह निश्चय होने पर भी श्रीदेवी ने पूछ ही लिया कि वह कौन है ?

शान्तला ने इस चट्टला के सारे वृत्तान्त को बहुत रसीले ढंग से बताया।

यह सुनकर श्रीदेवी कहने लगीं, "इसका वृत्तान्त तो बड़ा रोचक है। यह कितनी त्यागमयी और साहसिक नारी है ! यहाँ के लोगों की निष्ठा और उस निष्ठा का वैविध्य ही मेरी समझ से परे है ! ऐसी निष्ठावाले राज्य के मित्र होकर सहजीवन यापन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। राज करनेवाले राजाओं का मन जाने किस-किस के वश में हो जाता है और कब क्या कर बैठते हैं, कुछ पता नहीं चलता। किन्हीं विचित्रपरिस्थितियों के कारण, चक्रवर्ती पोय्सलों के विरोधी बन बैठे हैं। मैं यह नहीं कहती कि वह ठीक है। ऐसी भावना रखना ठीक नहीं। निष्ठावान् प्रजाजन के संवर्धन में इस राज्य के बुज़ुर्गों की निष्ठा सर्वोपरि रही है। उस पर सन्देह करना उचित नहीं। उनका स्नेह हमारे लिए रक्षा-कवच है। बलिपुर प्रान्त को पहले जैसा उन्हीं के अधीन करके और उन्हीं को उसकी देख-भाल का कार्य सौंपकर मैत्री को बनाये रखने के लिए मैंने कई बार मिन्नतें की। आख़िर मैं स्त्री ही तो ठहरी। मेरी बातों का क्या मूल्य ? उत्तर में वे बोले, 'दो-चार दिन अच्छी तरह तुम्हारी देखभाल की इसलिए तुम समझ बैठीं कि वे दूध के धुले और स्वर्ग से उतरे हैं। सियासी हाल-चाल की ये बातें तुम्हारी समझ में नहीं आयेंगी। तुम्हें इन बातों में दखल नहीं देना चाहिए। हमारी रीति-नीति तुम्हें अच्छी नहीं लगती हो तो तुम वहीं जाकर रहो।' जब मेरी बातों का कोई मूल्य

नहीं रहा तब मौन रहकर दिन व्यतीत करते रहने के सिवाय करती ही क्या? हो सकता है अनेक रानियों के होने पर मुझ अकेली का न होना उन्हें खटकेगा नहीं। परन्तु मैं भारतीय नारी हूं। हमारा यही विश्वास है कि पति ही सती के लिए परमदेव हैं। स्वयंवर के समय माला पहनाकर मैंने स्वयं को उन्हें समर्पित कर दिया तब उनके ऐसा कहने मात्र से उनसे दूर होना मेरे लिए ठीक होगा? नहीं। चाहे ठीक लगे या न लगे मुझे वहीं जीना होगा। दूसरा चारा नहीं।"

एक क्षण रुककर श्रीदेवी ने आगे कहना आरम्भ किया, "यहाँ जो भी होता था वह सब गुप्तचरों से मालूम हो जाता था। एरेयंग प्रभु के पट्टाभिषेक समारंभ के आमन्त्रण के बाद, यहाँ से कोई आमन्त्रण हमें नहीं मिला। हम उसकी प्रतीक्षा भी नहीं कर सकते थे। यहाँ जो भी कार्य सम्पन्न हुए, प्रत्येक की खबर मिलने के साथ उनका क्रोध बढ़ता ही गया है। जग्गदेव की हार पर तो चक्रवर्ती और अधिक बिगड़े हैं—ऐसी हालत में मेरे यहाँ आने और आप लोगों से मिलने की बातों को मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकती थी—यह स्पष्ट मालूम था। मैं क्या करूँ? मुझे यहाँ मैत्री, मिलनसारी और विश्वास भी है। लेकिन चक्रवर्ती को··· उनको यह सब नहीं चाहिए। आपके महाराज का जब विवाह हुआ तब मेरा जयकर्ण एक साल का था। इसके बाद अचानक ही मेरा मन इधर आने को करता रहा। मैं सोचने लगी कि दोरसमुद्र के राजमहल में बिट्टिदेव का विवाह कब सम्पन्न होगा? होगा तो किसके साथ होगा? बहुत समय से मेरी यही चाह रही कि हो तो इन्हीं दोनों का विवाह हो। राजनीतिक परिस्थितियाँ कब कौन-सा करवट ले लें, कौन जाने! हो सकता है मेरी चाह चाह ही रह जाय। ऐसी परिस्थिति की सम्भावना से मैं परिचित भी थी। परन्तु मेरे अन्तः के प्रेम एवं वात्सल्य भाव को कौन रोक सकता था? हाँ, देह को बाँधकर रखा जा सकता है। यही धारणा मेरे मस्तिष्क में व्याप गयी थी। मैं कुछ भी कर नहीं सकती थी। ऐसी हालत में मुझे एक दुःखद समाचार मिला; मेरा मन उस ओर चला गया। समाचार मेरे पूज्य पिता मारसिंग प्रभु के बारे में था, वे मृत्युशय्या पर थे। चक्रवर्ती की अनुमति पाकर मैं पितृचरण को देखने आयी। पितृचरणों का अन्तिम दर्शन पूर्वपुण्य से मिला। वहीं आपका आमन्त्रण भी मिला। आमन्त्रण मेरे लिए नहीं, करहाट के शिलहार महाराज के लिए था। आमन्त्रण देखकर आमन्त्रित के बदले मैं श्रीदेवी चली आयी, वधू की फूफी। पिरियरसी तो आ नहीं सकती थीं। उन्हें आमन्त्रण भी नहीं। श्रीदेवी पर रोक कौन लगावे? यह विवाह समारम्भ तो उसी के घर का कार्य है, यही समझकर चली आयी।

"ईश्वर ने मेरी अभिलाषा पूरी की। मेरे यहाँ आने की बात कल्याण तक न पहुँचे—यही अच्छा। मुझे इस बात का विश्वास था कि बिन बुलाये आने पर भी आप लोग अन्यथा न लेंगे। चलते हुए रास्ते में सोचा भी कि कहीं आमन्त्रण के

बिना जाने के कारण दक्ष के यहाँ सती की जो दशा हुई वही मेरी भी न हो जाय। फिर भी मेरे अन्तरंग का वह प्रेम मुझे यहाँ तक खींच लाया। मेरे उस प्रेम के बदले में वही प्रेम मिला। अब गलतफहमी में पड़े चक्रवर्ती बाद में वस्तुस्थिति से परिचित हो जाने पर बदल भी जाएँ यह भी असम्भव नहीं। मेरी विनती है कि आप लोगों का मन सदा खुला रहे। कटकर दूर होने को मत सोचें। वहाँ न समझा सकने वाली मैं यहाँ आप लोगों को समझाने की धृष्टता कर रही हूँ—ऐसा मत समझें। मुझे विश्वास है कि आप लोग अन्यथा नहीं समझेंगे। मेरी परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि रहना चाहूँ तो भी रह नहीं सकती हूँ। देखें, मेरी इच्छा के अनुसार सब ठीक हो जाय तो कल ही मैं यहाँ से प्रस्थान कर दूँगी। गालब्बे और लेंका ने यहीं रहने की इच्छा प्रकट की है। मुझे भी स्वीकार है। अगर यह चट्टलदेवी मेरे साथ चलना स्वीकार करे तो इसे साथ लेती जाऊँगी।"

चट्टला को यह बात शिरोधार्य नहीं हुई। वह बोली, "पहली साँस पोय्सल राज्य में ली थी, अन्तिम साँस भी यहीं लेना चाहूँगी।"

श्रीदेवी अचानक आयीं, कुछ लोगों को खुश करके चली गयीं। जाने के पहले एक बार नवविवाहित दम्पती को उन्होंने आशीर्वाद दिया और छोटे चलिकेनायक को बुलवाकर कहा, "देखो नायक, तुम्हें और तुम्हारे परिवार को इन नूतन दम्पतियों क़ी सेवा में अपना जीवन धरोहर रखना होगा। तुम्हारा वंश सदा ही स्वामीनिष्ठ रहा है और स्वामीद्रोहियों का नाशक विरुद धारण करता आया है। अपने वंश की इस कीर्ति को बनाये रखना तुम्हारा कर्तव्य है। रेविमय्या, तुम्हारी और मेरी अभिलाषा पूरी हुई। इस दृष्टि से तुम और मैं दोनों ही वरा-हैं न ? एक साधारण नौकर होते हुए तुम्हें जो स्वातन्त्र्य प्राप्त है वह मुझे नहीं। मेरे लिए यही तो एक तृप्ति और सन्तोष है कि अवसर पर यहाँ आ सकी, भले ही इसकी जानकारी मैंने किसी को नहीं दी।"

श्रीदेवी एक और बात से भी तृप्त थीं कि रेविमय्या और बूतुगा उन्हें स्मरण कर रहे थे और आमन्त्रित करने का प्रस्ताव भी करते रहे। इस सम्बन्ध में अपने पिता के साथ हुई सारी चर्चा से शान्तला ने श्रीदेवी को अवगत करा दिया था।

विवाह-महोत्सव समाप्त होते ही डाकरस दण्डनाथ सपरिवार यादवपुरी के लिए रवाना हो गये।

श्रीदेवी के आदेश के अनुसार छोटे चलिके नायक को राजमहल के रक्षक-दल की देखभाल के काम के लिए वहीं रोक लिया गया। बल्लाल के लिए जैसे सिंगिमय्या आप्त-रक्षक था वैसे ही बिट्टिदेव के लिए छोटे चलिकेनायक रक्षक बन गया।

डाकरस ने यादवपुरी पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद वहाँ से ख़बर भेजी कि उधर चेंगाल्वों में युद्ध की तैयारियाँ तेजी से होने लगी हैं इसलिए इस तरफ

हमें अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ाना आवश्यक है।

खबर सुनते ही वल्लाल ने कहा, "मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा।"

बिट्टिदेव ने कहा, "सन्निधान को दोरसमुद्र में ही मुकाम करना चाहिए। यादवपुरी में मेरा रहना ठीक होगा। आज न सही, कभी उस जगह को प्रबल राजधानी के रूप में परिवर्तित करना ही होगा। इसके अलावा चेंगाल्वों को इधर बढ़ने से रोकना ही नहीं, उन्हें दबाना भी होगा। इसके लिए आवश्यक योजना तैयार कर ली जायेगी।"

"अभी नवविवाहित हो, तुम्हें अभी वहाँ नहीं जाना चाहिए।" वल्लाल बोले।

"मैं अकेला नहीं जाऊँगा। शान्तला भी साथ रहेगी। छोड़ जाने के लिए तो विवाह नहीं किया न!" कहते हुए बिट्टिदेव मुस्कुरा दिये।

प्रधान जी तथा अन्य मन्त्रियों के साथ विचार-विनिमय हुआ और बिट्टिदेव का सलाह के अनुसार ही निर्णय ले लिया गया।

हेग्गड़े दम्पती दोरसमुद्र में ही ठहरे। उनकी सेवा के लिए अब फिर से लेंका और गालब्बे तैनात कर दिये गये। बूतुगा और दासव्वे यादवपुरी चले गये। रेविमय्या महामातृश्री की सेवा में बोम्मला के साथ दोरसमुद्र में ही ठहर गया। शान्तला की राय चट्टला को साथ ले जाने की थी इसलिए वह भी यादवपुरी चली गयी। बिट्टिगा भी शान्तला के साथ यादवपुरी पहुँच गया।

इन नव-विवाहितों के आनन्दमय जीवन में यह बालक एक बाधा बन गया—यह सोच एचलदेवी परेशान हुईं। परन्तु शान्तला ने ही समझाया कि जब चट्टला और दासव्वे मौजूद हैं तो बाधा किस बात की।

बिट्टिदेव यादवपुरी पहुँचकर वहीं सुनियोजित ढंग से कार्यनिरत हो गये।

इधर एचलदेवी ने फिर से तीर्थयात्रा की बात उठायी। बल्लाल को मना लिया गया। दो नौकरानियों और सवार वीरप्पा तथा दो-चार सिपाहियों को साथ लेकर वे यात्रा पर चलने को तैयार हो गयीं। महामातृश्री का साथ देने के इरादे से हेग्गड़ती माचिकव्वे भी चलने को तैयार हो गयी थीं। यह यात्रा-संघ भी दोरसमुद्र से रवाना हुआ।

भविष्य को दृष्टि में रखकर राजमहल का विस्तार किया गया था। परन्तु अब वहाँ थोड़े ही जन रह गये थे।

वल्लाल के जन्मदिन समारोह पर यादवपुरी से बिट्टिदेव आदि सभी आये थे। इस समारोह का यह पहला अवसर था जब मातृश्री की अनुपस्थिति खटक रही थी।

वल्लाल के विवाह के बाद, उत्कल के नाट्याचार्य काफी भारी मात्रा में गुरुदक्षिणा प्राप्त कर अपने देश प्रस्थान कर चुके थे। बोकिमय्या हेग्गड़ेजी के

अहाते में ही रहे। बल्लाल जब बेलापुरी गये थे तो उनके साथ नागचन्द्र और रानियों की शिक्षिका दोनों भी वहाँ गये थे और फिर दोनों ही उनके साथ यहीं आ गये। जगदेव के साथ हुए युद्ध के समय में नागचन्द्र काव्य-रचना के कार्य में लगे हुए थे। विराम के समय दण्डनायक के घर की शिक्षिका को अपना नवनिर्मित काव्य पढ़-सुनाकर उनकी सलाह भी लिया करते। उनकी दृष्टि में वह शिक्षिका अधिक प्रतिभावती थी इसलिए दोनों में परस्पर सद्भावना दृढ़ हो गयी थी। कभी-कभी बोकिमय्या भी इस काव्यवाचन को सुनने के लिए शामिल हो जाया करते।

विवाह के बाद शान्तला के बिट्टिदेव के साथ यादवपुरी चले जाने पर कवि बोकिमय्या और शिल्पी गंगाचार्य दोनों, हेग्गड़ेजी से अनुमति लेकर बेलुगोल चले गये थे, इस इरादे से कि वहीं शेष जीवन व्यतीत करेंगे।

इस स्थिति के कारण अबकी बार जन्म-दिनोत्सव में कुछ कमी महसूस हो रही थी।

नागचन्द्र का काव्य समाप्तप्राय था, बल्लाल को यह बात मालूम थी। बिट्टिदेव के आते ही उनसे बोले, "हम अपने गुरुवर्य को क्यों न आस्थान कवि बना दें? बिट्टिदेव बोले, "बहुत पहले ही यह काम कर लेना था। शुभस्य शीघ्रम्। बिट्टिदेव ने तुरन्त सहमति दे दी।"

कवि नागचन्द्र को सूचित किया गया। उन्होंने निवेदन किया, "रानियों की गुरु और शिक्षिका मुझसे भी अधिक प्रतिभावती हैं, उन्हें भी राजसभा की आस्थान कवयित्री बनावें तो अच्छा होगा।"

"नाम-धाम कुछ भी तो पता नहीं, उन्होंने यह कुछ नहीं बताया।"

"प्रतिभा प्रतिभा ही है। जीवन से अनासक्त होकर सभी व्यावहारिक बातों से निर्लिप्त हो जाने मात्र से क्या प्रतिभा का सम्मान न हो?"

उन्हें भी बुलवाकर सूचना दी गयी।

उन्होंने कहा, "मुझे किसी भी तरह की अभिलाषा नहीं। यदि प्राज्ञ चाहते हैं तो इनकार नहीं कर सकती; इससे मेरे छात्रों को सन्तोष मिलता हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। सन्निधान की इच्छा का मैं विरोध नहीं करूँगी।"

"राज-सभा में इस बात की घोषणा करनी होगी तो कोई नाम भी चाहिए न?"

"मैं एक कन्ती हूँ। 'कन्ती' का अर्थ होता है भक्त। 'कन्ती' कहकर घोषित कीजिए। एक 'भक्ता' कहने पर लोग मानेंगे नहीं।"

महाराज के जन्मदिन समारोह के अवसर पर कन्ती और नागचन्द्र दोनों पोय्सल राज्य के आस्थान-कवि घोषित हुए। रानियाँ अपनी शिक्षिका को आस्थान कवयित्री बनाने पर बहुत आनन्दित हुईं।

शान्तला को मालूम हुआ कि उसके गुरु बेलुगोल जा बसे हैं। जन्मदिन का उत्सव समाप्त होते ही, दो ही दिन के बाद, बिट्टिदेव आदि यादवपुरी की ओर रवाना हुए। पश्चिमोत्तर के कोने से पश्चिम-दक्षिण के कोने तक फैली पर्वतश्रेणी के पूर्व की तरफ फैली यादवपुरी का वह स्थान बिट्टिदेव और शान्तला को बहुत भाया। वहाँ का राजमहल विस्तृत रूप से बनाया गया। अपना भावी जीवन इसी स्थान पर व्यतीत करने के निश्चय के अनुकूल राजमहल के अन्दर ही शान्तलादेवी की इच्छा के अनुसार एक नाट्यागार का भी निर्माण किया गया। यों विशाल राजमहल के कारण यादवपुरी एक नयी चमक-दमक से सुशोभित होने लगी।

दण्डनाथ डाकरस के लिए राजमहल के अहाते में ही एक विशाल सौध का निर्माण हुआ। एचलदेवी और दण्डनाथिनी चन्दलदेवी में जैसी आत्मीयता बनी रही वैसी ही आत्मीय भावना शान्तलदेवी और दण्डनाथिनी एचियक्का में, बहुत ही शीघ्र बन गयी। मेल-जोल बढ़ गया। एक दिन किसी बातचीत के सिलसिले में एचियक्का ने दण्डनायिका चामव्वे के बारे में कुछ असन्तुष्टि के भाव व्यक्त किये। यह भी बताया कि दण्डनायिका उस (एचियक्का) के प्रति उपेक्षा भाव रखती थी। परन्तु यह नहीं बताया कि एरेयंग प्रभु के पट्टाभिषेक के समय कलश-वाहिनी पाँच सुमंगलियों में उसको न मिलाकर माचिकव्वे को शामिल करने से उसको असन्तोष हुआ था।

शान्तला ने कहा, "जो हमें छोड़कर चली गयीं उनके बारे में हम चर्चा ही क्यों करें? दण्डनायिका चामव्वे का मुझे काफी परिचय है। संसार में सब लोग एक ही तरह की आशा-आकांक्षाएँ लेकर तो जनमते नहीं। जन्म लेने के बाद सभी का एक जैसे वातावरण में तो पालन-पोषण होता नहीं। जन्म के समय सभी बच्चों का मन परिशुद्ध ही रहता है। फिर वे जिस वातावरण में पल-पुसकर बढ़ते हैं उसके अनुसार वे व्यक्तित्व ग्रहण करते हैं। आपके बच्चे यदि महादण्ड-नायकजी के वातावरण में पलते-बढ़ते तो उनका स्वभाव कैसा होता—कौन कह सकता है? अब तो आपही के पास प्रेम से पल-पुस रहे हैं। आपकी सरलता उनमें भी रूपित हो रही है। उनके छुटपन से ही उन्हें ऐसा दिशा-निर्देश मिलता रहना चाहिए कि उनमें कभी भी असूया की भावना न आवे। एक बार असूया या भेद-भाव पैदा हो जाय तो उसे जड़ से उखाड़ फेंकना कठिन हो जाता है। अब देखिये, यह बालक बिट्टिगा जन्मते ही माँ-बाप को खो बैठा। इसे मेरी अविवाहित अवस्था में ही, मेरी गोद में पलकर बड़ा होना पड़ा। वह मेरा पोष्य-पुत्र ही तो है। कल ईश्वर की कृपा से हमारे भी सन्तान होगी, तो हम अपनी सन्तान और बिट्टिगा में भेद-भाव करें तो बेचारे बिट्टिगा की मनःस्थिति क्या होगी, ज़रा सोचिए।"

"आपसे ऐसा भेद हो ही नहीं सकता। जिनमें ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी है उनके उस दुर्भाव को निकाल फेंककर उन्हें एक सूत्र में जोड़ने की आपमें क्षमता है। आप न होतीं तो मेरी ननदों का राजरानियाँ होना संभव ही नहीं था। परन्तु मैं उन्हें तथा उनके माँ-बाप को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। सब पिता के स्वभाव के अनुरूप हों तो बातें सुगम हो सकती हैं लेकिन यदि वे माँ के अनुरूप हों, सब नहीं, उनमें एक भी यदि माँ के अनुरूप हो जाय तो आपका सारा किया-कराया पानी में होम करने का-सा होगा।"

"न, न, हमें ऐसा सोचना तक नहीं चाहिए। हम जब सबका हित चाहते हैं तो हमें किसी के बारे में ऐसा सोचना तक नहीं चाहिए।"

"उनके व्यवहार पर महाराज के जीवन का सुख-सन्तोष अवलम्बित है इसलिए उस ओर मेरा ध्यान गया। वे मेरे मालिक (पति) की बहिनें हैं। उनका जीवन सुखी हो—यह मेरी आकांक्षा है। माता के बारे में इसलिए कहा कि बच्चों की बुद्धि कभी माँ की-सी न बने; भगवान् से मेरी यही प्रार्थना है।"

"माँ ने जो गलतियाँ कीं उन सबका उन्हें बोध है, दण्डनाथिनी। इसलिए ऐसा नहीं होगा।"

"मैं भी यही चाहती हूँ। महादण्डनायकजी के वंशीय सदा ऐसे ही निष्ठावान् बनकर रहें, यही आकांक्षा है। मेरे मालिक की भी यही आशा है। मेरे मालिक अभी से कह रहे हैं कि अपने बच्चों को उसी तरह तैयार करना होगा जैसे उनके पिता ने उन्हें और उनके बड़े भाई को राष्ट्र के प्रति निष्ठावान् के रूप में तैयार किया है।"

"अब यह राजा और राजकर्मचारी का अथवा मालिक-नौकर का सम्बन्ध नहीं, दण्डनाथिनीजी, इस सबसे बढ़कर है अब का यह रिश्ता। दोनों तरह की बन्धुता के सूत्र में बँधे हैं। इसको इसी तरह आगे भी बनाये रखना है।

"राजपरिवार की उदारता ऐसी ही बनी रहे तब सब सम्भव हो सकेगा।"

"राजपरिवार की उदारता जाएगी कहाँ? ऐसी ही बनी रहेगी। सभी उसकी उस उदारता के पात्र होंगे। कल आपकी ननदों में किसी के यदि लड़की पैदा हो तो आपकी बहू बनाये बिना रहेंगी?"

"मैं कैसे कहूँ? मेरे लड़के तो राजा बनेंगे नहीं। वे ही यदि सोचें कि उनकी बेटियाँ भी रानी ही बनें तो इसे गलत भी कैसे कहें? ऐसी कोई आकांक्षा नहीं मुझमें।"

"न हो तो आप स्वयं लड़की को जन्म देकर उसे रानी बनावें, मना कौन करेगा?"

"यह सब बहुत दूर की बात है। अभी से इसकी चर्चा ही क्यों? महाराज और मेरे मालिक सीमान्त से अभी तक लौटे नहीं। उनके बारे में कोई ख़बर

मिली हो तो, जानने के लिए मैं आयी थी। यहाँ बातें कुछ और ही चल पड़ीं।" एचियक्का बोली।

"पनसोगे की तरफ गये हैं, लौटने की खबर नहीं मिली।"

"इतनी दूर तक जाने की बात मालिक ने नहीं बतायी?"

"स्वयं उन्हीं को मालूम नहीं था। हेमावती (नदी) के किनारे तक ही जाने की बात कही थी। सुना कि पनसोगे क्षेत्र के अरिगौड वहीं उनसे मिले और बताया कि स्वयं और राजगौड मिलकर सोमेश्वर मन्दिर का निर्माण करवा रहे हैं। मन्दिर निर्माण का कार्य समाप्त प्राय है। इस मन्दिर में मूर्ति की प्रतिष्ठा के समारम्भ के अवसर पर पधारने की प्रार्थना उन्होंने महाराज से की है। महाराज को वहाँ उपस्थित रहना है तो मन्दिर को पर्याप्त मात्रा में विस्तारवाला व विशाल होना चाहिए। यही सोचकर वहाँ देख आने गये हैं, दण्डनायजी भी साथ गये हैं।" शान्तला ने बताया।

"मन्दिर देखना शायद बहाना है। शायद वहाँ चेंगाल्वों का जाल फैला होगा, और यह बात प्रकट भी हुई होगी। स्वय देख-समझने के लिए गये हैं। किसी कोने में बने एक मन्दिर में मूर्ति-प्रतिष्ठा के समारम्भ के लिए महाराज को क्यों जाना चाहिए?" एचियक्का बोली।

"दण्डनाथिनीजी ने बड़ी सूझ की बात कही है।"

"तो युद्ध सन्निहित···" एचियक्का बोल ही रही थी कि बीच ही में शान्तला ने मुँह पर अंगुली रख संकेत किया।

एचियक्का मौन हो गयी।

"माँ, माँ" आवाज़ निकट होती आयी। चट्टला के साथ बिट्टिगा आया।

"दण्डनाथिनी के मुँह से कोई युद्ध की बात निकली-सी सुन पड़ी। फिर कोई युद्ध है? किसी तरह के संकोच के बिना चट्टला पूछ बैठी।"

"ओह, वही इस छोटे बिट्टिगा की बात। जब इसकी माँ ने इसे राज-परिवार को सौंपा तब उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि इसे अच्छा वीर योद्धा बनाना है। मैं दण्डनाथिनीजी से कह रही थी कि राज्याधिकारियों के बच्चों के साथ इसे भी डाकरसजी द्वारा ही युद्ध-शिक्षण दिलवाया जाय।"

"युद्ध की बात सुनते ही मेरे कान खड़े हो गये। आप महाराज से कहिए कि यदि युद्ध हो तो उसमें मेरी सेवाओं का उपयोग भी किसी तरह से करें।" चट्टला बोली।

शान्तला ने कहा, "ठीक है।"

तब तक बिट्टिगा शान्तला की गोद में चढ़ आया था। उसे देख चट्टला बोली, "देखिये इस मुन्ना को, आपकी याद आयी कि फिर उसका ध्यान अन्यत्र आकर्षित करना संभव ही नहीं होता। जब तक न देख लेगा तब तक 'माँ, माँ'

चिल्लाता, रट लगता ही रहेगा। वास्तविक माँ न होते हुए भी आप से इसे कितना लगाव है ! आपने तो पूरी ममता उड़ेल दी है उस पर।" चट्टला बोली।

"तुम भी यह जाने रहो कि वह जब तक बड़ा न हो जाये, समझ-बूझ न आ जाये तब तक उसे ऐसे ही समझने दो। ज़रा जाकर देखो तो, नाश्ता तैयार है या नहीं।" शान्तला ने आदेश दिया।

चट्टला गयी और शीघ्र लौटकर बताया, "तैयार है।"

शान्तलादेवी बिट्टिगा को गोद में उठाकर दण्डनाथिनी एचियक्का के साथ नाश्ता करने चली गयीं।

इधर दोरसमुद्र में किसी तरह के उतार-चढ़ाव के बिना दिन गुज़रते चले गये। एक दिन अचानक बोप्पदेवी ने आकर बल्लाल के पैर छुए और हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। बल्लाल ने चकित हो हंसमुख होकर पूछा, "कोई खास बात है ?"

बोप्पदेवी ने एक बार आँख भर देखा। एक क़दम आगे रख पल्लू के छोर को हाथ में ले लजाती हुई मरोड़ने लगी। संकोच के मारे सिर झुका लिया था।

बल्लाल ने अपने हाथ आगे बढ़ाये तो बोप्पदेवी ने उन्हें अपने हाथों में थाम लिया। उसे खींचकर बल्लाल ने उसे अपनी बगल में बैठा लिया और पूछा, "बताओ तो बात क्या है ? मुझसे कहते संकोच क्यों ?"

वह फिर नीचे झुकी और पैर छूकर बोली, "पोय्सल सिंहासन के उत्तराधिकारी ही जनमें—ऐसा आशीर्वाद दें।"

उसके सिर पर बल्लाल का हाथ यों सहज ही आ गया था लेकिन जब उन्होंने यह सुना तो अनपेक्षित ही वह हाथ पीछे सरक गया। उसे कोई उत्साहपूर्ण उत्तर नहीं मिला था। यह सब कुछ ही क्षणों की प्रतिक्रिया थी। छोटी रानी ने सिर उठाकर पति की ओर देखा। पूछा, "क्यों प्रभु ! मेरी यह अभिलाषा आपको रुचिकर नहीं लगी ?" उसकी आँखें भर आयी थीं।

बल्लाल को अब अपनी असावधानी का परिणाम प्रत्यक्ष दिख रहा था। वे बोले, "इसका माने क्या है, देवी ? मेरी होनेवाली पहली सन्तान मेरी उत्तराधिकारी बने—यही मेरी अभिलाषा है। तुमने जो कहा वह शीघ्र मेरी समझ में नहीं आया था। अब जाओ, और भगवान् के सामने घी के दिये बलाकर प्रणाम कर आओ, अपनी दीदियों का भी आशीर्वाद पाओ।"

उतावली में छोटी रानी को आँसू तक पोंछने का ध्यान नहीं रहा। वहाँ से सीधे पूजागृह में गयी और घी के दिये वलाकर नमस्कार करके फिर वल्लाल के पास आ गयी। वल्लाल ने पूछा, "इतनी जल्दी ही सब हो गया?" और मुस्कुरा दिये।

"भगवान् के सामने घी के दिये वला दिये, प्रणाम किया। अब तो दीदियों के पास सन्निधान के साथ जाने की अभिलाषा है।" बोप्पदेवी बोली।

तीनों रानियों के आपस में एक समझौता हुआ था कि क्रमशः एक-एक मौसम (ऋतु) में महाराज के साथ रहेंगी। इसके अनुसार क्रम से दो-दो मौसम महाराज के साथ व्यतीत हो चुके थे और अब साल पूरे होने को था। अपने सुखी जीवन में कोई अकेली न रही। महाराज के साथ एक रानी को जब रहना होता तो बाक़ी दोनों साथ रहती थीं। मतलब यह कि इस एक वर्ष का यह जीवन उन उन सबने बड़े ही हर्षोल्लास से व्यतीत किया था।

सबके अन्दर गत वसन्त ऋतु से एक सुप्त भावना क्रियाशील थी और वह निरन्तर बढ़ती जा रही थी। प्रत्येक की यही मनोवांच्छा थी कि महाराज के उत्तराधिकारी का जन्म उसकी अपनी कोख से हो। आधा वसन्त उपनयन और विवाह के समारम्भ में ही व्यतीत हो चुका था। इन मुहूर्तों के समय पद्मला वेदी पर साथ-साथ बैठती तो रही, लेकिन सान्निध्य बोप्पदेवी का रहा आया। बाद में पद्मला और चामला के साथ महाराज के सान्निध्य के दो ऋतु ग्रीष्म और वर्षा बीत चुके थे। सन्निधान को शरद्ऋतु बोप्पदेवी के साथ बितानी थी। अपनी बारी पर सन्निधान के साथ रहने के फलस्वरूप, अपनी सफलता का सन्तोष सन्निधान से निवेदन कर, उस अपने उल्लास को अपनी दीदियों में बाँटने के उद्देश्य से वह चन्द्रशाला में आयी।

दम्पती का यह आगमन अनिरीक्षित ही था, फिर भी बड़े उत्साह से इन लोगों ने उनका स्वागत किया। बैठने के लिए सुसज्जित आसन दिये। सबके बैठ जाने के बाद बल्लाल ने कहा, "तुम्हारी बहिन आशीर्वाद पाने के लिए आयी है। अकेली आने में संकोच कर रही थी इसलिए यह हमें पकड़ लायी है।"

"आशीर्वाद माँगना क्या है, वह तो हमेशा ही रहेगा। इसमें संकोच करने की क्या बात थी?" पद्मला ने कहा।

"जब वह खुद आशीर्वाद माँगने आयी है तो उसीसे पूछ लो। क्या उसे यह मालूम नहीं कि तुम दोनों सदा ही उसके मंगल की कामना करती हो।" बल्लाल का उत्तर था।

"तो फिर?" चामलादेवी का सवाल था।

"कुछ उद्देश्य है, इसीलिए आयी हैं। हमसे आशीर्वाद माँग रही थी। आप

उसके लिए बड़ी हैं, इसलिए आपका आशीर्वाद लेने को हमने कहा। इसके लिए यह हमें भी साथ घसीट लायी है।" बल्लाल ने कहा।

"ऐसा हो तो स्वयं सन्निधान ही बता सकेंगे न?"

"वही कहें।" कहते हुए वे बोप्पदेवी की ओर मुड़कर बोले, "कहो!"

"मेरी होनेवाली सन्तान लड़का हो—यही आशीर्वाद दें।" कहते हुए उसने दोनों को प्रणाम किया।

यह बात दोनों को ठीक नहीं जँची। उनकी इस भावना का आभास उनके चेहरों पर स्पष्ट था। फिर बोलीं, "उठो बोप्पि, जिस भगवान् ने तुमपर यह कृपा दिखायी है वह इस आकांक्षा को पूरा करेगा। हमारे आशीर्वाद से न लड़की लड़का बन सकेगी और न ही लड़का लड़की। है न चामू!" अपनी बहिन के उत्तर की प्रतीक्षा न करके पद्मलादेवी ने घण्टी बजायी।

नौकरानी रुद्रब्बे उपस्थित हुई।

"रुद्रब्बे, कुछ मिठाई तुरन्त ले आओ।" पद्मला ने कहा। इतने ही क्षणों में उनके मन में ईर्ष्या का भाव अंकुरित हो चुका था।

दासी मिठाई लाने ही वाली थी कि इतने में दूसरी दासी सुग्गला ने गुप्तचर चाविमय्या के आने की ख़बर सुनायी। तुरन्त बल्लाल उठे, "अभी आते हैं" कह मन्त्रणागार में चले गये, जहाँ चाविमय्या उनकी प्रतीक्षा में था।

चाविमय्या ने धीमे स्वर में निवेदन किया, "चेंगाल्वों का आनन्दिनी सुसज्जित सेना को साथ लेकर आ रहा है। सेना को एक पखवारे में कावेरी के उस तीर पहुँच जाने की संभावना है। उसकी संख्या का अनुमान लगाने के बाद, लगता है कि अब यादवपुरी में स्थित हमारी सेना अपर्याप्त है। यहाँ से सेना को शीघ्र ही मल्लिपट्टण के जरिये रवाना करने की व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें अब विलम्ब न हो, इसलिए मुझे ही सीधे सन्निधान के पास भेजा गया है।"

"तुम?"

"मुझे तुरन्त लौटना है। वहाँ जाने पर कौन-सा हुक्म देंगे, पता नहीं।"

"अच्छा, तुम जा सकते हो, कहो कि व्यवस्था हो जाएगी।" बल्लाल ने कहा।

चाविमय्या चला गया। बल्लाल पद्मलादेवी के अन्तःपुर की ओर बढ़े। उनका मस्तिष्क कुछ और सोच रहा था। मिठाई को बाँट लेने की उनकी इच्छा अब शायद उनके मन से खिसक गयी थी। इसलिए अन्तःपुर के दरवाजे पर पहुँचकर एक दो-क्षण के लिए खड़े रहे। उन्हें पद्मलादेवी की बात सुन पड़ी; वह कह रही थी—"देखा चामू, इस बोप्पी को! ज्यादा बातें न करके गुमसुम रहकर अपना लक्ष्य साध लेती है।"

"मुझे बात करना नहीं आता इसलिए मैं अधिक नहीं बोलती। कुछ-का-कुछ बोल गयी तो क्या अच्छा होगा? बोप्पदेवी ने कहा। बल्लाल को लगा कि उनकी

ध्वनि में कुछ दर्द है।"

उस वार्तालाप को वैसे ही चलने दें तो इनमें विरसता आ सकती है—यही सोचकर बल्लाल ने ज़ोर से धक्का देकर किवाड़ खोल दिया। बोले, "करो, करो, अब नहीं छेड़खानी करोगी तो कब करोगी; चिढ़ाओ, चिढ़ाओ अपनी बहिन को। तुम स्त्रियाँ छेड़खानी करना कब छोड़ती हो? कहाँ है मिठाई?" उन्होंने एक साथ बातों की जैसे बौछार ही कर दी। वहीं पास में एक चौकी पर लड्डुओं से भरा थाल रखा था। एक बार दो-दो के हिसाब से लड्डू उठाकर अपनी पत्नियों के मुँह में ठूँसे और स्वयं ने भी एक लड्डू लेकर अपने मुँह में डालते हुए कहा, "देखो, एक दाना भी नीचे न गिरे; जो ऐसा खायेगा उसके लिए विशेष पुरस्कार मिलेगा। इस पुरस्कार के पात्र हम भी होंगे।"

महाराज सामान्य लोगों की तरह यों अल्हड़पन का व्यवहार करेंगे—इसकी उन्हें कल्पना भी नहीं थी। कहीं नौकर-चाकर देख न लें—इसलिए पद्मलदेवी जाकर किवाड़ बन्द कर आयीं। उन्हें डर था कि नौकर यह सब देखकर इधर-उधर कहते फिरें तो ठीक होगा?

बल्लाल ने एक आदमकद आइना दिखाते हुए कहा, "तुम लोग अपने-अपने मुख को इस आइने में तो देखो।" वह ख़ुद पास जाकर आइने के सामने खड़े हो गये। लड्डू भरे उनके दोनों गाल फूल गये थे और बन्दर-से लगने लगे थे। उनका मुख और उस लड्डू के निगलने के इस प्रयास को देख सब-की-सब एक साथ ठहाका मारकर हँसने लगीं। उन्होंने सबको इशारे से पास बुलाया। उनके पास आने पर उनके गले में बाँह डालकर उनके साथ वे ख़ुद भी हँसते हुए ही बोले, "हम सबको इसी तरह हँसते रहना चाहिए।" कुछ देर बाद उन्होंने कहा, "आज शाम को हम सब दर्शन हेतु मन्दिर जाएँगे; अभी ख़बर किए दे रहे हैं। तुम सब सजधजकर तैयार हो लो तब तक।" इतना कहकर वे चल पड़े।

उस समय असूया शायद काफी कुछ बढ़ जाती लेकिन इस प्रसंग के कारण उस दिन के लिए थमी रही। शाम को सब मिलकर मन्दिर गये। वहाँ से लौटकर सबने भोजन किया और पद्मलदेवी तथा चामलदेवी एक ओर तथा बोप्पदेवी और महाराज एक ओर चले गये।

अपने शयनकक्ष में जाने के बाद बल्लाल बोप्पदेवी से—"एक अत्यन्त आवश्यक राजकार्य आ पड़ा है, मैं मन्त्रणागृह जा रहा हूँ, आज मन्त्रिपरिषद की बैठक है। आने में विलम्ब हो जाये तो परेशान न होना," कहकर मन्त्रणागृह की ओर चल पड़े।

बोप्पदेवी अकेली थी। अकेले में उसकी दीदियों ने जो बात कही थी उसे मन-ही-मन दोहराने लगी: "मैं गर्भिणी बनी, यह उनकी ईर्ष्या का कारण हुआ।

उन्हें इस बात का डर भी हुआ होगा कि अगर लड़का हुआ तो क्या होगा? इसीलिए उन्होंने खुले दिल से आशीर्वाद भी नहीं दिया। भगवान् की जो मरज़ी होगी वही मुझे मिलेगा। उनसे पहले सन्तान पाने की प्रार्थना मैंने भगवान् से नहीं की थी। स्वयं भगवान् ने मुझपर दया दिखायी। अवश्य ही मैंने यह आकांक्षा की कि होनेवाली सन्तान लड़का हो। इसमें मेरी क्या ग़लती? मुझसे पहले अगर वे ही गर्भवती हो जातीं तो क्या कहतीं? वैसे यदि कहतीं कि लड़का हो और आसीस देतीं तो उनका क्या बिगड़ जाता? अगर उनके यह कहने पर भी मुझे लड़की होती तो क्या मैं असन्तुष्ट होती? आगे चलकर जब राजगद्दी पर बैठने के हकदार की बात उठेगी तब बड़ी दीदी जो कहेगी वही करने का वचन भी मैंने दिया ही तो है। मैंने यह बात अनमने होकर तो नहीं कही थी। अपनी दीदी पर मुझे विश्वास है—इसी निश्चय से मैंने हृदय से यह बात कही थी। जो सहृदयता मैंने दिखायी, बड़ी होकर भी मेरी दीदी ने वह सहृदयता नहीं दिखायी मेरे प्रति। वह बड़ी है, इस नाते वह पटरानी बनी। मुझे इससे ईर्ष्या नहीं। सच तो यह है कि हमारी बड़ी दीदी पटरानी बनी—इसका मुझे गर्व है। इतना होने पर भी उसके मुँह से अभी असंगत बात निकली!···आगे क्या होगा? इस वक़्त शान्तलदेवी भी यहाँ नहीं। वे होतीं तो उन्हें समझाकर सही रास्ते पर ले आतीं। उन्हीं के प्रयत्न से तो दीदी पटरानी बनी। अन्यथा किसी घुड़सवार की पत्नी बनी होती, उस माँ की करतूत के कारण। माँ के वे ही गुण इसमें उतर आये-से लगते हैं। माँ की तरह चलेगी तो इसकी भी दशा वही होगी जो माँ की हुई।" यों उसके मन में विचार चल रहे थे। इस तरह सोचते-सोचते पता नहीं कब उसकी आँख लग गयी। नौकरानी ने जो दूध ला रखा था उसे पीना भी वह भूल गयी।

मन्त्रणागृह से बल्लाल लौट आये। देखा तो दूध ज्यों-का-त्यों धरा पड़ा है। उन्होंने उसे जगाया, "तुम्हारी दीदी ने हँसी-हँसी में कोई बात कह दी तो इतनी-सी बात पर असन्तुष्ट होकर दूध पिये बिना ही सो जाओगी क्या? अब तुम अकेली नहीं, दो जीव हो। उठो, पहले दूध पिओ।" कहकर दूध का गिलास देने को हाथ बढ़ाया।

उसने गिलास हाथ में लेकर, "वह प्रसाद बनकर मिले तो अमृत बन जाएगा", कहती हुई महाराज के मुँह की ओर बढ़ाया। उनके लिए यह कोई नयी बात नहीं थी। आधा स्वामी के लिए, शेष देवी के लिए—यों दूध का विनियोग हुआ।

"इस तरह ऐसे वक़्त मन्त्रणा के माने विषय कुछ विशेष गम्भीर ही होगा। अगर मैं जान सकती हूँ, तो···" कहते-कहते रुक गयी।

"अब न भी बताऊँ तो कल मालूम हो ही जायेगा। चेंगाल्वों का आनन्दिनी बड़ी सेना लेकर आ रहा है। सुनते हैं कि वह हमारे राज्य पर हमला करने के

इरादे से आ रहा है। छोटे अप्पाजी ने और सेना भिजवाने की खबर भेजी है। विलम्ब नहीं किया जा सकता। तुरन्त व्यवस्था करनी थी। अब कल मैं स्वयं सेना लेकर उनकी मदद के लिए जा रहा हूँ।"

"हमारे भैया को भेज देंगे तो नहीं बनेगा ?"

"युद्ध में विजय पाने की दृष्टि से तो काफी है। परन्तु अप्पाजी अभी नव-विवाहित हैं। उनको युद्धक्षेत्र में भेजकर मैं यहाँ रनिवास में ऐश करता पड़ा रहूँ तो लोग क्या कहेंगे ? उसे भी कैसा लगेगा ? हम जाएँगे तो उसे कितना आनन्द होगा जानती हो ? ऐसे ही वक़्त पर वास्तव में भ्रातृ-वात्सल्य प्रकट होता है। सुख-दुःख में भागी बनें तभी भ्रातृत्व का मूल्य है।···मैंने जाने का निश्चय किया है।"

"जिस तरह आप भाई-भाई वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करने में तत्पर हैं वैसे ही हम बहिनें भी रहें तो कितना अच्छा हो ! इन परिस्थितियों में शान्तलदेवी यादवपुरी में अकेली क्यों रहें ? क्यों न उन्हें यहीं बुलवा लिया जाय ?"

"देवी का सोचना भी ठीक है। वही करेंगे। अब देर हो गयी, सोवें।"

शान्तलदेवी के आने के भरोसे से बोप्पदेवी को जल्दी ही नींद लग गयी। बल्लाल को जल्दी नींद नहीं आयी। उनके मन में कुछ शंका उत्पन्न हो गयी। शान्तलदेवी को बुलवाने के औचित्य पर उन्हें जब विश्वास का भाव जमा तो उन्हें भी नींद आ गयी।

दूसरे दिन प्रातः उठते ही महाराज ने बिट्टिदेव के पास पत्र लिख भेजा। उसमें लिखा था : "स्वयं अपने नेतृत्व में सेना के साथ हेमावती को पार करके मल्लि-पट्टन पहुँचूँगा। यादवपुर से निकलकर तुम भी सीधे पहुँचकर मिलो। युद्ध सम्बन्धी आगे के कार्यक्रम पर वहीं निर्णय करेंगे। इस वक़्त अकेली शान्तलदेवी का यादव पुर में रहना ठीक नहीं। उन्हें और दण्डनाथिनी एचियक्का—दोनों को आवश्यक आरक्षण दल के साथ तुरन्त राजधानी को रवाना कर दें।"

तदनुसार शान्तलदेवी, एचियक्का दोनों ही बिट्टिग और मरियाने भरत को साथ लेकर दोरसमुद्र चल देने को तैयार हो गयीं। रास्ते में बेलुगोल जाकर बाहुबली स्वामी के दर्शन कर अपने गुरुजी का कुशल जानने और वहाँ से दोरसमुद्र पहुँचने के अपने मन्तव्य को बताकर शान्तलदेवी ने बिट्टिदेव से अनुमति ली। साथ ही, अपनी माता के तीर्थयात्रा पर जाने के कारण पिता के साथ तब

तक रहने की भी अनुमति ले ली जब तक यहाँ से बुलावा न आये।

इनकी यह टोली रास्ते में किक्केरी में मुकाम कर, पूर्वनिर्णय के अनुसार वेलुगोल पहुँची और भगवान् बाहुबली के दर्शन कर विजय की कामना करते हुए उनसे प्रार्थना की, और जिनस्तोत्र का सस्वर पाठ किया। पहले जब वह (शान्तलदेवी) यहाँ दो बार आयी थीं तब-तब उनके मन में जो भाव उठे थे उन्हें तथा और किस-किसने क्या-क्या सोचा था आदि सभी बातों का स्मरण कर, सब एच्चियक्का का सुनाया। उन्हें बार-बार रेविमय्या की याद आती रही। फिर कवि वोकिमय्या और शिल्पी नाट्याचार्य गंगाचारी आदि का दर्शनकर, उन्हें राजमहल की भेंट आदि समर्पित कर वहाँ से दोरसमुद्र जा पहुँचीं। मरियाने दण्डनायक सिंदगेरे गये थे, इस वजह से दण्डनाथिनी एचियक्का ने राजमहल में ही मुकाम किया। शान्तलदेवी ने अपने पिता के यहाँ बिट्टिगा के साथ मुकाम किया।

उधर महाराज के पत्र के अनुसार, मल्लिपट्टन में दोनों भाइयों की भेंट हुई। विचार-विनिमय के बाद एक निश्चित कार्यक्रम बना।

हमलावर शत्रु को गलतफहमी में डालने के लिए चेंगाल्वों के राज्य के सीमा प्रान्त में हेग्गड़े अरिगौंड और राजगौंड द्वारा निर्मित सोमेश्वर महादेव की प्रतिष्ठा के उत्सव के सन्दर्भ में, सार्वजनिक जानकारी के लिए सर्वत्र यह प्रचार किया गया : "मन्दिर की प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर पोय्सल राज्य के महाराज वल्लालदेव एवं बिट्टिदेव दोनों पधारेंगे। श्रद्धालु पौरजन तथा सार्वजनिकों को यह जानकारी दी जाती है कि इस अवसर पर सब लोग पधारें और अपने महाराज के दर्शन कर आत्मलाभ लें। हमारे महाराज वल्लालदेव अर्स और बिट्टिदेव अर्स के विवाह-महोत्सव पर इस प्रदेश के लोगों को सम्मिलित होने का मौक़ा नहीं मिला था—यह बात राजपरिवार को अच्छी तरह ज्ञात है। इसलिए इस शुभ अवसर पर वृहत्-सभा का भी आयोजन किया गया है। आनेवाले सभी जनों के लिए ठहरने के साथ-साथ जलपान भोजन की भी व्यवस्था है।

घोड़े बैलगाड़ी आदि वाहनों पर आने वालों की सुविधा के लिए अश्व-शालाओं आदि की व्यवस्था के साथ उनके लिए दाना-पानी, चारा आदि की व्यवस्था भी की गयी है। वैद्य और पशु-चिकित्सकों की सेवाएँ भी उपलब्ध रहेंगी।" इस तरह की घोषणा गाँव-गांव कर दी गयी।

घोषणा के अनुसार, वृहत्-सभा के लिए मन्दिर के सामने विशाल सभागार तैयार किया गया। मन्दिर के चारों ओर एक कोस दूर तक जगह-जगह तम्बू लगाये गये। बीच-बीच में रसोड़े, पानीयशालाएं भी तैयार की गयीं। जानवरों के लिए आवश्यक दाना-घास के ढेर जगह-जगह लग गये। अश्वशालाएँ स्थान-स्थान पर बन गयीं। वैद्यशालाएं भी खुल गयीं। इस तरह बड़े पैमाने पर मेले की

व्यवस्था की गयी। उत्सव के लिए निर्दिष्ट दिन से दो दिन पूर्व सभी आवास-स्थान लोगों और उनके वाहनों से खचाखच भर गये। देखते ही देखते, मन्दिर के चारों ओर एक बड़ा नगर ही बस गया।

इस सारी तैयारी का समाचार चेंगाल्वों के आनन्दिनी के कानों में पड़ चुका था। वह समझ बैठा था कि पोय्सलों को इस बात की खबर ही नहीं कि यहाँ युद्ध की तैयारी हुई है। ऐसी हालत में इस धार्मिक मेले में एकत्रित जनसमुदाय घण्टी बजाते खा-पीकर आराम से पड़ा रहेगा। ऐसे मौक़े पर इस जन-स्तोम के बीच पोय्सल महाराज और उसके भाई को आसानी से पकड़ लिया जा सकेगा। और तब जीत का डंका हमारा ही बजेगा। अगर मेले में सम्मिलित जनस्तोम बिगड़ उठा तो उसे डरा-धमकाकर, पीछा करते-हुए ले जाकर कावेरी नदी में डुबा देंगे। यदि पोय्सल राज्य हमारे हाथ लग जाय तो फिर चालुक्यों के लिए हमसे खटका पैदा हो जायेगा। यों मन्त्रणा करके चेंगाल्वों के आनन्दिनी ने अपनी सेना को गुप्त रीति से पहाड़ी मार्ग से रवाना कर दिया। उस सेना ने सोमेश्वर महादेव के प्रतिष्ठा-महोत्सव के दो दिन पहले ही कावेरी के उत्तर और हेमावती के दक्षिणी पहाड़ी प्रदेश में अपना पड़ाव डाल दिया। पहाड़ी प्रदेश में सैन्य संचालन आसान न होने के कारण उसकी सेना पैदल सिपाहियों की ही रही।

आनन्दिनी की गति-विधियों का पता पोय्सल सेना को समय-समय पर मिल जाया करता। महाराज बल्लाल और बिट्टिदेव दोनों सोमेश्वर-स्थापना में सम्मिलित हुए। सोमेश्वर महादेव की सोमवासर की पूजा-अर्चा आदि कैंकर्य के लिए तथा अखण्ड दीप के लिए सिंदूर को दान के रूप में दे दिया। सोमेश्वर महादेव की प्रतिष्ठा आठ महीने पूर्व ही हो चुकी थी इस बात का पता चेंगाल्वों को नहीं था। माघ मास के दिन महादेव की पूजा-अर्चा के लिए विशेष रूप से श्रेष्ठ माने जाते हैं। माघ बहुल दशमी के दिन पुनः प्रतिष्ठित सोमेश्वर महादेव की विशेष पूजा-अर्चा की, महाशिवरात्रि के साथ सोमवार होने के कारण व्यवस्था की गयी थी। लक्षदीपोत्सव और मशालों के साथ, सोमेश्वर महादेव के जुलूस के लिए रथ को सजा दिया गया था। उत्सव की घोषणा कर दी गयी।

वहाँ डेरे-डेरे में जितने लोग ठहरे थे सबने एक-एक मशाल तैयार कर ली थी। मन्दिर के सामने का विशाल प्रांगण मशालों की कतारों से जगमगाने लगा। महादेव की उत्सवमूर्ति को पालकी में विराजमान किया गया। हजारों मशाल एक साथ जगमगा रहे थे। किसी को इस बात का भान तक नहीं हुआ कि वह अमावस्या की रात है।

उत्सव-मूर्ति के अगल-बगल महाराज बल्लाल और बिट्टिदेव दोनों शुभ्रवस्त्र धारण किये खड़े थे। एक पुजारी परात हाथ में लेकर उनके पास आया और प्रणाम करके दोनों को ढाक के पत्तों में प्रसाद दिया। श्रद्धा-भक्ति के साथ दोनों

ने प्रसाद हाथ में लिया और मूर्ति को नमन किया। पुजारी वहीं खड़ा था। प्रसाद वाले ढाक के पत्ते को बाएँ हाथ में ले दाएँ हाथ से प्रसाद लेकर, आँखों से लगा कर, मुँह में डालने ही वाले थे कि इतने में दूर से आवाज़ सुन पड़ी : "प्रभु ! वह प्रसाद नहीं जहर है, प्राण घातक जहर। जिसने प्रसाद कहकर दिया वह कोई पुजारी नहीं, वह हत्यारा है, उसे पकड़ लीजिए।"

महाराज बल्लाल और बिट्टिदेव ने अपने उस हाथ को नीचे कर लिया।

इस घटना के तुरन्त बाद, 'हा हा' का आर्तनाद सुन पड़ा।

कुछेक "पकड़ो, पकड़ो" कहते हुए उस ओर दौड़ने लगे। लेकिन तब तक वह व्यक्ति खिसक चुका था। इस सबके कारण वहाँ खलबली मच गयी थी।

"हाहाकार करते गिरे हुए व्यक्ति को उठाकर तुरन्त चिकित्सालय पहुँचा दिया गया। उसकी कोख में खुखरी लगी थी। महाराज और बिट्टिदेव के हाथ के उस प्रसाद को भी परीक्षार्थ चिकित्सालय में भेज दिया गया। खलबली के शान्त होने तक वहीं रहकर, हाथ धो चुकने के बाद महाराज बल्लाल बिट्टिदेव के साथ चिकित्सालय गये। चिकित्सकों ने उस खुखड़ी को बाहर निकाल कर रक्तस्राव को रोकने हेतु कुछ जड़ी-बूटियों के रस से घाव को लेप दिया था। और अब वे रक्ताक्त वस्त्रों को अलगकर मरहमपट्टी कर रहे थे। घायल ने महाराज को देखा और हाँफते हुए निवेदन किया, "प्रभो ! शत्रु हमला करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। उन लोगों ने हमारे इस शिविर के सभी लोगों को मार डालने का विचार किया है। हमारे इस शिविर से आधे कोस की दूरी पर वे दक्षिण-पश्चिम के जंगल में छिपे तैयार बैठे हैं। उनकी इस योजना का प्रयोग उन्हीं पर कर दें। इसमें कुछ भी विलम्ब न करें।"

"सन्निधान का यहीं रहना अच्छा है। मैं इस हमले का सामना करूँगा। डाकरस की अश्वसेना दुश्मनों को चारों ओर से घेर लेगी," कहकर आदेश की प्रतीक्षा न करके बिट्टिदेव चल पड़ा।

तूफान की तरह भागनेवाले बिट्टिदेव को देखकर बल्लाल "अप्पाजी ! अप्पाजी !!" पुकारते हुए चिकित्सालय से बाहर की ओर दौड़े। तब तक तो बिट्टिदेव आँखों से ओझल हो चुके थे। महाराज फिर चिकित्सालय के अन्दर चले गये। खबर देनेवाला वह अपरिचित व्यक्ति जीभ निकाले, गले पर हाथ धरे लेटा था। चिकित्सक एक कटोरे में पानी लाकर उसे पिलाने की कोशिश कर रहे थे। पीड़ा के मारे वह विकल हो रहा था। किसी तरह प्रयत्न करके थोड़ा पानी पिलाया गया।

बल्लाल ने चिकित्सक से कहा, "किसी तरह से इसे बचाना होगा, यह बहुत ज़रूरी है।"

चिकित्सक ने स्वीकृति के भाव में सिर हिलाकर सूचित किया।

"हम अपने डेरे में ही रहेंगे। कुछ अच्छा होते ही हमें ख़बर दीजिए" कहकर उस अँधेरे ही में वे अपने डेरे की ओर चले गये।

चेंगाल्वों की सेना के, उस जंगल से निकलकर, हमला शुरू करने से पहले ही बिट्टिदेव और डाकरस की सेना ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया, और धकधक जलते मशाल शत्रुओं पर फेंकना शुरू कर दिया था। छिपने के ख्याल से शत्रुओं ने जगह-जगह से पेड़ों के तनों को काट-काटकर इधर-उधर फैला दिया था। इससे पोय्सल सेना को बहुत मदद मिल गयी। फेंके गये मशालों की आग से वे झाड़-झंखाड़ जल उठे। देखते ही देखते वहाँ दावानल-सा फैल गया। शत्रु-सेना भौंचक्का हो गयी, और सिर पर पाँव रख इधर-उधर से भाग खड़ी हुई। आधी रात के पहले ही शत्रु का पता तक नहीं रह गया।

बचे खुचे लोग पकड़ लिये गये। कुछ हथियार भी हाथ लग गये। परन्तु, उनका नायक आनन्दिनी नहीं पकड़ा जा सका। आधी रात के बाद एक-आध पहर का समय बीत चुका था कि बिट्टिदेव महाराज के डेरे पर वापस आ गये। वह भी उसी डेरे में महाराज के साथ रह रहे थे।

महाराज बल्लाल अभी सोये नहीं थे। उन्हें बैठे देख बिट्टिदेव बोले, "आसानी से हमारी जीत हो गयी। पता नहीं, वह कौन था जिसने हमें बचाया और हमारे लिए इतनी आसानी से जीते जाने का मार्ग दिखाया? उस पुण्य पुरुष की हालत अब कैसी है? उसके बारे में कोई समाचार सन्निधान को मिला है कि वह कौन है?" बिट्टिदेव ने निवेदन किया।

"यह सब कुछ भी मालूम नहीं। पर इतना सच है कि यह व्यक्ति बड़ा चतुर है। ठीक वक़्त पर हमें होशियार न करता तो हम दोनों अब तक प्रभु के पास पहुँच गये होते। प्रसाद मानकर ज़हर खा लेते तो आध घण्टे में हमारी जीवन लीला समाप्त हो गयी होती।"

"उस व्यक्ति को यह सब मालूम कैसे हुआ? इस युद्ध शिविर में कब आया? कैसे आया? किसके हुक़्म से आया?"

"इस सबका ब्यौरा बताने के लिए उसमें शक्ति नहीं रही। खुखरी का घाव बड़ा गहरा है। बहुत रक्तस्राव हुआ है। बड़ा कमजोर हो गया है वह। तत्काल चिकित्सा की व्यवस्था न हुई होती तो शायद ही उसके प्राण अब तक बचते।"

"अब आगे का क्या कार्यक्रम है? वापस लौटना ही न?"

"एक-दो दिन यहीं ठहरेंगे। महादेवजी के प्रतिष्ठा समारोह के ही लिए कुछ और लोग भी तो आये हैं। इनमें पचहत्तर प्रतिशत तो हमारे सैनिक ही हैं, यह उनको मालूम नहीं। उन्हें भी यह ख़बर सुनायें और उनसे कहें कि सीमा-प्रान्तों में हम सतर्क रहें और गाँव-गाँव में सुरक्षा-दलों का संगठन करें। बाद में उन्हें वापस भेज दिया जायेगा। फिर यह देखेंगे कि शत्रु कहीं फिर से आने की

तैयारी तो नहीं कर रहा है ? वहाँ से शत्रु पक्ष के समाचार जानकर ही सोचेंगे कि आगे क्या कार्यक्रम बनाना है।"

"ठीक है, उस व्यक्ति की व्यवस्था ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"व्यवस्था की गयी है। पूरी रक्षा के साथ उसे राजधानी ले जाया जायेगा। राजधानी में जब तक हम उससे नहीं मिलेंगे तब तक कोई उससे किसी भी तरह की बात न कहे। उसको कहाँ लिये जा रहे हैं इस बात की जानकारी भी उसे न हो। इन बातों की कड़ी आज्ञा दे रखी है।"

"हम उससे कब मिलेंगे ?"

"राजधानी ही में। वे देरी से यहाँ से रवाना होंगे। इसीलिए दो दिन ठहर कर चलें तब भी हम उनसे पहले वहाँ पहुँच जायेंगे।"

"उसने जो उपकार किया है उसके लिए यह दण्ड होगा। ऐसा न करें—यह मेरा आग्रह है। वह चाहे जो भी हो, स्वयं प्रेरित होकर आया है; इसका कोई कारण होना चाहिए। चाहे वह किसी भी कारण से आया हो, इससे हमारा बड़ा उपकार हुआ है। उसके इस उपकार की हमें जानकारी हो गयी है यह बात उसे मालूम हो जाय तो निश्चित ही उसे बहुत खुशी होगी। उससे राजधानी ही में मिलने की बात उचित नहीं लगती। इतनी लम्बी अवधि तक उस व्यक्ति को यह मालूम न हो कि उसने जो किया उससे सन्निधान प्रसन्न हैं तो इसका उसके मन पर उल्टा प्रभाव भी हो सकता है। सन्निधान की इच्छा भी यहाँ कुछ दिन रहने की है, और उसकी चिकित्सा भी यहीं हो रही है; वह अच्छा हो जाय। हम उससे मिलें, अपनी कृतज्ञता प्रकट करें, अपनी सद्भावना प्रकट करें। क्यों और कैसे मिलें आदि के बारे में क्या राजधानी पहुँचने पर विचार करेंगे ? मुझे तो उसकी इस सेवा से बहुत प्रसन्नता हुई है। हमें विजय भी प्राप्त हुई। कम-से-कम यही दो बातें उसे बता दी जायें। मेरी राय तो यही है, फिर प्रभु की जैसी इच्छा।" बिट्टिदेव ने कहा।

"तुम अभी लौट आओगे, इतने थोड़े समय में हमें जय लाभ हो जायेगा—यह हम सोच भी नहीं सके थे। उसकी सुरक्षा की व्यवस्था की आवश्यकता है यह जानकर और उसे किसी तरह की मानसिक वेदना न हो इसी इरादे से हमने यह सूचना दी। लेकिन अब तुम्हारे कथन पर विचार करना युक्ति-युक्त लगता है। कल प्रातः डाकरसजी को बुलवाएँगे और उनसे परामर्श कर निर्णय करेंगे। काफी समय हो गया, अब विश्राम करेंगे।" बल्लाल ने कहा।

दोनों अपने शयनकक्ष में चले गये।

दण्डनाथिनी एचियक्का और शान्तलदेवी दोरसमुद्र पहुँच गयीं। उनके पहुँचने पर शान्तलदेवी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं कि बोप्पदेवी माँ बननेवाली है। समाचार मिलते ही तुरन्त वह राजमहल की ओर चल पड़ीं। राजमहल में पहले ही यह सूचित कर दिया गया था।

पटरानी पद्मलदेवी शान्तलदेवी की प्रतीक्षा में अपने अन्तःपुर के मुखमण्डप में तैयार बैठी थी। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि चामलदेवी भी वहीं साथ रही। शान्तलदेवी से इन बहिनों में चामलदेवी का बहुत लगाव था। पद्मलदेवी कृतज्ञ थी। बोप्पदेवी उनके प्रति बहुत गौरव रखती थी। शान्तलदेवी यही सोच रही थीं कि तीनों से एक साथ मिल लेगीं परन्तु राजमहल के दरवाज़े पर पहुँचते ही दण्डनाथिनी एचियक्का ने धीरे से उनके कान में कहा, "पहले बोप्पदेवी से मुलाकात होगी या पटरानी से?"

यह सुन शान्तलदेवी को आश्चर्य हुआ। बोलीं, "अभी तो महाराज युद्ध में गये हुए हैं; फिर भी इनसे अलग-अलग मिलना होगा?"

"स्थिति सुधारने का काम तो आपका है। वातावरण तो एक तरह से गम्भीर है।" एचियक्का ने कहा।

"ठीक है। तब चलिए, पहले रानी बोप्पदेवी से ही मिल लें।" शान्तलदेवी बोलीं।

शान्तलदेवी के प्रवेश करते ही बोप्पदेवी ने प्रणाम किया और कहा, "दीदी, मुझे आशीष दें कि बालक हो। अब आप आ गयीं हैं सो आगे सब ठीक हो हीं जायेगा।"

"माँ बननेवाली की आकांक्षा को पूर्ण करना उनके आस-पास रहनेवालों का कर्त्तव्य है। आपकी इच्छा बाहुबली की कृपा से परिपूर्ण होवे। आप तो महाराज की पाणिगृहीता हैं। नाते के हिसाब से हमें आपके पैर पड़ना चाहिए। न कि आपको हमारे। मैं आयु में बड़ी हूँ, फिर भी आपसे पैर छुआने जैसा स्थान मेरा नहीं। यदि मैं जानती कि आप इस तरह करेंगी, तो मैं इसके लिए मौक़ा ही न देती। अब इसे आख़रीबार समझें। आपको ऐसा नहीं करना चाहिए। यह न मेरे लिए श्रेयस्कर होगा, न आपके लिए।"

"वही सही, पैर न छुऊँगी। मेरे लिए यही पर्याप्त है कि आप मुझे दीदी कहकर पुकारने की अनुमति दें। अच्छा, आइए, बैठिए। यादवपुरी कैसी लगी? मुझे भी वहाँ आने की अभिलाषा है।"

"ऐसी कोई बात नहीं, कभी भी पधार सकती हैं। युद्धक्षेत्र से महाराज के लौटने पर साथ ही चलेंगी। सन्निधान की भी अनुमति मिल जाएगी। और हाँ, समाचार सुनकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। अभी और प्रतीक्षा करनी होगी या शीघ्र ही पुत्रोत्सव का भोज मिलेगा?" शान्तलदेवी मुस्कुरा दीं।

"अभी जो असीस दिया, उसके लिए मुँह मीठा कर लें। बाकी बातों पर फिर विचार करेंगे।" कहती हुई घण्टी बजाने को उठी ही थी कि इतने में शान्तलदेवी ने कहा, "मिठाई सभी मिलकर पटरानी के साथ ही खायेंगी। इस खुशी की प्रथम अधिकारिणी तो पटरानी जी हैं। और फिर वे आपकी बड़ी दीदी जो ठहरीं।

बोप्पदेवी कुछ निराश-सी हो गयी। कुछ कहा नहीं। उसके मुख की वह मुग्ध छवि कुछ-कुछ म्लान-सी दिखी।

"क्यों मुझसे कोई ग़लती हो गयी?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"नहीं दीदी, आपका कहना ठीक है। परन्तु ऐसा हो नहीं पायेगा।" बोप्प-देवी ने कहा।

"आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। पटरानीजी आपको बहुत प्यार करती हैं। खासकर तब से जब दण्डनायिकाजी का स्वर्गवास हुआ। उनकी यही अभिलाषा रही कि माँ से भी बढ़कर बोप्पि की देखभाल होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में आपकी इस तरह की आशंका मेरी समझ में नहीं आती। क्यों? कोई ऐसी बात चली है क्या?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"कह नहीं सकती, ऐसी कोई बात चली। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि उनसे पहले मैं माँ बननेवाली हूँ—यह उनके लिए अच्छा नहीं लगा है।"

"ऐसा उन्होंने कहा?"

"कहेंगी? व्यवहार से पता चलता है। अगर मुझसे कोई गलती हो गयी हो तो मैं अपने को सुधार लूंगी। वे बड़ी हैं। मुझे चपत लगाकर गलती को मुँह पर बता सकतीं हैं। परन्तु इस तरह के वाक्-प्रहार को कौन सह सकती है?"

"आपके मन में ऐसे विचार उठने का कुछ कारण भी तो होगा?"

"बातें हुईं। सन्निधान के समक्ष ही बातें हुईं। क्या बातें हुईं उन्हें ज्यों का त्यों बता दूँगी।" कह उस दिन अमराई में जो-जो बातें हुईं थीं, बोप्पदेवी ने उन से लेकर गर्भवती बनने तक सब कुछ विस्तार से कह सुनाया।

"ऐसी छोटी-सी बात को इतना बड़ा नहीं बनाना चाहिए।"

"मैं यह नहीं चाहती। उस दिन सन्निधान ने बताया कि यह सब हँसी-दिल्लगी की बातें हैं। मुझको चिढ़ाने के लिए कही गयी हैं—यही मैं समझती थी। सन्निधान यहीं उपस्थित रहते तो क्या होता, कह नहीं सकती। चेंगाल्वों के साथ के युद्ध का मेरे गर्भवती होने से क्या सम्बन्ध है, आप ही कहिए दीदी? कहने लगी: मेरे पेट में पिता को निगलनेवाला भूत है, इसीलिए यह युद्ध छिड़ा है। ऐसी बात को मैं कैसे सह सकूँगी?" कहती हुई बोप्पदेवी रो पड़ी।

आप ऐसा क्यों सोचती हैं। रोना नहीं चाहिए। विशेषकर इन दिनों में

आपके मन में किसी तरह के बुरे भाव नहीं आना चाहिए। इन सारी बातों का असर गर्भस्थ सन्तान पर पड़ता है। इन सब चिन्ताओं को छोड़कर हँसी-खुशी से रहें।"

"ऐसी बात कहनेवाले भी यहाँ नहीं रहे, दीदी। दिन में हजार बार आपको याद करती थी।"

"अब तो आ गयी हूँ न! सन्निधान और राजासाहब के आने तक मैं यहीं हूँगी।"

"आप राजमहल में ही ठहरतीं तो अच्छा होता।"

"कहीं भी रहूँ एक जैसा है। यदि मेरी माताजी यहाँ होतीं तो मैं यहीं ठहरती। पिताजी अकेले हैं। राजा साहब ने भी वहीं रहने के लिए अनुमति दी है। रोज आती-जाती रहूँगी। आपकी भाभी तो यहीं रहेंगी न? अब उठिये, सब पटरानीजी के यहाँ चलें।" शान्तलदेवी ने कहा।

तीनों पटरानी पद्मलदेवी के यहाँ चली गयीं।

छोटी बहिन के यहाँ शान्तलदेवी के जाने की बात इनको मालूम हो गयी थी। इससे उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगा। फिर भी शान्तलदेवी के प्रति प्रेम भाव के कारण उन बहिनों ने अपने उस असन्तोष को दबाकर समय गुज़ारा।

अन्दर प्रवेश करते ही पद्मलदेवी बोली, "आओ, शान्तला। सन्निधान ने युद्ध में जाने के पहले ही यह बताया था कि तुम यहाँ आओगी। यादवपुर की आबोहवा अच्छी लगी-सी लगती है। कुछ चुस्त-सी लग रही हो। चेहरे पर भी कुछ अधिक लालपन आ गया है।"

"ऐसा कुछ नहीं, जैसी थी वैसी ही हूँ।"

"ऐसा कैसे हो सकता है? तुम हो, राजा हैं, हमेशा का साथ। तब काहे की चिन्ता? हमारी बात ऐसी नहीं। देखो, तुम आयी हो—यह इस अन्तःपुर का भाग्य है। भावी राजमाता भी पधारी हैं।" चामलदेवी ने कहा।

यह सुन शान्तला कुछ असमंजस में पड़ गयी। फिर भी उसने कहा, "बैठिए दण्डनायिनीजी, रानीजी आप भी बैठिए।" कहती हुई शान्तलदेवी भी बैठ गयी।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा। बाद में शान्तलदेवी ने ही खुद घण्टी बजायी। दासी सुग्गला उपस्थित हुई। "पट्टरानीजी की आज्ञा है कि अब नाश्ता यहीं हो। कितना समय लगेगा?" शान्तलदेवी ने कहा।

"सब तैयार है, अभी लायी।" दासी तुरन्त भागी गयी और नाश्ता की थालियाँ और दूध भरे कटोरे लेकर आ पहुँची।

शान्तलदेवी ने कहा, "मेरी एक विनती है। पटरानीजी और रानियाँ मुझे क्षमा करें। आती हुई रास्ते में बाहुबली का दर्शन कर मैंने प्रार्थना की कि सन्नि-

धान विजयी होकर शीघ्र ही लौटें और अभयहस्त वहाँ तक पसारकर यह असीसें कि वे सही सलामत लौट आयें। भगवान् बाहुबली फिर कभी उनका हाथ न छोड़ेंगे। उन्होंने वंशोद्धार के लिए एक अंकुर देने का अनुग्रह किया है, वही हाथ अब विजय प्रदान भी करेगा। अर्हन्त के आशीर्वाद से प्राप्त होनेवाली पोय्सल वंश की सन्तान की और युद्ध में विजय की कामना करते हुए यह मिठाई खायें।"

शान्तलदेवी का आग्रह स्वीकार करते हुए सभी प्रसन्नता पूर्वक मिठाई खाने लगीं। चामलदेवी की बातों से खिन्न बोप्पदेवी भी सहज हो गयी। शुरू-शुरू में जो व्यंग्यभरी बातें होती रहीं वे अब नहीं रहीं। बहुत दिनों बाद सबका इस तरह एक साथ मिलना हुआ था। आज सभी के मन का मैल निकल गया था। शान्तलदेवी ने पूछा, "एक खेल शतरंज का क्यों न हो जाय!"

"हम पाँच लोग हैं न?" बोप्पदेवी ने कहा।

"आप चार जन ही खेलें। मैं पक्का गोट निकाल दिया करूँगी।" एचियक्का ने कहा।

फिर क्या था, शान्तलदेवी ने घण्टी बजायी और देखते-देखते ही खेल की तैयारी हो गयी। चारों ने गोट रखे। पहले खेले कौन यह निश्चय होना चाहिए न?

एचियक्का ने कहा, "सब लोग एक-एक संख्या बताइये। मैं पासा डालूँगी। आप चारों की कही संख्या में से जिसकी संख्या गिरे वे पहले खेलें। यदि किसी की भी संख्या नहीं आयी तो बड़ी रानी ही खेल शुरू करेंगी।

प्रत्येक ने एक-एक संख्या बतायी। बाद में एचियक्का ने पासा खेला। पद्मल देवी ने जो संख्या बतायी वही आयी थी। चौथी बार पासा खेलने पर पद्मलदेवी ने कहा, "मैंने जो संख्या कही वह अगर न भी गिरी होती तो भी मुझी को खेल शुरू करना था।"

"पटरानी को पहले खेलने देने के लिए हम सब तैयार हैं। है न?" कहती हुई शान्तलदेवी ने चामलदेवी और बोप्पदेवी की ओर देखा।

"उन्हें प्रथम स्थान देना हमारा कर्त्तव्य है और वही सही है।" बोप्पदेवी बोली।

"ठीक है। खेल शुरू करने के पहले एक-एक बार पासा खेलकर उसे भगवान् के लिए छोड़ देंगे। पासा खेलने के पहले हम भगवान् के नाम का स्मरण करें। भगवान् से यह प्रार्थना करें: पोय्सल वंश में अंकुरित होनेवाली सन्तान लड़की होगी या लड़का—इसे यह पासा ही बतायेगा। अगर सम संख्या होगी तो लड़की, और असम होगी तो लड़का। जिसके जैसे पासे उसकी वैसी इच्छा। ठीक है न पटरानी जी!" शान्तला ने प्रस्ताव रखा।

"ऐसा हँसी-मजाक़ मेरी यह छोटी बहिन बरदाश्त नहीं करेगी। अगर वह मान

ले तो हमें कोई एतराज़ नहीं।" पद्मलदेवी ने कहा।

"भगवान् की बात कहीं पासे से बदली जा सकती है?" बोप्पदेवी बोली।

पासे डाले गये। पद्मलदेवी ने असम संख्या गिरायी। चामलदेवी ने भी असम संख्या गिरायी। शान्तलदेवी ने भी असम संख्या ही गिरायी। लेकिन बोप्पदेवी ने सम-संख्या गिरायी।

"छोटी रानी की अपनी इच्छा—लड़की। हम सबकी इच्छा—लड़का। छोटी रानी को छोड़ हम सब की एक ही इच्छा रही।" शान्तलदेवी ने कहा।

"तो बात यही हुई कि भगवान् अभी कुछ बताना नहीं चाहते।" एचियक्का ने कहा।

आगे खेल चला। मनचाही संख्या पासे से मिलने के कारण सबसे पहले बोप्पदेवी जीत गयी। उस दिन के खेल में अगर कोई हार गयी तो वह शान्तल-देवी ही थी। वास्तव में शान्तलदेवी गोट चलाने में अधिक होशियार नहीं थी।

पद्मलदेवी ने कहा, "चाहकर खेलने बैठी बेचारी शान्तला। पर हार गयी।"

शान्तलदेवी मुस्कुरा दी। बोली, "मेरी हार में आप लोगों की जीत है। आप लोगों को मन से मैं अपनी ही जो मानती हूँ इसलिए आप लोगों की जीत मेरी हार के दुःख को दूर कर देगी, उसे भुला देगी। हमें अपने जीवन में भी इसी तत्त्व का अनुसरण करना चाहिए। यदि हम अपनी हार पर दुखी हों तो उसके फलस्वरूप हममें ईर्ष्या पैदा होगी। धीरे-धीरे यही ईर्ष्या सब दुखों की जड़ बन जाती है। दूसरों की विजय से हमें आनन्द का अनुभव होने लग जाय तो वहाँ ईर्ष्या के लिए स्थान ही नहीं रहेगा। ईर्ष्या न होगी तो दुःख भी न होगा। मेरी इस हार से मुझे कोई दुःख नहीं है।"

तब तक शाम हो चली थी। शान्तलदेवी उठ खड़ी हुई और पटरानी से बोलीं, "अब आज्ञा दें, फिर दर्शन के लिए आऊँगी।"

"यहीं ठहर जाती तो अच्छा होता।" पद्मलदेवी ने कहा।

"घर पर पिताजी अकेले हैं, इसलिए वहीं पिताजी के साथ रहने के लिए राजा से अनुमति ले आयी थी। फिर भी पटरानीजी का यही आदेश हो कि मैं यहीं रहूँ तो उस आदेश का पालन करूँगी। पिताजी से कहकर आ जाऊँगी।" शान्तलदेवी ने कहा।

"हाँ तो, हेग्गड़तीजी तीर्थयात्रा करने गयी हैं। हेग्गड़ेजी के सुख-सन्तोष के लिए हम क्यों बाधक बनें। कभी-कभी आ जाया करो।" पद्मलदेवी ने कहा।

"जैसी आपकी आज्ञा।" कहकर शान्तलदेवी राजमहल से चल पड़ीं।

एक ही दिन में शान्तलदेवी को मालूम हो चुका था कि रानियों में आपस में हेल-मेल नहीं है। जुदा-जुदा घरों में जन्म लेकर एक ही व्यक्ति के साथ

विवाह करें तो सबका एक मन होना कठिन हो सकता है। लेकिन एक ही माता-पिता की सन्तान होकर इन बहिनों में आपस में आत्मीय भाव न हो तो महाराज की क्या हालत होगी? अधिकार और पद के मोह में पड़ने पर ही मन कलुषित होकर विरसता पैदा करता है। इनकी माँ के कारण एक अनिरीक्षित घटना ही घट गयी। जैसे-तैसे उसे ठीक किया गया। और फिर, इन्होंने प्रेम व्यक्ति से किया न कि उनके पद या अधिकार से। "मुझे वे स्वीकार कर लें यही पर्याप्त है। मुझे रानी न कहें तब भी कोई दुःख नहीं होगा। यदि वे मुझ पर कृपा नहीं करेंगे तो मैं बचूंगी नहीं"—यों गिड़गिड़ानेवाली वही पद्मला अब अपनी ही बहिन से ईर्ष्या कर रही है! उस बहिन की स्वीकृति से ही तो यह पट्टमहिषी बनी। यों ये आपस में ईर्ष्या से अपने मन मैला कर लें तो उस व्यक्ति को, जिन्होंने इनसे विवाह किया है, सुखी कैसे बना सकती हैं? इस स्थिति को बढ़ने नहीं देना चाहिए। इसको रोकने के लिए कुछ-न-कुछ करना ही होगा। महाराज की मानसिक शान्ति और सुख-सन्तोष राष्ट्र-हित की दृष्टि से बहुत ही आवश्यक है। महामातृश्री यदि यहाँ होतीं तो ऐसी बातों के लिए मौका ही नहीं मिलता। राजपरिवार हमारे परिवार के साथ जो आदर-भाव रखता था उसे सही रूप में न लेकर, स्वार्थवश उसके मनमाने अर्थ लगाकर दण्डनायिका ने क्या-क्या नहीं किया? पृष्ठभूमि में विचार करने पर पद्मलदेवी के स्वभाव में उनकी माँ के इन्हीं गुणों का प्रभाव विशेषरूप से लक्षित होता है। मैं पट्टमहिषी हूँ, मेरी कोख से उत्पन्न पुत्र को ही राजगद्दी मिलनी चाहिए—यों चाह रखना एक स्वाभाविक बात है। परन्तु उसे यह कैसे भरोसा है कि उसके लड़का ही होगा। अच्छा, इस बात को जाने दें। अब गर्भवती बोप्पदेवी की सन्तान लड़का ही होगा—इस बात का भी क्या भरोसा है? यदि कभी महाराज ने यों ही यह बात कही हो कि मेरी प्रथम पुरुष-सन्तान ही भावी महाराज होगी तो यह समस्या भी तब उठेगी जब ऐसा मौका आयेगा। राष्ट्र का हित चाहनेवाले बुजुर्ग परम्परागत रीति की दृष्टि से जैसा निर्णय करेंगे वैसा मान लिया जाय तो बात यहीं समाप्त हो सकती है। राजगद्दी पर बैठने प्रभु एरेयंग के साथ स्पर्धा करनेवाला कोई नहीं था। फिर भी पट्टाभिषिक्त होने का सुयोग उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। यह समझकर कि सब कुछ हमारे ही हाथ में है, हम कुछ-का-कुछ सोचकर तरह-तरह की कल्पना कर बैठें तो क्या हालत होगी? इसलिए युद्धक्षेत्र से महाराज के लौटने पर, सबको आमने-सामने बिठाकर उस सम्बन्ध में खुलकर बातें हो जानी चाहिए। तब तक महा-मातृश्री भी पधार जायें तो कितना अच्छा रहे! ?

राजमहल की इस परिस्थिति का परिचय दे दूँ तो वे इसे अन्यथा नहीं लेंगे। यह सब विचार कर अपने आगे के कार्यक्रम की एक स्थूल रूपरेखा शान्तलदेवी ने बनायी। उन्होंने पिताजी से विचार-विमर्श किया।

हेग्गड़ेजी को लगा कि राजमहल के भीतर एक गम्भीर और गूढ़ वातावरण बन गया है। वह सोचने लगे कि निश्चित ही कोई अपने स्वार्थ को साधने की दृष्टि से अन्दर-ही-अन्दर उकसा रहा होगा और वह वहीं कहीं होगा। यह विचार आते ही उन्होंने निश्चय किया कि शान्तला राजमहल में ही रहे। यों दोरसमुद्र पहुँचने के एक पखवारे के अन्दर वह राजमहल में ही रहने लगीं।

राजमहल पहुँचने के दो-तीन दिन बाद, एक दिन दण्डनाथिनी एचियक्का से रानियों के बीच उत्पन्न इस अनबन के बारे में शान्तलदेवी ने बातचीत की। उन्होंने कहा कि शायद कोई इन रानियों के कान भरकर भड़का रहा हो। ऐसे लोगों का पता लगाना चाहिए। तभी शान्तलदेवी को चट्टला की याद आ गयी। बोलीं, "उसे तो अब तक यहाँ पहुँच जाना चाहिए था।"

"हाँ तो। उसने केवल चार दिन अपनी दीदी के यहाँ रहकर लौटने की अनुमति आपसे ली थी और किक्केरी में जा ठहरी। वह होती तो अच्छा था, ऐसी बातों में वह बहुत निपुण है। वह इस बात का पता लगा लेती कि राजमहल की कौन दीवार क्या बोल रही है।" एचियक्का ने कहा।

"ऐसी हालत में उसे बुलाने के लिए कौन किस को भेजे? बुढ़िया ने कहा होगा कि दो-चार दिन और ठहरकर जाए, इसपर वह ठहर गयी होगी। कल ही किसी को भेजकर बुलवा लेना चाहिए। आदमी भेजने पर एक सप्ताह के अन्दर यहाँ आ पहुँचेगी। अगर अच्छा सवार हो, घोड़ा भी अच्छा हो तो एक ही दिन में वहाँ पहुँचा जा सकता है। किक्केरी यहाँ से चार कोस की दूरी पर ही तो है न? घोड़े को भी आराम देकर दो दिन के अन्दर पहुँच सकता है।" पिताजी के पास शान्तलदेवी ने यों समाचार भेज दिया।

मारसिंगय्या ने आकर शान्तला से सारी परिस्थिति समझी और अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहा, "मायण यहीं है। उसी को भेज देंगे।"

"ठीक है। मैं सोच रही थी कि कहीं हमारे रायण को भेजने को कहें।" शान्तलदेवी ने कहा।

"सो भी हो सकता था। लेकिन मायण सारी बातें जानता है।"

उसे कहला भेजा गया।

मायण के आने पर शान्तलदेवी ने सारी बातें समझा दीं।

सुनकर मायण ने कहा, "किक्केरी में उसके कोई रिश्तेदार नहीं हैं। उसकी कोई दादी-नानी नहीं जो जीती-जागती है। उसने रानीजी से झूठ कहा है। वह तो उसका जन्मजात स्वभाव है। जनम के साथ आये गुण मरने पर भी नहीं

मिटेंगे।"

"वह मुझसे झूठ क्यों कहेगी ? मैंने उसकी नानी-दादी के बारे में कोई ब्योरा नहीं पूछा। कोई दूर की नानी-दादी हाल में वहाँ रह रही हो। एकबार वहाँ हो आना अच्छा है।" शान्तलदेवी ने कहा।

"मुझसे ज़्यादा, उसके बारे में रानीजी जानती हैं। और किसी से झूठ बोले तो एक बार क्षमा भी किया जा सकता है। आपसे झूठ कहे तो सहा नहीं जाएगा। कारण कुछ और ही होगा। उस औरत के जाने के रास्ते का पता नहीं लग सकेगा। भाड़ में जाय वह···"

"मायण, तुम अब और भी अधिक ज़ल्दबाज हो गये हो। बिना सोचे-समझे ही निर्णय पर पहुँच जाते हो। अभी तुम्हें राजमहल का काम करना है। समझ लो कि चट्टला से तुम्हारा कोई सम्बन्ध ही नहीं है। उसे हमारे साथ यहाँ सही-सलामत आ पहुँचना चाहिए था। यह राजाज्ञा थी। रास्ते में ठहर जाने की अनुमति मैंने दे दी, यह हमारी ग़लती है। राजा के लौटने से पहले उसे यहाँ आ जाना होगा, इसलिए तुरन्त किक्केरी जाकर उसे बुला लाओ।" शान्तलदेवी ने कहा।

"जैसा रानीजी ने कहा, मैं ज़ल्दबाज हूँ। मैं वहाँ जाऊँ और वह किसी दूसरे आदमी के साथ मज़े में हँस-खेलती दिख गयी तो मुझे ग़ुस्सा आ जाएगा, तब मैं कुछ-का-कुछ कर बैठूंगा। इसलिए किसी दूसरे को यह काम करने को कहें और मुझे बरी कर दें तो मैं आपका चिरऋणी हूँगा। यह चरणसेवक रानीजी से विनती करता है।" मायण ने सिर झुका लिया।

"किसी दूसरे के साथ उसे हँसी-खेल करना होगा को वह किक्केरी में रहेगी ही क्यों ? इसलिए तुम हो आओ। यह बात तुम्हारी पत्नी से सम्बन्धित है। तुम स्वयं जाओ और सब प्रत्यक्ष देख लो तो तुम्हारे लिए भी यह अच्छा होगा। दूसरों की बातों पर विश्वास करने की जरूरत ही न होगी। तुम हो आओ। फिर भी यदि तुम्हें कोई ऐसी बात दिखे तो ग़ुस्सा मत करना। वहाँ के हेग्गड़ेजी को उन सभी के बारे में कहकर पकड़वा देना जिन-जिन पर तुम्हें ग़ुस्सा आये। बाद में उन सबकी तहकीकात कर लेंगे।" शान्तलदेवी ने कहा।

मायण कोई उत्तर दिये बिना मौन खड़ा रहा।

"अब भी शंका कर रहे हो?"

"रानीजी के लिए तो जो भी सफेद है वह सब दूध ही लगता है। सफेद दिखने पर भी वह फटा दूध है। उसे भाड़ में जाने दीजिए, रानीजी।"

"मेरी समझ में ही नहीं आता कि तुम क्या कह रहे हो, मायण। अब तुम ऐसा कह रहे हो ! पहले तो जग्गदेव के साथ युद्ध समाप्त होने के बाद, तुमने कहा था कि स्वयं उसके साथ रहकर परिवारी बनकर रहोगे, उसकी कोई ग़लती

नहीं। बेचारी वह बूढ़ी बोली थी—'तुम दूसरी जगह जा सको, सुख से रहो, मैं अच्छा हूँ।' और अब तुम भी कह रहे हो ? न, ठीक नहीं।"

"अगर वह मेरी इच्छा के अनुसार मेरे साथ रहती तो अच्छा था। उसके इनकार करने का कारण भी कुछ और है। पत्नी बनकर वह आश्रित रहेगी तो उसे अभिलषित स्वाद मिलेगा भी कैसे ? अभिमान से उसने गुजर-बसर की व्यवस्था भी कर ली है। इससे उसे स्वेच्छाचारी बनकर रहने का मार्ग मिल गया। किसी के आश्रय में रहने की जरूरत ही नहीं रह गयी उसे। इसीलिए बुजुर्गों ने कहा है—'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति'—स्त्री को स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिए।"

"किसी बात को लेकर, किसी और बात के साथ तुलना करना उचित नहीं। अभी हमारे सामने उस सिद्धान्त का प्रश्न नहीं है। तुमसे इस बात पर बहस करने का प्रयोजन भी नहीं। सारांश यह निकला कि तुम्हें जाने की इच्छा नहीं। घोड़े को पानी जबरदस्ती से नहीं पिलाया जा सकता, यह मालूम है। जाओ, तुम अपने काम पर जाओ। मैं कुछ दूसरी व्यवस्था कर लूँगी। जब तुम्हारा यह सिद्धान्त ही है कि स्त्रियों को स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिए, तब तुम मेरी बात ही क्यों मानोगे ? मैं भी तो स्त्री हूँ।" शान्तलदेवी ने कहा।

"न, न, मैंने रानीजी को दृष्टि में रखकर यह बात नहीं कही। मैं ही जाऊँगा।"

"इस तरह घुमाव-फिराव की जरूरत नहीं। पुरुष के लिए स्त्री एक भोग्य वस्तु है, उसे न स्वतन्त्रता है, और न अभिलाषा ही। रहना भी नहीं चाहिए। वह तो पुरुष के सुख की ही सामग्री है। पुरुष उसे जैसा नचाये वैसा नाचती रहे। पुरुष लात मारकर उसे बाहर कर दें तब भी उसे मूक बनकर रहना चाहिए। उसने कुछ किया हो या न किया हो, पुरुष जो भी आरोप लगाये उन सभी को मुँह बन्द करके चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिए—यही, इस तरह के विचार ही हमारे समाज के लिए कंटक से बने हुए हैं। तुम-जैसे पुरुष ही इसका कारण हैं। तुम जा सकते हो। पोय्सलों का राजमहल अनाथ नहीं है। अभी धर्मश्रद्धा रखनेवाले, राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखनेवाले, दूसरों पर गौरव रखनेवाले, स्त्री के लिए स्थान-मान की जरूरत समझनेवाले असंख्य पुरुष राजमहल के सहायक बने हुए हैं।"

मायण मूक बनकर ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा।

"क्यों खड़े हो ? तुम जा सकते हो। पोय्सल रानी के साथ रहनेवाली एक दासी के सम्बन्ध में कोई खबर नहीं मिली। उसका पता लगना चाहिए। पता न लगे तो राज-परिवार बदनाम होगा, अन्तःपुर बदनाम होगा। ऐसा नहीं होना चाहिए। जाने को कहने पर भी न जाकर, अपनी ही बात को ठीक मानकर, उसी की रट लगाये बैठे हो ! तुममें स्त्री की मान-मर्यादा की रक्षा करने की कर्तव्य-

निष्ठा ही नहीं। न ही तुम पुरुष का धर्म जानते हो। अप्पाजी, हमारे रायण को भेज दीजिए। इस मायण को किसी भी कारण से आइन्दा मेरे पास आने की जरूरत नहीं। स्त्री के प्रति गौरव-बुद्धि न रखनेवाले इसकी सेवा की मुझे आवश्यकता नहीं। यह इधर खड़ा क्यों है? अप्पाजी इससे कहें कि यह यहाँ से जाए।" शान्तलदेवी ने कहा।

मारसिंगय्या ने अपनी बेटी को इस तरह निष्ठुर होकर बात करते कभी न देखा था। एक तरह से वह हक्का-बक्का रह गये। मायण विश्वासपात्र व्यक्ति भी है, साथ-साथ उसे चट्टला के प्रति अनुकम्पा भी आयी थी। उसके मन में पुरानी बातें उभर आयीं तो वह कुछ जोश में आ गया—यही मारसिंगय्या ने सोचा। वे चिन्तित होने लगे कि क्या-से-क्या हो गया! इस प्रवृत्ति को अब और नहीं बढ़ने देना चाहिए—यह सोच मारसिंगय्या ने कहा, "मायण, खड़े रहने से क्या प्रयोजन? रानीजी ने कह दिया तो बात ख़तम हो गयी। जाओ, कर्त्तव्यच्युत मत होओ! अनावश्यक वाद-विवाद मत किया करो।"

"जो आज्ञा।" कहकर मायण चल पड़ा।

"अनुमति हो तो मैं···" मारसिंगय्या कहने ही वाले थे कि इतने में शान्तलदेवी ने उन्हें रोक दिया और कहा, "हाँ, हाँ, समझ गयी। कहने की जरूरत नहीं। अप्पाजी, मैं जानती हूँ कि मायण एक विचित्र मनोवृत्ति का आदमी है। वह निष्ठावान् है, विश्वासपात्र है—यह भी मैं जानती हूँ। उसे मैंने अब जो दवा दी वह उस पर अच्छा प्रभाव डालेगी। मुझे उस पर गुस्सा नहीं। उसका मुँह बन्द करने लिए मुझे कठोर बनना पड़ा। चट्टला बहुत अच्छी स्त्री है। वह झूठ बोलती है इस बात पर मुझे विश्वास नहीं होता। वह दूसरे पुरुष के साथ मौज उड़ाती है—यह बात मैं मान ही नहीं सकती। यही उसके बारे में ऐसी बातें कहता फिरता है तो लोगों का मुँह बन्द कौन करे? अप्पाजी, आप भी कहें, निश्चित रूप से किसी की शीलभ्रष्टता का प्रमाण न मिले तब तक उस स्त्री को शीलभ्रष्टा नहीं कहना चाहिए। अपनी इच्छा से जो भ्रष्ट-शीला होगी उसे कोई कुछ भी कहे, उसपर उसका कोई असर होगा ही नहीं। परन्तु जो स्त्री शील को ही स्त्रीत्व की निधि मानकर चलती है उसके बारे में दुष्प्रचार हो तो उसका सामना कर सकने की दुर्बलता के कारण वह अन्दर-ही-अन्दर घुलती रहेगी। अकारण ही पुरुष को स्त्री के मन को नहीं दुखाना चाहिए। है न पिताजी?"

"जल्दबाजी में जो वह बक गया, वह दूसरों के कानों में न पड़े, इसका ख्याल रखना है। अब मायण ही को किक्केरी भेजना है न?" मारसिंगय्या ने पूछा।

"वह आज रात को आपके पास आएगा। कहेगा, 'रानीजी से कहकर मुझे ही भेजने की व्यवस्था करावें।' तब कहिए, 'वह किसी भी हालत में हो, उसपर गुस्सा न करके उसे गौरव के साथ बुला लाओगे तो जाओ, नहीं तो मत जाओ।

कुछ-का-कुछ हो जाय तो क्या होगा ?' यों उसे समझाइये। बाद में जब वह मान जायेगा तो फिर उसी को भेज देंगे।"

"अगर वह न आया तो ?"

"तो फिर रायण को भेज दीजिए।"

"रायण को भेजना तो मेरे हाथ की बात है। मायण को भेजना हो तो, माचण दण्डनाथ से कहकर ही भेज सकते हैं।" मारसिंगय्या ने कहा।

"मैं ख़ुद उन्हें ख़बर कर दूंगी। मायण ही जाय, नहीं रायण ही सही। मैं दण्डनाथ जी से कह दूंगी।"

"ठीक, तब मैं चलूं ?"

"अच्छा अप्पाजी।"

मारसिंगय्या चले गये। इसके बाद एचियक्का ने कहा, "जब आप लोग बातचीत कर रहे थे तब बीच में बोलना उचित न था। समझ लीजिए कि जैसा मायण ने कहा, चट्टला ने रानीजी से अगर झूठ ही कहा हो तब क्या करेंगी ? मैं तो अपढ़ हूं। लोगों के साथ सम्पर्क भी कम है। मगर मेरे मालिक एक बात कहते रहते हैं : "दुनिया में बहुत भले को देखना हो तो स्त्री में ही देख सकेंगे। और बड़ी से बड़ी बुराई देखना हो तो उसे भी स्त्री में ही देख सकोगे। पति को ज़हर पिलाकर, मृत्यु की पीड़ा का अनुभव करते रहनेवाले पति के सामने ही पराये के साथ हँसती स्त्री को उन्होंने देखा है···इसलिए···"बात आगे कहनेवाली ही थी कि बीच ही में शान्तलदेवी बोल उठीं—

"इससे यह कहना ठीक नहीं कि चट्टला भी उसी तरह की है। उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका शील भ्रष्ट हुआ फिर भी वह शीलभ्रष्ट नहीं है। वह ऐसा निन्दनीय व्यवहार करेगी—इस निर्णय पर पहुँचना सही नहीं है। पुरुष की दुर्दमनीय प्रवृत्ति के कारण परेशान होकर स्त्री अपने जीवन को बिगाड़ लेती है। बिगाड़नेवाले पुरुषों के ही कारण स्त्री बिगड़ती है न ? दोष किसका ? अबला स्त्री का या उसे बिगाड़नेवाले पुरुष का ? आपको चट्टला का पूरा क़िस्सा मालूम नहीं, दण्डनाथिनीजी। वह एक विशिष्ट व्यक्तित्ववाली स्त्री है। जीवन में बहुत अन्याय का शिकार बनी है। उस अन्याय की स्मृति ही उसके जीवन की समस्त पीड़ा है, जीवन में व्याप्त दुःख है। उसके जीवन की कहानी को जो जानते हैं, उनका कर्त्तव्य है कि उसके उस दुःख को भुलाने का यत्न करें। अब उसके बारे में चर्चा काफ़ी हो चुकी। उसके किक्केरी से यहाँ पहुँचने तक राजमहल में उत्पन्न इस द्वेष, ईर्ष्या से कलुषित वातावरण के विषय में कुछ तहकीकात करें, यह जानने की कोशिश करें कि ऐसा कलुषित वातावरण बनाने के पीछे किसी का हाथ है या नहीं। अब चलिये, भोजन का समय हो आया।"—शान्तलदेवी कहती हुई वहाँ से उठीं। रानियों को भी साथ लिया और भोजन करने चली गयीं।

शान्तलदेवी के अभिप्राय के अनुसार मायण मारसिंगय्या के पास नहीं गया। इसलिए दूसरे ही दिन मारसिंगय्या ने रायण को किक्केरी भेजकर शान्तलदेवी को सूचित कर दिया।

शान्तलदेवी ने इतना ही कहा, "ठीक है।" फिर यह बात उसके दिमाग़ में आयी ही नहीं। दिन गुज़रते गये। एक सप्ताह बाद रायण लौटा। उसने अपनी किक्केरी-यात्रा का सारा विवरण यों दिया: "सारी किक्केरी को छान डाला। वहाँ किसी को पता तक नहीं कि चट्टलदेवी नामक कोई स्त्री भी है। चट्टलदेवी ने जिस का नाम बताया था उस नामवाली कोई स्त्री किक्केरी में है ही नहीं! दर्याफ़्त करने पर यही मालूम हुआ कि हाल में उस गाँव में कोई नयी औरत ही नहीं आयी। वहाँ के हेग्गड़े ने बताया कि मेरे जाने से दो दिन पहले कोई एक व्यक्ति उस स्त्री को ढूँढते आया था तो सारे गाँव में दर्याफ़्त किया गया था। मैंने उन्हें अपना परिचय दिया था, इसलिए पूछा कि वह दूसरा आदमी कौन था? उन्होंने कहा, 'उसने अपने को उस औरत का कोई निकट सम्बन्धी बताया था। नाम भी कुछ बताया था पर अब मुझे याद नहीं। वह बहुत जल्दी में था। बहुत उम्र नहीं थी उसकी, यही कोई तीस-पैंतीस का रहा होगा। उसके बाल कुछ लाल मिश्रित काले रंग के थे।' पता नहीं लगा कि वह कौन होगा! मुझे कुछ सूझा भी नहीं, यों ही लौट आया।"

यह सुनकर शान्तलदेवी ने उसे भेज दिया और स्वयं सोचती बैठी रहीं: पहले उसकी खोज में जो गया वह मायण ही है; अप्पाजी (पिताजी) से भी बिना कहे चला गया है। परन्तु दण्डनाथजी की आज्ञा के बिना जा भी कैसे सकेगा? उनसे दर्याफ़्त करने पर पता लग जाएगा। जब वह वहाँ न मिली तो उसकी खोज़ में शायद अन्यत्र गया हो; उसे उसकी गति-विधि का कुछ अंदाज़ कहीं से लगा होगा इसलिए शायद अभी तक नहीं लौटा। उसके लौटने तक उसका कुछ भी पता नहीं लगेगा। जो भी बात हो, दण्डनाथजी से दर्याफ़्त करनी होगी; यों सोचकर शान्तलदेवी ने दण्डनाथजी के यहाँ ख़बर भेज दी। माचण दण्डनाथ ने कहला भेजा—"उसने कहा कि कोई मनौती है, बेलुगोल जाना है, लौटने में एक पखवारा लग जाएगा, अनुमति दें। इसलिए उसे अनुमति दी गयी थी।"

शान्तलदेवी सोचने लगीं, "चाहा कुछ, हुआ कुछ और ही। अब उपाय ही क्या है।" एक-दो दिन यों ही विचार करते निकल गये। "अब इससे क्या लाभ? पहले तो यह जानना है कि इन रानियों में आपस में यह अनबन क्यों है? इसके पीछे क्या प्रोत्साहित करनेवाले भी कोई हैं? इस बात का पता लगाना ही होगा।" शान्तलदेवी मायके से राजमहल में जब आयी तब गालब्बे को साथ लेती आयी थी। चट्टला का पता न लगने पर, पता लगाने का यह काम इसी को सौंप दिया।

दोरसमुद्र के राजमहल का जब विस्तार किया जा रहा था तब वहाँ की विशाल और मनोज्ञ फुलवारी में एक सुन्दर केलीगृह का भी निर्माण किया गया था। महाराज ही यहाँ जब न रहें तो उस केलीगृह का उपयोग भी कौन करे? बागवानी में दिलचस्पी होने के कारण शान्तलदेवी एक दिन शाम को गालब्बे और बिट्टिगा को साथ लेकर उस उद्यान में गयीं। जाने पर उन्हें उस केलीगृह के अन्दर से किसी की हँसने की आवाज सुनाई पड़ी। शान्तलदेवी ने कहा, "गालब्बे, बिट्टिगा को मेरे हाथ में दो, मैं वहाँ उस चमेली के पास रहूँगी। महाराज के इस केलीगृह में कौन है—ज़रा देख के आ।" गालब्बे धीरे से उस जगह पहुँची। वहाँ उसे स्त्री-पुरुष दोनों की आवाज सुन पड़ी।

केलीगृह में स्त्री कह रही थी : "तुम बहुत बुरे हो, तुमने इस तरह चुलह-बाज़ी कर गुदगुदाया कि इतनी तेज हँसी आ गयी। कोई सुन ले तो? महाराज राजधानी में नहीं हैं। हमें यह मौक़े की जगह मिल गयी है। किसी को पता तक न लगे इस तरह यहाँ हम आते-जाते रहते हैं। यदि कोई महाराज के केलीगृह में हमें देख ले तो हमारी इतिश्री हो जाएगी।"

पुरुष कह रहा था : "यहाँ अभी कोई भूत भी नहीं भटकेगा। और फिर, इस धूल-भरे पलंग का उपयोग कर हम इसको बरबाद होने से बचा रहे हैं। इस-लिए हम जो कर रहे हैं वह अच्छा ही तो कर रहे हैं। मौक़ा मिलता है तो उसका सुख भोगना ही चाहिए। तुम्हें मैं हँसाऊँ और तुम हँसो, तभी सच्चा मज़ा आता है।"

"सो तो ठीक है। मैं भी यह चाहती हूँ, परन्तु कोई सुन ले और हम फँस जाएँ तब क्या हाल होगा?" स्त्री की आवाज थी।

"यह तो दूर एक कोने में है। यहाँ तक कौन आता है, छोड़ो, रहने दो। ···अच्छा फिर आगे क्या हुआ?"

"क्या? कौन-सी बात?"

"वही, उस दिन कहा न, रानियों में अनबन है?"

"धत् तेरे की, संग-सुख की चाह से चोरी-छुपे आयी तो फिर ये अनबन की बात क्यों? सो तो बहुत है पर इस समय मत पूछो। अँधेरा होने से पहले मुझे घर पहुँचना है।"

"तुम्हारा पति तो है नहीं, वह तो युद्ध में गया है। उसके ज़िन्दा लौटने तक···"

"ऐसी बुरी बात मत कहो। वह जीवित बना रहे तभी कुशल है।"

"क्यों?"

"तुम पुरुष लोग क्या जानो? सुख पाना मात्र जानते हो।"

"क्या सुख अकेले को ही मिलता है?"

"दोनों को है, परन्तु स्त्री के लिए उससे आगे कुछ और भी है। उस तक़लीफ़ को तुम क्या जानो। अभी हमल टिककर मेरे दो महीने हो गये थे। कुछ दवा-दारू करके हमल गिराया है।"

"अगर वह होता तो इसे गिराने की नौबत नहीं आती—यही न? ओह, कितनी दूर की सोच रही हो! मैं समझ नहीं पाया था। सो तो ठीक, यह बताओ वह दवा तुम कैसे जान गयी?"

"मैं क्या जानूँ, यहाँ एक दाई है वही यह सब बात जानती है।"

"तो क्या तुमने उससे कहा?"

"मैं ऐसी बेवकूफ हूँ? उससे दवा ली और कहा कि किसी बड़े घर की स्त्री के लिए चाहिए, कुछ अनहोनी बात हो गयी है। एक-बार की दवा के लिए चार मुहरें देनी पड़ीं।"

"अच्छा, जाने दो; मैं दे दूँगा। तुम चिन्ता मत करो। बड़ों के घर का नाम बताया न? किसका बताया?"

"इस सबसे तुम्हें क्या मतलब?"

"बता दोगी तो कौन-सी गलती हो जाएगी?"

"पुरुषों का भला क्या विश्वास?"

"क्या मैं ऐसा आदमी हूँ?"

"यह सवाल अपनी घरवाली से जाकर पूछो। कह दिया—नहीं कहूँगी, ख़तम।"

"अच्छा, मत कहो; जाने दो।"

"अच्छा, अब फिजूल की बातें खूब हो लीं। मुझे जल्दी घर जाना है। देर हो गयी तो मेरी सास खोजती हुई राजमहल पहुँच जाएगी।"

"ऐसा?"

उन लोगों की बातचीत बन्द हो गयी। गालब्बे दो-चार क्षण वहीं खड़ी रही। वहाँ से ज़ल्दी-ज़ल्दी शान्तलदेवी के पास आयी और यह सारा वृत्तांत उसने कह सुनाया।

शान्तलदेवी वहाँ से उठकर ज़ल्दी-ज़ल्दी उद्यान से बाहर आयीं। बिट्टिगा को गोद में ले गालब्बे उनके साथ हो गयी।

बिट्टिगा को पुनः अपनी गोद में लेकर राजमहल की ओर जाते हुए शान्तलदेवी ने गालब्बे से कहा, "गालब्बे! तुम इस द्वार से दूर आड़ में रहकर देखो कि वे दोनों कौन हैं?" और ख़ुद चली गयीं।

गालब्बे उस द्वार पर आड़ में छिपकर देखती रही। बड़ी देर बाद वह वहाँ से लौटी। शान्तलदेवी को उसने बताया, "वह आदमी उस उद्यान से बड़ी सतर्कता से बाहर आया। फिर उसने खड़े होकर इर्दगिर्द देखा, और फिर दो बार ताली

बजाकर चल पड़ा। इसके थोड़ी देर बाद वह स्त्री एक फूलों से भरी टोकरी लेकर सहज ढंग से ही बाहर आयी और चली गयी। मैंने राजमहल की सभी दासियों को देखा नहीं। सभी से परिचित नहीं हूँ, इसलिए मैं उसका नाम नहीं जानती। परन्तु उसे पहचान सकती हूँ।"

"उनके नाम-धाम का पता लगाओ। नहीं, नहीं, मैं जब रहूँ तब वे इधर चलते-फिरते नजर आ जायें तो मुझे संकेत कर देना।" शान्तलदेवी ने कहा।

"रानीजी उसे काम से हटा सकती हैं न?"

"नहीं, उसे काम से हटाने पर हमें कई बातें मालूम नहीं होंगी। नीतिभ्रष्ट लोग ही कई तरह के अन्यायों में सहायक बनते हैं। इनके प्रति सतर्क रहना; यह देखते रहना कि वे किस-किससे मिलते हैं, और मिलते समय सतर्क रहकर मिलते हैं या सहज रीति से—इन बातों पर विशेष ध्यान देकर उनकी चाल-चलन का पता लगाती रहना। सुन सकती हो तो आपस में जो बातें होती हैं उनको ऐसा छिपकर सुनना कि जिससे तुम उनकी नज़र के सामने न पड़ो।" शान्तलदेवी ने कहा।

उस दिन से गालब्बे बिट्टिगा की देखभाल के काम से छुट्टी पा गयी। वह जो भी काम करेगी, साहस के साथ कर सकेगी। पहले एक बार बाघ के पिंजड़े में जाकर उसे पकड़ लायी थी। वह ऐसी साहसी महिला थी। किसी से डरनेवाली नहीं थी।

उस दिन से उस भ्रष्टशील औरत और उसके रखैल कामुक पुरुष—दोनों पर वह सतर्क दृष्टि रखती रही। शान्तलदेवी को भी, दूर से उनको देखने का मौक़ा मिल गया। उन्हें लगा कि उनके यादवपुर चले जाने के बाद, शायद इन दोनों की नियुक्ति हुई है।

शान्तलदेवी को अच्छा नहीं लग रहा था। बहिनें भी एक साथ मिलती तो थीं। परन्तु इस मिलन में परस्पर प्रेम और अपनेपन का भाव दिखता-सा नहीं लगता था। लगता कि वे हृदय से नहीं, उसके दाक्षिण्य के वशीभूत होकर मिलने का रस्म अदा कर रही हैं। शान्तलदेवी को मायके से राजमहल में आये इस तरह एक महीना हो गया था।

तभी पट्टरानी पद्मलदेवी के जन्मोत्सव का दिन आया। राजमहल के पुरोहितजी ने आकर प्रधानजी को यह सूचना दी। प्रधान गंगराज ने, दण्डनायक माचण से विचार-विनिमय करके, जन्मोत्सव को मनाने की रीति और व्यवस्था के सम्बन्ध में पट्टरानी से परामर्श करने के लिए एक विज्ञप्ति उनके पास भेजी।

पद्मलदेवी सोचने लगी—"मैं पट्टमहादेवी हूँ इसीलिए न मुझे यह गौरव प्राप्त है! मामा स्वयं मेरे पास विज्ञप्ति भेजते हैं। भाई भी विज्ञप्ति भेजते हैं। ऐसे

गौरवशाली स्थान पर मैं इस वक़्त रह रही हूँ। कल यदि मैं राजमाता नहीं बन सकती तो मेरा यह स्थान हास्यास्पद बनेगा न ! महाराज के लौट आने पर इस बात का निर्णय हो ही जाना चाहिए। अगर शान्तला यहाँ रहेगी तो पलड़ा किस तरफ भारी होगा, काँटा किधर झुकेगा, कह नहीं सकती। इसलिए युद्धक्षेत्र से महाराज के लौटते ही इन दोनों को यादवपुर भेज दूँ तो तो मेरा काम शायद आसान हो जायेगा। लौटने के बाद, महाराज को पूरी ऋतु मेरे ही साथ रहना होगा न ! तब ठीक कर लूंगी। अन्यत्र जो कार्य नहीं सधता, उसे अन्तःपुर में साधा जा सकता है।" यह सब सोच-विचार कर उसने निर्णय किया, "जब महाराज युद्ध-क्षेत्र में हैं तो वर्धन्ती का यह उत्सव आडम्बरपूर्ण न हो, निमित्तमात्र के लिए मनाया जाय, और राजमहल तक ही सीमित हो।"

अपने इस निर्णय की सूचना प्रधानजी और दण्डनाथ माचण दोनों को दे दी। प्रधान गंगराज ने कहा, "ठीक है, पट्टमहादेवी के विचार बहुत उत्तम हैं, हमें भी स्वीकार है। फिर भी यह अच्छा है कि दूसरी रानियों से भी पूछ लें। यह लौकिक व्यवहार की बात है।" उन्हें मालूम था कि रानियों में परस्पर अनबन है और ईर्ष्या भी है।

"यह तो हमारी अपनी बात है। दूसरी रानियों की राय की इसमें क्या जरूरत ? जब महाराज यहाँ नहीं हैं तो क्या वे धूमधाम चाहेंगी ? इसमें लौकिक व्यवहार की क्या बात है ?" पद्मलदेवी ने कहा।

"महाराज यहाँ होते तो इस सम्बन्ध में बात करने के लिए यहाँ तक आने की हमें आवश्यकता ही नहीं पड़ती। महाराज जब तक युद्धक्षेत्र में हैं तब तक राजमहल में कोई भी कार्य करना पड़े तो सब रानियों से पूछकर ही निर्णय करने का आदेश है।"

"मैंने अपनी राय बता दी; फिर जैसी आप लोगों की इच्छा।" पद्मलदेवी ने बात को वहीं समाप्त कर दिया।

"अच्छा।" कहकर दोनों बुज़ुर्ग वहाँ से चल दिये।

उनके चले जाने के पर पद्मलदेवी ने घण्टी बजायी।

दासी दामब्वे ने उपस्थित होकर प्रणाम किया।

पद्मलदेवी ने उसे आदेश दिया, "जाओ, प्रधानजी और दण्डनायक किस तरफ गये, देखकर मुझे बताओ।"

दामब्वे तुरन्त चल पड़ी।

पद्मलदेवी गुस्से से तमतमा रही थी: "तो क्या महाराज समझते हैं कि पट्टरानी दासी मात्र है। राजमहल के कार्यों को करना हो तो, उन छोकरियों से क्यों पूछना होगा ? इसका क्या माने ? साफ है—वह बोप्पि गर्भवती हुई, वह अकेली वंश का उद्धार करनेवाली, वही सबसे मुख्य है, उसके कहे अनुसार

राजमहल के कार्य-कलाप सम्पन्न हों, यही न ?" दुर्बलता दिखायें तो लोग सवार ही हो जाएँगे। अगर मैं अपने स्थान और पद को और मजबूत न बना रखूँ, तो हमारे दास-दासियाँ भी हमें धूल बराबर समझने लगेंगे। मैं ऐसी स्थिति नहीं आने दूँगी।"

इधर दामब्बे प्रधानजी के पीछे-पीछे चली। उसने देखा कि वे सीधे अपने कार्यालय में चले गये हैं। लौटकर उसने अपनी मालकिन को यह बता दिया। पद्मलदेवी के मन में यह शंका थी कि वे उसकी बहिनों से विचार करने गये होंगे। वे ऐसे मूर्ख थोड़े ही हैं, ऐसा क्यों करने लगे ? अच्छा, पहले से महाराज मुझे ही चाहते थे न ? ये दोनों रानियाँ बनीं मेरी पूँछ बनकर। आज मामला मेरे साथ है सही, कल अगर बोप्पि को लड़का हो और मुझसे पहले यह लड़के की माँ बने, तब इसका भी रंग-ढंग बदल जायेगा। किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसलिए अब मेरे लिए यही एक कर्त्तव्य है कि मैं अपने स्थान को मजबूत बना लूँ। किसी पर विश्वास नहीं करना होगा। यों सोचती हुई वह इस निर्णय पर पहुँची : "ये मुझसे दूर होती जाएँगी, अन्त में मैं अकेली ही रह जाऊँगी। संभव है कि ये दोनों मेरी शत्रु भी बन जाएँ।"

आदेश की प्रतीक्षा करती हुई दामब्बा वहीं खड़ी थी। पद्मलदेवी ने उसे इशारे से पास बुलाया और कहा, "अन्तःपुर में कहाँ क्या होता है इस सबका पता लगाकर मुझे उन बातों की खबर देती रहना। तुम मेरे रनवास से सीधा सम्बन्ध रखनेवाली दासी हो, इसलिए तुम विशेष रूप से आया-जाया करोगी, तुम पर कोई शंका नहीं करेगा। हमारे राजमहल के नौकरों में कोई ऐसा आदमी, जिसे तुम अच्छी तरह जानती हो और जिसपर पूर्ण विश्वास हो तो उसे बुला लाओ।" पद्मलदेवी ने कहा।

"है एक आदमी।"

"मैं उससे कहूँगी कि क्या करना होगा। बाद में तुम उससे मिल लेना और सारी स्थिति समझकर फिर मुझे बता देना।" पद्मलदेवी ने दामब्बे के कान में कहा।

"पिरियरसीजी से मुझे पहले ही कहना चाहिए था। मुझे यह शंका रही कि यदि मुझ पर अविश्वास हुआ तो···इसलिए मैं चुप रही आयी। मैंने परसों ही कुछ सुना था।" दामब्बे ने मौक़ा पाकर अपनी नीचता आखिर दिखा ही दी।

"कहो, क्या बात है ?"

"पिरियरसीजी की वही वर्धन्ती की बात। छोटी रानी···"

"कौन बोप्पि ?"

"हाँ, वे ही छोटी रानी से कह रही थीं।"

"क्या ?"

"यह सब धूम-धाम क्यों ? जब महाराज युद्धक्षेत्र में हैं···"

"यह सब मेरी इच्छा है। पूछनेवाली वह कौन होती हैं ?"

"हम तो ठहरे नौकर, रानियों से ऐसा हम पूछ सकते हैं ? अगर बता दें तो कहेंगी कि हम ही ने झगड़े का बीज वोया। न कहें तो अन्नदाता के प्रति द्रोह होगा। अन्दर-ही-अन्दर घुलती रहं, कि करूँ तो क्या करूँ ?"

"तुम्हारे लिए मेरा हित मुख्य है; बाक़ी से तुम्हें क्या मतलब ?"

"ऐसा नहीं, हम बेचारी दासी ठहरीं। कल आप वड़े लोग एक हो जाएँ तो हमारा जीवन काँटों में पड़ जाएगा।

"ऐसा वक़्त नहीं आयेगा। मनुष्य जब अहंकारी बनता है तो टेढ़ा रास्ता पकड़ता है। छोटी रानी का भी यही हाल है।"

"हो सकता है, पर वे तो सगी छोटी बहिन हैं आपकी। दीदी के साथ कैसा बरतना चाहिए, इतनी समझ तो होना ही चाहिए !"

"मैं इस सबका कारण समझती हूँ। वही, जो गर्भ उसके पेट में है वही मेरा शत्रु है।"

"'गर्भ क्या करेगा ? कुछ लोगों को देरी से हमल टिकता है। क्या करें ? अबकी वार भगवान् आप पर भी कृपा करेंगे। इसलिए ऐसी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

"अगर भगवान् ने अव दिया भी तो किस प्रयोजन का ? कल उसकी कोख से लड़का पैदा हुआ तो वही राजगद्दी का अधिकारी होगा। वाद में मेरे लिए लड़के का होना न होना दोनों बराबर है।"

"सो कैसे ? पट्टरानी का बेटा ही तो गद्दी का अधिकारी होगा ? ऐसा मनमाना करेंगे तो कल लोग विद्रोह कर बैठेंगे। राजपरिवार को न्याय और धर्म के विरुद्ध चलना कैसे संभव हो सकता है ? इस सबसे आपको डरना नहीं चाहिए।"

"यों दिलासा दे सकनेवाले तो अब यहाँ नहीं हैं। कम-से-कम तुम तो हो। अच्छा, तुमने किसी नौकर के बारे में कहा न, उसे जितनी जल्दी हो सके मेरे पास ले आओ।" पद्मलदेवी ने कहा।

समय की प्रतीक्षा करती रही यह दासी दामब्बा। मौक़ा पाकर वह वाचमा को समझा-बुझाकर पद्मलदेवी के पास ले गयी। पद्मला ने उसे जो कुछ कहना था सो सब बता दिया।" उसने कहा, "मैं चरणसेवक हूँ। जितना मैं जानता-समझता हूँ, सो करूँगा।" यों आश्वासन देकर वह चला गया।

वाचमा के चले जाने के बाद पद्मलदेवी ने दामब्बे को पास बुलाकर कहा, "पता नहीं क्यों मुझे उसकी नजर ठीक नहीं जँची। उसे तुम अच्छी तरह जानती हो न ?"

"ऐसे अविश्वस्त व्यक्ति को यहाँ तक बुला लाना संभव हो सकेगा ? वह अच्छा आदमी है, काम भी ठीक-ठीक करेगा। दो ही दिनों में जान जाएँगी कि वह कैसा है।" दामव्वे ने दिलासा दी। उसने कह तो दिया, मगर वह मन-ही-मन उसे गाली देती और कुढ़ती रही—"मैं उस कम्बख्त से कहती रहती हूँ कि सभी जगह बुरी दृष्टि से न देखा कर—वह मानता ही नहीं। सजग रहना तो जानता ही नहीं।" यों मन-ही-मन दुहराती दामव्वा अपने काम पर चली गयी।

प्रधानजी के पीछे-पीछे जाना और वाचमा को साथ ले जाकर पट्टमहादेवी से मुलाकात कराना आदि दामव्वे के सभी कार्यों की ख़बर गालव्वे ने शान्तलदेवी को दी।

शान्तलदेवी ने इन दोनों पर निगरानी रखे रहने को गालव्वे से कहा।

तभी पिता के घर से लेंका एक चिट्ठी लेकर आया और उसे शान्तलदेवी को दी। शान्तलदेवी ने चिट्ठी पढ़ी। उसमें ये ही सब बातें थीं जो रानी पद्मलदेवी ने प्रधानजी और दण्डनाथ माचण से कही थीं। पढ़कर उन्हें बहुत दुःख हुआ। भाई और मामा की बात का भी कोई मूल्य न रहा ! व्यक्ति को इतने निम्न स्तर तक नहीं उतरना चाहिए। पटरानी के दिमाग में किसने ऐसे विचार भरे ? इन बातों का पता लगाना ही होगा। ये बातें राजमहल के लोगों के दिमाग़ों में कहीं घुस बैठीं तो राज-परिवार ही ख़तम हो जाएगा। बुज़ुर्गों के प्रति अनादर और ऊपर से उनके पीछे पता लगाने के लिए कि वे कहाँ आते-जाते हैं नौकरों को लगा दें ? यह कैसा व्यवहार ? एक तो करेला तिस पर नीम चढ़ा ! प्रधानजी पर विश्वास न करने के माने है अपने आपपर विश्वास न रखना। इससे बढ़कर मूर्खता और क्या हो सकती है ? किसी भी तरह से सही, वहाँ विवेक पैदा करना ही होगा—शान्तलदेवी ने निश्चय किया।

इसके लिए क्या करना होगा—यह सोचते-करते ही तीन-चार दिन बीत गये।

पश्चात् एक दिन, भोजन के समय शान्तलदेवी ने बात छेड़ी। उन्होंने कहा, "अभी रानी बोप्पदेवी के छह मास लगे हैं, प्रथम गर्भ है। उचित रीति से सीमंत संस्कार को सम्पन्न करना होगा। महामातृश्री होतीं तो वे दिशादर्शन देतीं और बतातीं कि इसे कैसे मनाना है। इस वक़्त वे यहाँ नहीं हैं अतः सारी जिम्मेदारी पटरानीजी पर आ पड़ी है।"

"तुम्हारा कहना ठीक है। परन्तु यहाँ की हालत ऐसी है कि मैं इस कार्य में हाथ नहीं डाल सकती। यह विषय उससे सम्बन्धित है। सो जैसा चाहे धूमधाम से मनाने की व्यवस्था करा ले। मैं उसकी तरह दूसरों की बातों में हस्तक्षेप नहीं करती।" पद्मलदेवी ने यों निर्धार के साथ कह दिया।

"मैंने किसके विषय में हस्तक्षेप किया है ? ऐसा कहना बड़ों को शोभा नहीं देता।" बोप्पदेवी ने कहा।

"जो किया, किया, वही काफी है; सब कर चुकने के बाद अब उपदेश देने चली है।" और भी कड़ा होकर कहा पद्मलदेवी ने।

"मैंने कुछ नहीं किया। जो किया वह तुम ही ने किया। मेरा गर्भ रहा, इससे तुम्हें ईर्ष्या हो गयी। ईर्ष्या से जलने लगी। इसलिए तुम यों खेल दिखा रही हो—क्या इतना भी नहीं समझती हूँ मैं ? मेरे लिए सीमंत संस्कार विधिवत् न हो इसलिए तुमने अपने जन्मदिनोत्सव को धूमधाम से न मनाने का बहाना कर लिया। यही तो सुनती हूँ।" बोप्पदेवी ने कहा।

"महाराज जब यहाँ उपस्थित नहीं, सो भी युद्धक्षेत्र में गये हैं तब मुझ बांझ को जन्मदिन का यह आडम्बर क्यों ? यह तुमने जो कहा सो भी मैं समझती हूँ।" मैं बांझ सीमंत की चिन्ता ही क्यों करूँ ?" पद्मलदेवी बौखला उठी।

"ऐ, बोप्पी, तुमने ऐसा कहा ?" कहती हुई चामलदेवी ने पद्मला की तरफ मुड़कर पूछा, "किससे कहा इसने ?"

"बहुत अच्छा ! बात सुनकर पीठ ठोंकनेवाली ही यों सवाल करें तो समझना चाहिए कि पैरों तले ज़मीन ही खिसक गयी। यों पीठ पीछे बात करना मुझे सहय नहीं। साहस हो तो सामने कहो।" पद्मलदेवी ने कहा।

"शायद किसी ने यों ही कह दिया होगा।" चामलदेवी बोली।

"यों ही ? कानों सुनी बात बतायी है। कौन ऐसा है कि जो कही बातों को स्वीकार कर ले। मैं परेशान हूँ, महाराज आ जायें तो बस; यहाँ की सारी रामकहानी सुनाकर कह देना चाहती हूँ कि आपको कुछ सोचना होगा।" पद्मलदेवी ने कहा।

इन बातों को आमूलाग्र जाननेवाली शान्तलदेवी अब तक चुप रही आयीं लेकिन अब उन्हें बोलना पड़ा, "अब पट्टरानीजी से मेरी एक विनती है। इन बातों से स्पष्ट हो गया कि अभिप्राय भिन्नता और ग़लतफ़हमी हो गयी है। मेरे लिए तो बहुत-सी बातें नयी हैं। मुझे लगता है कि ऐसी बातों पर विश्वास करना ही कठिन है। इतना सच है कि अभी-अभी आप लोगों ने जो बातें कहीं, इनको सुनने से निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये बातें किसी उचित किसी लक्ष्य की साधना करने के उद्देश्य से उठी हैं। ये सब घटी हैं पीठ-पीछे। सम्भव है कि इन बातों को सुनानेवालों ने ही ग़लत सुनायी हों। यह सुनकर यदि संघर्ष हुआ तो यह उन सुनानेवालों की गलती है; आप लोगों की नहीं। पट्टरानी-जी को एक बात हम सब के लिए मान्य होनी चाहिए। महाराज के आने तक हमारा इन बातों पर ध्यान नहीं जाना चाहिए। जब सारा राष्ट्र युद्ध में लगा है और महाराज स्वयं युद्ध में लगे हैं तब राजमहल में वैभव के साथ वर्धन्ती जो

तर्कबद्ध और संयम से पूर्ण बातों ने रानियों पर कुछ अनुकूल ही असर किया। उनकी बातों के विरुद्ध कुछ कहने का किसी ने प्रयत्न नहीं किया। लेकिन यह भी नहीं कहा कि 'हाँ ठीक है।' उनके मौन को सम्मतिसूचक मानकर शान्तलदेवी फिर कहने लगीं—

"पटरानीजी और आप सब मिलकर हमें अनुमति दें तो इन चुगलखोरों का पता और उनका लक्ष्य—दोनों को जानने की कोशिश करूँगी। आप लोगों को पहले ऐसी बातों का अनुभव हो चुका है। आप लोग जानती ही हैं कि उस वामाचारी और चोकी की करतूत का फल क्या हुआ। ऐसी स्थिति इस राज्य में फिर न हो। फिलहाल राजमहल में रहनेवाले हम ही तो हैं। हम अपने पीठ-पीछे कोई कुछ कहें तो सुनेंगी ही नहीं, सुनें भी तो उसके आधार पर कोई निर्णय नहीं करेंगी—यों दृढ़ संकल्प हमारा होना चाहिए। हमारी भलाई हमारे ही हाथ है, इधर-उधर की बातों को सुनाकर नचानेवालों के हाथों में नहीं। हमें ऐसे लोगों के हाथ में नहीं पड़ना है। जो मैं कह रही हूँ यह आप लोगों को ठीक लगे तो महाराज के आने तक हम सब एक होकर रहें और अब तक के मनोमालिन्य को भूल जावें। इन चुगलखोरों और स्वार्थ-साधकों का पता लगावें। महाराज के लौटने पर सब मिलकर उनको बतावें और फिर निर्णय करने का दायित्व भी उन्हीं पर छोड़ दें। इस पर पटरानीजी का क्या आदेश है?"

"अकेली का ही निर्णय क्यों? सब मिलकर ही कुछ निर्णय कर लें।"

"उसी निर्णय को पटरानीजी कहें तो हम सब के लिए सम्मत होगा।"

"आप जैसा कहें वही करेंगी। महाराज को सारी बात बता दी जायेगी। फिर वे ही निर्णय करें। बाक़ी सब बातें ज्यों-की-त्यों चलें। कहनेवाले कुछ भी कहते रहें; सुनकर कोई निर्णय न करके चुप रहें। अगर आपके कहे अनुसार, इन चुगलखोरों का लक्ष्य बुरा है इसका पता लग जाय तो उनके साथ क्या करना चाहिए इस का विचार बाद में करेंगे।" पटरानी ने कहा।

"अब ठीक हुआ। जन्मोत्सव और सीमंत समारम्भ—दोनों को कैसा मनाना होगा इसका निर्णय सब मिलकर कर लें। आप दोनों की राय है कि धूमधाम न हो, मुझे भी वही ठीक लगता है। अभी दण्डनाथिनी एचियक्का यहीं हैं। माचण दण्डनाथ जी की पत्नी, लक्कलदेवी भी हैं—इन्हीं सुमंगलियों के समक्ष इस उत्सव को अन्तःपुर की स्त्रियों तक सीमित रखकर मनावें, यही मुझे ठीक लगता है।" शान्तलदेवी ने कहा।

"तीन की जगह पाँच सुमंगलियाँ हों, दोनों मन्त्रियों की पत्नियों को भी आमन्त्रित कर लें तो ठीक होगा।" पद्मलदेवी ने कहा।

इस तरह किसी तरह के विवाद के लिए मौक़ा न देकर पट्टमहादेवी पद्मला का जन्मोत्सव और बोप्पदेवी का प्रथम गर्भ सीमंत समारम्भ—दोनों शान्तलदेवी

के नेतृत्व में बिना किसी धूमधाम के, बाहरी लोगों की जानकारी के बिना, अन्तः पुर तक सीमित रहकर सम्पन्न हुआ।

समय गुजरता गया। शान्तलदेवी के कहने पर भी इन लोगों में विवेक नहीं आया। दामव्वे और चामला की चातुरी से इन बहिनों में परस्पर द्वेष की भावना अन्दर ही अन्दर बढ़ने लगी। ये दोनों राजमहल के लोगों के साथ और अन्य नौकर-चाकरों के साथ जिस मिलनसारी और सरलता से मिलतीं-जुलतीं थीं, इसे देखकर गालब्बे को यह समझना कुछ मुश्किल हो गया कि कौन क्या कर रहे हैं। एक बात उसे स्पष्ट मालूम हो गयी कि किसी-न-किसी बहाने बोप्पदेवी को कोई दवा खिलाकर, गर्भस्राव कराने के लिए षड्यन्त्र रचा जा रहा है। परन्तु उसे यह मालूम नहीं हो पाया कि आखिर इस षड्यन्त्र की प्रेरकशक्ति कौन है।

गालब्बे को जो कुछ मालूम हुआ, वह सब उसने शान्तलदेवी से निवेदन किया। सुनकर शान्तलदेवी स्तब्ध-सी हो गयी। कुछ देर तक वह सोचती रही। और फिर, उसने इस गर्भ-पात के प्रयत्न को विफल बनाने का निश्चय कर लिया। इसका अब एक ही रास्ता है कि बोप्पदेवी को इस दिशा में सजग कर दिया जाय तथा उसके खान-पान पर कड़ी नजर रखी जाय।

शान्तलदेवी बोप्पदेवी से मिली। सारा वृत्तान्त संक्षेप में समझाया और कहा, "हमें सतर्क रहना होगा। बोल बहुत सकते हैं परन्तु कार्य करना हो तो धीरज के साथ काम में लगना पड़ता है। और फिर इस सारे षड्यन्त्र का मूल कहाँ है—इसका पता नहीं लग पाया है।" शान्तलदेवी आगे कुछ और कह रही थी कि बीच में ही बोप्पदेवी कह उठी, "मेरे गर्भ पर उस पत्नी के सिवाय और किसी की आँख नहीं लगी है। वही इस षड्यन्त्र की प्रेरक शक्ति है। इसमें किसी और को रुचि लेने की आवश्यकता ही क्या है? दीदी, यह सब देखती हूँ तो यही लगता है कि ऐसी रानी बनकर इन तकलीफों में पड़ने से तो यही बेहतर होता कि किसी एक के साथ विवाहित होकर, माता बनकर सुखी जीवन बिताती।"

"मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि स्त्री माँ बनकर जिस सुख का अनुभव करती वह सुख और सन्तोष सर्वश्रेष्ठ होता है। परन्तु एक बात! सच्चाई क्या है यह निश्चित रूप से मालूम न होने तक पटरानी पर दोषारोपण करना ठीक नहीं। अच्छा, अब एक काम करेंगे। अब यह कहकर कि स्वास्थ्य ठीक नहीं, तुम्हें अपने अन्तःपुर में ही रहना होगा। तुम्हारे खानेपीने की वस्तुएँ मेरे हाथ से या गालब्बे

के हाथ से मिलने पर ही तुम्हें स्वीकार करना होगी। दूसरा कोई लाये तो इनकार न करके कहना कि अभी नहीं, थोड़े समय के बाद लूँगी, अपने पास रखवा लेना। हमें इस षड्यन्त्र का पता लग गया है—इस बात की गन्ध तक किसी को न लगे, ऐसा व्यवहार करना होगा।"

"दीदी, तुम कितना ही सिखाओ यह ठीक न होगी। कुत्ते की पूँछ, कुछ भी करें टेढ़ी-की-टेढ़ी ही रहेगी। मुझे पटरानी बनने की चाह नहीं। और तो और, महाराज की पत्नी बनने की इच्छा भी नहीं रही। मैंने कभी सोचा ही नहीं कि मुझे अमुक व्यक्ति से ही शादी करनी होगी। कभी मेरी माँ कहा करती थी: मैं तुमको राजमहल की बहू बनाऊँगी। उनकी इस बात से मुझमें कोई स्फूर्ति उत्पन्न नहीं हुई थी। मैं नहीं चाहती कि मैं रानी कहाऊँ। महाराज को मेरे पास आने की भी ज़रूरत नहीं। मेरी सन्तान मेरे लिए हो—यही पर्याप्त है। मैंने प्रथम गर्भ के कई उत्सव समारोहों को देखा है। परन्तु मेरे लिए यह बड़ा ही दुःखदायक लग रहा है। सुनती हूँ कि मेरे गर्भधारण के कारण ही वर्तमान युद्ध छिड़ा है, इसके पहले कोई युद्ध छिड़ा ही नहीं था। राजमहल के वातावरण को देखने पर लगता है मानो मेरा जीवित रहना ही अनर्थ का कारण हो। मैं अपने गर्भस्थ शिशु की माँ बनूँगी या उसके लिए मृत्यु ही बनूँगी—पता नहीं। क्षण भर के लिए भी मन को शान्ति नहीं। कोई-न-कोई एक-न-एक बात कहते ही रहते हैं। सच कहती हूँ दीदी, तुम यहाँ हो, इसलिए सांस ले रही हूँ, नहीं तो यह कभी की रुक गयी होती।" कहती हुई उस बेचारी का गला रुँध गया।

"तुम साधारण स्त्री नहीं, पोय्सल महाराज की पाणिगृहीता रानी हो। इस तरह अधीर होओगी तो काम नहीं चलेगा। धीरज से सामना करना होगा। ऐसे समय जितना और जैसा साहस दिखाओगी वैसा ही साहसी और धीर पुत्र जन्मेगा।"

"दीदी तुम्हारे कहे अनुसार हो जाय, यही काफी है। तुम्हारी आज्ञा का उलंघन नहीं करूँगी।"

"अभी तो मैंने जो कहा सो याद रहे। महाराज के आ जाने पर सारे राजमहल का शुद्धिकरण हो जायेगा।" यों दिलासा दे आयी शान्तलदेवी।

कुछ ही क्षणों में राजमहल में रानी बोप्पदेवी के अस्वस्थ रहने की ख़बर सर्वत्र फैल गयी। राज-परिवार के वैद्यजी एक दाई के साथ आये और नब्ज़ की परीक्षा की और बोले, "घबड़ाने की कोई ज़रूरत नहीं। दोनों सामान्य हैं। बहुत चिन्तित हो तो ऐसी दुर्बलता हो सकती है और कमजोरी भी आ सकती है। मेरे थैले में अभी देने लायक कोई दवा नहीं है। उसे इसी दाई के हाथ भिजवा दूँगा। अथवा कोई दास या दासी मेरे साथ आये तो पुड़िया भिजवा दूँगा। अगर आज्ञा हो तो मैं ख़ुद आकर दवा दे जाऊँगा।" पण्डितजी ने कहा।

चारुकीर्ति पण्डित तो महाराज के साथ गये थे; उनके बदले अब भास्कर पण्डित को बुलाना पड़ा था।

"दाई के ही हाथ भिजवा दीजिए।" शान्तलदेवी ने कहा।

पण्डित और दाई दोनों चले गये।

पटरानीजी आयीं। उन्होंने पूछा, "पण्डितजी ने क्या कहा? कोई चिन्ता की बात नहीं है न?"

"कुछ घबड़ाने की जरूरत नहीं। पण्डित जी ने नब्ज देखकर कहा है। पुड़िया दाई के हाथ से भिजवाने की बात कह गये हैं।" शान्तलदेवी ने कहा।

"दाई को क्यों आना चाहिए था? हमारी कोई दासी ही गयी होती?" पद्मलदेवी ने कहा।

"मैंने ही स्वयं यह बात कही। पण्डितजी ने कहा भी कि किसी दासी को भेज दें। और यह भी कहा कि वह खुद भी आ सकते हैं। बात गर्भवती की है, इसलिए मैंने ही कहा—इतने में ही कोई बात हुई तो दाई के ही आने पर सुविधा भी हो जाएगी।" शान्तलदेवी बोली।

"सो भी ठीक है, चाहे तो दाई यहीं रहे।"

"देखें; परिस्थिति ऐसी हो तो दाई को यहीं रख लेंगे।" शान्तलदेवी ने कहा।

पटरानीजी चली गयीं। दाई पुड़िया ले आयी। बोली, "यह चूरन बहुत कड़ुवा है इसलिए वैद्यजी ने गुड़ के साथ मिलाकर छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर दी हैं। एक के बाद एक करके निगलकर थोड़ा-सा पानी पीना है। इसे खाने के आध घण्टे के भीतर आहार ले लेना होगा।"

"गोलियों को तुरन्त तो नहीं ले सकतीं, क्योंकि अभी-अभी रानीजी ने आहार लिया है। कम-से-कम तीन-चार घण्टे के बाद फिर आहार ले सकेंगी। इसलिए बाद में यह औषधि दी जा सकती है न?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"पण्डितजी ने कहा है—तुम खुद देकर आओ।" दाई बोली।

"क्यों, गोलियाँ निगलना कौन नहीं जानता?"

"नहीं, ऐसा नहीं, कर्त्तव्य की दृष्टि से यों कहा है। रहने को कहें तो मैं रह जाऊँगी, नहीं तो चली जाऊँगी।" दाई बोली।

"रानीजी से पूछ लेंगे, वे जैसा कहें, करेंगे।" कहकर शान्तलदेवी बोप्पदेवी की ओर मुड़ी।

बोप्पदेवी ने कहा, "गोलियाँ मेरे सिरहाने रख दें। भूख लगते ही उन्हें निगल कर बाद में कुछ आहार ले लूँगी। उसे प्रतीक्षा करते रहने की क्या आवश्यकता है? इतने में ही कहीं से कोई बुलावा इसके लिए आ सकता है, बेचारी वह यहाँ क्यों रहे?"

"वहाँ और भी चार दाईयाँ हैं।" दाई बोली।

"हो सकती हैं। कुछ लोग चाहते होंगे कि अमुक दाई ही हो। तुमने अपने काम में वैशिष्ट्य पाकर नाम पाया है। तुमपर भरोसा रखनेवाले अनेक लोग होंगे। बहुतों का यह विश्वास भी हो सकता है कि तुमसे काम सुरक्षित ढंग से सुगम हो जाएगा। राजमहल के लोगों को ये बातें मालूम हैं। तुम्हें भी मालूम होगा न? शीघ्र प्रसव होने वाली स्त्रियों की सूची तुम्हारे पास होगी ही।"

"चाहे कोई हो, मेरे विचार में राजमहल का काम सबसे प्रथम है।"

"राजमहल के विषय में इतना ख्याल रखना तो अच्छा है परन्तु जब राजमहल में आवश्यकता नहीं होगी, तब राजमहल का नाम लेकर दूसरों को जो सेवा मिल सकती है, उससे उन्हें वंचित करना बुद्धिमत्ता नहीं। हम देख लेंगी; तुम जा सकती हो।" शान्तलदेवी ने कहा।

दाई खड़ी ही रही।

"पण्डितजी अगर आक्षेप करें और कहें कि तुमने ख़ुद चूरन क्यों नहीं खिलाया, तो हम स्वयं राजमहल से पण्डितजी के पास ख़बर भेज देंगी।"

"राजपरिवार को क्यों कष्ट दें, मैं ही जाकर पण्डित जी से कह लूँगी।" वह दाई अन्तःपुर से निकल पड़ी। उसने यह सोचा ही नहीं कि कोई उसके चलन-वलन पर ध्यान भी दे रहे हैं। अन्तःपुर के बाहर के मुखमण्डप के स्तम्भ की आड़ में वह दामब्बे के साथ कुछ कानाफूसी करती खड़ी रही और फिर पण्डित के घर न जाकर सीधे अपने घर चली गयी—यह समाचार भी शान्तलदेवी को तुरन्त मिल गया।

दाई ने जो गोलियाँ दी थीं उन्हें सुरक्षित रखवा दिया गया। वास्तव में बोप्पदेवी स्वस्थ ही थी। उसे पुड़िया की या गोलियों की ज़रूरत ही नहीं थी। उसे केवल पौष्टिक आहार और दूध-फल वगैरह की ज़रूरत थी। राजमहल में इनकी कमी नहीं थी। राजमहल में बोप्पदेवी के लिए जो भोजन तैयार होकर आता उन्हें छूने तक न दिया जाता था। गालब्बे जो उनके लिए खान-पान तैयार करती वही वह खाया-पिया करती।

चामलदेवी और पद्मलदेवी कभी-कभी आकर देख जाया करती थीं।

अकेली गालब्बे से सारा काम सँभालना संभव नहीं हो सकता था इसलिए शान्तलदेवी ने अपने पिता को यहाँ की सारी बातें समझायीं; यह भी बता दिया कि ख़ुद ने क्या सब किया है। इस सारे षड्यन्त्र की जड़ क्या है और इस बात के पीछे कौन है—इन बातों का पता लगाने के लिए किन्हीं अन्य व्यक्तियों से सहायता लेना उचित होगा या नहीं आदि बातों के बारे में अपने पिताजी से विचार-विनिमय किया शान्तलदेवी ने। पिता ने इन कार्यों में सीमित रूप से मदद देने का आश्वासन दिया। तब शान्तलदेवी ने, जिन-जिन व्यक्तियों पर शंका

थी, उनकी गति-विधियों तथा उनके चाल-चलन पर नज़र रखी।

इधर उद्यान के केलीगृह के कार्य-कलाप चलते ही रहे, बिना किसी रोक-थाम के। गालब्बे विस्तार के साथ वह सारा समाचार शान्तलदेवी को सुना दिया करती थी। गालब्बे ने सलाह भी दी कि इस उद्यान में प्रवेश करना ही मना कर दें तो अच्छा होगा। उसका विचार था कि यहाँ इस उद्यान में ये लोग आपस में मिलते-जुलते रहते हैं और षड्यन्त्र रचते रहते हैं। प्रवेश बन्द करने से यह सब बन्द हो जाएगा।

"षड्यन्त्र रचनेवाले यहाँ नहीं तो दूसरी जगह खोज लेंगे। यहाँ इनके मिलते-जुलते रहने पर हमें उन लोगों की गति-विधियों का पता लगता रहेगा। इसके अतिरिक्त अगर हम केलीवन में प्रवेश मना कर दें तो इन लोगों को यह सोचने का मौक़ा मिल जाएगा कि इनकी सारी कार्रवाइयों का पता राजपरिवार को लग गया है। उस हालत में वे लोग चौकन्ना हो जाएँगे। फिर कुछ भी मालूम नहीं हो सकेगा। इसलिए अभी जैसा चल रहा है, वैसा ही चलते रहने दें।" शान्तलदेवी ने कहा। अतः वह सब कार्यकलाप ज्यों-का त्यों चलता रहा।

राजमहल का वातावरण इन बातों के कारण तरह-तरह की परिस्थितियों से अशान्त और कलुषित हो चला था। पटरानी पद्मलदेवी ऊपर से चाहे जैसा भी व्यवहार करें, अन्दर ही अन्दर यह निर्णय कर चुकी थी कि अब से महाराज को वह अपनी मुट्ठी में रखेगी।

इधर बोप्पदेवी ने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि विजयी होकर महाराज जब लौटें तब वह उन्हें एक शिशु दे सके। इतनी कृपा भगवान् उस पर कर दें, तो फिर देखेगी कि उसका कौन क्या कर सकता है।

अपने-अपने बारे में यही उन लोगों का निर्णय था। पद्मलदेवी यह सोचती रही: अगर शान्तला दोरसमुद्र में रहेगी तो मेरे लिए रुकावट ही बनकर रहेगी, इसलिए उसको यहाँ नहीं रहने देना चाहिए। पर बोप्पदेवी यह सोचती रही: यदि शान्तला यहीं रहेंगी तो मैं राजमाता भी बनूँगी, मेरी सम्पूर्ण सुरक्षा वह करेंगी, इसलिए उन्हें यहाँ से जाने न देकर यहीं ठहरा लेना होगा, इसकी व्यवस्था करनी होगी।

चामलदेवी एक तरह से इन सब बातों से अनासक्त थी। इधर अनावश्यक ही इन बातों में उनका नाम घसीटकर उसपर दोष लगाने की कारवाई हो चली थी जिससे परेशान होकर उसने यह निर्णय कर लिया था कि अबकी महाराज के आने पर उनसे अपने पिता के यहाँ जाने की अनुमति ले लेगी। उसे इन झगड़ों के बीच रहना पसन्द ही न था।

इस हालत में एक दिन समाचार मिला कि महाराज विजयी होकर लौट रहे हैं इसलिए धूमधाम से विजयोत्सव की व्यवस्था हो। यह भी ज्ञात हुआ कि

एक सप्ताह के अन्दर-ही-अन्दर विजयी महाराज और राजा बिट्टिदेव जयमाला पहने नगर में प्रवेश करेंगे।

दोरसमुद्र आनन्द के सागर में तैरने लगा। सर्वत्र आनन्दोत्साह उमड़ रहा था। "अब क्या कहती हैं ? गर्भस्थ शिशु बुरा है या अच्छा—इसका निर्णय महाराज की विजय ही करेगी।" बोप्पदेवी ने यह बात सबके सामने नहीं, केवल शान्तला के सामने कही।

"सन्तोष के अवसर पर व्यंग्य नहीं करना चाहिए। अब सब लोगों को एक होकर एक मन से महाराज का स्वागत करने के सिवाय और कुछ नहीं सोचना चाहिए।" शान्तला ने विवेकयुक्त बात कही।

सम्पूर्ण दोरसमुद्र पोय्सल पताकाओं से सज गया। स्थान-स्थान पर मण्डप बन गये। गृहिणियों ने अपने-अपने घरों के सामने लीप-पोतकर चौक पूरकर सजा दिये थे। जहाँ-तहाँ सारी राजधानी बन्दनवारों से अलंकृत हो उठी थी। अपने महाराज के विजयी होकर नगर-प्रवेश के उत्सव के सन्दर्भ में घर-घर में त्यौहार मनाया जा रहा था। सभी लोग नूतन वस्त्र धारण करके इस उत्सव में भागी होने की तैयारी में थे। राजमहल के भीतर-बाहर सफाई हो रही थी।

महाराज के विजयी होकर राजधानी पहुँचने के एक दिन पहले, दुपहर को राजमहल में एक सभा का आयोजन किया गया। उसमें प्रधानजी, दोनों मन्त्री, माचण दण्डनाथ, हेग्गडे मारसिंगय्या, पट्टमहादेवी पद्मला, रानी चामलदेवी, शान्तलदेवी उपस्थित हुए। दण्डनाथनी एचियक्का और गालब्बे रानी बोप्पदेवी के साथ रहीं।

इस सभा में महाराज के आगमन के उपलक्ष्य में आवश्यक रूप से किये जानेवाले कार्यक्रमों की रूप-रेखा यों बनी :

प्रधानजी और माचण दण्डनाथ दोनों राजधानी के महाद्वार से एक कोस की दूरी पर नये वस्त्र उपरना आदि देकर महाराज का स्वागत करेंगे। वहाँ से मंगल वाद्यघोष के साथ उन्हें लिवा लाएँगे। महाद्वार के समीप शेष मन्त्रिगण, अधिकारी वर्ग, प्रमुख-पौरजन, पुरोहित वर्ग आदि उपस्थित रहेंगे और पूर्णकुम्भ के साथ महाराज का स्वागत करेंगे। विरुदावली के उद्घोष के साथ वेदघोष और राजाशीर्वाद होगा; इसके बाद हौदे से सुसज्जित हाथी पर महाराज और बिट्टिदेव विराजेंगे; वहीं से यह जुलूस राजधानी के प्रमुख राजमार्गों से होकर राजमहल पहुँचेगा। राजमहल के महाद्वार पर पट्टमहादेवी पादोदक से महाराज के पैर धोएँगी, और रानी चामलदेवी पैर पोंछकर शुभ्रवस्त्र बिछाकर महाराज को लिवा लाएँगी; रानी बोप्पदेवी सन्निधान को तिलक करेंगी; तीनों एक-एक मल्लिका पुष्पहार सन्निधान को पहनाएँगी। इसी तरह रानी शान्तलदेवी राजा बिट्टिदेव के चरण धोकर पोंछने के बाद, शुभ वस्त्र बिछाकर उनका स्वागत करेंगी।

और तिलक देकर मल्लिका हार पहनाएँगी। तदनन्तर दो वृद्ध सुवासिनियाँ आरती उतारेंगी। वहाँ से चलते हुए महाराज राजमहल के अन्दर के मन्दिर में प्रवेश कर पूजा-प्रणाम के बाद विश्राम करेंगे। स्नान के बाद राजमहल के अहाते की सभा में अपनी दो महान् विजयों के उपलक्ष्य में नयी विरुदावली से महाराज भूषित होंगे।

अन्तःपुर में दूसरे दिन के कार्यक्रम के लिए तैयारियाँ होने लगीं। सभी का ध्यान इस तैयारी पर लगा था।

इसी समय गालब्बे शान्तलदेवी के पास आयी और इशारे से कुछ बताया। शान्तलदेवी समझ गयी और उससे बोली, "तो बात यों है? तुम पिताजी के पास जाकर कहो कि माचण दण्डनाथ को साथ लेकर आयें। उन्हें बता दो कि माचण दण्डनाथ किस जगह हैं। जल्दी जाओ। एचियक्का रानी बोप्पदेवी के पास ही रहें। मैं पट्टमहादेवी और रानी चामलदेवी को साथ लेकर आती हूँ।"

गालब्बे चली गयी। बाद में शान्तलदेवी पट्टमहादेवी पद्मलदेवी के पास गयी और बोली "एक जरूरी बात बतानी थी।"

पट्टमहादेवी बोली, "मेरे वस्त्राभरणों का प्रकोष्ठ यहीं पास है, वहीं जाएँगी।" दोनों उस प्रकोष्ठ में चली गयीं।

"सन्निधान बहुत आनन्दित हो लौटे हैं। वे स्वयं रानियों के साथ उद्यान के केलीगृह में रहना चाहेंगे। उनकी ऐसी इच्छा होना सहज भी है। एक बार वहाँ की सारी स्थिति को अपनी आँखों देख आना उचित होगा। रानी बोप्पदेवी तो नहीं आ सकेंगी। देख आने के लिए न बुलाने पर रानी चामलदेवी भी अन्यथा समझेंगी। मान जाएँगी तो हम तीनों वहाँ हो आएँगी। मैंने नौकरों को पहले ही भेज दिया है।" शान्तलदेवी ने कहा।

"मुझे सूझा ही नहीं, शान्तला। वास्तव में उस केलीगृह की ओर किसी का ध्यान ही नहीं रहा। भगवान् जाने वह किस स्थिति में है! नौकर गये हैं अच्छा हुआ। चलो चलें।" पद्मलदेवी ने कहा। दोनों ने चामलदेवी को भी साथ लेकर उद्यान में प्रवेश किया।

शान्तलदेवी रुकीं। धीमे स्वर में कहा, "मैं आपको एक अद्भुत बात दिखाऊँगी। आप लोगों को चुपचाप आना होगा। कुछ भी प्रत्यक्ष देखें, आपको गुस्सा नहीं करना होगा।"

"इसके माने?" पद्मलदेवी ने पूछा।

"कानों से सुनकर, प्रत्यक्ष देखकर ही समझने की बात है। इसका निपटारा कल सन्निधान के आ जाने पर उनकी सहूलियत देखकर करेंगे, आइये।" कहती हुई साड़ी संभालकर आगे-आगे चलने लगी। इन लोगों ने भी वही किया। आगे बढ़कर वे उस केलीगृह के बाग में जा पहुँचीं। अन्दर से किसी की बातचीत

सुनायी पड़ी। वह यों बात कर रहे थे—

"यहाँ आये कितनी देर हो गयी ! तुम्हारा किस्सा ख़तम ही नहीं होता। कल महाराज आनेवाले हैं। कितना काम रहता है ? अगर बुलावें तो ?"

"अरी बेवकूफ़ अब कौन बुलाएँगे ? सभी का मन महाराज की ओर है। ठीक है। महीनों बीत गये हैं, मिलन की इच्छा का होना सहज ही है। इतनी जल्दी क्या थी आने के लिए, इस महाराज को ? अब तो आगे से यहाँ हम नहीं मिल सकेंगे।"

"जितना प्राप्त हो उतने से खुश होना चाहिए। जो करना नहीं, वही कर रहे हैं। यह राजभोग क्या शाश्वत बना रहेगा ? इतने दिनों तक जो सुख मिला उससे तुमको तृप्ति ही नहीं मिली ? अभी तक यह सब गुप्त ही बना रहा, समझो कि इसलिए हम जीवित हैं।"

"यह गुप्त रहेगा, खुलेगा नहीं।"

"अब इस बात को रहने दो। पखवारा क्यों, एक महीना ही बीत गया है। हम दोनों यहाँ मिल ही नहीं पाये। वही उस दिन से; जब तुमने दाई के पास से दवा लाकर दी थी न ?"

"क्या हुआ ?"

"दवा ली और गर्भपात हो गया।"

"तो मैं जीत गया।"

"इसके माने ?"

"इसके माने यह कि पण्डित ने रानी के लिए जो दवा दी उसे अलग निकालकर रख दी और उस दाई ने तुमको जो दवा दी वही दवा रानी को दिलवायी।"

"छिः तुम कैसे दुष्ट हो ! मेरी दशा ऐसी थी, अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करनी थी, इसलिए मैंने दवा ले ली थी। रानी को भी वह दवा दिला दी ? कैसे चाण्डाल हो तुम !"

"अब कुछ भी कहो, जो गाली देना है दे लो। दवा तो दे ही दी और उन्होंने ले भी ली। दवा अपना काम करेगी ही। आज या कल में दवा का परिणाम दिख जाएगा।"

"उस कमबख्त दाई ने किस साहस से रानी को वह दवा दी ?"

"दवा देनेवाले तो वैद्य थे न ?"

"इसका माने हुआ, गलती वैद्य की होगी। क्या-क्या सोचा है तुमने ! वह दाई कैसे गयी ?"

"एक तो बात यह कि वह तो ख़ुद पार पा जाएगी। दूसरी यह कि मैंने कहा था, 'यह काम पट्टमहादेवी को पसन्द है, बाद में तुम्हें ख़ूब इनाम दिलवाऊँगा।'"

"परन्तु बेचारी पटरानी ने यह तो कहा नहीं था न ?"

"इससे क्या ? मुंह से कहा नहीं, पर उनके मन में यही बात थी।"

"मन में कुछ भी रहे। यह बुरा काम तुमने क्यों किया ?"

"यह सब मत पूछो। किसी लक्ष्य के बिना कोई भी किसी काम को नहीं करता।"

"मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। मैं सब बातें पटरानीजी से कह दूंगी।"

"कहो, कौन मना करता है ? मैं भी कहूंगा। तुमने अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए दाई से यह कहकर कि पट्टमहादेवी के दो महीने लगे हैं, महाराज शहर में नहीं, उनके गौरव की रक्षा करनी है, खूब इनाम दिलाऊंगी, तुम यह दवा दो। और, दवा लेकर तुमने अपनी मर्यादा बचा ली। तुम भी कहो, मैं भी कहूंगा।"

"हाय-हाय ! ऐसा काम मत करो।"

"तब मुंह बन्द कर चुप पड़ी रहो, सब ठीक हो जाएगा।"

"जाय भाड़ में, कुछ भी करो। तुम जैसे भालू के साथ जो फँस गयी हूँ न !"

"बेचारा भालू क्या करता है। वह तो गुदगुदाकर हंसा भर देता है।"

"हां, गुदगुदा कर हँसाकर मार डालता है। तुम भी वैसे ही हो, सुख देकर बरबाद भी कर देते हो, ऐसा ही लगता है।"

"अब यह बात क्यों ? तुमको कुछ भी तकलीफ न हो, मैं इसकी देखभाल कर लूंगा। हुआ न ?"

यह संभाषण समाप्त हुआ। शान्तलदेवी ने पटरानी और चामलदेवी को आने का इशारा किया और स्वयं आगे चलने लगी। इशारा पाकर दोनों ने उनका अनुसरण किया। तीनों ने एक साथ उस केलीगृह में प्रवेश किया।

वहां देखते क्या हैं ? नग्न स्त्री-पुरुष। तीनों ने एक साथ उन्हें धिक्कारा और आँचल से मुँह बन्द कर लौट पड़ीं। इतने में शान्तलदेवी ने ताली बजायी। दण्डनाथ माचण और मारसिंगय्या तथा कुछ सिपाही वहां आ पहुँचे। जब ये तीनों देवियां बाहर आ रही थीं, मारसिंगय्या ने कहा, "अम्माजी, हमने सब कुछ सुन लिया है। इन लोगों को गिरफ़्तार कर जेल में रखेंगे। शेष सब काम सन्निधान के लौटने पर।"

इस घटना का पता किसी को नहीं लगा।

शान्तलदेवी ने पट्टमहादेवी से या चामलदेवी से कोई बातचीत नहीं की। शाम का भोजन और दूसरे दिन के कार्यकलाप की ओर सबका ध्यान लगा रहा।

पूर्व नियोजित व्यवस्था के अनुसार महाराज बल्लाल और राजा बिट्टिदेव का नगर-प्रवेश और राजमहल में प्रवेश आदि यथाक्रम सम्पन्न हुए।

आनन्दित जनस्तोम ने उमंगभरे हर्षोल्लास के साथ जय-जयकार करते हुए स्वागत किया; इससे महाराज और बिट्टिदेव दोनों को संतृप्ति मिली थी। उसी दिन शाम को राजमहल के प्रांगण में समाविष्ट वृहत् सभा में महाराज 'जग्गदेव-प्रबलपन्नग-वैनतेय' और 'रिपुजलधि-बडवानल' की विरुदावली से विभूषित हुए। "मूर्धाभिषिक्त महाराज होने के नाते हम इन विरुदावलियों को पारम्परिक रीति से स्वीकार करेंगे। परन्तु इन दोनों विजयों की कीर्ति हमारे प्रिय भाई और आप सबके प्रीतिपात्र विट्टिदेव को ही मिलना चाहिए। इस विजयोत्सव के सन्दर्भ में 'जग्गदेव-बल-विलय-भैरव' विरुद से विट्टिदेव विभूषित होवें—यह हम चाहते हैं।" महाराज ने कहा।

हर्षोद्गार के साथ ताली बजाते हुए उस महासभा ने अभिनन्दन किया।

ऊँची आवाज़ से लोगों ने नारा लगाया, "पोय्सल सन्तानश्रीः···" जनस्तोम ने उत्तर में उद्घोष किया "चिरमभिवर्धताम्।" एक बार फिर तालियों से प्रांगण गूँज उठा।

उस प्रांगण में परकोटे के बुर्जों पर लगे पोय्सल लांछन युक्त शार्दूल-पताकाएँ फहर-फहरकर इन ताली बजानेवालों का साथ दे रही थीं।

फिर सबने एक कण्ठ हो घोषित किया, "चिरमभिवर्धतां पोय्सलसतानश्रीः!" और मंगलवाद्य-घोष के साथ यह भारी सभा विसर्जित हुई।

सेवा से निवृत्त होने के बाद मरियाने दण्डनायक सिंदगेरे में शेष जीवन आराम से व्यतीत कर रहे थे। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि वे विजयोत्सव के इस सन्दर्भ में उपस्थित रहे। उपस्थित तो रहे, परन्तु विजयोत्सव आयोजन के सन्दर्भ में कार्यक्रम रूपित करने के लिए जो सभा हुई थी उसमें उन्होंने भाग नहीं लिया था। तो भी सभी प्रमुख कार्यक्रमों में उपस्थित थे। वास्तव में उनमें पहले का-सा उत्साह नहीं दिखता था। अपनी इन बेटियों ने पृथक्-पृथक् उनसे जो बातें कहीं, उन्हें सुनकर उनका मन शायद आलोडित हुआ हो। बोप्पदेवी के गर्भवती होने के समाचार से उन्हें सन्तोष तो था, तो भी इस सम्बन्ध में राजमहल में हुई बातें और घटित घटनाएँ सुनकर उनका मन आलोडित हुए बिना रह भी कैसे सकता था? राज्य के महादण्डनायक के पद पर रहकर उन्होंने बहुत अनुभव पाया तो था ही। सीधे न सही, तो अप्रत्यक्ष रूप से ही, प्रकारान्तर से विषय-संग्रह तो उन्होंने किया ही था। जिन-जिन से उनका व्यक्तिगत परिचय

था, उन सभी से उन्होंने जानकारी प्राप्त की थी। सब जानकर भी कहीं कोई प्रतिक्रिया उन्होंने नहीं दिखायी थी। बच्चों को भी गम्भीरता से केवल इतना ही उपदेश दिया कि परस्पर मिलजुलकर रहना चाहिए; अपनी पत्नी के कार्य-कलापों के कारण इन बेटियों के जीवन में जो प्रक्षुब्ध परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी उसे बड़ी होशियारी से निवारण करनेवाली शान्तलदेवी के प्रति मरियाने के मन में बहुत गौरव भाव उत्पन्न हो गया था। उनके साथ भी उन्होंने इन सारी बातों पर विचार-विमर्श किया था। शान्तलदेवी ने भी सारा विवरण न देकर इतना ही कहा था : "सन्निधान के आने पर सब अपने आप ठीक हो जाएगा।"

विजयोत्सव के बाद चार-पांच दिन आराम से गुजरे। इसी बीच शान्तलदेवी ने अवकाश पाकर यह सारा मामला विस्तार के साथ बिट्टिदेव को सुना दिया था। सारी बातें सुनकर वह बहुत परेशान हुए। उन्होंने कहा, "राजमहल में बिना देखे-परखे तरह-तरह के लोगों को नौकरी पर लगाने से यही सब होता है। अच्छा, इसे ठीक करेंगे। वास्तव में तुमने जो काम किया है वह प्रशंसनीय है," कहकर शान्तलदेवी की कार्य-कुशलता की सराहना की।

इसके पश्चात् एक-दो दिन के अन्दर ही इस बात की चर्चा हुई कि उन कैदी व्यभिचारियों का न्याय-विचार हो। इसके लिए सार्वजनिक मंच उचित होगा या नहीं—इस बात को लेकर मत भेद था। अतः इसके लिए एक समिति की बैठक हुई। विचार-विनिमय होने लगा। इस सम्बन्ध में सभी एकमत नहीं हो सके। बात राजमहल से सम्बन्धित जो है। राजमहल की अन्दरूनी बातों की चर्चा बाहर सभा में करें यह अच्छा न होगा। जो बातें राजमहल के अन्दर घटी हैं, वे लोगों के सामने आवें और आम लोगों तक पहुँचें, और फिर वे विकृत रूप धारण कर लें तो राजमहल के व्यवहारों से अपरिचित लोगों पर उन बातों का क्या प्रभाव पड़ेगा—यह विचारणीय है। इसे सुनकर बिट्टिदेव ने कहा, "राजपरिवार ने कोई ग़लती नहीं की है; बाहर के लोगों ने अपने स्वार्थ साधने की दृष्टि से जो कार्रवाई की है वह भरी सभा के सामने खुल जाय तो इससे दो तरह से लाभ होगा। एक, राजपरिवार के बारे में लोग गलत कल्पना नहीं करेंगे, क्योंकि सारी बातों की चर्चा सार्वजनिकों के सामने हो जाएगी। दूसरा यह कि ऐसे चुगलखोरों से राष्ट्र और समाज के लिए जो अहित हो सकता है उसे लोग समझेंगे। समाज ऐसे लोगों को बहिष्कृत कर देगा।"

मन्त्रिवर्ग के एक सदस्य ने कहा, "फिर भी यह बात राजपरिवार से सम्बन्धित है।" इसे सुनकर बिट्टिदेव ने समझाते हुए कहा, "हेग्गड़ेजी से पूछ लें। बहुत दिन पहले पिरियरसीजी को भी महासभा में बैठाकर न्याय-विचार किया था या नहीं! सुनते हैं कि तब हमारे पूज्य प्रभु भी वहाँ उपस्थित रहे थे। उस न्याय-विचार का पूरा दायित्व, सुनते हैं कि हेग्गड़ेजी ने अपने ऊपर लिया था।

और उस न्याय-विचार के बाद, सभी लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था। स्वयं पिरियरसीजी ने ही यह राय प्रकट की थी। उस समय किस ढंग से न्याय-विचार किया गया था सो उन्हीं से पूछ लें। इस तरह का न्याय निर्णय राज्य में हम से भी मिलने का विश्वास प्रजा में निश्चित उत्पन्न होगा। अतः सन्निधान से मेरी यह विनती है कि इन लोगों का न्याय-विचार सार्वजनिकों क ही सामने हो।"

"उस समय पिरियरसीजी परिस्थितिवश अज्ञातवास की अवस्था में रहीं। उनकी अनुमति प्राप्त करके ही खुले तौर पर न्याय-विचार करने का आयोजन किया गया था। इसके अलावा, तब अन्य राष्ट्र के गुप्तचर के विषय में न्याय-विचार करना था। उस समय का प्रसंग ही अलग है। अब की स्थिति और विषय भी अलग है। प्रस्तुत विषय से सम्बद्ध सभी व्यक्ति अपने ही राज्य के हैं। वहाँ अज्ञातवास में पिरियरसीजी मेरी बहिन बनकर रहीं इसलिए परिस्थिति इतनी संगीन नहीं थी। परन्तु यहाँ स्थिति भिन्न है। यह बात पोय्सल रानियों से सीधी सम्बन्ध रखती है अतः उस वक़्त के न्याय-विचार की घटना के साथ इस वक़्त की इस बात की तुलना नहीं हो सकती। फिर भी बिट्टिदेव जी जो कहते हैं वह मेरे लिए मान्य है। पट्टमहादेवी और शेष दोनों रानियाँ भी इस बात को स्वीकार कर लें तो प्रकट रीति से न्याय-विचार हो सकता है।" यों मारसिंगय्या ने विनम्र होकर अपनी राय पेश की।

महाराज बल्लाल ने कहा, "हेग्गड़े मारसिंगय्या का कथन ठीक लगता है। मैं ख़ुद रानियों से विचार-विनिमय करके निर्णय लूँगा।" यह कहकर इस मंत्रणा सभा को उन्होंने विसर्जित किया।

इसके बाद महाराज बल्लाल ने सभी रानियों को अपने सौध में बुलवाया और कहा, "अब न्याय-विचार आमसभा के समक्ष करने की अनेक लोगों की राय है। एक माता-पिता की सन्तान होकर, महादण्डनायक के पद की प्रतिष्ठा से अनुरूप अपने मायके के गौरव को ठुकराकर, पोय्सल राजपरिवार की बहुएँ बनकर इस राजवंश की प्रतिष्ठा का भी विचार न करके तुम लोगों ने अनपढ़ गँवारों की तरह, संस्कारशून्य फूहड़ औरतों जैसा, अपनी मूर्खता को थोड़ा-बहुत प्रदर्शित कर ही दिया। इसी मूर्खता के परिणाम स्वरूप तो यह न्याय-विचार होनेवाला है! यह न्याय-विचार आम सभा में होने पर तुम लोगों को सदा ही लज्जा से सिर झुकाये रहना होगा। इस तरह के ऊलजलूल कामों को छोड़कर, अपने आपसी मनमुटाव को भूलकर एक परिवार के लोगों जैसे रहकर, मायके तथा ससुराल दोनों घरानों की कीर्ति बढ़ाने का आश्वासन देकर अन्तरंग न्याय-विचार के लिए तैयार होओगी तो हम को बता दो। तात्कालिक रूप से एक होकर रहने का आश्वासन देकर आगे फिर वही पुरानी चाल चलोगी तो उस

हालत में हम क्या करेंगे, उसे अभी कह नहीं सकते। तुम पोय्सल वंश की रानियाँ हो, इस वजह से तुम्हारी राय लेकर हमें यह निर्णय करने की अनुमति मन्त्रणा-समिति से प्राप्त है कि यह न्याय-विचार सभा खास लोगों की हो या सार्वजनिकों की। इसलिए तुम लोगों की निश्चित राय क्या है—सो बता दो।"

"हम बहिनों में भिन्नमत होने के लिए मौक़ा ही नहीं आना चाहिए था, पर किसी कारण से मतभिन्नता आ गयी। इसका दुरुपयोग पास के लोगों ने कर लिया है। हम बलिपशु जैसी मूक हो गयी हैं। फिर भी, हमने अपनी इस ग़लती को पहचान लिया है। भरी आमसभा के सामने बैठकर सामना करने का साहस हममें नहीं है, इसलिए यह न्याय-विचार बहिरंग सभा में न हो—यही अच्छा होगा।" पद्मलदेवी ने कहा। अन्य रानियों ने भी ऐसी ही अपनी सहमति प्रकट की।

बल्लाल ने यही निर्णय किया कि मन्त्रणालय में सीमित गोष्ठी के सामने न्याय-विचार हो और इस कार्य के लिए दूसरे ही दिन सभा बुलाने का आदेश दे दिया गया।

महाराज के आदेशानुसार, राजमहल को विस्तृत करते वक़्त निर्मित विशाल मन्त्रणालय में न्याय-विचार करने के लिए सभा बैठी। महाराज बल्लाल, पाँचों सचिव, सभी दण्डनाथ, बिट्टिदेव, उदयादित्य, तीनों रानियाँ, शान्तलदेवी, मरियाने दण्डनायक, हेग्गड़े मारसिंगय्या, दण्डनायिकनी एचियक्का—ये ही सब लोग उस सभा में उपस्थित थे।

कामुकी दामव्वे, व्यभिचारी बाचम, वैद्य भास्कर पण्डित, दाई, दामव्वे का पति बिदियम, गालब्बे और कुछ दास-दासियाँ भी उस सभा में बुलाये गये थे।

शान्तलदेवी ने विचारणीय विषय को विस्तार के साथ सभा के सामने पेश किया। बाचम और दामव्वे के बीच का अनैतिक सम्बन्ध, इन लोगों ने महाराज के केलीगृह का उपयोग किस तरह से किया, किस-किस ढंग से अन्ट-सन्ट बातें कहकर रानियों में परस्पर असूया और असमाधान पैदा किया, किस तरह से किन-किन के समक्ष दामव्वे और बाचम को गिरफ़्तार किया गया, और इन लोगों ने क्या काम किया आदि सभी बातों को विस्तार के साथ उपस्थित सभासदों को बताया। "ऐसे लोगों को राजमहल में ही नहीं, अन्यत्र कहीं भी इस राष्ट्र में नौकरी करने देना ख़तरनाक है। इन्हें कड़ी-से-कड़ी सजा दी जानी चाहिए।" शान्तलदेवी का यह भी प्रस्ताव था।

आपादित अपराधियों से सवाल किया गया। उन लोगों ने जवाब दिया, "यह बात सच है कि हमने केलीगृह में अनैतिक सम्बन्ध किया। नमक-मिर्च खानेवाला शरीर ही इसका कारण है। रानीजी स्वयं पूछतीं तो ज्ञात विषय बता देते थे। नौकर होने के कारण बता देने से कोई ग़लती नहीं, यह हमारी भावना रही।

हम इस अनैतिक सम्बन्ध के लिए क्षमा माँगते हैं, चाहें तो हम पति-पत्नी बनकर रहने के लिए तैयार भी हैं।"

यह सुनकर बल्लाल ने कहा, "तुम लोगों का अनैतिक सम्बन्ध प्रासंगिक है, उसे एक बार छोड़ दें, पर सबसे बढ़कर दोष तो यह है कि गर्भवती रानी को गर्भपात की दवा देने का षड्यन्त्र तुम लोगों ने किया। यह काम तुम लोगों को भ्रूणहत्या और राजद्रोह के कारण महापराधी ठहराता है। एक अपराध की स्वीकृति की आड़ में दूसरे महापराध से छूट नहीं सकते हो।"

"वह सब मनढ़ंगत है। हमारे अनैतिक सम्बन्ध का कारण ही दूसरा है। कहीं किसी में असूया उत्पन्न हुई, उससे हमें तकलीफ में डालने के लिए यह सब किस्सा गढ़ लिया गया है। इसके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं।" इसी आशय का प्रतिपादन उन दोनों ने किया।

फिर वैद्यजी से प्रश्न किया गया। उन्होंने कहा, "राजमहल से बुलावा आया। गर्भवती रानीजी अस्वस्थ हैं, तो अकेले आना उचित न समझकर एक निपुण दाई को भी साथ लेते आया और परीक्षण का कार्य किया। मैंने कहा कि मैं स्वयं दवा तैयार करके लाऊँगा। आदेश हुआ कि दाई के ज़रिये भेज देना पर्याप्त है। तो मैंने दाई के हाथ चूरन की पुड़िया भेज दी। फिर मुझे बुलावा राजमहल से नहीं मिला। समाचार मिला कि रानीजी कुशल हैं, अतः मैं चुप रह गया। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता।"

तब शान्तलदेवी ने पूछा, "आप और दाई दोनों राजमहल से एक साथ निकले। तब दाई आपके साथ आपके यहाँ गयी?"

वैद्य ने चकित होकर शान्तलदेवी की ओर देखा और कहा, "नहीं गयी।" 'चूरन तैयार कर रखिये, मैं इतने में आ जाऊँगी। पटवारी चन्दिमया की बहू के प्रसव के दिन निकट हैं, एक बार देख आऊँ,' कहकर वह चली गयी और कुछ समय के बाद ही हमारे यहाँ आयी। परन्तु यह बात यहाँ तक पहुँची है, यह आश्चर्य है!"

"यही नहीं, इससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात और निकलेगी। हमारे कहलवाने से पहले सत्य बात ज्यों की त्यों कह दें तो अच्छा!" शान्तलदेवी ने दाई से प्रश्न किया।

उसने कहा, "पण्डितजी का कहना ठीक है। मैं पटवारी के घर जाकर वहाँ से पण्डितजी के घर गयी। इतने में चूरन तैयार कर पुड़िया मेरे हाथ में उन्होंने दी और दवा लेने का विधान समझाया और कहा, 'तुम स्वयं जाकर उक्त प्रकार से दवा खिलाओ।' मैंने उसे राजमहल में दिया। रानीजी ने आहार ले लिया था। इसलिए बाद को दवा लेने की बात बतायी गयी। मैं चली गयी।"

"कहाँ चली गयी!"

"सीधे अपने घर।"

"नहीं। तुम इस बाचम के साथ केलीगृह में गयी।"

"केलीगृह?" दाई ने आश्चर्य से पूछा।

"सवाल मत करो। मानो तुम जानती ही नहीं! तुम उस दिन जैसा पण्डित जी से कहा था, पटवारी चन्दिमय्या के यहाँ नहीं गयीं। तुम गयीं बाचम के घर। उसके बाद पण्डितजी के घर गयीं। वहाँ से अपने घर गयीं। अनन्तर राजमहल आकर पण्डितजी की दी हुई बताकर तुमने दवा की पुड़ियाँ दीं।"

दाई की छाती धक् कर उठी।

"सच-सच कहो!" शान्तलदेवी कहा।

"तो क्या मुझे चक्कर में डालकर मुझसे यह कहलवाना चाहती हैं कि मैंने जो दवा पण्डितजी ने दी थी, उसे नहीं दी और दूसरी ही कुछ दी है?"

"भ्रूण-हत्या, प्राणिहत्या करनेवाले कभी चक्कर में नहीं पड़ते। छूटने के लिए चक्कर में पड़े हुए से अभिनय किया करते हैं। जैसा तुमने कहा, तुम वह दवा जिसे पण्डितजी ने दी थी, न देकर कुछ और ही दे गयी हो।"

"झूठ। मेरा इस बाचम के साथ अनैतिक सम्बन्ध है। उसने कहा कि राजमहल के उस केलीगृह में जो सुख मिलता है वह स्वर्ग में भी नहीं मिलता। मेरी भी इच्छा हुई। राजमहल में आने का मौक़ा भी मिला तो इस मौक़े का उपयोग करने की ख़बर देने के लिए मैं उसके घर गयी थी।"

"उसे स्वीकार कर लेने पर भी, पण्डितजी के घर से फिर अपने घर क्यों गयी?"

"मेरे वे दिन गर्भधारण करने के लिए अनुकूल दिन थे, केलीगृह के सुखानुभव के फलस्वरूप कहीं हमल टिकने में सहायक न हो जाय, इस इरादे से गर्भनिरोध की व्यवस्था कर लेने के इरादे से घर गयी थी।"

"गर्भपात की व्यवस्था के साथ-साथ उसके निरोध की भी व्यवस्था में तुम सहायिका बन सकती हो?"

"दोनों होने से बहुतों की आन बच जाती है।"

"इन असम्बद्ध बातों को सन्निधान के सामने मत बको। तुमने जो कुछ कहा, वह सब झूठ है। तुम घर से गर्भपात की दवा लायीं। उसे रानीजी को ख़ुद खिलाना भी चाहती थीं।"

"आपकी बात को असत्य ठहराने के लिए यहाँ साक्षी होकर स्वयं रानीजी मौजूद हैं। नैतिक रूप से गर्भधारण करनेवालों को हम गर्भपात की दवा कभी नहीं देतीं।"

"तो मतलब यह कि तुमने रानीजी को गर्भपात की दवा नहीं दी, वही दवा दी जो पण्डितजी ने दी थी—यही कहना चाहती हो?"

"हाँ, यह सच है।"

"गालब्बे उस थैली को इधर ले आ तो" कहने पर गालब्बे जिस थैली को लायी उस को दिखाते हुए शान्तलदेवी ने पूछा, "यह थैली किसकी है ?"

"यह मेरी है। यह यहाँ कैसे आयी ?"

"यहाँ नहीं आयी; उस केलीगृह में लुढ़की पड़ी थी। अब भी तुमसे पूछती हूँ सच बात कह दो।" शान्तलदेवी ने पूछा।

"सत्य हमेशा सत्य ही रहेगा। कह चुकी हूँ।"

"ठीक, पण्डितजी आप इधर आइये।" थैली देते हुए शान्तला ने कहा, इसमें एक पुड़िया है, देखकर बतावें कि वह आपकी दी हुई है या नहीं।"

"हाँ, यह पुड़िया मैंने ही दी थी, इसे खोला तक नहीं !" चकित होकर पण्डितजी ने पुड़िया हाथ में लेकर देखते हुए उस दाई की ओर देखा।

"गालब्बे, उस दूसरी पुड़िया को इधर ले आ।" गालब्बे ने उस दूसरी पुड़िया को लाकर शान्तलदेवी के हाथ में दिया। उसे पण्डितजी को दिखाते हुए पूछा, "क्या इस पुड़िया को भी आपने इस दाई के हाथ में देकर रानीजी को देने के लिए कहा था ?"

"नहीं न। इस तरह की पुड़िया मेरे पास से जा ही नहीं सकती। इतनी मोटी गोलियाँ देने जैसा कुछ नहीं हुआ था न, रानीजी को। परीक्षा की थी, दोनों नाड़ियों की गति समर्पक थी। केवल कुछ क़मजोरी को दूर करने के लिए चूरन दिया था। यह तो मैंने नहीं दिया !"

शान्तलदेवी ने पूछा, "बताइये उसमें क्या चीज़ है ?"

पण्डितजी ने पुड़िया खोली। देखा तो गुड़ की टिकियाँ ! उन्हे तोड़कर देखा, अन्दर काली-सी कोई चीज़ दिखी। सूंघकर देखा, मुँह से निकला—"छि-छि।"

महाराज बल्लाल ने पूछा, "क्या है वह ?"

"यह मशकारि पाषाण ज़हर है। वैद्यक न जाननेवाली, अनैतिक व्यवहार करनेवाली व्यभिचारिणियाँ अनैतिक गर्भ को गिराने के लिए इसका इस्तेमाल करती हैं। शुरू-शुरू में ही यह कारगर हो सकता है। परन्तु यह पाचनशक्ति पर बहुत बुरा असर करता है।" भास्कर पण्डित ने बताया।

"ठीक, अब बताओ, तुमने किस मतलब से इसे लाकर रानीजी को दिया ?"

"यह मेरा दिया हुआ नहीं है। मुझ पर दोष लगाने के ख्याल से की गयी युक्ति है।" कहकर दाई ने विरोध किया।

"अभी सत्य कहने का तुम्हारा मन नहीं हुआ। इस स्त्री के आने के बाद इसके घर पर सिपाहियों का पहरा रखा गया है। इसके साथ चार सिपाही जायें और यह प्रसव कराने के समय अपने साथ जो पेटी लेती जाती है, उस पेटी को इसी के हाथ ढुलवा लावें। उस पेटी में ऐसी गुड़की टिकियाँ कितनी हैं, उन्हें

निकालकर यह अपने ही हाथ से सन्निधान के समक्ष दिखावे।" शान्तलदेवी ने कहा।

अब इस दाई का मुँह फीका पड़ गया। "हाय ! मैंने कैसी वेवकूफी की उन गुड़ की टिकियों को उठाकर ! दूसरी पेटी में रख दिया होता तो अच्छा होता ! अब तो किसी को धोखा दे नहीं सकती। हाय ! अब तो फँस गयी !" यों अपने आप में कहती हुई प्रश्नार्थक दृष्टि से बाचम की ओर देखने लगी।

"हाँ, बताओ; पोय्सल रानी के गर्भपात कराने में तुम्हें क्यों यह अभिरुचि हुई ? ऐसा काम करने की प्रेरणा तुम्हें किसने दी ? जिसने तुम्हें प्रेरित किया उसे भी क्या फायदा मिलेगा ?" बल्लाल महाराज ने पूछा।

"यह सब मैं नहीं जानती। मैं बाचम के साथ रहती हूँ। उससे मुझे देह का सुख मिलता रहा है। वह जैसा कहे वैसा करना मात्र मेरा काम रहा है।" दाई ने कहा।

"उसके साथ तुम्हारा यह सहजीवन कितने समय से है ?"

"छह-सात साल से।"

"यह सम्बन्ध हुआ कैसे ?"

"मेरी शादी के बाद तीन-चार साल के अन्दर पति मर गया। ससुरालवालों ने कुलच्छनी, पति को निगल जानेवाली कहकर मुझे घर से बाहर निकाल दिया। उस हालत में छोटे गाँव में गुज़र करना मुश्किल लगता था। राजधानी में कहीं कोई काम मिल जाय तो अच्छा होगा, बड़ा शहर है—यही सोचकर यहाँ चली आयी। जब यहाँ आयी तो एक दाई हालब्बे से परिचय हुआ। काफी वृद्ध थी वह। उसी के पास मैंने काम सीखा। छोटी-मोटी बीमारियों के लिए दवा-दारू करना भी उसने सिखाया। बड़े-बड़े आदमियों के यहाँ वह जाया करती। उसके मरने के बाद उसका काम मुझे मिल गया। फिर भी अकेली रहकर जीना अखरता था। बाचम ने इस कमी को दूर कर दिया। उसके साथ रहने लगी तो उसने इस तरह के अनैतिक गर्भपात कराने की प्रेरणा दी और ज़बरदस्ती से यह काम कराया। मैंने कहा कि ऐसा काम नहीं करना चाहिए। 'बड़े लोग कुछ असावधानी से यदि ऐसा काम कर बैठें तब हम छोटे लोग इस तरह मदद कर देंगे तो उनका गौरव बच जाएगा और उनकी हैसियत के प्रभाव से हमें फायदा भी मिलेगा' उसने यों लालच दिखाकर मुझसे यह कराया। हमारे गाँव में एक बुढ़िया थी, वह कहा करती थी, मशकारि पाषाण को गुड़ में मिलाकर खिलाने से गर्भपात हो जाता है। मैंने जिस किसी को यह दवा दी उन सबका गर्वपात हुआ है। कुछ दिनों से वह मुझसे यह कह रहा था कि रानीजी को यह दवा देकर गर्भपात करा देना चाहिए। पण्डितजी ने जब मुझे बुलाया तब मैंने सोचा कि इसके लिए मुझे बहुत अच्छा मौक़ा मिला। गर्भ के अधिक समय बीत जाने के कारण मैंने दवा की

मात्रा बढ़ाकर ला दी थी। उससे पूछा, 'ऐसा अन्याय क्यों करना चाहते हो?' उसने कहा, 'इस सबसे तुम्हें क्या मतलब? जो कहता हूँ सो करो; इससे अपना भला होगा।' मैंने पूछा भी कि अगर कुछ उल्टा-सीधा परिणाम हो तो? वह बोला, 'उससे तुम्हारा क्या बिगड़ता है? पण्डितजी ने जो दिया उसे मैंने ला दिया, कह देना।' जब यह ख़बर मिली कि गर्भ गिरा ही नहीं तो हमें शंका होने लगी कि दवा की मात्रा शायद कम रह गयी। इसके लिए कुछ और उपाय करना चाहिए—यह बात सोच ही रहे थे कि इतने में यह सारा रहस्य खुल गया।" सारी बातें स्पष्ट रूप से एक ही दम में कह डालीं उस दाई ने। वास्तव में वह वहाँ से जितनी जल्दी हो सके भाग जाना चाहती थी।

यह सुनने के बाद बाचम से पूछा गया। "सब लोग मुझे फँसाने के लिए दोष मुझ पर ही लगा रहे हैं। यह सच है कि मैं औरतों के साथ मिलनसारी से बरतता हूँ। वही ख़ुद मेरे पास आती है तो मैं मना क्योंकर करूँ! मैं भी जीवन से निराश हो गया हूँ, घृणा हो गयी है। जो भी थोड़ा-सा सुख मिल जाय उतना ही सही—यही समझकर मैं इसके साथ रहने लगा। इससे ज़्यादा मैं कुछ नहीं जानता। जहर खिलाकर मार डालना या गर्भपात कराना तो वैद्य और दाइयों के ख़ास काम हैं। धन के लालच मे पड़कर उन्होंने यह सब किया होगा। इसका सूत्र-धार कोई और होगा। इस सम्बन्ध में सच्ची बात वैद्यजी और इस दाई के ही मुँह से निकलवाइये। मैं कुछ नही जानता।"—यों बाचम ने शान्त रीति से अपनी दलील पेश की।

मारसिंगय्या तब तक बैठे सब बातें शान्त होकर सुनते रहे। वे उठ खड़े हुए और बोले, "मैं सन्निधान के समक्ष एक-दो बातें निवेदन करना चाहता हूँ। यह उचित अवसर भी है। आज्ञा हो तो निवेदन करूँ?"

"क्या बात आज के विषय से सम्बन्धित है?" बल्लाल ने पूछा।

"मैं यह तो नहीं कह सकता कि इस विषय से सीधी सम्बन्ध रखती है। परन्तु इस बात के पता लगाने में कुछ नयी रोशनी मिल सकती है तथा यह व्यक्ति कौन है और हम इसकी बातों पर कितना विश्वास रख सकते हैं—इन बातों को समझने में सहायक भी हो सकती है। बाद में इस समय जो न्याय-विचार हो रहा है उससे सम्बन्धित बातें भी प्रकट हो सकती हैं।" मारसिंगय्या ने कहा।

"इसकी जड़ कहाँ है—यह समझना है। इसके लिए सभी बातों की आवश्यकता है। कहिए।" बल्लाल ने कहा।

"जो आज्ञा।" कहकर मारसिंगय्या ने झुककर प्रणाम किया और कहने लगे, "अब तक इस व्यक्ति को बाचम ही समझकर सारा विचार हो रहा है। इसलिए इसके बारे में कुछ अधिक बातें मालूम नहीं हो रही है। बहुत दिनों तक मैं भी सचमुच यही समझ रहा था कि यह वेलुगोल से काम की खोज में आया हुआ

वाचम है। हमारी अम्माजी ने कहा कि इसका चाल-चलन सन्तोषजनक नहीं, इसलिए मैं किसी को बताये बिना इस व्यक्ति के बारे में अधिक बातें जानने के प्रयत्न में लग गया। इस सन्दर्भ में एक बात प्रकट हुई। यह आदमी हमारे बड़े महादण्डनायक मरियानेजी के दूर का कोई रिश्तेदार है। अगर उनका रिश्तेदार है तो कुछ गण्यमान्य व्यक्ति होना चाहिए ? फिर नाम बदलकर यहाँ नौकरी करने को भला क्यों आया ?—इस बात का रहस्य मालूम नहीं पड़ा। अकारण कोई नकली नाम रखकर जीवन व्यतीत नहीं करते। कुछ रहस्यमय विषयों का मूल यही होगा—यों सोच कर इसके बारे में सभी बातों की जानकारी प्राप्त की। भाग्यवश दण्डनायकजी भी यहाँ उपस्थित हैं। इससे मेरी जनकारी के विषय में सत्यासत्य की परीक्षा भी हो सकती है। इसका असली नाम आचण है।"

"क्या यह वही आचण है ?" अपने आश्चर्य को रोक न सकने के कारण महादण्डनायकजी जहाँ बैठे थे वहाँ से उठकर उसकी ओर आने लगे।

"तो मतलब हुआ कि हेग्गड़ेजी के कथन में कुछ ख़ास बात ज़रूर है। इस आचण के विषय में महादण्डनायकजी को भी काफी बातें मालूम होनी चाहिए। बता सकते हैं कि वे बातें क्या हैं ?" बल्लाल ने पूछा।

महादण्डनायक मरियाने ने धीरे से झुककर प्रणाम किया और कहा, "सन्निधान का कहना सही है। यह अगर आचण ही हो तो इन घटनाओं के होने के लिए कारण भी है। ऐसा मुझे लग रहा है। पहले निश्चय कर लूँ कि यह आचण ही है या नहीं। बाद में छिपाव-दुराव के बिना, जितना इसके बारे में मैं जानता हूँ, सन्निधान के समक्ष निवेदन करूँगा।" कहते हुए मरियाने दण्डनायक उसके पास गये।

"यह तो आचण ही है। कोई तुरन्त न पहचाने इसलिए ये लम्बी दाढ़ी बढ़ा ली है। यह यहाँ कब काम पर लगा ?" मरियाने ने पूछा।

"शायद दण्डनायकजी के सिंदगेरे जाने के एक पखवारे के बाद।" प्रधान गंगराज ने कहा।

"आप भी इसे न पहचान सके, प्रधानजी ?" मरियाने ने पूछा।

"कभी एक बार देखा था, कैसे याद रह सकेगा ?" प्रधान ने कहा।

"मेरे सिंदगेरे जाकर बसने के बाद, इसी भरोसे से वह यहाँ आकर बस गया है। परन्तु बिट्टिदेवरस जी के विवाह के सन्दर्भ में देखा-सा स्मरण नहीं न।"

"आपकी दृष्टि से बचकर निकलता रहा होगा। भीड़ में यह सब सहज है। अलावा इसके, उस समय आप बहुत दिन यहाँ ठहरे भी नहीं।" गंगराज ने कहा।

"ठीक, अब सन्निधान के समक्ष निवेदन करूँगा।" मरियाने ने आचण की तरफ एक तेज दृष्टि डाली और महाराज की ओर मुड़कर बोले, "यह एक बार यह कह-

कर कि हमारा दूर का रिश्तेदार है, हमारे यहाँ आकर ठहरा। यह बहुत पुरानी बात है। मुझे याद पड़ता है कि शायद सन्निधान के उपनयन के अवसर की रही होगी। इसने कुछ काम माँगा। मैंने कहा, 'देखेंगे, फिलहाल घर पर कोई काम करते रहो।' घर पर काम करता हुआ अभी थोड़े दिन ही बीते थे तब इसने हमारी बड़ी लड़की का पीछा करना, और उसे बुरी नजर से देखना शुरू किया। एक दिन लड़की फुलवाड़ी में थी तो इसने उसका आंचल पकड़ कर खींचना चाहा। इस बात को लड़की ने अपनी माँ से कहा। जब इसने आंचल खींचा तो वह गुस्से में हो आयी और उसको खूब जोर का एक चांटा जड़ दिया। अष्टकोण आकृतिवाली अँगूठी जो उसकी उँगली में थी इस आदमी के उस गाल पर लगी तो वह छल गयी और घाव से खून बह गया था। आज भी उस घाव का चिह्न इस आदमी के गाल पर है। शायद इतना गुस्सा आया कि यह सह न सकी, इसलिए ऐसा चाँटा मेरी इस बड़ी लड़की ने मारा था। घाव की चिकित्सा करवाकर उसे राजधानी से निकाल दिया गया था। एक-दो साल बाद वह फिर आया। 'अब हालत अनुकूल है, पहले कभी बचपन में गलती की, उसे क्षमा कर दें और आपकी लड़की से मेरा विवाह कर मेरे वंश को बढ़ाने में सहायता करें।' उसने मुझसे पूछा। 'ऐसी बात ही मत कहो। बड़ी लड़की का विवाह तो निश्चित हो ही गया है।' मैंने भलमानसाहत से कहा। फिर उसने पूछा, 'किसके साथ?' तो मैंने कहा, 'भावी पोय्सल महाराज बल्लाल राजकुमार के साथ।' तब मुझे प्रकारान्तर से यह मालूम हुआ था कि सन्निधान ने मेरी लड़की को वचन दिया है। यह सुनकर वह चुपचाप चला गया। यों तो वह आया ही था तो मैंने सहपंक्ति खिला-पिला-कर भेज दिया था। उसके चले जाने के बाद मेरी बड़ी लड़की ने आकर कहा, 'यह महाधूर्त व्यक्ति है, इसकी दृष्टि बहुत बुरी है। इसे कभी घर पर आने न दीजिए।' यहीं इस घटना का अन्त हो गया, मैं यही समझ रहा था। इस बीच मेरी पत्नी की जल्दबाजी और बेवकूफ़ी के कारण प्रभुजी की अकालमृत्यु हो गयी, इससे आन्तरिक असमाधान की स्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं और विवाह की बात ही स्थगित हो गयी। मेरी बेटी ने स्पष्ट कह दिया था कि यदि बल्लालकुमार से उसका विवाह न हुआ तो वह कुएँ-तालाब में गिरकर जान दे देगी। ऐसे कुछ कह सकने की स्थिति नहीं रही। उस हालत में यह आदमी फिर आया। और बोला, 'हुई न शादी, जिसे पा नहीं सकते उसे पाने की कोशिश की, [illegible] अब पछताने से क्या? मुझसे उसका विवाह कर दें।' मैंने कहा, 'दूसरे से शादी कर दूँ तो वह कुएँ में कूदकर जान दे देगी।' उसने कहा, '[illegible] कुछ आग्रह नहीं। आपकी लड़कियों में से कोई भी सही। आपकी लड़की से विवाह होने पर मेरी भी कुछ हस्ती-हैसियत बढ़ सकती है—[illegible]।' [illegible] तक बढ़ गयी। 'मेरी और तुम्हारी समानता कैसे हो सकती है? तुम [illegible]

की किसी और से शादी कर लो।' 'आपकी योग्यता को सभी जानते हैं न? विनयादित्य महाराज ने आपको इतना ऊपर उठाया। आप भी बड़े आदमी बने। क्या मैं आपकी दृष्टि में छोटा हूँ?' उसने मेरे मुँह पर कहा। मैंने स्पष्ट कह दिया, 'मैं तुम्हारे हाथ में अपनी लड़की को सौंपकर तुम्हारे वंश को बढ़ाने का मौका नहीं दूँगा। चाहे मैं अपनी लड़कियों को भगवान् के नाम पर छोड़ दूँ, पर यह हो नहीं सकेगा। अब तुम तुरन्त यहाँ से निकल जाओ, एक क्षणभर के लिए भी यहाँ नहीं ठहरना। ठहरोगे तो तुम्हारी जान नहीं बचेगी', कहते हुए मैंने अपनी कमर में खोंसी हुई कटारी को हाथ में निकाल लिया था। कभी मुझे इतना गुस्सा नहीं आया था। वह मुझे देखते हुए डर से पीछे हटने लगा। मैंने उसे चेतावनी दी, 'फिर कभी इस महल में कदम रखा तो तुम्हारी दशा क्या होगी—कह नहीं सकता।' मैंने इस आदमी पर नजर रखने का आदेश दिया था। बाद में मैंने सुना, यह कि 'मैं इनके बराबर कैसे नहीं हूँ, दिखा दूँगा कि बराबर का हूँ या नहीं। देखूँगा कि इस वंश की वृद्धि कैसे होती है?' कहता फिरता था। यही उसकी बराबरी को प्रदर्शित करने की रीति मालूम पड़ती है। अपनी इच्छापूर्ण न हो सकने के कारण इस तरह वंश के अंकुर का नाश कर देने का प्रयत्न इसने किया होगा—यह विश्वास किया जा सकता है। यह महाधूर्त है, कुछ भी कर सकता है। ऐसे हीन मनुष्य को अपनी बराबरी का कैसे मान सकते हैं? यह अपराधी है, इसमें कोई सन्देह ही नहीं।" मरियाने ने स्पष्ट किया।

"आपको और कुछ कहना है, हेग्गड़ेजी?" बल्लाल ने पूछा।

"ज्यादा कुछ नहीं। ऐसे लोग मौजूद हैं जिन्होंने इसकी यह बात सुनी है कि 'वंश को बढ़ने न दूँगा।' चाहें तो उन्हें बुलवा लेता हूँ।" मारसिंगय्या ने कहा।

"अगर वह महादण्डनायकजी की बात को अस्वीकार करे तो बुलवाना ही पड़ेगा। उससे पूछिये, क्या कहता है।" बल्लाल ने आदेश दिया।

"उन्होंने जो किस्सा सुनाया वह सच हो सकता है। अपने गत-जीवन को भूलकर अपने पद-गौरव की साक्षी के रूप में अपनी रामकहानी उन्होंने साफ-साफ बता दी। उन्होंने जिस आचण की बात कही उसने ये ठीक बरतते तो वह ऐसी बात कहता या नहीं कौन बता सकता है? गुस्सा आया, सहज ही है, कह दिया और चला गया। इस घटना को मेरे ऊपर क्यों थोपा जा रहा है? मैं आचण नहीं हूँ। दण्डनायकजी ने जो सब बताया उसका मेरे साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं। मैं ब्राह्मण हूँ। बेलुगोल का हूँ। चाहें तो बेलुगोल से किसी को बुलवा लीजिए। हेग्गड़े की बेटी के गुरु वहाँ हैं। महाराज चाहें तो उन्हीं को बुलाकर दर्याफ्त कर लें। उन्होंने पोय्सल राजाओं की उदारता आदि गुणों की बहुत प्रशंसा की है। इससे प्रभावित होकर मैं काम खोजता हुआ इधर आया था। उन्होंने अपने बलिपुर के जीवन, हेग्गड़ेजी की बेटी को पढ़ाना, चालुक्य पिरियरसी का आकर

वहाँ ठहरना, धारानगरी के गुप्तचरों का पता लगाना, हेग्गड़े परिवार के प्रति अपनी प्रशंसा आदि सभी बातों का परिचय दिया है।" बिलकुल शान्त भाव से कहा उस आदमी ने।

इतने में एक नौकर ने आकर झुककर प्रणाम किया।

"क्या है?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"रावत मायण किसी को साथ ले आये हैं। कहते हैं कि अभी-अभी आये हैं। यह भी कह रहे हैं कि आते ही सन्निधान के दर्शन करने का आदेश था।" नौकर ने कहा।

बिट्टिदेव ने महाराज की ओर देखा।

महाराज ने कहा, "बुलवा लो।"

नौकर चला गया। तब बल्लाल बोले, "बड़ी अजीब दुनिया है। कैसे-कैसे लोग रहते हैं! देखकर आश्चर्य होता है।"

बात अप्रासंगिक लगी। एक बिट्टिदेव को छोड़कर बाक़ी सबने महाराज की ओर, फिर दरवाज़े की ओर देखा। शान्तला को मायण का नाम सुनते ही कुछ आश्चर्य-सा हुआ था। बाक़ी रानियों को भी आश्चर्य होने लगा। वह अपने ख़ास काम से गया था, महीनों बाद आया है। शीघ्र ही मायण एक अन्य को साथ लेकर भीतर आया और झुककर प्रणाम किया।

आसन दिखाकर उनसे बैठने को कहा गया। दोनों बैठ गये।

महाराज ने अपराधी की ओर देखकर कहा, "कहो, सच के बिना तुमको छूट नहीं मिलेगी। बेलुगोल से उन लोगों को भी बुलवाएँगे। वे तो अभी-अभी हाल में वहाँ गये हैं। तुमसे भी पहले वहाँ जो गये हैं, उन्हें भी बुलवाएँगे। वहाँ के हेग्गड़े को भी बुलवाएँगे। उन सबके आने तक तुम छूट नहीं सकोगे। सच-सच कह दो तो, उन सबको बुलवाने का श्रम हमें भी न होगा, समय भी बचेगा।"

रावत मायण के साथ जो व्यक्ति आया था, उसने अपराधी की ओर देखा। "यह यहाँ क्यों आया? सन्निधान ने इसे कहाँ पकड़ा? पकड़ा अच्छा किया। यह वही है जो उस दिन लापता हो गया था।"

"सच ! वह पुजारी के वेष में न था ? यह बढ़ी हुई दाढ़ी थी, इसकी याद नहीं।" बिट्टिदेव ने कहा।

"वह बनावटी है। पकड़कर खींच लें तो निकल आयेगी।" आगन्तुक ने कहा।

नौकर से यह काम कराया गया। पद्मलदेवी की चपत से अँगूठी लगकर गाल पर जो घाव हुआ था, उसका निशान भी दीख पड़ा। वह निशान छिपाने की उसने बहुत कोशिश की। उसके केश पकड़कर, उस खुले सपाट मुख को और गाल पर के उस निशान को दिखाया गया।

"अब तो मान लोगे कि तुम आचण ही हो ?" बल्लाल ने पूछा।

उसके लिए अब कोई दूसरा चारा नहीं रह गया था।

"यह सब तुमने क्यों किया ?"

"पेट की जलन से। अपमान का बदला लेने के लिए।"

"जिन्होंने अपमान किया था उनसे बदला क्यों नहीं लिया ?"

"जब तक मैं जिन्दा हूँ तब तक यह मुझे जलाता ही रहेगा। जैसा मेरा दिल जलता है वैसे इस बूढ़े का भी दिल जलता रहे और तड़पता रहे—यही मैं देखना चाहता था।"

"लेकिन जिन्होंने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा, उन पर तुमने यह प्रयोग क्यों किया ?"

"मैं क्या करूँ ? उन्होंने इन प्रतिष्ठित के यहाँ जन्म लिया। उस वंश का नामोनिशान मिटाना हो तो यही एक आसान मार्ग है—महाराज का नाम ही इस दुनिया से मिट जाना। तभी गर्भस्थ अंकुर को दवा देनी चाही थी सो इसी संकल्प के साथ यहाँ आया था। पर बाद में, महाराज को ही खतम कर दूँ तो दण्डनायक की इन बेटियों के लिए बच्चे ही कैसे होंगे ? इसीलिए ज़हर देने की बात सोची थी।"

"बिट्टिदेवरस ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?"

"कुछ भी नहीं। इसीलिए मैंने उन्हें केवल प्रसाद ही दिया था। ज़हर केवल महाराज को ही दिया था। ज़हर खाने से महाराज को बचा लिया इस आदमी ने। मुझे अब भी मालूम नहीं कि इसे कैसे मालूम हुआ कि वह ज़हर मिला प्रसाद था। अब मालूम तो हो ही गया था। कम-से-कम मेरा पता तो न लगे, इसलिए मैंने इस पर खुखरी फेंकी कि इसे मार ही डालूँ। मैं निश्चिन्त हो गया था कि यह मर गया। परन्तु अब सब बदल गया। मुझे कोई दुःख नहीं। मैं समझूँगा कि इन महोदय ने मेरा जो अपमान किया था उसका मैंने बदला ले लिया।" उस अपराधी ने कहा।

"इसके लिए क्या दण्ड होगा, जानते हो ?" बल्लाल ने पूछा।

"मैं अपने इस विफल जीवन को ख़ुद भी नहीं चाहता। दण्ड कुछ भी हो

मेरे लिए सब बराबर है। सूली पर चढ़ा दें, परन्तु केवल मुझे ही सूली पर चढ़ावें। बाक़ी इन लोगों को—इस दाई को और दामब्बे को क्षमा कर दें। वे मेरे हाथ की कठपुतलियाँ बनकर रहीं। इनको अपने जीवन में जो दैहिक सुख कभी न मिला था, उसे मुझसे पाया और जैसा मैं नचाता रहा वैसी ये नाचती रहीं। यह मेरे इस अन्तिम समय की प्रार्थना है। परन्तु एक बात मुझे मालूम नहीं पड़ी कि मैंने जब इससे कहा नहीं था कि मैं ज़हर मिला प्रसाद दे रहा हूँ, तो इसने कैसे जाना? मरने से पहले यह मालूम हो जाय तो आनन्द के साथ प्राण त्याग दूँ।

"तुम केवल अपने बारे में पूछ सकते हो। दूसरों के बारे में जो प्रार्थना करते हो तो हम नहीं मानेंगे। जिस-जिसने जैसा अपराध किया है उस अपराध के अनुसार उन्हें दण्ड भोगना ही पड़ेगा। पाँच संसदीय मन्त्रिमंडल दण्ड का निर्णय करेगा। अभी इन तीनों को बन्धन में रखा जाय।" बल्लाल ने आदेश दिया।

सिपाहियों ने उन लोगों को ले जाकर जेल में बन्द कर दिया।

मरियाने दण्डनायक सिर झुकाये बैठे रहे। रानियाँ भी वैसे ही बैठी रहीं।

"तो यह व्यक्ति कौन है जिसने महाराज और राजा के प्राणों की रक्षा का महान् कार्य करके पोय्सल राजवंश को जीवनदान दिया है? विजयोत्सव के संदर्भ में सन्निधान के साथ ही ये पधारते तो इनका सार्वजनिकों के सामने वीरोचित सम्मान भी कर सकते थे।" शान्तलदेवी ने कहा।

"हमने भी उनसे कुछ पूछ-ताछ नहीं की। हम सुरक्षित हैं। उन्हीं की सूचना से हम विजयी हुए हैं, इतना मात्र हमने उनसे कहा था। साथ में आते थे, मगर रास्ते में भयंकर बुखार चढ़ने से इन्हें मायण के साथ छोड़कर हम इतने लोग निर्दिष्ट समय पर आ पहुँचे। ये विश्रान्ति के बाद बुखार से मुक्त होकर अब आये हैं। हमें भी इनके बारे में जानने का कुतूहल है। आज इस समय यहाँ इनके आने से एक नयी बात प्रकट हुई। यहाँ राजमहल में बाचम के नाम से जो काम कर रहा था यह वही आचण है जिसने हमारे प्राणहरण का प्रयत्न किया था, इसका प्रमाण मिल गया। अगर ये हमसे बिछुड़ जाते तो इस आचण के कार्यों का पूरा पता इतनी जल्दी नहीं लग पाता। अब तो आप अपना परिचय दे सकेंगे न?" बल्लाल ने प्रश्न किया।

वह कुछ आगा-पीछा करता हुआ-सा दिखा।

"संकोच करने की ज़रूरत नहीं। कहिए।" बल्लाल ने कहा।

"पहले सन्निधान वैद्यजी को क्षमा करें, और राजपरिवार मुझे भी क्षमा करे। यह आश्वासन मिले, तब निवेदन करूँगा।"

"वैद्यजी तो यहाँ नहीं हैं न। क्षमा चाहते हों तो उन्हें अपनी गलती के बारे में स्वयं कहना होगा। यदि क्षम्य होगी तो अवश्य क्षमा मिल जायेगी। उन्हें बुलवा लिया जाए।"

"नहीं, जरूरत नहीं। बेचारे बहुत थक गये हैं। उन्हें तकलीफ़ क्यों दें? सभी बातें मैं खुद ही बता दूँगा।" कहते हुए अपने स्थान से उठकर वह शान्तलदेवी के पास गया और उनके दोनों पैर जोर से पकड़कर निवेदन करने लगा, "रानीजी आश्वासन दें कि क्षमा कर दिया है। मैंने रानीजी से झूठ कहकर धोखा दिया है, इसलिए क्षमा माँग रही हूँ। झूठ कहने में मेरा उद्देश्य बुरा नहीं था। यादवपुरी में ही मुझे राजा के साथ जाने की अनुमति मिल जाती तो मुझे रानीजी से झूठ बोलने का मौक़ा ही नहीं मिलता।"

"तो···मतलब···चट्टलदेवी!"

"हाँ मैं चट्टला।"

"क्या चट्टलदेवी हैं?" सब के मुँह से एक साथ निकल पड़ा।

"हाँ, मुझे कोई अज्ञात शक्ति रणरंग की ओर बुला रही थी। मैंने प्रार्थना की। स्त्रियों की रक्षा के लिए प्रणबद्ध पोय्सलों द्वारा नारी-जाति को युद्धक्षेत्र में साक्षात् मृत्यु के सामने खड़ा करना असम्भव था। राजा का आदेश था—यह नहीं हो सकता। उनकी दृष्टि से वह सही भी है। हममें भी कौन स्त्री होगी जो युद्धक्षेत्र में जाने को तैयार होगी? लेकिन मेरी स्थिति कुछ विचित्र ही है। अबला की हैसियत से अपना शीलभ्रष्ट किया, तो बदले में मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ था, उसका उपयोग मैंने राज्य के लिए प्राणों की बलि देकर भी करने का निश्चय किया। यही मैं चाहती हूँ। इस काम में मुझे जो मानसिक शान्ति मिलती है वह अन्य किसी से भी नहीं मिलती। मैं अपनी शीलभ्रष्ट देह को देखती हूँ तो मुझे असह्य पीड़ा होती है। जिन दुष्टों ने मेरा शीलभंग किया, उनके कुतन्त्रों के मारक रूप से अपनी इस देह को समर्पित कर, उन दुष्ट शक्तियों को काट डालने का प्रयत्न मैंने किया है। शीलभ्रष्ट होने के बाद भी मुझ पतिता को कम-से-कम इस बात की तृप्ति है कि मैंने राष्ट्र की सेवा की। इसलिए मैं झूठ बोलकर किक्केरी से राज-परिवार से अलग होकर शत्रुशिविर में दाखिल हो गयी। यह आदमी वहाँ आया। आनन्दनी और इस व्यक्ति के बीच गाढ़ी मित्रता है। यह मेरे जाल में फँस गया। और इस तरह सारा रहस्य मिल गया। सन्निधान और बिट्टिदेवरस जी के प्राण बच गये। उस आदमी ने जो कहा वह झूठ है। दोनों ढाक के पत्तों में पाषाण था, प्रसाद नहीं। वैद्यजी ने उसकी परीक्षा भी की है। उसने मुझे मार डालने का भी प्रयत्न किया। उसे कमर में बँधी खुखरी की ओर हाथ बढ़ाते मैंने देख लिया तो मैं उछल पड़ी। खुखरी छाती के बदले कोख में लगी। मैं मरी नहीं, बच गयी। जीती रहने की मेरी इच्छा कभी की लुप्त हो गयी है। खुद मृत्यु को बुला लेने वाली बुजदिल मैं नहीं हूँ। जी गयी, अच्छा हुआ। यह कम्बख्त खुखरी मेरी कोख में न लगकर जाँघ में लग जाती तो वैद्यजी भी नहीं समझ पाते कि मैं स्त्री हूँ। उन्हें सारा वृतान्त बताकर मैंने उनसे प्रार्थना की कि यह बात किसी से प्रकट न

करें कि मैं स्त्री हूँ। महाराज की प्राणरक्षा की, इसलिए उनमें मेरे प्रति एक आत्मीयता उत्पन्न हो गयी थी।"

"सो तो ठीक। मगर तुम्हारी ध्वनि तो कुछ और की-सी लगती है न?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"अब रानीजी बतावें।" कहती हुई उसने सिर पर के वस्त्रों और दाढ़ी एवं भौंह पर चिपकाये बाल सब निकाल फेंके।

उसके ध्वनि-विन्यास पर सब चकित थे।

"क्यों मायण, मना करते थे, लेकिन तुम खुद जाकर चट्टला को पकड़ लाये? उसे सजीव लाये न? क्यों, उस पर तुम्हें गुस्सा नहीं आया?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"हम नालायक हों तो लायक बातें हमें कैसे मालूम पड़ें! गलती के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।" कहकर मायण ने सिर झुकाकर प्रणाम किया।

"देखो तो, यह रावत मायण जो तुम्हारी खोज में गया था, कितना होशियार है! साथ ले आया पर पता नहीं लगा सका। मायण, यह तुम्हारी गलती नहीं। आगे से ऐसी मनमानी बातें मत किया करो।" शान्तलदेवी ने कहा।

"मायण का क्या किस्सा है?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"उसे फुरसत से बताऊँगी। बहुत समय से आप सब बैठे हैं। यह एक खास सभा हुई। सभी बुजुर्ग हम सबकी बातें मौन हो बैठकर सुनते रहे। सन्निधान अब आज्ञा दें तो इस सभा को समाप्त कर सकते हैं।" शान्तलदेवी ने कहा।

"मन्त्रिगण अभी चाहें तो फैसला सुना सकते हैं, नहीं तो कल ही सही।" बल्लाल ने कहा।

मन्त्रिगण की तरफ से प्रधान गंगराज ने कहा, "अभी फैसला सुना सकते हैं। आचण को सूली पर चढ़ा दिया जाए। और इन दोनों औरतों को छह-छह साल की कड़ी सजा दी जाय। धर्म-विरुद्ध भ्रूणहत्या करनेवालों को आइन्दा इससे अधिक कड़ी सजा दी जाएगी, इस बात की घोषणा भी की जाए।"

"सूली पर चढ़ाने से पहले मैं चाहती हूँ और विनती करती हूँ कि आचण बाचम बायक नामक यह व्यक्ति मुझे असली रूप में देखने दें। उसे यों ही नहीं मरना चाहिए।" चट्टलदेवी ने कहा।

महाराज ने बात मान ली। इसके बाद उस दिन की सभा विसर्जित हुई।

मरियाने दण्डनायक ने बेटियों को अपने पास बैठाकर बहुत समझाया। कहा, "तुम लोगों में कोई भी सही, अगर छोटी-सी भी ग़लती करे, वह तुम्हारी माँ और हमारे घराने पर धब्बा होगा। तुम लोग जिस स्थान पर हो वहाँ एक-दूसरे से मिल-जुलकर दुनियाँ के सामने एक बहुत ऊँचा आदर्श स्थापित कर सकती हो। यदि एक माँ की बेटियाँ ही सौतों की तरह आपस में झगड़ा करें और दूसरे वैसा करेंगे तो क्या दोष है यों तुम प्रमाण बनकर कभी मत खड़ी होओ।" चट्टला के त्याग से, शान्तलदेवी के संयम से राजमहल का गौरव आज बच गया। नहीं तो पता नहीं क्या होता? आगे से ऐसा नहीं होने देना चाहिए। चुगलखोरों की बातों में न आना। प्रत्यक्ष देखने पर भी उसे परख कर भी देख-समझ लेना चाहिए। ऐसी हालत में कही या सुनी-सुनायी बातों पर निर्णय करती जाओगी तो पता नहीं क्या-क्या अनर्थ होगा—इस बात को अच्छी तरह समझ लें। राजपरिवार एक है, इस एकता को तोड़ना नहीं है। तुम लोगों का व्यवहार इसे बनाये रखने योग्य रहे। चुगलख़ोरों का मुँह तो अपने आप बन्द हो जायगा।"

सब ने पिता की बातों पर सहमति प्रकट की।

चार-छह दिन राजधानी में रहकर मरियाने फिर सिंदगेरे चले गये। डाकरस युद्धक्षेत्र से सीधे यादवपुरी चले गये थे, इसलिए राजधानी में जो घटनाएँ घटीं उनकी कोई जानकारी उन्हें नहीं थी। वह बिट्टिदेव आदि सभी की प्रतीक्षा में यादवपुरी में ही रहे।

बिट्टिदेव ने यादवपुरी जाने की बात महराज से कही।

"तुम्हें जाना ही चाहिए क्या छोटे अप्पाजी? वहाँ डाकरस जी तो हैं ही। अब की युद्ध में भी न ले जाने के कारण उदय को कुछ असमाधान हुआ है। 'मैं बेकार हूँ। मुझे किसी भी काम पर नियोजित नहीं करते। यहाँ राजमहल में इतना सब हुआ न? मुझे इन बातों की ख़बर तक नहीं'—ऐसा कहता था। उसकी उम्र अभी छोटी है। कुछ बातों से फिलहाल उसे दूर ही रखना उचित होगा, इस कारण शान्तलदेवी ने उससे कुछ कहा न होगा। माचण दण्डनाथजी को हमारे यहाँ आने से कुछ ही दिन पहले यह बात मालूम हुई है। बहुत संयम और चातुर्य से इस सारी घटना का निर्वहण किया गया है। इसके बारे में अब उसे कुछ भी विवरण दो उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। इसलिए उसे राजप्रतिनिधि बनाकर यादवपुरी भेज दें। अभी दण्डनाथिनी और उनके बच्चों को वहाँ भेजना तो है ही।" बल्लाल ने कहा।

"उदय को वहाँ भेजकर उसमें आत्म-विश्वास पैदा करने का यह विचार अच्छा ही है। उसके साथ जाकर तथा डाकरस दण्डनाथजी को कुछ बातें बताकर, वहाँ भी सारी स्थिति उदय को समझाकर लौट आऊँगा। ठीक होगा न?" बिट्टिदेव ने निवेदन किया।

"वही करो" बल्लाल ने सहमति प्रकट की।

इस कार्यक्रम के अनुसार बिट्टिदेव, उदयादित्य और दण्डनायिनी एचियक्का तथा उनके बच्चे मरियाने और भरत आदि सभी यादवपुरी को चल पड़े।

बिट्टिदेव के लौट आने तक पिता के यहाँ रहने की अनुमति लेकर शान्तलदेवी बिट्टिगा, गालब्बे और चट्टला के साथ पिता के घर चली गयी।

महाराज और राजा बिट्टिदेव की प्राणरक्षा करने और चेंगाल्वों को पराजित करने में चट्टला ने जो अतुलनीय साहस और चातुर्य दिखाया था उसके कारण उसके प्रति विशेष गौरव शान्तलदेवी में उत्पन्न हो गया था। फिर भी यह सब करने के लिए एक स्त्री को अपना शील दावँ पर रखना पड़ा, इससे उसके मन में एक पीडा रही आयी। एक स्त्री का शील भ्रष्ट होने देकर किसी की जान बचा लेने का आखिर मूल्य ही क्या है? यों शान्तलदेवी ने वह प्रसंग उठाया तो चट्टला ने कहा, "रानीजी के विचार बहुत अच्छे हैं। मैं स्त्री हूँ; मुझे स्त्री के शील के प्रति आदर है। शत्रुओं की जालसाजी का पता लगाये बिना, विजय पाना आसान नहीं। युद्ध में हार जाएँ तो सैकड़ों हज़ारों शीलवती नारियों का शीलहरण शत्रु सैनिक कर डालेंगे। ऐसी निस्सहाय हज़ारों बहिनों के गौरव की और शील की रक्षा करने के लिए मुझ जैसी भ्रष्टशीलाओं द्वारा इस माध्यम से शत्रुओं की जालसाजी का पता लग जाए यह एक अच्छा काम है। काँटा काँटे से ही निकलता है। इस विषय में देह का कोई मूल्य नहीं रह जाता। रानीजी, देह नष्ट होने पर भी यह स्थायी राष्ट्रोपयोगी कार्य है। इसमें संकोच करने का कोई कारण नहीं है। सिर झुकाने की भी कोई जरूरत नहीं है। भगवान् का नाम लेकर देवदासी पंथ का निर्माण कर अति कामुक लोगों से शीलवतियों को बचाने में सहायक होनेवाले इन समाज को मुझ जैसी रणरंगदासियों की एक सेना को ही राष्ट्र के लिए तैयार करना उचित है। उस आचण के कार्य को किसी और ढंग से पता लगाना हो ही नहीं सकता था। रानीजी! उसके कार्यों पर शाबासी देकर, उसके कार्यों में सहायता देते हुए उसमें विश्वास पैदा करके, उसे अपने जाल में फँसाये बिना काम बनता ही नहीं। इस बात को लेकर आपको माथापच्ची नहीं करनी चाहिए, रानीजी। किसी के शील को दावँ पर लगाकर राष्ट्र की रक्षा करने की बात नहीं है यह। अपने स्वार्थ के लिए शील नष्ट करनेवाली दामव्वा जैसी स्त्रियाँ भी हैं। ऐसे लोगों से यह कार्य नहीं बनता। ऐसी स्त्रियाँ रणरंगदासियाँ भी बनें तब भी उनसे कोई राष्ट्रहित नहीं होगा। परन्तु मुझ जैसी स्त्रियों में, अपनी इच्छा के विरुद्ध शीलभ्रष्ट हुआ तो हममें जो क्रोध की चिनगारी उत्पन्न होगी, उसमें एक विशिष्ट शक्ति होगी। जीवन में एक ही बार किसी का शीलभ्रष्ट होता है। फिर जो शील-नाश हुआ वह लौटेगा नहीं। इसलिए उस शील को दावँ पर लगाने की बात ही नहीं उठती। इस क्रोध की शक्ति को राष्ट्रप्रेम में बदलकर ऐसे लोगों को भी

सक्रिय बनाकर क्रियाशील बना देना राष्ट्रहित की दृष्टि से बहुत ही अच्छा है। मेरे अपने अनुभव ने मुझे यही पाठ पढ़ाया है। मैं एक साधारण स्त्री हूँ। मेरा अनुभव भी बहुत कम है। यदि इसे मान्यता मिले तो खुशी होगी। ऐसी रणरंग-दासियों का एक दल तैयार करने के लिए अनुमति दिलवा दीजिए।"

"तुम्हारी विचारधारा सुनने पर वह संगत ही मालूम पड़ती है। फिर भी इस तरह के विषय पर जल्दबाज़ी से निर्णय नहीं करना चाहिए। 'सोचेंगे' कहना चाहूँ तो भी मेरा मन नहीं मान रहा है। तुम्हारी इस सलाह से इनकार भी नहीं किया जा सकता। रहने दो। फिर जब युद्ध की बात उठेगी तब विचार कर लिया जायगा। मायण क्या कहता है? उसने तुमसे बात की?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"उनका ढंग अलग है। गुस्सा भी जल्दी आता है, प्रेम भी जल्दी हो जाता है। उनका मन अच्छा है। उन्हें इस बात का दुःख है कि कोई सामने यह कहे कि—तुम्हारी स्त्री बुरी है, शीलभ्रष्टा है, तो वे कैसे सहेंगे? सुना कि किसी अनैतिक व्यवहार करते देख लेने पर तो वे वहीं काट डालने की बात करते रहे। यह भी कहते हैं—'आओ, परिवार बसाकर जिन्दगी बिताएँगे।' अब आप ही बतलाइए, ऐसी शुद्ध आत्मा को अपने इस जूठन को कैसे सौंपू? पहले ही कहा था कि मुझे मर गयी मान लें और दूसरा विवाह कर लें। इस पर उन्होंने पूछा, 'पति के मरने पर पत्नी विधवा बनकर मर सकती है तो पत्नी के मरने पर पति विधुर होकर क्यों नहीं मर सकता? उसे फिर दूसरा विवाह करने की क्या ज़रूरत?' मुझे कुछ सूझा नहीं कि क्या कहूँ?" चट्टला ने कहा।

"यदि उसकी सच्ची अभिलाषा हो और परिवार बसाने पर उसे सुख मिलता हो तो क्यों परिवार बसाकर आराम से नहीं रह सकते?" शान्तलदेवी ने कहा।

"उनकी भी इच्छा है। परिवार बसाने पर उन्हें सुख भी मिलेगा। परन्तु ये लोग कहाँ चुप रहेंगे? कहेंगे, 'तुमको शरम नहीं, उसने खुद अपने को भ्रष्टशीला घोषित भी किया है। ऐसी स्त्री के साथ यह परिवार बसाना क्या उचित काम है?' मैंने पूछा यदि लोग ऐसा कहने लगेंगे तो क्या करेंगे। उन्होंने उत्तर दिया, 'कहने वालों को कहने दो, उनको समाधान करने के लिए कह दूँगा कि मैंने पत्नी नहीं, रखैल बनाया है। यह कहकर उन लोगों का मुँह बन्द कर दूँगा'।"

"तो मतलब यह हुआ उसे तुम से बहुत प्यार है।" शान्तला ने कहा।

"वह सारी बात प्रवास करते वक़्त ही स्पष्ट हो गयी। उन्हें पता नहीं लगा कि मैं कौन हूँ। अपनी पत्नी का गुणगान करते ही गये। मैं भी चिढ़ाती जाती थी। मैं कहती थी उस भ्रष्टशीला पर तुम्हें इतना प्रेम क्यों? जब मैं किक्केरी में नहीं दिखाई पड़ी तो यह समझकर कि शायद मैं वहाँ हूँगी, सीधे हमारी सेना में पहुँचे। वहाँ भी मेरा पता न लगा। उन्हें चिन्ता लगी होगी कि मुझे हो क्या गया?

उन्होंने यह भी अन्दाज़ लगा लिया होगा कि शत्रुसेना में गुप्तचरी का काम करने कहे बिना चली गई होगी। युद्ध समाप्त हो गया, तब भी उन्हें मेरा पता नहीं लगा तो उन्होंने सोच लिया होगा कि शत्रुओं ने पता लगाकर मुझे मार डाला होगा। इस तरह पता नहीं क्या-क्या बातें सोचकर भावावेश में मेरी प्रशंसा ही प्रशंसा करते गये। मैंने सहानुभूति दिखाकर कहा, 'इतनी होशियार स्त्री कहीं फंस सकेगी? किसी तरह छूटकर ही आयेगी। क्यों सोच में पड़ते हो? वास्तव में उसी ने मुझसे इस ज़हर की बात कही थी, इसलिए कि तुम्हें कुछ तसल्ली मिले।' उन्होंने यह सब सुनकर पूछा, 'यह कैसे मालूम हुआ कि जहर की बात बतानेवाली वही है। उसके दाएँ गाल पर के गड्ढे से कुछ ऊपर एक कुल्थी के दाने के प्रमाण का तिल था? मैंने कहा, 'हाँ, उसके केश-गुच्छ के नीचे गले के पिछले भाग पर चने के बराबर उभरा हुआ तिल भी था। तब उन्हें मेरी बातों पर विश्वास हुआ। कुछ आशा भी बंधी।" चट्टला ने कहा।

"तुम मेरी बात मानो तो कुछ कहूं?"

"कहिए।"

"उसकी इच्छा है तो तुम परिवार बसा लो।"

"हाँ, देखेंगे। शायद वही हो, कौन जाने!" चट्टलदेवी बोली।

बातों-ही-बातों में युद्ध के बारे में भी ब्यौरा पूछ लिया शान्तलादेवी ने। उसने सब ब्यौरा सुना दिया। जब उसने बिट्टिदेव की चातुरी का वर्णन किया तो शान्तलदेवी को लगा, "काश मैं भी इस युद्ध में राजा के साथ रहती तो कितना अच्छा होता!"

"रणभूमि में काम करनेवालों को रहना चाहिए। शस्त्रहीन या देखनेवाले लोग रहें तो बहुत-सी अड़चनें ही पैदा होंगी। उसमें भी रानीजी रहेंगी तो उनकी रक्षा का कार्य प्रमुख बन जाता है। ऐसी हालत में शत्रु के आक्रमणों की ओर ध्यान देना कठिन हो जाता है। अगर आक्रमण करते भी रहें तब भी रानीजी की रक्षा की तरफ ही ध्यान लगा रहता है, उन्हीं की चिन्ता बनी रहती है। आक्रमण पर एकाग्र मन नहीं रहता। इस कारण आपका न जाना ही अच्छा हुआ।"

"क्या तुमने मुझे बूढ़ी नानी समझ लिया? मुझे मेरे पिता ने सम्पूर्ण योद्धा बनने की शिक्षा दिलायी है। एक बार एक घटना हुई, तुम्हें बताती हूँ, सुनो। एक बार राजा (बिट्टिदेव) और मेरे बीच तलवार चलाने की स्पर्धा हुई। [illegible] परीक्षा की बात थी।" उस समय की बलिपुर में घटी सभी बातों का [illegible] साथ विवरण देकर महामातृश्री ने जो वादा कर लिया था [illegible] शान्तलदेवी ने।

"तो तब से महामातृश्री अपने मन में आपको [illegible]"

"उन जैसी विशाल हृदय कहाँ मिलेंगी चट्टला! [illegible]"

अच्छा हुआ जो इस वक़्त वे यहाँ नहीं रहीं। उन्हें ऐसी टेढ़ी-खोटी बातें, चुगलखोरों की बातें सुनना, जिद्द करना आदि विलकुल पसन्द नहीं। मैं धन्य हूँ कि मैंने उनका स्नेह पाया। मेरे माता-पिता का भी यही ख़याल है कि वे भी उनकी प्रीति का पात्र वन सके। मैं रोज़ भगवान् से यही प्रार्थना कर रही हूँ कि वे अपनी तीर्थ-यात्रा से जितनी जल्दी हो सके लौट आयें।"

"हेग्गड़तीजी भी तो साथ हैं, इसलिए कोई चिन्ता की वात नहीं।" चट्टलदेवी वोली।

"चाहे कोई रहे या न रहे, एक रेविमय्या साथ रहे, वही पर्याप्त है।" शान्तलदेवी ने कहा।

"क्या बात है कि उन्हें उसपर इतना विश्वास है ?"

"ऐसे व्यक्ति का जन्म विरला ही होता है। यह राजमहल का सौभाग्य है कि ऐसा व्यक्ति सेवा करने के लिए प्राप्त हो गया है। उसे यहाँ के सभी के स्वभाव का परिचय है। सवकी इच्छा-अनिच्छाओं को समझता है। सवसे मिल-जुलकर रहने की बुद्धिमत्ता उसमें है। निःस्वार्थ सेवा करने में उसका अग्रगण्य स्थान है। वह और माताजी दोनों महामातृश्री के साथ रहने से उनकी यात्रा सुगम होगी और आराम से लौट आयेंगी, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।" शान्तलदेवी ने कहा।

"क्या विश्वास, अम्माजी !" पूछते हुए मारसिंगय्या अन्दर आये।

"महामातृश्री···" शान्तलदेवी कुछ कहना ही चाहतीं थी कि इतने में मारसिंगय्या ने कहा, "वे आ गयीं।" इतना कहकर फिर वोले, "तुम्हें राजमहल भेजने के लिए आया हूँ, तुम्हारी माँ भी वहीं हैं; वह आज शाम तक ही यहाँ आ पायेंगी। तुम तुरन्त विट्टिगा को साथ लेकर चलो। पालकी तैयार है। तुम्हारी सारी चीज़ें चट्टलदेवी सँभालकर ले आयेगी।" मारसिंगय्या ने कहा।

"रेविमय्या···"

"वह भी आया है, आते ही उसने तुम्हारे ही बारे में पूछा। तुम्हें बुलाने ख़ुद ही आनेवाला था। मैंने ही "यात्रा के कारण थके हुए हो, आराम करो" कहकर उसे रोक दिया, और उससे यह कह आया कि मैं शान्तला को ख़ुद साथ लेता आऊँगा।" मारसिंगय्या वोले।

"राजा (विट्टिदेव) अभी लौटे नहीं। अव तक लौट आते तो कितना अच्छा होता।" शान्तलदेवी ने कहा।

"उन्हें और महाराज को सन्देश देने के लिए आदमी भेज दिया गया है। अव जल्दी चलो, देर मत करो। नहीं तो वह रेविमय्या भागकर आ जाएगा।" मारसिंगय्या ने कहा।

शान्तलदेवी विट्टिगा के साथ पालकी में वैठी और राजमहल चल दी।

"चट्टला, तुम अम्माजी का सारा सामान तैयार कर रखना, मैं मायण को

भेज रहा हूँ। बाद में तुम दोनों वह सामान लेकर आ जाना। गालब्बे ! गालब्बे !!"

पुकार सुनकर गालब्बे आयी। "देखो, अम्माजी राजमहल गयी हैं। मायण आयेगा। चट्टला और मायण को खिलाकर राजमहल भेज देना। तुम और लेंका भोजन कर लेना। मैं राजमहल जाऊँगा। दासब्बे और बूतुगा सामान-सरंजाम ले आएँगे। उनके आते ही तुम और लेंका राजमहल पहुँच जाओगे। महामातृश्री ने ने दर्यापत किया है।" इतना कहकर मारसिंगय्या राजमहल चल पड़े।

चट्टलदेवी ने कहा, "गालब्बे, रानी के मुँह में अमृत। वे महामातृश्री के सुरक्षित लौटने की बात कह ही रही थीं कि मालिक ने आकर कहा कि वे सकुशल लौट आयीं। वही हुआ न ? ऐसी देवी को पट्टमहादेवी होना चाहिए था। बड़े लोगों की वेटियाँ कहकर झुण्ड के झुण्ड को रानी वनाने से क्या फायदा ? राज-महल का सारा किस्सा तुम जानती ही हो न ? मैं यह पूछती हूँ कि वह ईश्वर भी कितना अविवेकी है। बुद्धि, शक्ति, साहस, निपुणता, विषयग्रहण करने की सूक्ष्म मति आदि सभी बातों में बिट्टिदेवरस जी महाराज से भी अधिक चुस्त हैं। हमारी रानीजी (शान्तलदेवी) उनके लिए बराबर की हैं। कैसी सुन्दर जोड़ी है यह ! मगर उस ईश्वर ने यह ठीक नहीं किया कि बिट्टिदेवरस को पहले जनमने न दिया। ऐसा क्यों किया ?"

"अकलमन्दी से ही ईश्वर ने यह काम किया है। अगर उनका जन्म पहले हुआ होता तो उन्हें इन दण्डनायक की वेटियों से शादी करनी पड़ती। इससे उन्हें अपने सारे जीवन में तकलीफ ही तकलीफ झेलते रहना पड़ता। ऐसा न हो, इसीलिए इन्हें बाद को जनमने दिया और इनसे शादी करवा दी। ईश्वर की मर्ज़ी का हमें पता कैसे लगेगा ? प्रत्येक की अपनी-अपनी आशा-आकांक्षाएँ होती हैं। ऐसी दशा में ईश्वर हमें सन्तुष्ट करने के लिए कोई काम नहीं करता। उसे जो ठीक जँचे उसी को वह करेगा।" गालब्बे ने कहा।

"तो क्या मेरा शील बिगाड़ना भी उसकी मर्ज़ी थी ?"

"मैं एक साधारण इसका क्या उत्तर दे सकती हूँ ? कहने के लिए तुम शील-भ्रष्टा हो। दामब्बे भी शीलभ्रष्टा है। वह चक्की चलाती जेल में पड़ी है। और तुम राजमहल में गौरव के साथ काम कर रही हो। इस फ़र्क को दृष्टि में रखकर, उस ईश्वर की मर्ज़ी क्या है इसे समझना होगा। हाँ, अब उठो, तैयार हो जाओ, अब तुम दोनों मेरे हाथ में फँसे हो। तुम दोनों को साथ बैठाकर खिलाऊँगी। बगीचे में जाकर दो अच्छे केले के पत्ते काट लाओ। उठो।" कहकर गालब्बे चली गयी।

"हमें साथ बैठाकर भोजन ! हे ईश्वर, यह कैसी खुशी की बात है ! ख्वाब

में भी जो लभ्य नहीं वह मुझे मिले ?" कहती हुई केले के पत्ते काट लाने के लिए चट्टला बगीचे में चली गयी।

शान्तला के साथ आये बिट्टिगा को देखकर एचलदेवी ने कहा, "यह कितना बड़ा हो गया है ! बढ़ने में इसकी तीव्र गति है उसके पिता की तरह।..."

"यह सब तो ठीक है, परन्तु एक क्षण के लिए भी यह चुप नहीं रहता। ऐसा कोई काम नहीं जिसमें यह हाथ नहीं डालता हो। कोई कुछ करे तो खुद भी वह काम करने के लिए उतावला हो उठता है ! उसकी माँ ने कहा था कि उसे अच्छा दण्डनायक बनाना है। यह कहना अब कठिन हो गया है कि वह क्या बनेगा। इसकी प्रवृत्तियों को देखकर मेरे मन में कई तरह की समस्याएँ उठती थीं तो एक बार मैंने राज-परिवार के ज्योतिषी से पूछा। उन्होंने कहा, 'इसकी जन्म-पत्री में कुज उच्च और लग्न केन्द्र स्थान में है। इसलिए कोई विद्या ऐसी नहीं जिसमें यह पक्का और निष्णात न हो। पंचमहापुरुषयोगों में एक रुचकयोग इसे है। इस कारण से इसकी कई बातों में रुचि है, और उन सभी बातों में वह निष्णात भी होगा। इस विषय में चिंतित होने की जरूरत नहीं। कुज शौर्य, निष्टात और वाक् आदि स्थानों का अधिपति है, इसलिए यह अच्छा वक्ता, महापराक्रमी, कार्यदक्ष बनेगा।' ज्योतिषी के यह बताने पर मुझे कुछ सान्त्वना मिली।" शान्तलदेवी ने कहा।

"यदि यह ऐसा बनेगा तो इसके माँ-बाप की आशा सफल होगी। इसे ऐसे गुण-सम्पन्न होकर बढ़ते हुए देखने का भाग्य मुझे मिलेगा या नहीं, मालूम नहीं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही मैंने इसे तुम्हें सौंपा है।" एचलदेवी ने कहा।

"आप भी इसे इस तरह का बना देखें—यही हमारी आकांक्षा है। आपकी तीर्थयात्रा सुगमरूप से सम्पन्न हुई होगी। कहाँ-कहाँ हो आयीं ?" शान्तलदेवी ने पूछा।

एचलदेवी ने पूरा विवरण विस्तार के साथ सुनाया और कहा, "मेरे लिए और कोई वांछा नहीं रही है। आप सब लोग एक परिवार बनकर जीवन निर्वाह करें यही मेरी आकांक्षा है।"

"आपकी आशाएँ आप ही के आशीर्वाद के बल से सफल बनें—यही चाहती हूँ। मुझसे परिवार की एकता टूटने का कोई कार्य न घटे यह शक्ति मुझे आपके

स्नेह से प्राप्त हो, यही आशीष दीजिए।" कहती हुई एचलदेवी के पर छूकर शान्तलदेवी ने प्रणाम किया।

"इसका मतलब···?"

"मतलब यह कि आपके आशीर्वाद का वल रहा तो ऐसा मौक़ा आने पर भी असूया रहित संयमयुक्त जीवन व्यतीत कर सकेंगे।"

"तुम्हें किसी के आशीर्वाद की ज़रूरत ही नहीं। अन्दर वैठा हुआ दर्द कभी न कभी अनजाने ही आपसे आप वाहर प्रकट हो ही जाता है। तुम्हारी वात से तो मुझे यही लगता है। तुम्हारे ज़ोर देकर कहने का ढँग देखकर लगता है कि किसी और की तरफ से इस तरह का काम हुआ है जिससे तुम्हारे मन को दुःख पहुँचा है। ऐसी क्या वात हुई?" एचलदेवी ने पूछा

"अव सव ठीक हो गया है। इतना ही काफी है।"

"ऐसा नहीं, वात मुझे मालूम हो तो अच्छा होगा न?"

"इस वात को महाराज या राजा के आने पर उनसे पूछ लें तो उचित होगा।"

"ठीक है। तुम पर ज़ोर-जवरदस्ती नहीं। सुना कि तुम वेलुगोल हो आयी?"

"हाँ, सन्निधान को युद्ध में जाना पड़ा, युद्ध में विजय प्रदान करने की प्रार्थना करने गयी थी।"

"एक विचित्र वात सुनो। यात्रा से लौटते-लौटते शिवरात्रि नज़दीक पड़ी। छोटे अप्पाजी ने तुम लोगों के साथ शिवगंगा में जो समय व्यतीत किया था उसका वर्णन करते-करते तव वह अघाता नहीं था। मुझे भी लगा कि शिवरात्रि को वहीं रहकर फिर आगे वढ़ें। शिवगंगा के धर्मदर्शी ने हमारी काफी आवभगत की। उन्हें वह पुरानी वात याद हो आयी जव तुम लोग वहाँ गयी थीं। उन्होंने कहा, 'उत्तम समय पर सन्निधान का आना हुआ है। राष्ट्र और राजघराने के श्रेय के लिए आज रात भर चारों याम पूजा-अर्चा की व्यवस्था की जायेगी।' हमने भी इस पूजा-अर्चा में भाग लिया और रात्रि-जागरण रखा। वे वहुत खुश हुए। शिवजी की इस वैभव-पूर्ण पूजा को देखकर हमें भी वहुत आनन्द हुआ। उस वृहदाकार वाहुवली के महामस्तकाभिषेक और इस शिवजी के अभिषेक दोनों में, सिवाय उस वृहदाकार के, किसी दूसरी तरह का अन्तर ही नहीं रहा। वृहदाकार वाहुवली और शिवगंगा के शिवजी के अभिषेकों में एक समान आनन्दानुभव हुआ। उस समय छोटे अप्पाजी ने जो धर्म जिज्ञासा तुम्हारे गुरुजी से की थी उस सव का उसने मुझे परिचय दिया। भगवान् हमारी कल्पना के अनुरूप हो जाते हैं। परन्तु उस कल्पना में परिशुद्ध भाव होना चाहिए। इस वात का अच्छा अनुभव हमने पाया।" एचलदेवी ने कहा।

"उसी दिन सन्निधान और राजा दोनों के प्राण वच गये। इतना ही नहीं, क्षणभर में विजय भी प्राप्त कर ली थी। वे भी उसी दिन सोमेश्वर के मन्दिर में

में भी जो लभ्य नहीं वह मुझे मिले ?" कहती हुई केले के पत्ते काट लाने के लिए चट्टला बगीचे में चली गयी।

शान्तला के साथ आये बिट्टिगा को देखकर एचलदेवी ने कहा, "यह कितना बड़ा हो गया है ! बढ़ने में इसकी तीव्र गति है उसके पिता की तरह।..."

"यह सब तो ठीक है, परन्तु एक क्षण के लिए भी यह चुप नहीं रहता। ऐसा कोई काम नहीं जिसमें यह हाथ नहीं डालता हो। कोई कुछ करे तो खुद भी वह काम करने के लिए उतावला हो उठता है ! उसकी माँ ने कहा था कि उसे अच्छा दण्डनायक बनाना है। यह कहना अब कठिन हो गया है कि वह क्या बनेगा। इसकी प्रवृत्तियों को देखकर मेरे मन में कई तरह की समस्याएँ उठती थीं तो एक बार मैंने राज-परिवार के ज्योतिषी से पूछा। उन्होंने कहा, 'इसकी जन्म-पत्री में कुज उच्च और लग्न केन्द्र स्थान में है। इसलिए कोई विद्या ऐसी नहीं जिसमें यह पक्का और निष्णात न हो। पंचमहापुरुषयोगों में एक रुचकयोग इसे है। इस कारण से इसकी कई बातों में रुचि है, और उन सभी बातों में वह निष्णात भी होगा। इस विषय में चिंतित होने की जरूरत नहीं। कुज शौर्य, निष्टात और वाक् आदि स्थानों का अधिपति है, इसलिए यह अच्छा वक्ता, महापराक्रमी, कार्यदक्ष बनेगा।' ज्योतिषी के यह बताने पर मुझे कुछ सान्त्वना मिली।" शान्तलदेवी ने कहा।

"यदि यह ऐसा बनेगा तो इसके मां-बाप की आशा सफल होगी। इसे ऐसे गुण-सम्पन्न होकर बढ़ते हुए देखने का भाग्य मुझे मिलेगा या नहीं, मालूम नहीं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही मैंने इसे तुम्हें सौंपा है।" एचलदेवी ने कहा।

"आप भी इसे इस तरह का बना देखें—यही हमारी आकांक्षा है। आपकी तीर्थयात्रा सुगमरूप से सम्पन्न हुई होगी। कहाँ-कहाँ हो आयीं ?" शान्तलदेवी ने पूछा।

एचलदेवी ने पूरा विवरण विस्तार के साथ सुनाया और कहा, "मेरे लिए और कोई वांछा नहीं रही है। आप सब लोग एक परिवार बनकर जीवन निर्वाह करें यही मेरी आकांक्षा है।"

"आपकी आशाएँ आप ही के आशीर्वाद के बल से सफल बनें—यही चाहती हूँ। मुझसे परिवार की एकता टूटने का कोई कार्य न घटे यह शक्ति मुझे आपके

स्नेह से प्राप्त हो, यही आशीष दीजिए।" कहती हुई एचलदेवी के पैर छूकर शान्तलदेवी ने प्रणाम किया।

"इसका मतलब...?"

"मतलब यह कि आपके आशीर्वाद का बल रहा तो ऐसा मौक़ा आने पर भी असूया रहित संयमयुक्त जीवन व्यतीत कर सकेंगे।"

"तुम्हें किसी के आशीर्वाद की ज़रूरत ही नहीं। अन्दर बैठा हुआ दर्द कभी न कभी अनजाने ही आपसे आप बाहर प्रकट हो ही जाता है। तुम्हारी बात से तो मुझे यही लगता है। तुम्हारे ज़ोर देकर कहने का ढंग देखकर लगता है कि किसी और की तरफ से इस तरह का काम हुआ है जिससे तुम्हारे मन को दुःख पहुँचा है। ऐसी क्या बात हुई?" एचलदेवी ने पूछा

"अब सब ठीक हो गया है। इतना ही काफी है।"

"ऐसा नहीं, बात मुझे मालूम हो तो अच्छा होगा न?"

"इस बात को महाराज या राजा के आने पर उनसे पूछ लें तो उचित होगा।"

"ठीक है। तुम पर ज़ोर-जबरदस्ती नहीं। सुना कि तुम बेलुगोल हो आयी?"

"हाँ, सन्निधान को युद्ध में जाना पड़ा, युद्ध में विजय प्रदान करने की प्रार्थना करने गयी थी।"

"एक विचित्र बात सुनो। यात्रा से लौटते-लौटते शिवरात्रि नज़दीक पड़ी। छोटे अप्पाजी ने तुम लोगों के साथ शिवगंगा में जो समय व्यतीत किया था उसका वर्णन करते-करते तब वह अघाता नहीं था। मुझे भी लगा कि शिवरात्रि को वहीं रहकर फिर आगे बढ़ें। शिवगंगा के धर्मदर्शी ने हमारी काफी आवभगत की। उन्हें वह पुरानी बात याद हो आयी जब तुम लोग वहाँ गयी थीं। उन्होंने कहा, 'उत्तम समय पर सन्निधान का आना हुआ है। राष्ट्र और राजघराने के श्रेय के लिए आज रात भर चारों याम पूजा-अर्चा की व्यवस्था की जायेगी।' हमने भी इस पूजा-अर्चा में भाग लिया और रात्रि-जागरण रखा। वे बहुत खुश हुए। शिवजी की इस वैभव-पूर्ण पूजा को देखकर हमें भी बहुत आनन्द हुआ। उस बृहदाकार बाहुबली के महामस्तकाभिषेक और इस शिवजी के अभिषेक दोनों में, सिवाय उस बृहदाकार के, किसी दूसरी तरह का अन्तर ही नहीं रहा। बृहदाकार बाहुबली और शिवगंगा के शिवजी के अभिषेकों में एक समान आनन्दानुभव हुआ। उस समय छोटे अप्पाजी ने जो धर्म जिज्ञासा तुम्हारे गुरुजी से की थी उस सब का उसने मुझे परिचय दिया। भगवान् हमारी कल्पना के अनुरूप हो जाते हैं। परन्तु उस कल्पना में परिशुद्ध भाव होना चाहिए। इस बात का अच्छा अनुभव हमने पाया।" एचलदेवी ने कहा।

"उसी दिन सन्निधान और राजा दोनों के प्राण बच गये। इतना ही नहीं, क्षणभर में विजय भी प्राप्त कर ली थी। वे भी उसी दिन सोमेश्वर के मन्दिर में

शिवजी की पूजा में भाग लेने गये थे। सुना कि एक दुश्मन ने प्रसाद में ज़हर मिला-कर सन्निधान और राजा को मार डालना चाहा था। स्वयं ज़हर पीकर दुनिया का उद्धार करनेवाले महादेव हैं न शिवजी ! उन्होंने इन दोनों को बचा लिया। आपकी शिवगंगा की शिवपूजा के आनन्द के अनुभव का ही फल आज हमें प्राप्त हुआ है।" शान्तला ने कहा।

"तो क्या, हमारी तीर्थयात्रा के आरम्भ होने के बाद फिर से युद्ध हुआ ?" एचलदेवी ने पूछा।

"हाँ।"

"बेलुगोल में भी इस सम्बन्ध में किसी ने कुछ कहा नहीं !"

"जहाँ युद्ध हुआ, उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र कहीं उसका प्रचार नहीं किया गया था। विजयोत्सव के संदर्भ में यदि कोई बेलुगोल से आये होंगे तो उनसे मालूम किया जा सकता था। सो भी उनके लौटने पर न ?"

"हमारी चट्टलदेवी को आने दीजिए। वह वहाँ थी, इसलिए इस संबन्ध में वह अधिक जानती है। और, वह बहुत रोचक ढंग से सब बताती है।"

इसके बाद उदयादित्य के बारे में बात शुरू हुई।

"वह बहुत कम बोलता है उसकी कई आकांक्षाएँ हैं परन्तु कहते उसे संकोच होता है। यों वह अन्दर ही अन्दर दुख का अनुभव करता रहता है। वह ऐसा सोचता है कि उसे सब कमजोर मानते हैं और अनुभवहीन तथा भोला समझकर छोड़ देते हैं। किसी तरह का उत्तरदायित्व उसे नहीं सौंपते। त्यागी विरक्त के लिए तो अन्तर्मुखी होना ठीक ही है, परन्तु यौवन की देहरी खड़ा व्यक्ति अपनी आन्तरिक वेदना को प्रकट न करके अन्तर्मुखी प्रवृत्ति को बढ़ाता रहे तो उससे हानि ही होगी। उसे किसी दायित्वपूर्ण काम पर लगाते रहे हैं या नहीं ?" एचलदेवी ने पूछा।

"नहीं, लेकिन अब उनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति दूर हो रही है और अब वह जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने की अभिलाषा प्रकट कर रहे हैं। उन्हें यादवपुरी के कार्य की ज़िम्मेदारी सौंपकर आने के ही उद्देश्य से राजा गये हुए हैं।"

"इच्छा प्रकट की, कहना तो यों ही पीठ ठोंकने जैसी बात है। कहीं कुछ उसने यों गुनगुना कर कह दिया होगा। खैर, जो भी हो यह अच्छा हुआ। वैसे यों गुनगुन करना मनुष्य की दुर्बलता का एक लक्षण ही है। ऐसे गुनगुन करनेवाले कोई कार्य नहीं साध सकते।"

"अब तो राजा के साथ देवर भैया भी आ ही रहे हैं न ? तब उन्हें प्रोत्सा-हित करना अच्छा होगा न ?"

"मुझे जो कहना होगा सो तो कहूँगी ही। इसमें मैं कर्तव्य से च्युत नहीं हूँगी। परन्तु सबको बता सकने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। तुम उम्र में छोटी

जरूर हो, पर तुम ऐसा कुछ कर सकती हो—यही मेरे लिए सांत्वना की बात है। प्रभु ने मुझे जो जिम्मेदारी सौंपी है उसे मैं अब तुम्हें सौंप सकती हूँ, क्योंकि अब तुम राजघराने के संचालन में और उसे नियन्त्रण में कर रखने में सब तरह से समर्थ हो और इस सामर्थ्य की केन्द्र विन्दु हो।"

"आपके आशीर्वाद की छाया में आपके दर्शाये मार्ग पर संयम के साथ आगे बढ़ूंगी। आपका मार्गदर्शन हमें दीर्घकाल तक मिलता रहे। भगवान् हमारी इस आशा को सफल बनावें, यही हमारी प्रार्थना है। मेरे माँ-बाप ने मुझे जैसा पाल-पोसकर बढ़ा बनाया, उसके अनुरूप मुझमें स्वातन्त्र्य और साहस विकसित हुआ है। आपका विशाल मनोभाव और संयमी जीवन मेरे लिए आदर्श बने हैं। इन कारणों से स्वेच्छा-रोग से मैं ग्रस्त नहीं हुई। सुसंस्कृत मानवता से पूर्ण व्यक्तित्व को मुझमें रूपित करने का लक्ष्य मेरे गुरुवर्यों ने मेरे सामने उपस्थित कर रखा है। आपके मार्गदर्शन में मुझे इन आदर्श तक पहुँचना है—यही मेरी आकांक्षा है। मैं आखिरी दम तक आपकी आज्ञा का पालन करती रहूँगी। आपकी प्रशंसा की बातें मुझमें स्वप्रतिष्ठा और अहंकार की भावना उत्पन्न न करें, आपके विशाल मनोधर्म की सद्भावनाएँ मेरे आचरण में रूपित हों, ऐसा आशीर्वाद दीजिए।"

यों बातें हो रही थीं कि इतने में चट्टला ने आकर कहा, "सारा सामान लेकर आ गयी हूँ। आपके प्रकोष्ठ में रख आयी हूँ।"

"वह देखिये चट्टला आ ही गयी। चट्टले! महामातृश्री की आकांक्षा है कि युद्ध सम्बन्धी सभी बातों को आमूल सुनें। तुम तो वहीं रही। मैंने कहा है कि तुम सभी बातों को जानती हो। सब कुछ सुनाओ और तुमने क्या-क्या किया, किस तरह किया सभी कुछ बताओ।" कहकर उसे महामातृश्री के पास छोड़कर शान्तलदेवी बिट्टिगा को साथ लेकर अपने प्रकोष्ठ की ओर चली गयी।

चट्टला ने विस्तार के साथ सब कह सुनाया। उसने अपने बारे में इतना ही कहा कि उसने षड्यन्त्र का पता लगाया। कैसे पता लगा सकी सो नहीं बताया। बिट्टिदेवरस की कुशलता का वर्णन करते समय उसके उत्साह का कोई ओर-छोर नहीं रहा। कहने के इस उत्साह में सब कुछ बता तो दिया, मगर सन्निधान के बारे में कुछ बताया नहीं यों समझकर उसने कहा कि चेंगाल्वों की सेना इतनी बड़ी तो नहीं इसलिए डाकरस दण्डनाथ और छोटे राजा दोनों ने सन्निधान को आगे जाने नहीं दिया। अगर उन्हें आगे जाने देते तो वे क्या कोई साधारण योद्धा हैं? जगदेव के साथ युद्ध करते वक्त मैंने देखा है न? इस तरह उनके युद्ध कौशल का वर्णन कर समाधानोक्ति प्रस्तुत की।

एचलदेवी को राजमहल के विषय में जानना था। जब चट्टला की बात एक सीमा तक पहुँची तो उसको वहीं रोककर कहा, "चट्टला, जाकर देख आओ कि सन्निधान मन्त्रणागार में ही है या अन्तःपुर में गये हैं?"

"कुछ कहना था ?" चट्टला ने पूछा।

"कुछ मत पूछो। अकेले में हैं क्या, देखकर आ। आये हों तो मुझे उनसे मिलना है।" एचलदेवी वोली।

चट्टला देख आयी। वोली, "मालूम हुआ कि आये काफी वक़्त हो गया।"

"अकेले हैं या..."

"अकेले हैं।"

एचलदेवी तुरन्त महाराज वल्लाल से मिलने चली गयीं। वल्लाल माताजी को आते देखकर उठ खड़े हुए। माँ का हाथ पकड़कर अपने पलंग पर विठाते हुए वोले, "माँ, आप यात्रा के कारण थक गयी होंगी, आराम नहीं किया ?"

फिर एक क्षण वाद वल्लाल ने पूछा, "कुछ विशेप काम था ?"

"हाँ, था।" दरवाजे की ओर देखती हुई एचलदेवी वोलीं।

वल्लाल ने माँ का इंगित समझ लिया और घण्टी वजायी। नौकर हाज़िर हुआ। उसे आदेश दिया गया, "किवाड़ वन्दकर वाहर ही रहो। हमारे आदेश के विना किसी को आने न दो।"

नौकर किवाड़ वन्द करके वाहर ही खड़ा रहा।

माँ की ओर देखते हुए वल्लाल ने कहा, "अव कहिए माँ !"

"कुछ नहीं। राजमहल के वारे में मैंने शान्तला से पूछा। उसने कहा, सन्निधान से पूछकर व्यौरा जाने तो अच्छा। उसके कहने के ढंग से ही उसके मन की पीड़ा स्पष्ट होती थी। इसलिए मैं ज़ोर न देकर तुमसे जानने के लिए यहाँ आयी। मेरे तीर्थयात्रा पर जाने के वाद यहाँ राजमहल में कुछ असन्तोपकर घटनाएँ हुईं ?" एचलदेवी ने पूछा।

"अव तो कुछ नहीं, इससे वीती वात वता सकते हैं। उस अवसर पर शान्तलदेवी ने जो वुद्धिमानी दिखाई और स्थिति को सम्भाला, इसी से आपका खुशी से स्वागत कर सकने की हालत आज उत्पन्न हुई है।" यों कहकर उस दिन की अमराई में हुई वातचीत से लेकर वोप्पदेवी के गर्भवती वनने के प्रसंग तक का सारा विवरण देकर वताया कि इस गर्भधारण के कारण गलत विचार करने लगने से वातावरण कलुषित हो उठा था। उस वातावरण को स्वस्थ वनाने में शान्तलदेवी का कितना प्रमुख भाग था, चट्टला के त्याग के कारण क्या उपकार हुआ, गालब्वे आदि की निष्ठा से रहस्य कैसे खुला, भयंकर षड्यन्त्र के खुल जाने और राष्ट्र को विजयी वनाने आदि विशिष्ट वातों का संपूर्ण व्यौरा कह सुनाया। राजमहल में किस तरह से सन्तोष की लहर लहराने लगी वगैरह सभी वातों से महाराज वल्लाल ने महामातृश्री को अवगत कराया। और अन्त में कहा, "देखिए, माताजी, महादण्डनायक या दण्डनायिका इन दोनों ने या इनमें किसी एक ने उस आचण को अपने वरावर की हैसियत का न मानकर कह

दिया कि 'हम ऊँचे और तुम निचले स्तर के हो।' यों कहकर उस बाचण के मन को दुखा दिया। उसका फल, कब किस रूप में फट पड़ा। अब रानियों को पता चल गया है कि वे स्वयं क्या हैं। जो भी हुआ सो अच्छा ही हुआ, यही लगता है।"

"वृक्ष में पके और पयाल में गर्मी देकर पकाये फलों में क्या अन्तर है, सो अब मालूम हो गया होगा। इस तीर्थयात्रा ने मुझे मानसिक शान्ति दी, इसलिए अब मैं लौट आयी। भगवान ने यह अनुग्रह किया कि मैं सबको खुश देख सकी। छोटे अप्पाजी और उदय मेरे लौटते वक़्त यहाँ होते तो आते ही सबको एकसाथ देखने की तृप्ति मिल जाती। अब तो उनके आने की प्रतीक्षा करनी होगी ?"

"वही होता। उदय की असन्तुष्टि के कारण उनकी यह यात्रा है। असन्तुष्टि का उदय के मन में होना ठीक नहीं लगा, इसलिए उसे यादवपुरी भेजने का निर्णय किया है। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित बात थी कि शान्तलदेवी के उपस्थित रहने पर ही राजमहल का वातावरण शुद्ध और स्वस्थ रहता है, और छोटे अप्पाजी पर यह दृढ़ विश्वास है कि उसके साथ रहने से हमारी शक्ति कई गुना बढ़ जाएगी—इन कारणों से इन दोनों को यहीं ठहरना उचित समझकर ऐसा निर्णय हम दोनों ने किया। उदय के साथ यादवपुरी जाकर, उसको वहाँ की सारी बातें समझाकर आने के लिए छोटे अप्पाजी साथ गये हैं। अभी दोनों को आने के लिए ख़बर भेज दी गयी है। अब दो-एक दिन में आ ही जाएँगे। उन्हें भी आपके दर्शन की उतनी ही आतुरता है" बल्लाल ने बताया।

"दो दिन प्रतीक्षा में व्यतीत करना भी अब कष्टकर मालूम होता है। लाचार हूँ, प्रतीक्षा तो करनी ही होगी। उन दोनों के यहाँ रहते सभी बुजुर्गों को इकट्ठा कर राजगद्दी के भावी उत्तराधिकारी के विषय में निर्णय कर लेना अच्छा है। छोटी रानी की सन्तान भगवान् की इच्छा के अनुसार ही होगी। यदि बच्ची हो जाय तो कोई क्लिष्ट परिस्थिति नहीं उत्पन्न होगी। यदि लड़का जनमेगा तो उस हालत में भी समस्या उठ खड़ी हो सकती है, इसलिए राज-परिवार की रीति का निर्णय हो जाना अच्छा है। इस तरह निर्णय होने पर सभी की निश्चित धारणा बन सकेगी। उस हालत में किसी को स्पर्धा-प्रतिस्पर्धा के लिए मौक़ा नहीं रहेगा। एक स्थान के लिए अनेक अधिकारी जनमेंगे तो ऐसे मौक़े पर ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य आदि भावनाएँ बढ़ने लग जाती हैं।" एचलदेवी ने स्पष्ट किया।

"आपकी राय क्या है, माँ ?"

"मेरी दृष्टि में पट्टमहिषी के पुत्र को ही पट्टाभिषेक हो, यही उचित लगता है।"

"यदि उसे पुत्र सन्तान न हो, तब ?"

"उसके बाद की रानी के पुत्र को वह अधिकार मिलना चाहिए।"

"तो आपकी दृष्टि में छोटी रानी को अब पुत्र जनमे तो भी उसे सिंहासन पर बैठने का अधिकार नहीं रहेगा। उसे यह अधिकार तभी मिल सकता है कि जब अन्य रानियों के लड़के न हों। यही न?"

"मुझे तो यही न्यायसंगत मालूम होता है। सभी की राय ले लो। परन्तु यह निर्णय हो ही जाना चाहिए। प्रसव होने तक प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।"

"ऐसा ही हो, माँ। यही करेंगे।" बल्लाल के इस आश्वासन ने उन्हें सांत्वना दी। राजमहल में जो घटना घटी थी उसे सुनकर उनके मन पर वज्राघात-सा अनुभव हुआ था। बाद में वे अपनी बहुओं के साथ सहज व्यवहार ही करती रहीं मानो कुछ हुआ ही नहीं।

बल्लाल के कहे अनुसार, बिट्टिदेव और उदयादित्य दोनों दोरसमुद्र शीघ्र ही लौट आये।

एक प्रशान्त वातावरण में राजमहल का जीवन एक पखवारे तक गुजरा।

तारण संवत्सर समाप्त हुआ और पार्थिव संवत्सर का आगमन हो गया।

एचलदेवी की इच्छा के अनुसार, सिंहासन के उत्तराधिकारी को चुनने के सिद्धान्त पर निर्णय करने के लिए सभा बुलायी गयी और निर्णय भी किया गया। इसके फलस्वरूप बोप्पदेवी में अंकुरित एक दूर की आशा वहीं मुरझा गयी। इस मौक़े पर मरियाने दण्डनायक को भी बुलवा लिया था। उन्होंने भी इस निर्णय को योग्य माना और इन लोगों से कभी आपस में बातों ही बातों में कहे गये विषय को लेकर जिद् करना उचित नहीं मानकर, अपनी बेटी को भी समझाया।

"पिताजी, इस निर्णय से मेरे बेटे की जान बच गई समझो। यही मेरा अहोभाग्य है।" कहती हुई एक सांस में बोप्पदेवी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर दी। निराशा, दर्द और एक समाधान की भावना—तीनों उसकी की बातों में सम्मिलित-सी प्रतीत हुईं।"

वह इस बात को अधिक आगे बढ़ाना नहीं चाहते थे इसलिए चुप हो गये। फिर बोप्पी ने ही पिता से बातें शुरू कीं, "पिताजी, लड़कियाँ प्रथम प्रसव के लिए मायके जाया करती हैं; मुझे क्या वह सौभाग्य भी नहीं मिलेगा?"

"मैं सिंदगेरे में अकेला हूँ। नौकर-नौकरानी वग़ैरह तो हैं परन्तु रानी बनी तुमको वहाँ इस वक़्त रखना उचित नहीं। यहाँ तुम्हारे बड़े भाई का भी घर है। राजधानी में ही रहकर राजमहल से इसके लिए अन्यत्र रहना युक्तिसंगत नहीं। अब बचा यादवपुरी में तुम्हारे दूसरे भाई का घर। मुझे तो तुम्हारी इस तरह की इच्छा का होना अनुचित नहीं लगता, इसलिए अगर तुम वहाँ जाने की बात मान लो तो मैं स्वयं सन्निधान से अनुमति लेकर साथ चलूंगा। वहाँ अब कोई राजा भी नहीं। राजमहल के अहाते ही में तुम्हारे भाई का सौध है—इस-

लिए सब ठीक हो सकता है।" मरियाने ने बताया।

थोड़ी देर सोचकर बोप्पदेवी ने कहा, "वही कीजिए, पिताजी।"

मरियाने ने महाराज के समक्ष बात छेड़ी। बल्लाल ने कहा, "सोचकर बताऊँगा।" फिर उन्होंने अपनी माँ से और बिट्टिदेव एवं शान्तलदेवी से भी सलाह लेकर अपनी सहमति दे दी।

एक अच्छे मुहूर्त के दिन नरम गद्दियों से सजी सुन्दर गाड़ी में कुसुम जैसी कोमल बोप्पदेवी को यादवपुरी में बड़ी सावधानी से पहुँचा दिया गया।

बोप्पदेवी के चले जाने के दो-तीन दिन बाद, एक दिन बल्लाल मध्याह्न के भोजन के पश्चात् पट्टमहादेवी पद्मलादेवी के साथ उनके प्रकोष्ठ में गये। वहाँ पान खाते हुए कुछ इधर-उधर की बातों में लग गये। इसी सिलसिले में उन्होंने पूछा, "पति के घर पर सब तरह की सहूलियतें रहने पर भी, प्रथम प्रसव के लिए मायके जाने की इच्छा क्यों किया करती हैं? शायद स्त्रियों की यही रीति मालूम पड़ती है?"

"ओह, सन्निधान बोप्पदेवी की ही बात को ध्यान में रखकर सवाल कर रहे होंगे। वह मायके के प्रति प्रीति की बात नहीं, राजमहल के निर्णय का प्रभाव है।" पद्मलदवी ने कहा।

"इसके माने?"

"माने स्पष्ट है। निर्णय के विषय में असन्तुष्टि। लड़के का जन्म हुआ तो भी उसे सिंहासन पर बैठने का अधिकार नहीं रहेगा, इसी के कारण क्रोध है।"

"न, न, जब उसने पूछा, 'सन्निधान हैरान तो नहीं होंगे, परेशानी तो न होगी न?' उस समय उसकी आँखों में दीनता का भाव झलक रहा था; उसे तब देखना चाहिए था। उसमें क्रोध रंच मात्र का भी नहीं दीखा। क्रोध को यों छिपाये रखना सम्भव नहीं होता।"

"वह दैन्य नहीं। मन-ही-मन जो शाप दे रही थी उसके लिए वह एक आवरण था। मैं अपनी बहिन को सन्निधान से भी अधिक जानती हूँ। वह हम सभी को शाप देने से कभी पीछे हटनेवाली नहीं। वह चुपचाप मौन साधे रहकर अन्दर ही अन्दर षड्यन्त्र करनेवाली घातुक प्रवृत्ति की है।" कहते-कहते दाँत कटकटाने लगी। बाद में "दैन्न-वैन्य कहाँ? ऐसा होता तो जाते वक़्त मुझसे आशीर्वाद लेने क्यों न आयी? मैं तो अब छोटी बच्ची नहीं हूँ। अब मैं सब समझ गयी हूँ। मुझे यह भी मालूम है कि किसे-किसे पकड़ में रखना चाहिए।" पद्मलदेवी ने कहा।

बल्लाल को लगा कि सिर चक्कर खा रहा है। मुँह में पान की पीक भरी थी, उसे निगलते वक़्त घूँट गले में अटक गया। अपनी छाती पर हाथ रखकर बोले, "पानी, पानी···।"

घबड़ाती हुई पद्मलदेवी उठी और एक चाँदी के घड़े में से कटोरे में पानी लेकर कर उनके हाथ में दिया। उसे पीकर बल्लाल वहाँ से उठकर चल दिये।

"सन्निधान यहीं आराम करते तो अच्छा होता।" पद्मलदेवी ने उनके छाती पर रखे हाथ की ओर देखते हुए कहा।

"कुछ नहीं। सुपारी का दोष है, कुछ अटका-सा हुआ है। कुछ घबराने की जरूरत नहीं।" कहकर फिर बात करने के लिए मौक़ा न देकर अपने प्रकोष्ठ की ओर चले गये। वहाँ पेट के बल अपने पलंग पर लेट गये। उनके दिमाग में पता नहीं क्या-क्या विचार आते रहे। सब ठीक हुआ मानना केवल मरीचिका है। थेगली, थेगली ही रहेगी। जहाँ थेगली लगी वहीं फिर फटती है। इसे ठीक करना किसी के भी वश की नहीं। यही लगता है। स्त्री के इस मनको ऐसा तैयार करने के लिए भगवान कौन-कौन वस्तुओं का उपयोग करता होगा? बात और तो प्रतिक्रिया कुछ और। छोटी रानी को गुस्सा है या इसी को? चाहे कोई गुस्सा करे, हमें तो मानसिक अशांति ही होगी? सही क्या है, ग़लत क्या है, इस बात का विचार न करके अपने को सब ओर से बन्द रखकर बैठनेवाली ऐसी औरतों के बीच रहना असाध्य है। पीछे चलकर जीवन असहाय हो उठे तो कोई आश्चर्य नहीं। अच्छे गुरु, उत्तम साथी संगी, प्रशान्त वातावरण, सब तरह की सुख-समृद्धि सब बातों के होते हुए भी इस तरह का बरताव? इस तरह के व्यवहारों का फल प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष ही सही भुगतने के बाद भी ऐसा व्यवहार करे तो लगता है कि स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पता नहीं, भगवान् की क्या मर्ज़ी है। पहले ही मैं छोटे अप्पाजी की तरह माँ की बात मान लेता तो शायद यह हालत न हुई होती—यों कई तरह की बातों के बारे में सोचते-विचारते महाराज बल्लाल पेट के बल लेटकर पड़े रहे, पता नहीं कब उनकी नींद लग गयी।

दिन के वक़्त विश्राम करते तो भी जल्दी उठ जाने की आदत थी बल्लाल की। आमतौर पर भाई बन्धु दोपहर के बाद सन्निधान के मन्त्रणागार के मुख-मण्डप में बैठकर कार्यक्रमों के बारे में विचार-विनिमय करते; यही उनकी रीति थी। इसी क्रम में बिट्टिदेव और उदयादित्य समय पर आये और सन्निधान की प्रतीक्षा में बैठे रहे। बहुत देर तक प्रतीक्षा की, फिर भी न आये तो सोचा कि सन्निधान रनिवास गये होंगे इसी शंका से वहाँ के नौकर से पूछा।

"भोजनान्तर सन्निधान पट्टमहादेवी के प्रकोष्ठ में तो गये, पर वहाँ से जल्दी ही लौट पड़े। और अपने प्रकोष्ठ में जाते हुए आदेश दिया कि जब तक हम स्वयं नहीं बुलाएँ तब तक किसी को अन्दर न आने दें।" नौकर ने सूचित किया।

तुरन्त बिट्टिदेव उदयादित्य के साथ महाराज के प्रकोष्ठ की ओर गये। किवाड़ यों ही सरका दिया था। सोचा शायद अन्दर से बन्द हो। किवाड़ को कुछ ढकेला, किवाड़ खुल गया। अन्दर झाँक कर देखा। महाराज पेट के बल लेटे पड़े थे।

उदयादित्य को इशारे से बुलाया, दोनों अन्दर गये। वल्लाल का दायाँ हाथ पलंग से बाहर लटक रहा था। यह सोचकर कि ऐसी गहरी नींद शायद बहुत थके होने के कारण लग गयी होगी, उस लटके हाथ को धीरे से उठाने के विचार से उसे पकड़ा, तो देखते क्या हैं कि हाथ आग की तरह जल रहा है।

उन्होंने कहा, "उदय, शीघ्र चारुकीर्ति पण्डितजी को ख़बर कर दो, जल्दी बुलाओ। माताजी को भी बता दो। सन्निधान का बदन आग की तरह तप रहा है।"

उदयादित्य ने पण्डित के यहाँ नौकर दौड़ाया। वह स्वयं माँ के पास गया और उन्हें ख़बर दी। वे भी तुरन्त उसके साथ वहाँ आ गयीं।

इतने में वल्लाल जग गये थे। आँखें लाल हो गयी थीं, चेहरा चिपचिपा हो गया था। आते ही एचलदेवी ने वल्लाल का माथा छूकर देखा। "कब से छोटे अप्पाजी...?" उन्होंने पूछा।

"भोजन के वक़्त तो स्वस्थ ही थे। सुना कि थोड़ी देर पटरानी जी के यहाँ रहे, फिर आकर लेट गये। हम रोज की तरह यहाँ आये, प्रतीक्षा की; बहुत देर प्रतीक्षा करने पर भी ये जब नहीं आये तो स्वयं चले आये। देखा, नींद में थे। शरीर तप रहा था। वैद्यजी को ख़बर कर दी है।"

"रानी को ख़बर नहीं दी?" एचलदेवी ने पूछा।

"इसलिए नहीं कहला भेजा कि घबरा जाएँगी। वैद्यजी के आने के बाद यह जानकर कि क्या कहेंगे, तब कहला भेजेंगे।" बिट्टिदेव ने कहा।

"पहले उन्हें ख़बर कर दो।" एचलदेवी ने कहा।

"उनकी यहाँ ज़रूरत नहीं।" वल्लाल के मुँह से आवाज़ आयी।

सब चकित होकर उनकी ओर देखकर चुप रह गये।

शीघ्र ही चारुकीर्ति पण्डित आये। परीक्षा की, दवा निकाली। चूर्ण शहद में घोल कर चटा दिया। "किसी को भेज देंगे तो एक क्वाथ (अरिष्ट) भेज दूँगा। उसे दिन में दो बार एक पखवारे तक देना है।" और कहा, "आज रात कोई आहार न दें। सन्निधान से कोई ज्यादा बातचीत न करें। सन्निधान को पूर्ण विश्रान्ति की आवश्यकता है। कल सवेरे तक पसीना निकल कर बुख़ार उतर जाय तो बाद में कोई ख़तरा नहीं। सुबह मैं एक काढ़ा बनाकर लाऊँगा। वातावरण शान्त और मौन रहे। किसी तरह की आवाज़ से उनकी विश्रान्ति भंग हो सकती है। इस बात का सब लोग विशेष ध्यान रखें। सन्निधान जिसे नहीं चाहते उस पर जोर न दें।" कहकर वैद्य चले गये।

महाराज अस्वस्थ हों तो सवाल उठे बिना रहेगा कैसे? उनके सामने सवाल न उठाने की मनाही वैद्य ने की। वे अपना काम करके चले। बिट्टिदेव उनके साथ बाहर आये।

घवड़ाती हुई पद्मलदेवी उठी और एक चाँदी के घड़े में से कटोरे में पानी लेकर कर उनके हाथ में दिया। उसे पीकर वल्लाल वहाँ से उठकर चल दिये।

"सन्निधान यहीं आराम करते तो अच्छा होता।" पद्मलदेवी ने उनके छाती पर रक्खे हाथ की ओर देखते हुए कहा।

"कुछ नहीं। सुपारी का दोष है, कुछ अटका-सा हुआ है। कुछ घवराने की ज़रूरत नहीं।" कहकर फिर वात करने के लिए मौक़ा न देकर अपने प्रकोष्ठ की ओर चले गये। वहाँ पेट के वल अपने पलंग पर लेट गये। उनके दिमाग में पता नहीं क्या-क्या विचार आते रहे। सब ठीक हुआ मानना केवल मरीचिका है। थेगली, थेगली ही रहेगी। जहाँ थेगली लगी वहीं फिर फटती है। इसे ठीक करना किसी के भी वश की नहीं। यही लगता है। स्त्री के इस मनको ऐसा तैयार करने के लिए भगवान कौन-कौन वस्तुओं का उपयोग करता होगा? वात और तो प्रतिक्रिया कुछ और। छोटी रानी को ग़ुस्सा है या इसी को? चाहे कोई ग़ुस्सा करे, हमें तो मानसिक अशांति ही होगी? सही क्या है, ग़लत क्या है, इस बात का विचार न करके अपने को सब ओर से वन्द रखकर वैठनेवाली ऐसी औरतों के वीच रहना असाध्य है। पीछे चलकर जीवन असहाय हो उठे तो कोई आश्चर्य नहीं। अच्छे गुरु, उत्तम साथी संगी, प्रशान्त वातावरण, सब तरह की सुख-समृद्धि सब वातों के होते हुए भी इस तरह का वरताव? इस तरह के व्यवहारों का फल प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष ही सही भुगतने के वाद भी ऐसा व्यवहार करे तो लगता है कि स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पता नहीं, भगवान् की क्या मर्ज़ी है। पहले ही मैं छोटे अप्पाजी की तरह माँ की वात मान लेता तो शायद यह हालत न हुई होती—यों कई तरह की वातों के वारे में सोचते-विचारते महाराज वल्लाल पेट के वल लेटकर पड़े रहे, पता नहीं कब उनकी नींद लग गयी।

दिन के वक़्त विश्राम करते तो भी जल्दी उठ जाने की आदत थी बल्लाल की। आमतौर पर भाई वन्धु दोपहर के वाद सन्निधान के मन्त्रणागार के मुख-मण्डप में वैठकर कार्यक्रमों के बारे में विचार-विनिमय करते; यही उनकी रीति थी। इसी क्रम में बिट्टिदेव और उदयादित्य समय पर आये और सन्निधान की प्रतीक्षा में वैठे रहे। वहुत देर तक प्रतीक्षा की, फिर भी न आये तो सोचा कि सन्निधान रनिवास गये होंगे इसी शंका से वहाँ के नौकर से पूछा।

"भोजनान्तर सन्निधान पट्टमहादेवी के प्रकोष्ठ में तो गये, पर वहाँ से जल्दी ही लौट पड़े। और अपने प्रकोष्ठ में जाते हुए आदेश दिया कि जब तक हम स्वयं नहीं बुलाएँ तव तक किसी को अन्दर न आने दें।" नौकर ने सूचित किया।

तुरन्त बिट्टिदेव उदयादित्य के साथ महाराज के प्रकोष्ठ की ओर गये। किवाड़ यों ही सरका दिया था। सोचा शायद अन्दर से वन्द हो। किवाड़ को कुछ ढकेला, किवाड़ खुल गया। अन्दर झाँक कर देखा। महाराज पेट के वल लेटे पड़े थे।

उदयादित्य को इशारे से बुलाया, दोनों अन्दर गये। बल्लाल का दायाँ हाथ पलंग से बाहर लटक रहा था। यह सोचकर कि ऐसी गहरी नींद शायद बहुत थके होने के कारण लग गयी होगी, उस लटके हाथ को धीरे से उठाने के विचार से उसे पकड़ा, तो देखते क्या हैं कि हाथ आग की तरह जल रहा है।

उन्होंने कहा, "उदय, शीघ्र चारुकीर्ति पण्डितजी को ख़बर कर दो, जल्दी बुलाओ। माताजी को भी बता दो। सन्निधान का बदन आग की तरह तप रहा है।"

उदयादित्य ने पण्डित के यहाँ नौकर दौड़ाया। वह स्वयं माँ के पास गया और उन्हें ख़बर दी। वे भी तुरन्त उसके साथ वहाँ आ गयीं।

इतने में बल्लाल जग गये थे। आँखें लाल हो गयी थीं, चेहरा चिपचिपा हो गया था। आते ही एचलदेवी ने बल्लाल का माथा छूकर देखा। "कब से छोटे अप्पाजी···?" उन्होंने पूछा।

"भोजन के वक़्त तो स्वस्थ ही थे। सुना कि थोड़ी देर पटरानी जी के यहाँ रहे, फिर आकर लेट गये। हम रोज की तरह यहाँ आये, प्रतीक्षा की; बहुत देर प्रतीक्षा करने पर भी ये जब नहीं आये तो स्वयं चले आये। देखा, नींद में थे। शरीर तप रहा था। वैद्यजी को ख़बर कर दी है।"

"रानी को ख़बर नहीं दी?" एचलदेवी ने पूछा।

"इसलिए नहीं कहला भेजा कि घबरा जाएँगी। वैद्यजी के आने के बाद यह जानकर कि क्या कहेंगे, तब कहला भेजेंगे।" बिट्टिदेव ने कहा।

"पहले उन्हें ख़बर कर दो।" एचलदेवी ने कहा।

"उनकी यहाँ ज़रूरत नहीं।" बल्लाल के मुँह से आवाज़ आयी।

सब चकित होकर उनकी ओर देखकर चुप रह गये।

शीघ्र ही चारुकीर्ति पण्डित आये। परीक्षा की, दवा निकाली। चूर्ण शहद में घोल कर चटा दिया। "किसी को भेज देंगे तो एक क्वाथ (अरिष्ट) भेज दूँगा। उसे दिन में दो बार एक पखवारे तक देना है।" और कहा, "आज रात कोई आहार न दें। सन्निधान से कोई ज्यादा बातचीत न करें। सन्निधान को पूर्ण विश्रान्ति की आवश्यकता है। कल सवेरे तक पसीना निकल कर बुख़ार उतर जाय तो बाद में कोई ख़तरा नहीं। सुबह मैं एक काढ़ा बनाकर लाऊँगा। वातावरण शान्त और मौन रहे। किसी तरह की आवाज़ से उनकी विश्रान्ति भंग हो सकती है। इस बात का सब लोग विशेष ध्यान रखें। सन्निधान जिसे नहीं चाहते उस पर जोर न दें।" कहकर वैद्य चले गये।

महाराज अस्वस्थ हों तो सवाल उठे बिना रहेगा कैसे? उनके सामने सवाल न उठाने की मनाही वैद्य ने की। वे अपना काम करके चले। बिट्टिदेव उनके साथ बाहर आये।

वैद्य ने उनसे पूछा, "कोई ऐसी बातचीत हुई जिससे महाराज के मन को कुछ परेशानी हुई हो ?"

"मालूम नहीं। भोजन के बाद पट्टमहादेवी के साथ, सुना कि कुछ समय बिताया। अगर कुछ ऐसी बातचीत हुई तो वहीं हुई हो। ब्योरा जानना है ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"ज़रूरत नहीं, कुछ लक्षण ऐसे लगते हैं कि उन्हें कुछ मानसिक आघात हुआ है। उनके लेटे रहने की रीति, अचानक चढ़ा हुआ बुखार, नब्ज की विचित्र गति यह सब परखने से तो मुझे ऐसा ही लगता है। सन्निधान जिसे पास रहने की अनुमति दें और चाहें वे ही उनके पास रहें। किसी भी स्थिति में उनके पास कोई रहे, यह आवश्यक है। सन्निधान के पास क्यों न कोई रानी रही आयें ?"

"महामातृश्री ने रानी को बुलाने की बात जब कही तो सन्निधान ने कहा, उन्हें यहाँ आने की ज़रूरत नहीं।" बिट्टिदेव ने कहा।

"ऐसा है तो उनका सन्निधान से दूर रहना ही बेहतर है। मैं सुबह आऊँगा।" कहकर वैद्य जी विदा हुए। रेविमय्या वैद्य जी के साथ गया और क्वाथ (अरिष्ट) ले आया। वैद्यजी के कहे अनुसार उस दिन क्वाथ एक बार पिलाया गया। बारी-बारी से बिट्टिदेव और महामातृश्री ने रात वहीं बितायी। महाराज कुछ बड़-बड़ाते हुए चुपचाप सोये पड़े थे। कुछ देर नींद-सी लगती फिर जग जाते।

दोनों रानियों ने बिना नींद के ही रात बितायी। उन्हें सन्निधान से मिलने का मौक़ा ही नहीं मिला।

पण्डित चारुकीर्ति ने समझा था कि बीमारी एक सप्ताह के अन्दर ठीक हो जाएगी, मगर ऐसा न होने के कारण कुछ भौंचक्के-से रह गये। उन्होंने दवा बदली। नई जड़ी बूटियाँ मंगवाकर सिद्धकल्प विधि से दवा तैयार करके दी। मानसिक आवेश के कारण जो बीमारी शुरू हुई वह बुखार के उतर जाने पर भी दिमागी-बीमारी के रूप में बदल गयी। यह डर भी लगने लगा कि यह कहीं उन्माद का रूप धारण न कर ले।

कारण तो बहुत छोटा ! मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया कि मुझे अपने पतिदेव की सेवा से वंचित होना पड़ा ? जब मुझसे कोई गल्ती हुई ही नहीं तो यह मनाही क्यों ?—यों सोचकर जितना सहन कर सकी किया, आखिर पद्मलदेवी से सहा न गया तो वह सीधे सन्निधान के प्रकोष्ठ में गयी। एक पखवारे की बीमारी के कारण बल्लाल बहुत कृशकाय हो गये थे। रुग्ण चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ बढ़ आयी थी। नाई को पास न आने देने और उस्तरे का प्रयोग न करने का आदेश दिया था। उनकी उस हालत को देख कर वह घबरा गयी। महामातृश्री की उपस्थिति का भी ख्याल न करके वह मनमाने ढंग से कहने लगी, "अनहोनी कुछ हो जाय तो भुगतनेवाली तो हम ही हैं ! खाली सहानुभूति दिखानेवालों को क्या है ?

पति की सेवा करने का हक मेरा है। उससे मुझे वंचित भला कौन कर सकेगा, मैं देखूँगी। मैं यहाँ से हटूँगी ही नहीं। मेरी कोई परवाह ही नहीं करते, इसलिए ऐसा हुआ। अपने लड़के को गद्दी नहीं मिलेगी—यह जानकर वोप्पि ने शाप दिया है। यह उसी के शाप का फल है। इसे ख़ुद न देख सकने की ही वजह से वह बहाना करके यादवपुर चली गयी है। मैं देख लूँगी वह इस राजमहल में कैसे फिर आएगी। सन्निधान की सरलता का उसने दुरुपयोग किया। परम घातुकी है वह। उसके गर्भ में पोय्सल सन्तान नहीं। सन्निधान को लील जाने के लिए चुड़ैल पैदा है। उसे हमल टिका, सन्निधान को रणक्षेत्र में भागना पड़ा। मेरा सौमांगल्य अच्छा रहा, वे खतरे से पार हो गये। अब आठवाँ महीना है, उसी का कुप्रभाव है। मुझे मालूम है कि यह सन्निधान की बुराई के लिए है।" पद्मल देवी यों बड़बड़ाती रही।

एचलदेवी सब सुनती रही, आगे वे सुन नहीं सकीं। तुरन्त उन्होंने ज़ोर से घण्टी बजा दी; दो-चार नौकर उपस्थित हो गये एकदम। घण्टी की आवाज़ ने पद्मला के मुँह को बन्द कर दिया।

बल्लाल ने 'हाय-हाय' कहा। अपने चारों ओर क्या हो रहा है, इसका उन्हें भान न रहा।

"क्या है अप्पाजी, कहती हुई एचलदेवी ने आँसू भरी आँखों से बेटे की ओर देखा। बिट्टिदेव कहीं बाहर था। आवाज़ सुनकर वह भी अन्दर आ गया।

"माँ, मन को आघात लगनेवाला कोई शब्द न करें—वैद्यजी ने यही कहा था न ? घण्टी किसने बजायी ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"मैंने ही बजायी, छोटे अप्पाजी। तुम्हारी इस पट्टमहादेवी को उनके प्रकोष्ठ में छोड़ आने की व्यवस्था करो।" एचलदेवी ने कहा।

"पट्टमहादेवी ! कहाँ है वह ? उसका गला घोंट दूँगा।" बल्लाल गरजा।

पद्मलदेवी थरथर काँप उठी। "हाय ! भगवान् मेरी यह दशा ? मेरा जीना व्यर्थ है।" कहती हुई वह बाहर चली गयी।

उसके पीछे ही बिट्टिदेव निकले। वह अपने प्रकोष्ठ में गयी और धड़ाम से किवाड़ बन्द कर लिये। बिट्टिदेव ने नौकरों से कहा, "सन्निधान की अस्वस्थता के कारण पट्टमहादेवी का मन बहुत विचलित हुआ है। वह कुछ कर न बैठें। होशियार रहना, निगरानी रखे रहना।" फिर वह बल्लाल के शयनकक्ष में चले गये।

"हाँ, रानी को बुलवाएँगे अप्पाजी, वह मायके गयी है।"—एचलदेवी बल्लाल से कह रही थीं।

"हाँ न। अभी पट्टमहादेवी के आठ महीने हो चुके हैं न। आने दे, धीरे से आवें।" बल्लाल ने कहा। वैद्यजी आये। उन्हें बाहर ले जाकर एचलदेवी ने जो

हुआ सब कह सुनाया। "अब की यह बीमारी उन्माद की ओर न बढ़े। यदि बात और बढ़ती तो उसका परिणाम बहुत बुरा होता। मेरे मन में यह शंका रही कि यह बीमारी है या ग्रहबाधा। अब यह निश्चित हो गया। यह बीमारी ही है। ज़बान बेकाबू हो तो ऐसे लोगों की बातों से शस्त्राघात से भी अधिक गहरा घाव दिमाग पर हो जाता है। पहले से ही मेरी कुछ ऐसी शंका रही। अब निश्चित हो गया। अब तक की परीक्षा और चिकित्सा से कोई अभिलषित फल न मिला तो भी कोई चिन्ता नहीं। इस आगामी ज्येष्ठ पूर्णिमा तक सन्निधान को स्वस्थ बना दूँगा। अगर ऐसा न कर सका तो इस वैद्यक वृत्ति को ही छोड़ दूंगा। वैद्य को आरोग्य की रक्षा और प्राणों की रक्षा करनी ही होगी। वह कभी प्राणभक्षक नहीं बन सकेगा। चाहे कोई भी नाखुश हो, किसी को उनके प्रकोष्ठ में आने नहीं देना चाहिए। नौकरों की भी जरूरत नहीं। मैं यहीं रह जाऊँगा। दवा की ज़रूरत होने पर ख़ुद जाऊँगा और ले आऊँगा। मैं, राजा, और आप—हम तीनों के सिवाय अन्य कोई इस प्रकोष्ठ में आने न पावें।"—पण्डितजी ने स्पष्ट कह दिया।

वैसी ही व्यवस्था की गयी। पण्डित चारुकीर्ति जी ने बड़ी निष्ठा के साथ नियमानुसार दवा दी, चिकित्सा और उपचार से सन्निधान को स्वस्थ बनाकर उन्होंने अपनी बात रखी। तीन पखवारों से अधिक समय लगा; फिर भी पण्डित जी ने महाराज को निरोग बना कर अपनी प्रतिज्ञा को बनाये रखा। मृतप्राय बल्लाल जी उठे।

अन्धकाराच्छन्न दोरसमुद्र का राजमहल फिर जगमगा उठा।

फलपूर्णिमा के दिन यादवपुरी में बोप्पदेवी ने एक लड़की को जन्म दिया। महाराज की अस्वस्थता की ख़बर केवल मरियाने को ही दी गयी थी। वह एक बार आये और महाराज के दर्शन कर पद्मला को कुछ उपदेश देकर यादवपुरी लौट गये। पडिण्त जी के कहने से बोप्पदेवी को ख़बर नहीं दी गयी थी। बल्लाल की बीमारी, पद्मलदेवी और महाराज के बीच का वार्तालाप, उसके बाद घटी-घटनाएँ आदि किसी भी बात की बोप्पदेवी को ख़बर नहीं थी। गर्भिणी सुखी रहे, सुख-प्रसव हो—इस उद्देश्य से ही उसे इन बातों की कोई ख़बर नहीं दी गयी थी। उद्देश्य सफल हुआ। सुख-प्रसव भी हुआ।

राजमहल को जब इस बात की ख़बर मिली तब महाराज स्वस्थ हो रहे थे। उन्हें शायद ऐसा लगा हो कि राजकुमारी का जन्म होना ही अच्छा हुआ। हो सकता है कि पद्मलदेवी को भी ख़ुशी हुई हो।

महाराज की यह बीमारी और उसके उन्मादावस्था तक पहुँचने का हाल आदि सभी बातें मालूम होने पर शान्तलदेवी और चामलदेवी को बहुत घबड़ाहट हुई। पहले भी इस पद्मलदेवी की ही बातों की वजह से असमाधान हुआ था। अब भी इस सारी घटना का वही कारण बन गयी। उसे ठीक करना असाध्य है। उसमें करीब-करीब माँ के कुछ गुण आये हैं—यही उन दोनों को लग रहा था। उन दोनों को बोप्पदेवी पर विशेष आत्मीय भावना उत्पन्न हो गयी। इस बात पर उन्हें सन्तोष भी हुआ कि बोप्पदेवी भविष्य को सोचकर यहाँ से दूर रही, इससे सुख प्रसव भी हुआ। यहीं रही होती तो संभव था अकाल प्रसव आदि अनहोनी ही हो रहती। ऐसी दुर्घटनाएँ न हो पायीं, यही एक समाधान था। इस सम्पूर्ण घटना में अपना कोई हाथ नहीं था तो भी वैद्य के कथनानुसार किसी के महाराज के पास न जाने के नियम का चामलदेवी ने निष्ठा और संयम के साथ पालन किया था। महाराज की अस्वस्थता के बारे में परोक्ष रूप से जानकारी प्राप्त होती तो थी, फिर भी वह भगवान से यही प्रार्थना करती थी कि उन्हें शीघ्र अच्छा कर दें। उसकी इस मनःस्थिति से शान्तलदेवी बहुत संतुष्ट थीं।

जब पद्मलदेवी को बोप्पदेवी की लड़की होने का समाचार मिला तो उसने जो संतोष प्रकट किया वह निम्न स्तर का था, इसे समझकर दोनों उसके प्रति कुछ असंतुष्ट ही हुईं। शान्तलदेवी ने चामलदेवी से कहा, "सुख-प्रसव के बाद बच्चा-जच्चा दोनों सुखी हैं न, इससे बढ़कर और क्या चाहिए। माँ बनने की आकांक्षा रखनेवाली स्त्री की यह इच्छा तो सहज है; जब माँ बनी तो बच्ची या बच्चे की कल्पना कर भेदभाव से अपनी सन्तान को देखना माँ का काम नहीं। मैं लड़की हुई, इससे मेरी माँ कभी दुःखी नहीं हुई। लड़के का जन्म न होने का उन्हें कभी दुःख नहीं हुआ।"

"सब ऐसा ही समझतीं तो दुनियाँ की रीत ही और होती। यह सब जानकर भी मैं खुद कही-सुनी बातें सुनकर क्या से क्या बन गयी थी। फिलहाल भगवान इतनी कृपा करे तो काफी है कि उस पट्टमहादेवी को पहले एक लड़का दे दे।" चामलदेवी बोली।

"आपको लड़का नहीं चाहिए?"

"कौन स्त्री ऐसा कहेगी कि लड़का नहीं चाहिए। परन्तु पहले उसका लड़का हो जाये तो उसके जीवन का लक्ष्य सध जाएगा। हम उसकी ईर्ष्या से बच जाएँगी। हम स्त्रियों को भगवान ने कैसे भी दुःख को सह लेने की शक्ति दे रखी है। महाराज तो कठिन बातों को नहीं सह सकेंगे। उसके लड़का हो जाय तो महाराज कभी बीमार न होंगे। हमारी माँ ने पहले से उसके दिमाग में ऐसी बातें भरदी हैं जो वहाँ सड़ रही है। उसके मन में केवल दो ही बातें हैं

कि खुद पट्टमहादेवी बने और उसका लड़का महाराज बने। इन दो बातों के अलावा उसके दिमाग में और कुछ है ही नहीं।"

"बुराई करनेवालों के प्रति भी भलाई कर सकने वाले कितने मिलेंगे?"

"यह उपकार करने की बात नहीं। मैं अपने को अच्छी तरह समझती हूँ। अपनी रक्षा और सुख के लिए तथा सन्निधान की मनःशान्ति के लिए इससे बढ़कर अच्छा कोई दूसरा मार्ग ही नहीं। इसमें उपकार करने की बुद्धि से अधिक स्वार्थ-बुद्धि है। इस वजह से यह प्रशंसा सही नहीं है।"

"उपकार के बदले अपकार ही पानेवाले इस समाज में, अपकार को दबा उपकार को माननेवालों की प्रशंसा होना सहज ही है। अच्छा, इस बात को रहने दें; जब राजकुमारी के साथ बोप्पदेवी यहाँ आएँगी तब हमें इस बात का ख्याल रखना होगा कि पट्टमहादेवी के मुँह से कोई व्यंग्य की बात न निकले और यहाँ जो कुछ हुआ इस बात की जानकारी उसे न दें—यही सूचना महामातृश्री ने दी है। मुझे भी यही ठीक लगता। इसलिए यहाँ की सब बातों को जाननेवालों का इस काम में सहयोग चाहती हूँ।"

"इसमें मेरा पूर्ण सहयोग है। यदि वह ही कुछ छेड़कर जानना भी चाहे तो भी मैं कुछ कहूँगी नहीं।" चामलदेवी ने कहा।

यहाँ की परिस्थिति से परिचित सभी लोगों से आश्वासन पाने के बाद शान्तलदेवी रानी बोप्पदेवी और राजकुमारी के स्वागत की तैयारी में लग गयी।

मरियाने दण्डनायक के साथ बोप्पदेवी और राजकुमारी दोरसमुद्र पहुँचे। वैभव के साथ रानी का स्वागत किया गया। उनकी अनुपस्थिति में यहाँ जो गुजरी थी उससे अनजान रानी बोप्पदेवी को सन्तोष हुआ ही। बच्ची को दूध पिलाती रानी से एक बार मरियाने ने कहा था कि महाराज का स्वास्थ्य बिगड़ गया था, पर अब अच्छे हैं। यह बात यादवपुरी में ही उन्होंने सुनायी थी। उस समय बोप्पदेवी ने बच्ची को छाती से लगाकर कहा था, "बेटी, तुम पर दो बार आरोप लगाया गया था कि तुम पिता का अहित करनेवाली हो; भगवान ने तुमको इस आरोप से बचा लिया है। यही मेरी कोख का सौभाग्य है।" फिर बच्ची को चुम्मा देकर खुश हो उठी थी। उसी खुशी में राजमहल में उसने प्रवेश किया था। देहरी पर आरती उतारकर उसे अन्दर बुला लिया गया था। अपने बेटे की ही शकल-सूरत लिये नवजात राजकुमारी को एचलदेवी ने अपनी गोद में लेकर चूमा और आशीर्वाद दिया। 'सुखी रहो बेटी, अज्ञातावस्था में रहनेवाली तुमने राजमहल में उथल-पुथल मचा रखी थी लेकिन आज खुशी के फव्वारे छूटे हैं। तुम्हारी उपस्थिति से आज राजमहल जगमगा उठा है।"

स्त्रियों की सारी मांगलिक क्रियाएँ समाप्त हुई, तब रानी बोप्पदेवी बच्ची के साथ महाराज के पास पहुँची। उन्होंने हँसते हुए उसका स्वागत किया। वह

अपनी ही आँखों पर विश्वास न कर सकी। उसे लगा कि इतना कमज़ोर होना हो तो यह बीमारी भी कैसी रही होगी। फिर भी उसने जल्दबाज़ी नहीं की। "यह सन्निधान का अनुग्रह है।" कहती हुई बल्लाल के हाथों में बच्ची को दे दिया। उन्होंने बच्ची को लेकर चुम्मा दिया। फिर कुशल वार्ता के बाद उन्होंने कहा, "यात्रा से थकी होंगी अब जाकर आराम करो।"

बोप्पदेवी ने पूछा, "सन्निधान को इतना कमज़ोर बनानेवाली ऐसी भयंकर बीमारी क्या थी?"

"सब आराम से बताऊँगा। अब तो सब ठीक हो गया है न? अब तुम ज्यादा अपने को थकाओ मत। जाओ, आराम करो।" बल्लाल ने कहा।

बच्ची को उनके हाथ से लेकर वह अपने प्रकोष्ठ की ओर चली गयी।

राजमहल का जीवन एक तरह से किसी तरह के उथल-पुथल के बिना चलने लगा था। शायद यही कारण है कि सब कम बोलते थे। बल्लाल महाराजे को पूर्ववत् शक्तिशाली बनने के लिए काफी समय लग सकता है, यही चारुकीर्ति पण्डित ने कहा था। उन्होंने यह भी कहा था कि कम-से-कम एक साल तक वे स्त्री-सम्पर्क न करें। शरीर के दुर्बल होने की वजह से महाराज किसी भी काम में विशेष उत्साह नहीं दिखाते थे। इसलिए सब अपने-अपने कामों में लगे रहे, यों कहना शायद गलत न होगा।

दिन गुज़रते गये। महाराज अधिक समय विश्रान्ति में ही व्यतीत कर रहे थे, किसी राजकाज या अन्य तरह के कार्यों में समय नहीं देते, किसी विषय को लेकर विशेष चिन्ता भी नहीं करते। यों ही समय व्यतीत करने से कुछ अच्छे विचारों की ओर महाराज का मन लगाने की बात सोचकर शान्तलदेवी ने यह अच्छा समझकर प्रतिदिन मध्याह्नान्तर कवि नागचन्द्ररचित रामचन्द्रचरितपुराण का पठन, उसका अर्थ-विवेचन एवं उस पर विचार-चर्चा करने के कार्यक्रम का आयोजन किया। इस गोष्ठी में महाराज, रानियाँ, बिट्टिदेव, उदयादित्य, एचलदेवी, शान्तलदेवी और कवयित्री कन्ति, इतने ही लोग उपस्थित रहा करते। इस कार्यक्रम में बल्लाल कुछ नवीन स्फूर्ति से भाग लिया करते, जो उनके लिए आवश्यक भी था। फुरसत के वक़्त और कुछ न सोचकर काव्य के ही विषय में सोचा करते। इससे उनका उत्साह प्रतिदिन बढ़ता ही गया।

इतने में बल्लाल की वर्धन्ती भी आ गयी। तब तक रामचन्द्रचरित पुराण का वाचन भी समाप्त हो चुका था। विचार-वार्ता करते वक़्त कन्ति जो सवाल उठातीं उसका उत्तर देना नागचन्द्र के लिए कुछ कठिन होता था। कई एक बार उनकी सलाह के अनुसार उन्होंने कुछ इधर-उधर परिवर्तन भी किये।

आपका काव्य उत्तम है। गुणभद्र और विमलसूरि की कृतियाँ ही आपको

प्रेरणा की मूल शक्ति हैं, यों होने पर भी विमलसूरि कृत रामायण का प्रभाव आपके काव्य में अधिक है, यह स्पष्ट है। बहुत विस्तृत रामकथा को संक्षिप्त बनाने में आपकी बुद्धिमत्ता विशेष रूप से प्रशंसनीय है। महाकवि पम्प की तरह श्रेष्ठ काव्य के निर्माण करने की आपकी अभिलाषा सफल हुई है। हम सब आपको अभिनव पम्प कह सकते है। परन्तु अब भी आप एक विषय को, स्वीकार करें तो, बदल सकते हैं। यह मुझे मालूम है कि कवि की स्वतन्त्रता को कोई छीन नहीं सकता। फिर भी वह विषय मूल से कुछ निम्न स्तर का-सा लगता है, मूल के गाम्भीर्य की सीमा का उल्लंघन हुआ-सा लगता है।" कन्ति ने कहा।

"कौन-सा विषय आपको ऐसा लगा रहा है?" नागचन्द्र ने पूछा।

"सीताजी के मोह में उन्मत्त रावण द्वारा प्रलोभन देकर उन्हें पाने के प्रयत्न के प्रसंग में संवाद की गम्भीरता कुछ ढीली हुई-सी प्रतीत होती है। मूल में जो गम्भीरता रही है उसे वैसे ही रहने देते तो ठीक होता!" कन्ति ने कहा।

"मैं विमलसूरि की कृति का अत्यन्त ऋणी हूँ। उनके द्वारा निर्मित पात्रों के स्वरूप में परिवर्तन लाने की मेरी इच्छा नहीं। यह परिवर्तन नहीं, संग्रह है। उनके और हमारे समय के व्यवहार में बहुत अन्तर है। समकालीन रीति-नीतियों को छोड़कर कवि जी नहीं सकता। उसे उसी पुराने ढंग पर चित्रित करने पर तो कवि कृतक बन जाता है। समसामयिक रीति-नीतियाँ काव्य में समन्वित हों तभी काव्य में नवीनता आ सकती है। तभी लगता है, "हाँ, यह सहज है।" यही भाव लोगों में उत्पन्न होता है। आज की रीति-नीतियाँ सार्वकालिक हैं, काव्य-रचना इसी आवरण में होती रहेगी, यह कैसे कहा जा सकता है? बात पुरानी होने पर भी कहने का ढंग नया बनता है। इसलिए यह प्रसंग ऐसा ही रहे, मेरी इच्छा है। इस बात पर विश्वास करना भी कठिन है कि मेरा यह काव्य अपरिवर्तित होकर जैसा अब है वैसे आगे भी बना रहेगा। जैसे-जैसे नकल उतारी जायेगी, परिवर्तन भी होता रहेगा। नकल उतारनेवाले की त्रुटि के कारण या उसकी प्रतिभा के कारण मूलरूप बदल भी सकता है। इसलिए ऐसा ही रहे" नागचन्द्र ने कहा।

एचलदेवी ने पूछा, "कवि निष्ठावान् जैन हैं। बालचन्द्र मुनिवर्य के प्रिय शिष्य हैं। कर्नाटक के जैन कवियों ने जैन-पुराण ग्रन्थों की रचना करके बहुत उपकार किया है। हमारे छोटे अप्पाजी ने आपसे सीखे आदिपुराण, शान्तिपुराण और अजितनाथपुराण आदि की कथा मुझे सुनायी है। आप एक जैन-पुराण क्यों नहीं लिख सकते?"

"बहुत समय पहले मैंने मल्लिनाथपुराण लिख रखा है। परन्तु उसमें बहुत परिष्कार की आवश्यकता है।"

"उस काम को जल्दी कीजिए न!" एचलदेवी ने कहा।

"जो आज्ञा। मरियाने दण्डनायकजी ने मुझ पर बहुत बड़ा अनुग्रह किया। उन्हीं के कारण मुझे पोय्सल राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ। यहाँ मैंने जितने दिन व्यतीत किये वे सार्थक रहे। यहाँ रहकर राजमहल के व्यक्तियों से लेकर एक सामान्य नौकर तक सभी लोगों के जीवन की रीति-नीतियों का परिचय पाने से मुझे काफी अनुभव प्राप्त हुआ। काव्य के शरीर को पुष्ट बनाने में इस अनुभव से विशेष सहायता प्राप्त होगी। इससे समसामयिक प्रज्ञा मुझमें जागृत हुई है। कन्ति देवी ने भ्रातृवात्सल्य से अपना सम्पूर्ण सहयोग देकर यह प्रमाणित कर दिया है कि वाक्-श्रीसम्पन्न रचनाकार मात्सर्य रहित और सहृदय होते हैं। वे एक महाकाव्य की रचना करके देंगी तो सारस्वत लोक का बढ़ा उपकार होगा। इन अभिनव वाग्देवी का नाम अमर हो जायेगा। इस प्रकृत सन्दर्भ में मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे एक महाकाव्य की रचना करें।" नागचन्द्र ने कहा।

"भगवदिच्छा होगी तो काव्य रचना हो जायेगी", कन्ति ने कहा।

वर्धन्ती के इस अवसर पर चारुकीर्ति पण्डित, कवि नागचन्द्र और कन्तिदेवी को सम्मानित करने का निर्णय भी हुआ।

निर्णय के अनुसार पण्डित चारुकीर्ति को "बल्लाल जीवरक्षक', कन्तिदेवी को 'अभिनव वाग्देवी' और कवि नागचन्द्र को 'कविता मनोहर' विरुद से अलंकृत किया गया और कंकण चूड़ी पहनाकर, दुशाल ओढ़ाकर सम्मानित भी किया गया।

यों कुछ महीने शान्ति से गुजर गये। महाराज बल्लाल मानसिक-स्वास्थ्य के कारण दिन-ब-दिन स्वस्थ होकर शक्तिलाभ कर रहे थे। उनकी हालत ध्यान में रखकर बिट्टिदेव दोरसमुद्र में ही रह गये। वर्धन्ती के समारम्भ के बाद उदयादित्य यादवपुरी चले गये। किसी तरह की विशेष घटना के बिना पार्थिव संवत्सर समाप्त होकर व्यय संवत्सर ने प्रवेश किया।

महाराज बल्लाल जब से चेंगाल्वों के युद्ध में गये तब से रानियों की मानसिक शान्ति भंग हो गयी थी। उसके बाद पूर्णरूप से मानसिक शान्ति रही ऐसा कहा नहीं जा सकता था। एक आरोग्य जीवन राजमहल में गुजर रहा था लेकिन बाद में महाराज की अस्वस्थता के कारण उसमें हेर-फेर आ गया था। अन्तरंग के यह विचार दिमाग में कीड़ा बनकर मस्तिष्क में छेद बनाते जा रहे थे। महाराज रोगमुक्त होने के बाद भी देहदौर्बल्य के कारण उद्देश्यवश रानियों से सम्पर्क नहीं रख रहे थे। कभी प्रसंगवश मिलते तो मन्दहास के प्रति मन्दहास कर देते। इतना ही। इससे अधिक बढ़ने का मौक़ा ही नहीं देते। वास्तव में एकान्त में वे किसी रानी से मिलने से डरते थे, कहा जा सकता है। उन्हें इस बात का डर था कि उनके साथ का एकान्त, पता नहीं किधर घसीट देगा। इस तरह रहने में उन्हें कोई मानसिक वेदना अनुभूत नहीं हुई थी। या यों कहा जा सकता है कि इससे

उन्हें बहुत मानसिक शान्ति मिली थी।

परन्तु ?

रानियों की मनःस्थिति ऐसी नहीं थी। एकाकी जीवन के कारण वे और उदास हो गयी थीं। बोप्पदेवी को इस अकेलेपन के कष्ट से बचाने के लिए अपनी बच्ची का कुछ सहारा मिल जाता। शेष दोनों को ऐसी कोई सहूलियत भी नहीं थी। चामलदेवी तनहाई के कष्ट का अनुभव करने पर भी संयम के साथ बरतती रही। उसका यही अभिप्राय था कि अपने तात्कालिक सुख से भी सन्निधान का स्वास्थ्य अधिक प्रधान है।

पट्टमहादेवी भी सह सकती थी। सन्निधान के स्वास्थ्य से वह अपरिचित तो नहीं थी। एकान्त में उनसे दो-चार बातें करने तक का मौक़ा न हो, इसके क्या माने हैं? एकान्त में थोड़ा समय उनके साथ बैठूँगी तो क्या मैं उनके शरीर का खून चूस लूँगी ? क्या मैं नहीं चाहती कि वे स्वस्थ रहें? मुझे भी अपने सुहाग की चाह है। अपना सौमांगल्य बना रखने में मुझे श्रद्धा है। फिर भी मुझे एकान्त में उनसे न मिलने देने के लिए राजमहल में कोई षड्यंत्र रचा जा रहा है। असूया के कारण ही यह किया जा रहा है। सन्निधान से मेरा सम्पर्क ही छुड़ा देने पर शायद किसी की कोई आशा पूरी होगी। इसीलिए यह सब हो रहा है। यह स्थिति यों ही रहने दूँ तो ये षड्यन्त्रकारी मुझे राजमहल से भी बाहर कर देंगे। चामला जो इतनी मिलनसार थी वह भी आजकल बहुत ही सीमित और कम मिलती है। लगता है कि वह भी इस षड्यन्त्र में शामिल है। पता नहीं उसे कौन-सा लालच दिखाया गया है। जो भी हो, सबने मेरा साथ छोड़ दिया है। पिता से भी झिड़कियाँ दिला सकनेवाले लोग क्या नहीं कर सकेंगे ? इसका कुछ-न-कुछ प्रतिकार करना ही होगा—पद्मला ने यह निश्चय किया। क्या करना होगा, इस पर सोचती ही रही। उसे कुछ सूझा नहीं। उस हालत में वह किसी से सलाह भी नहीं ले सकती थी; क्योंकि उसके मन में यह भावना जड़ जमा चुकी थी कि वह अकेली है। वह सोचती कि अगर माँ होती तो कोई-न-कोई रास्ता निकाल सकती थी। वह होती तो मेरी यह हालत न हुई होती। खुद भी उमंग से उछलती और मुझे भी उमंग से भर देती। बल्लाल के साथ विवाह होने की बात जब स्वप्न की चीज़ बनी थी तब उसे माँ के प्रति एक असह्य की भावना आयी जरूर थी, परन्तु अब एकदम उसका गुणगान करने लगी। हमारी सहूलियत के लिए बाकी सब लोग हैं, यह भावना जब बढ़ जाती है तब ऐसा ही हुआ करता है। गुणगान करते रहने पर भी अब वह मदद करने के लिए आएगी तो नहीं। फिर भी उसका नाम स्मरण करने से स्फूर्ति मिल सके तो अच्छा ही है न ? माँ का स्मरण करती हुई स्फूर्ति की आशा में पद्मला बैठी रही। इतने में वर्धमान जयन्ती का पर्व आ लगा।

इस पर्व में विशेष-पूजा अर्चा की राजमहल में व्यवस्था करनी थी। पुरोहित

जो कुछ करना है, उसे बताने के लिए आ गये। महामातृश्रीजी थीं, इसलिए उन्हीं को वह सब बताकर राजमहल से जाने के पहले पट्टमहादेवी का भी संदर्शन करते गये।

वर्धमान जयन्ती के लिए राजमहल में विशेष अर्चना की व्यवस्था हुई थी। सभी इस कार्य में श्रद्धा-भक्ति के साथ जुट गये। सबका मन हर्षोल्लास से भर गया था। उस दिन की पूजा के प्रधान कर्ता थे महाराज बल्लाल और पद्मलदेवी। इसलिए इन दोनों को संग बैठना पड़ा था। भोजन के वक़्त भी वैसी व्यवस्था होने के कारण साथ ही बैठे थे। भोजनोपरान्त आराम करने के लिए निकलते समय पद्मलदेवी ने कहा, "आज मन बहुत प्रशान्त है। पुरानी कई बातें याद आ रही हैं। सन्निधान से एक विनती करने का इरादा है। मेरे प्रकोष्ठ में पधारने का अनुग्रह करें।" उसकी आँखों में दैन्य था। इसका बल्लाल के मन पर प्रभाव पड़ा। इसके अलावा सुबह से एक साथ रहने से उसका भी शायद कुछ प्रभाव पड़ा था। इसलिए वह उसके प्रकोष्ठ में चले गये।

उन्हें पलंग पर बिठाकर पान दिया और ख़ुद भी पान खाने लगी। पान पूरा चबाने तक कोई बातचीत नहीं हुई। पैर पसारकर तकिये का सहारा ले बल्लाल लेटे रहे। पद्मलदेवी उनके पैर दाबने लगी। उस हाथ की गरमी लगने से बहुत समय तक वंचित रहने के कारण यह पैर दाबना सुखकर ही लगा होगा, यह कहने की जरूरत नहीं। पैर दाबते-दाबते उसने कहा, "सन्निधान के पैर कितने कृश हो गये हैं!"

"यह शरीर ही अशाश्वत है इसकी सूचना देने के लिए पैर ऐसे बन गये हैं।" बल्लाल ने कहा।

"सन्निधान अभी से विरक्त हो जाएँ तो हम लोगों का क्या हाल होगा?"

"हम लोग, इस बहुवचन का प्रयोग क्यों?"

"एकवचन होगा कैसे? एक लक्ष्य रखनेवाली और सन्निधान की पाणिगृहीता हम तीनों पृथक्-पृथक् तीन शरीर मात्र हैं न?"

"ओह, सौतों की तरफ से भी पट्टमहादेवी विनती कर रही हैं?"

"सौत होने पर भी बहिनें ही तो हैं।"

"बहिनें होकर भी सौत हैं, इस भावना से सौतें बहिनें हैं, यह भावना अधिक अच्छी है।" बल्लाल ने कहा।

"देरी से इसका बोध हुआ है।" पद्मलदेवी बोली।

"बात हृदय से निकली हो तो सन्तोष का विषय है।"

"हम सबका जीवन उस प्रारम्भिक दशा में जैसा था वैसे ही होना चाहिए। उस अमराई में, उन आम्र मंजरियों से लदे वृक्षों के बीच जैसे हमारे वे दिन व्यतीत हुए वैसा ही होना चाहिए। अब सब कुछ है, फिर भी कुछ नहीं ऐसा

जीवन किस काम का? सन्निधान इस बात को जब तक स्वीकार न करें और मेरे प्रकोष्ठ में आकर साथ न रहें, तब तक मेरी यही धारणा रहेगी कि मुझे सन्निधान से दूर रखने का एक षड्यन्त्र राजमहल में हो रहा है। इस षड्यन्त्र का कारण सन्तान पाने की मेरी आकांक्षा है, जो सहज है और पट्टमहादेवी होने के नाते भी है। हमारे विवाह को करीब-करीब तीन वर्ष हो गये, फिर भी माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। इस सौभाग्य की प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए, इस बात को लेकर मैंने पुरोहितजी से पूछा। इसलिए पूछा कि बोप्पदेवी पर भगवान् ने जो कृपा की वह मुझ पर क्यों नहीं की। उन्होंने कहा कि इसके लिए नागदेव की प्रतिष्ठा करें। सन्निधान से पूछकर इस विषय में पुरोहितजी से राय लेनी चाहिए थी। इस पर पहले विचार कर लेती तो ऐसा करना संभव हो सकता था। परन्तु वर्धमान जयन्ती के सन्दर्भ में पुरोहितजी जब राजमहल में आये तो उन्हें देख अचानक मेरे मन में यह भावना आयी। उन्हें बुलवाकर पूछ लिया। सन्निधान मुझ पर अनुग्रह करें।"

बल्लाल ने तुरन्त कुछ जवाब नहीं दिया। किसी सोच में डूबे रहे।

थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद पद्मलदेवी ने पूछा, "क्यों, सन्निधान की इच्छा नहीं?"

"तुम्हारी इच्छा अपने ही लिए है न?"

"मुझ पर भगवान् की कृपा नहीं हुई है, वह मुझे प्राप्त हो यही मेरी अभिलाषा है।"

"फिर भी इस विषय पर दूसरों का भी अभिमत जान लेना, मेरी राय में उचित होगा।"

"सन्निधान को रोक कौन सकता है?"

"तो तुम्हारा मतलब है कि किसी का अभिमत जानने की ज़रूरत नहीं?"

"इसका यों माने न लगाइयेगा। अगर किसी ने इनकार कर दिया तो तब क्या होगा?"

"इनकार क्यों करेगा?"

"सब के मन के अन्दर प्रवेश कर जानने की कोशिश करना, संभव हो सकता है?"

"हम लोग कहने पर यह ज़रूरी हो जाता है कि 'हम' में सम्मिलित सभी की बात जानने की कोशिश होनी चाहिए?"

"मेरे मन में जैसे विचार हैं, वे ही मेरी बहिनों के भी हों और पुरोहितजी ने जो सलाह दी उसे भी वे मान लें तो, मैं जानती हूँ, सब ठीक हो जाएगा।

अगर उनमें वे भावनाएँ न हों तो मत-भिन्नता हो जाती है। परन्तु जब मैंने 'हम' कहा तब मेरा इतना ही अभिप्राय था कि सन्निधान के प्रेम का फल मेरी बहिनों को भी मिले। इसीलिए बहुवचन का प्रयोग किया।"

"यह बातों का विन्यास है। उन सबसे पूछकर देखेंगे तभी हमें समाधान होगा।" यह कहकर बात वहीं ख़तम कर दी बल्लाल ने।

"जैसी सन्निधान की इच्छा।" पद्मलदेवी ने कहा।

"हमें जो बुलाया सो काम समाप्त हुआ न ?"

"आज यहीं ठहर जाँय। हो सकेगा ?" कहती हुई महाराज का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाने लगी।

उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया।

"इसके लिए वैद्यजी से अनुमति लेनी होगी ?" पद्मलदेवी पूछना चाहती थी। परन्तु पता नहीं, क्या सोचकर, पूछा नहीं।

"तुमने जब खुलकर सवाल रखा तो मैं यहाँ न ठहरकर चला जाऊँ तो तुम इसका कुछ और ही माने निकाल लोगी। इसलिए रहूँगा।" कुछ देर सोचने के बाद बल्लाल ने कहा।

"सन्निधान इतने दिन तक यहाँ नहीं आये।"

"इसके लिए तुमने षड्यन्त्र समझ लिया। अभी तक तुम्हारा मन साफ नहीं हो सका। तुम्हारे मन में एक सन्देह का भूत घर कर बैठा है कि तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होने न देने के लिए कहीं कोई रोक-रुकावट डाल रहे हैं। एक बात अच्छी तरह समझ लो। हमने सब को माप-तोल कर देख लिया है। किसी को तुम से द्वेष भाव नहीं। अगर किसी को कुछ द्वेष भाव हो भी तो प्रेम से उन्हें अपनाने की शक्ति पट्टमहादेवी में होनी चाहिए। यही मेरी आकांक्षा है। परन्तु तुम कहीं गहरे गड्ढे में जा पड़ी हो। पता नहीं तुम कब उससे ऊपर उठोगी। भगवान् ही जाने !"

"मैं किसी से द्वेष नहीं करती।"

"मैंने कहा कि तुमको अपने मन में निर्व्याज प्रेम बसाना चाहिए।"

"तो क्या मैं सन्निधान से प्रेम नहीं करती ?"

"तुम्हारा प्रत्येक कार्य स्वार्थ से घिरा है इसलिए एक परिपूर्ण व्यक्तित्व तुममें विकसित होना मुश्किल है।"

"तो मतलब यह कि मैं सन्निधान के योग्य नहीं—यही है न सन्निधान का आशय ?"

"तुम जिस पद पर बैठी हो उसके योग्य बनने का प्रयत्न नहीं कर रही हो, मेरे कहने का यह आशय है।"

"योग्य कैसे बनना होगा ? मैं जाकर उस चामला के पैर पड़ूँ ? वह आजकल मेरी परवाह ही नहीं करती। आमना-सामना हो जाय तो केवल हँस देती है। रही बोप्पि, उसकी बात छोड़िये, लड़की को जन्म देकर ही वह इतनी गर्वीली हो गयी है। यदि वह लड़के की माँ बन जाती तो हमें भूनकर ही खा जाती। सन्निधान की स्त्रियों की चाल मालूम नहीं पड़ती; समझ में नहीं आती। सबने मिलकर मेरे विषय में सन्निधान की दृष्टि को ही बदल दिया है। मैं केवल नाम के वास्ते पट्टमहादेवी हूँ। पर सब के पैरों की धूल बनी हूँ। ऐसा जीवन जीने से मरना अच्छा। स्वार्थ मुझ अकेली में है दूसरों में नहीं ? स्वार्थ, मुझमें इस स्वार्थ को जगानेवाले कौन ? मुझे पीठ-पीछे बाँझ कहकर किसने अपमानित किया ? सन्निधान को ऐसे ही लोग ठीक जँचते हैं। वही हो। मैं बाँझ रहकर ही समाप्त हो जाऊँगी। स्वयं तृप्त करने के ब्याज से सन्निधान को यहाँ ठहराने की मेरी इच्छा नहीं। सन्निधान को भी मुझ जैसी तृप्ति और सन्तोष हो—इसलिए मैंने निवेदन किया था। मैं सन्निधान को किसी भी तरह से रोकनेवाली नहीं हूँ। जहाँ इच्छा हो वहाँ सन्निधान विहार कर सकते हैं।" कहकर पद्मला वहाँ से उठकर प्रकोष्ठ का दरवाजा खोलने को उद्यत हुई।

उसकी मनोवृत्ति को समझनेवाले बल्लाल स्वयं उठकर उसे रोककर बोले, "जल्दबाज़ी में कुछ अनहोनी कर बैठने में तुम अपनी माँ के ही बराबर हो—ऐसा ही लगता है। यों बड़बड़ाकर बात करना ठीक नहीं। आओ।" कहकर उसे पकड़ लाकर पलंग पर बिठा लिया।

उसने झटका देकर निकल जाने की कोशिश की परन्तु वैसे हो न सका।

"आप मुझे कुछ भी कहें, मगर मरकर सुरलोक में रहनेवाली मेरी माँ की बात यहाँ क्यों उठाना चाहिए थी ?" पद्मला ने प्रतिवाद किया।

"जो बात है सो कहा तो इसमें असमाधान की क्या बात हुई ? तुम ही ने तो अपनी माँ के बारे में आक्षेप किया कि उस तरह का उनका व्यवहार ठीक नहीं था। यह बात तुम अपने पर लागू करके अपने को ठीक बना लो, यही मेरे कहेने का आशय है। इसके किसी अन्य अर्थ की कल्पना मत करो।"

"हाँ, मैं तो सदा अपार्थ ही की कल्पना करती रहती हूँ। इसलिए मेरा संग सन्निधान जैसे गण्य व्यक्तियों के योग्य नहीं। इसलिए, आपको सहूलियत हो इसी ख्याल से मैं किवाड़ खोलने निकली थी।"

"वह तुम्हारी टेढ़ी मनोवृत्ति का प्रतीक है।"

"किसकी प्रेरणा से सन्निधान मुझपर यह आरोप लगा रहे हैं ?"

"इसके लिए प्रेरणा की क्या ज़रूरत है ? आँखों देख—सुनकर एक-दूसरे का विरोधी जानने के बाद ऐसा ही सोचा जा सकता है।

"हाँ मेरा सारा काम तो दूसरों के विरुद्ध है। हँसते फुदकते मीठी बातें करके

अपनी इच्छा अनुसार नचाने की हिक़मत कर उस व्यभिचारिणी चट्टला से नाटक रचाकर सब काम साधनेवाला कौन है, यह मैं जानती हूँ। उनका क्या लक्ष्य हैं सो भी मैं समझती हूँ। वह है यह पोय्सल राजगद्दी। सन्निधान इन बातों की ओर से बेख़बर हो सकते हैं मैं तो अन्धी नहीं बन सकती। षड्यन्त्र के खुल जाने के डर से उस बाचम को सूली पर चढ़ा दिया गया न !"

"इन असंगत बातों को बन्द करो। हमारी सहनशक्ति की भी कोई सीमा है।"

"यह जानना अच्छा होगा न कि औरों की सहनशक्ति की भी कोई सीमा होती है। पीढ़ा लगाकर मिष्ठान्न सामने रखकर खाने से मना करें तो कितने समय तक उसे देखते बैठे रह सकते हैं ? स्वास्थ्य के बहाने वैद्य से कहलाकर रानियों के संग से दूर रखने का उद्देश्य और क्या हो सकता है ? इसका यही तो माने हुआ कि पत्तल परोसकर सामने बिठाकर खाने से मना कर देना। सन्निधान को सोचना विचारना चाहिए। रानियों के पुरुष सन्तान न हो तो उससे लाभ किसे होगा ? यह आप समझें न समझें, यह बात मेरे लिए इतने महत्त्व की नहीं। अभिलषित भोजन सामने पाकर मैं व्रत नहीं रख सकूँगी। सन्निधान ऐसा ही रहने का आदेश दें तो परिणाम क्या होगा सो मैं कह नहीं सकती। कुछ भी हो मैं अब चुप रहनेवाली नहीं, भले ही कोई होनी हो जाए। अब सन्निधान स्वयं निर्णय कर लें।"

नागचन्द्र बल्लाल को सभी शास्त्र पढ़ा चुके थे। इससे उन्हें यह समझने में सहायता हुई कि यह अतृप्त वासना का रूप है। उसने माना कि इस वासना को तृप्त कर दें तो सब ठीक हो जाएगा। इसलिए पट्टमहादेवी के प्रकोष्ठ में ही वह रहने लगे। फलस्वरूप राजमहल का वातावरण कुछ नया रूप धारण करने लगा।

शान्तलदेवी, बिट्टिदेव और महामातृश्री एचलदेवी के प्रति विशेष आदर होने के कारण चामलदेवी और बोप्पदेवी अपने-अपने स्वार्थ को महत्त्व देकर राजमहल के वातावरण को बिगाड़ना नहीं चाहती थीं। क्योंकि हितवचन चाहे कितना ही श्रेयस्कर क्यों न हो, स्वार्थ उसके आगे झुकेगा नहीं। वर्धन्ती के वक़्त जब मरियाने आये थे तब अकेली रहकर इस तनहाई के कष्ट को भोगते रहने और इस क्रोधोद्वेग को पनपने देने से बेहतर यह होगा कि पिता के घर जाकर पिता के साथ रहें, इस विचार से चामलदेवी और बोप्पदेवी दोनों ने वहाँ जाकर रहने का निश्चय किया। पद्मलदेवी ने इतना शिष्टाचार भी नहीं निभाया कि उन्हें जाने से रोकने को कहती। उसने समझा बला टल गयी। अपनी बड़ी बेटी की यह हालत देखकर मरियाने बहुत दुखी हुए। मगर बोले कुछ नहीं।

दिन गुज़रते गये। बल्लाल ने राजकाज की सभी तरह की जिम्मेदारियाँ

बिट्टिदेव पर छोड़ रखी थीं। वे पट्टमहादेवी के शयनकक्ष से ही सन्तुष्ट और सीमित रह गये। इस तरह के जीवन का फल भी मिला। पद्मलदेवी गर्भवती हुई। वह गर्व से फूल उठी। हज़ार-हज़ार मनोतियाँ मनायी गयीं, बेटा ही हो। उसकी इच्छा सफल हुई। "अपनी विरोधियों को रौंद सकनेवाले सिंह को जन्म दिया है, इसलिए इसका नाम नरसिंह रखा जाए।" पद्मलदेवी ने कहा। बल्लाल की इच्छा थी कि अपने दादा के ही नाम पर उस का अभिधान करें। पद्मलदेवी की इच्छा के सामने उन्हें झुकना पड़ा। राजकुमार में मेरा ही खून है लेकिन यदि माँ के गुण उसमें आ गये तो विनयादित्य नाम उसके लिए अन्वर्थ न होगा। इस तरह का भी विचार उनके दिमाग में एक बार आया। वह पद्मलदेवी के हाथ की कठपुतली ही बन गये थे।

बिट्टिदेव कुछ समझा-बुझाकर राजकाज में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देते तो वे कहते, "पट्टमहादेवी को तृप्त रखना ही एकमात्र साधन है राजमहल में शान्ति स्थापना के लिए। हम चाहें या न चाहें, हमें ऐसा ही करना होगा। शेष सारा कार्य तुम्हारे जिम्मे है, छोटे अप्पाजी। इस विषय का उल्लेख भी मेरे सामने न करो, मुझे सोच-विचार करने के लिए प्रेरणा भी मत दो। तुम्हारे हाथों में राष्ट्र सुरक्षित है, यही मेरे लिए पर्याप्त है।" बल्लाल ने अपना निर्णय सुना दिया।

पद्मलदेवी का व्यवहार शारीरिक तृप्ति तक सीमित हो गया। शेष सब बातें उसे गौण थीं। बल्लाल का जीवन यान्त्रिक बन गया था। पद्मलदेवी के लिए यह जीवन स्वर्ग-सा लग रहा था। परन्तु पद्मलदेवी को यह नहीं सूझा कि बल्लाल के लिए यह जीवन नरक बन गया है।

समय सरकता रहा। दुर्भाग्यवश बोप्पदेवी की बेटी बीमार हो गयी और उसी में इहलीला समाप्त कर चल बसी। तब भी पद्मलदेवी के मन में यह विचार नहीं आया कि उसे राजधानी में बुलाकर कुछ सान्त्वना देवें। महाराज बल्लाल पट्ट-महादेवी और राजकुमार के साथ वहाँ गये जहाँ बोप्पदेवी थी और उसे देख आये।

चामलदेवी को अपनी दीदी (पद्मला) का यह व्यवहार बहुत बुरा लगा। उसे लग रहा था कि वह दुखी बहिन के दुख में सहभागिनी होने नहीं, बल्कि अपना लड़का दिखाकर उसे चिढ़ाने आयी है। बात कुछ कड़वी थी पर थी स्पष्ट।

बोप्पदेवी प्रतिक्रियात्मक भावना में बोली, "भगवान अन्धा नहीं। जो नमक खाते हैं उन्हें पानी पीना ही पड़ेगा।"

चार-छः साल गुज़र गये। चामलदेवी और बोप्पदेवी दोनों राजधानी में लौट आयीं। ऐसा दिखता था कि सब कुछ शान्ति और सन्तोष के साथ से चल रहा है। महामातृश्री एचलदेवी भगवान् से यही प्रार्थना कर रही थीं: "शान्तिमय वातावरण के रहते हुए, हे भगवान् मुझे दुनियाँ से उठा लो।" परन्तु भगवान् ने उनकी विनती सुनी ही नहीं।

भगवान् की रीति निराली है। वह किसी की समझ में नहीं आती। अपनी इच्छा के अनुसार काम हो गया तो कहेंगे कि ईश्वर की कृपा हुई। इच्छानुसार काम न हुआ तो कहेंगे कि पुराकृत कर्म का फल है। गुस्सा आ गया तो कह बैठते हैं कि भगवान् अन्धा हो गया है। परन्तु भगवान् न तो आसक्त है, न अनासक्त ही। सबकुछ पहले से नियोजित है, यों नहीं समझते। इस दशा में, एक दिन राजकुमार नरसिंह शाम को खेल रहा था। अचानक उसने कहा कि गले में दर्द हो रहा है। तुरन्त वैद्यजी को बुलाया गया। औषध-उपचार शुरू हुआ। परन्तु कुछ सफलता नहीं मिली। यह गण्डमाल रोग बालक राजकुमार नरसिंह को दुनियाँ से उठा ले गया।

पद्मलदेवी इधर सिंहिनी बन बैठी। एक तरह से अशक्त बल्लाल को अकेले ही इसके सब तरह के उत्पातों को सहना पड़ता था। यों तो राजकुमार की मृत्यु सहज ही बीमारी के कारण हुई थी, परन्तु पद्मलदेवी समझती थी कि इसमें किसी का हाथ है। साथ ही, इसके प्रतिकार करने की उसमें शक्ति न रही। वह सोचती कि अधिकार सूत्र मेरे अपने ही हाथ होता तो अच्छा था। उसने यह निर्णय कर लिया कि फिर एक दूसरा बच्चा जन्मे। इसके लिए वह कोशिश करने लगी।

इस प्रयत्न का प्रभाव भी शीघ्र देखने को मिला। वैद्यजी को फिर से राजमहल में आना पड़ा। चारुकीर्ति पण्डित आये, देखा और कहा, "पहले के मस्तक रोग के प्रभाव के कारण सन्निधान की नसों में दुर्बलता आ गयी है। इन्हें उत्तेजित करने जैसी कोई क्रिया अत्यधिक हो जाये तो वही बीमारी दुबारा लग सकती है, इसलिए सावधान रहना अब अत्यन्त आवश्यक है।"

"आपके इस सन्निधान का जीवन सब तरह से व्यर्थ है। इससे पूरे राजमहल में हलाहल विष फैलाने के बदले हम अकेले पी लें यही अच्छा है। हम इसी निश्चय पर पहुंचे हैं। इस निश्चय के अनुरूप हमें अपने जीवन को रूपित कर लेना है। आप अपना काम करें, हम अपना काम करेंगे। हमें तो अपने सुख से राजमहल एवं राष्ट्र का हित प्रधान है।"

"राष्ट्रहित और राजमहल का हित दोनों के लिए सन्निधान का हित बहुत प्रधान है।"

आपकी दृष्टि में ऐसा हो सकता है। आज की स्थिति देखने हुए राजमहल का हित और राष्ट्र का हित—इन दोनों से हमारे हित का कोई वास्ता नहीं। राष्ट्र हित के लिए हमारा बलिदान ही अच्छा यही निश्चय हमने कर लिया है। भगवदिच्छा क्या होगी सो मालूम नहीं। आप अपना काम करें। फल की ओर देखकर निराश न हों।"

पण्डित चारुकीर्ति ने सोचा कि अब इनसे बात करना व्यर्थ है। उन्होंने जो दवा देनी थी वह दे दी। वहाँ से चल कर वे एकान्त में बिट्टिदेव से मिले और

उन्हें समझाकर कहा, "राजाजी ! सन्निधान को समझा-बुझाकर आपको उनकी मानसिक पीड़ा के परिहार की कोई युक्ति निकालनी होगी। ऐसा न हुआ तो कोई दवा काम न आयेगी। उनकी कृपा से मुझे जो विरुदावली प्राप्त है, वह अर्थहीन हो जायेगी।"

बिट्टिदेव जानते थे कि यह काम इतना आसान नहीं। पिछली वर्धमान जयन्ती के समय से वल्लाल पट्टमहादेवी के रनिवास से बाहर निकले ही नहीं थे। इससे उनकी लाचारी का उन्हें पता था। पूर्वघटित सारी घटनावली की पृष्ठभूमि के विचार से, उन्हें यह अच्छी तरह मालूम हो गया था कि बात पेचीदा है। फिर भी उन्होंने सोचा कि महाराज को अपने निश्चय से पराङ्मुख करना होगा। शान्तलदेवी से भी सलाह-मशविरा किया। रानी चामलदेवी पर विश्वास कर, अपने अंतरंग में लेकर उन्हें आगे कर निवास को बदल देना शायद अच्छा हो—यही मानकर दोनों ने विचार किया। फिर चामलदेवी और बोप्पदेवी इन दोनों की इच्छा के अनुसार मरियाने दण्डनायकजी को बुलवाया।

शान्तलदेवी ने चामलदेवी से एकान्त में बातचीत की। पहले से भी चामलदेवी की रीति एक तरह से सीधी ही रही कहा जा सकता है। उसने भी यही विचार किया कि सन्निधान के बिगड़ते हुए स्वास्थ्य को और बिगड़ने से रोकना चाहिए। यही सब सोच-विचारकर वह अपनी बड़ी दीदी के पास गयी। उसकी मुखस्तुति करके, बढ़ा-चढ़ाकर उसकी प्रशंसा करके बोली, "बोप्पी के हाथ का कौर मुँह तक नहीं पहुँचा, फिर वह उसे न मिले—इसके लिए तुमने सन्निधान को अपने निवास से निकलने ही नहीं दिया तो समझा कि बहुत जबरदस्त युक्ति का तुमने प्रयोग किया। तुम्हारी जैसी बुद्धिमत्ता हममें होगी भी कैसे? यह सब देखकर कह सकती हूँ कि ऐसी बातों में अपनी बुद्धि को दौड़ाने में तुम तो मां से अधिक चतुर हो। मुझे शायद किसी साधारण व्यक्ति से पाणिग्रहण करके कहीं पड़े रहना चाहिए था; तुम्हारी उदारता के कारण मुझे भी रानी बनने का अवसर मिला था। तुमने बड़ी उदारता के साथ ऐसी व्यवस्था की कि साल में दो ऋतुओं का समय सन्निधान के संग रहने की तृप्ति मुझे प्राप्त होनी चाहिए थी। साल-पर-साल बीत गये। मैं भी तुम्हारी ही तरह भूखी हूँ। परन्तु इस भूख को मिटाने के लिए क्या करना चाहिए—यह सोच-सोचकर थक गयी; मुझे कोई रास्ता ही नहीं सूझा। तुमसे पूछने का विचार मन में आया, परन्तु फिलहाल तुम्हारा मन भी सहवास न रहने के कारण कुछ उल्टे विचारों में डूबा था और दुखी था। मेरा मन कहता था कि इस सम्बन्ध में तुमसे बातचीत कर तुम्हें परेशानी में डालना ठीक नहीं। इसलिए वर्षों तक ऐसी ही तनहाई का जीवन व्यतीत करती रही। अब तुम्हारे पास पति-भिक्षा माँगने आयी हूँ। पहले जैसी उदारता दिखाकर मुझे वह भिक्षा देकर मेरी भी भूख मिटाने की कृपा करो।"

"देखो चामु, मुझे तुमपर या बोप्पी पर कोई द्वेष नहीं, कोई असमाधान नहीं। पोय्सलों की राजगद्दी मेरे बेटे को या तुम्हारे या बोप्पी के बेटे को ही मिलनी चाहिए। इस समय उस अधिकार को हम से छीनने के लिए और ख़ुद गद्दी पर बैठने के उद्देश्य से राजमहल में एक षड्यन्त्र रचा जा रहा है। इसे जानकर मैंने निश्चय किया कि इस षड्यन्त्र को ख़त्म ही कर देना चाहिए। इसलिए सन्निधान को चिढ़ाकर, चेतावनी देकर उन्हें मैंने अपना वशवर्ती बना लिया है। परन्तु एक बात मुझे खटक रही है। सोच रही थी इसके लिए क्या करूँ। वैद्य कहते हैं कि सन्निधान की नसें ढीली हो गयी हैं। उन्हें उत्तेजित नहीं करना चाहिए। परन्तु सन्निधान इस बात पर जिद्द पकड़े बैठे हैं। इस विषय में मेरी इच्छा-अनिच्छा की बात सुनते ही नहीं। मेरी कही बात को उल्टा मुझपर ही प्रयोग करते हुए कहते हैं : 'बेचारी को भूखे रखना ठीक नहीं। पोय्सल महाराज इस आरोप को न सह सकेंगे कि वे पोय्सल रानियों को तृप्त नहीं कर सके।' इस तरह जिद्द पर अड़े रहते हैं। शायद मेरे ऊपर के ग़ुस्से को इस तरह अपने ही ऊपर प्रयोग करके, स्वयं को दण्ड दे रहे हैं—यही लगता है। अतः वे तुम्हारे रनिवास में आ जाएँगे तो तुम्हारा भी हित होगा, उनका भी। इसलिए तुम सन्निधान के पास जाकर आमन्त्रित करो। मैं भी सहयोग दूँगी।"—उसके मुँह से ऐसी बात की संभावना कोई नहीं कर सकता था।

बल्लाल ने एकदम मना कर दिया। लेकिन किसी तरह माना-नुना करने पर वह चामलदेवी के अन्तःपुर चले आये। जिस दिन वह चामलदेवी के अन्तःपुर में आये, उस रात बेखटके सोने का मौक़ा मिला। पश्चात् एक पखवारे के अन्दर ही अन्दर वह उस उद्वेग की भावना से धीरे-धीरे अपनी सहज स्थिति में आ गये। शान्तलदेवी की सलाह के अनुसार, चामलदेवी ने अपना व्यवहार सीमित रखा और संयम के साथ पतिदेव के साथ बरतती रही। उसके इस तरह के व्यवहार के कारण महाराज का शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मन भी स्वस्थ हो चला था। हित और मित व्यवहार से उनका जीवन दो पखवारे तक सुख से व्यतीत हुआ। प्रतिदिन परीक्षा करनेवाले महाराज के वैद्य ने चूर्ण और गोलियाँ देना बन्द करके केवल शक्तिवर्धक लेह्य-सेवन ही पर्याप्त माना और उसी से उपचार किया।

इस हालत में बिट्टिदेव ने महाराज का दर्शन पाया। तब तक चामलदेवी के द्वारा शान्तलदेवी को यह समाचार मिल गया था कि पद्मलदेवी के मन में यह शंका उत्पन्न हो गयी है कि महाराज बल्लालदेव के हाथ से राजगद्दी को छीनने के लिए षड्यन्त्र किया जा रहा है। राजकाज के विषय में इधर-उधर की बातों के सिलसिले में बिट्टिदेव ने कहा, 'मैंने माँ को एक वचन दिया है। उसका अक्षर-अक्षर पालन कर रहा हूँ और आगे भी करूँगा।" परन्तु मेरा यह वचन-

पालन केवल दिखावा है—ऐसी एक असंगत बात राजमहल में फैल रही है जो मेरे सुनने में आयी है। अचानक कभी यह बात सन्निधान के कानों में पड़ेगी तो सन्निधान आतंकित न हों, इसीलिए मैं और शान्तलदेवी एक निर्णय पर पहुँचे हैं। वह निर्णय, माँ को दिये गये वचन को पुष्ट करता है। और यह जो असंगत बात फैल रही है उसे रोक देता है।"

"छोटे अप्पाजी, यह सब कुछ हमें मालूम है। अविश्वसनीय बात को हम कभी प्रश्रय नहीं देते। तुम और शान्तलदेवी इस सम्बन्ध में कुछ मत सोचो। हम सबकी सुख-शान्ति के लिए, उसमें भी मेरे जीवन को सुख-शान्तिमय बनाने के ही लक्ष्य से, तुम दोनों जो कुछ करते रहे हो और जो सब कर चुके हो—इन बातों से मैं अनभिज्ञ नहीं हूँ। कहनेवाले कहते रहें; बेसुरा राग अलापते रहें। यह बेसुरा राग सुनकर खुश होनेवाले लोग हमारे राष्ट्र में बहुत नहीं। तुम दोनों के बारे में यदि हम सन्देह करने लगें तो हम माताजी और पूज्य प्रभु की योग्य सन्तान नहीं कहलाएँगे। हमारी भावनाओं के बारे में तुम्हें आतंकित होने का कोई कारण नहीं।" बल्लाल ने कहा।

"सन्निधान के स्वास्थ्य पर ये घटनाएँ और ऐसी बातें बहुत परिणामकारी होती हैं, इसलिए इस तरह बेसुरा राग अलापनेवालों को अलापने दें और इस राग को छेड़नेवालों को छेड़ने दें—यों कहकर हम चुप बैठे रहें तो यह अच्छा न होगा। उनका मुँह बन्द करना होगा, तार छेड़नेवाले उस हाथ को रोक रखना होगा। इसलिए मुझे सन्निधान के लिए गरुड़ बनकर आत्मार्पण करने की अनुमति प्रदान करें; मेरी इस प्रार्थना को मान लें।" बिट्टिदेव ने कहा

बल्लाल गरज उठे, "छोटे अप्पाजी!" उनकी आँखें लाल हो उठीं। होंठ फड़कने लगे। छाती हाँफने लगी।

कभी इतनी ऊँची आवाज़ से न बोलनेवाले भैया के स्वभाव से परिचित बिट्टिदेव इस प्रतिक्रिया को देख अकचका गये। एकदम वह भी बात को आगे न बढ़ा सके। चुपचाप बल्लाल की ओर देखते हुए बैठे रहे।

थोड़ी देर तक बल्लाल उसी तरह सिर झुकाकर बैठे रहे। हाँफना कुछ थम गया तो एक दीर्घ निःश्वास के साथ धीरे से सिर उठाया और कहा, "छोटे अप्पाजी, पास आओ, यहाँ बगल में बैठो।"

बिट्टिदेव ने वैसा ही किया। उसके बाद कन्धे पर हाथ रखकर बल्लाल बोले, "छोटे अप्पाजी, तुम मेधावान हो, मेरा विश्वास था कि सभी हालात से परिचित हो। परन्तु वह ठीक धारणा न लगी। इसीलिए उद्विग्न हो उठा। "तुम्हीं बताओ, व्यक्ति प्रधान है या राष्ट्र? बताओ?"

"राष्ट्र का प्रतीक रूप व्यक्ति भी उतना ही प्रधान है जितना राष्ट्र।"

"राष्ट्र शाश्वत है या व्यक्ति?"

"राष्ट्र। राष्ट्र के जीवन में व्यक्त का जीवन एक अंश मात्र है।"

"ऐसी दशा में तुम्हें यह समझना चाहिए कि राष्ट्र ही सबसे प्रधान है। हम अपने स्वास्थ्य से हम स्वयं ठीक-से परिचित नहीं हो पा रहे हैं। मन प्रायः अशान्त ही रहता है। इसके फलस्वरूप हम जल्दबाज़ी में कुछ कर बैठते हैं। सोच-विचार तक नहीं करते कि अमुक काम करना चाहिए या नहीं, ठीक है या नहीं। इसलिए अन्तःपुर से बाहर निकलकर सम्पर्क करते रहने का साहस नहीं करते। अन्तःपुर में जो भी अविवेक होता है उसका फल व्यक्तिगत होता है। ब्रह्मा भी अब उसका निवारण नहीं कर सकता। हमारे भरोसे पोय्सल राष्ट्र की कोई भलाई नहीं हो सकती, इस बात को हम अच्छी तरह जान चुके हैं। नसों की दुर्बलता व्यक्ति को कितना हीन बना देती है, यह हमारे अनुभव में आ चुका है। हमारी राय में अब राष्ट्र-हित की दृष्टि से तुम्हारा रहना बहुत ही आवश्यक है। इस बात को तुम भी जानते हो। परन्तु केवल भाई समझकर भ्रातृप्रेम के कारण, तुम भी इस तरह विवेकशून्य कार्य करने पर उतारू हो जाओगे—इस बात की मैंने कल्पना तक नहीं की थी। तुमने कहा कि इस पर शान्तला भी सहमत है। माँ और शान्तला दोनों को बुला लाओ। नहीं, हम ख़ुद वहाँ चलेंगे, चलो। उन्हीं के सामने यह बात मनवा दूँगा कि ऐसी बात फिर कभी न उठे। छोटे अप्पाजी, अब वस्तुस्थिति का सामना करना ही होगा। बात छिपाकर रखने से कोई लाभ नहीं। हमारा जीवन एक असह्य जीवन है। इस जीवन में शान्ति अलभ्य है। फिलहाल कुछ सुख-शान्ति का अनुभव हो सकता है लेकिन एक-न-एक दिन वह ज्वालामुखी फटेगा ही, उसे गले से जो लगा लिया है। वह जो आग उगलेगा वह हमें भस्म करके ही रहेगी यह सत्य है। और लगता है, वह दिन भी दूर नहीं।" बल्लाल ने कहा।

बिट्टिदेव ने तुरन्त उनके मुँह पर अपना हाथ रख दिया। कहा, "सन्निधान के मुँह से ऐसी बात हम सुनना नहीं चाहते।"

उनके हाथ को हटाकर बल्लाल ने कहा, "न भी कहें तब भी होगा वही। इसके लिए दुखी नहीं होना चाहिए। व्यक्ति मुख्य नहीं, राष्ट्र ही मुख्य है; जब हम यह बात कहते थे तब हमारा यही आशय था। कल अगर हम बिछुड़ गये तो उसका करण ढूंढ़ने की या चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। इसके हम स्वयं कारण हैं। राष्ट्रहित की दृष्टि से यह अनिवार्य है। अब जाओ, फिर इस सम्बन्ध में कुछ भी बात न करना।"

"ठीक है।" कहकर बिट्टिदेव चले गये। पण्डितजी को बुलवाया गया। बिट्टिदेव शान्तलदेवी और एचलदेवी तीनों ने खुले दिल से उनसे बातचीत की। बल्लाल के साथ हुई बातचीत का विवरण बिट्टिदेव ने पहले ही अपनी माँ और पत्नी को दे दिया था।

एचलदेवी ने कहा, "पण्डितजी, आपने एकबार मेरे पुत्र को बचाया है। अब की हालत इस तरह है। इसके निवारण का क्या उपाय है? मुझे अब पुत्र-भिक्षा दें। सब कुछ आपके हाथ में है। 'बल्लाल जीवरक्षक' आप अपने इस विरुद को सार्थक बनाइये।"

"सबका प्राणरक्षक तो वह सिरजनहार है। हम केवल निमित्त मात्र हैं। सन्निधान ने मुझे विरुद देकर भूषित किया वह तो उनके प्रेम का संकेत है, उनकी उदारता की देन है। यह औदार्य और प्रेम कर्तव्य के लिए प्रेरित करते हैं, यही इसका मूल्य है। वह सर्वज्ञत्व का साक्षी नहीं। अपनी बुद्धि-बल से भी अधिक प्रयत्न करूँगा। इसमें हमारी औषधि से अधिक मुख्य बात रोगी का सहयोग है। वर्तमान स्थिति में मन के उद्वेग के कारण यह रोग क्षण-क्षण पर अलग-अलग रूप धारण कर रहा है। इसलिए इस मानसिक उद्वेग विकारों को अवकाश न होने योग्य वातावरण उनके चारों ओर होना आवश्यक है। अबकी बार मुझे अनुभव हुआ कि छोटी रानी के अन्तःपुर में रहने पर सन्निधान का स्वास्थ्य अधिक सुधरा है। वे वहीं रहें तो उत्तम होगा।" पण्डितजी ने स्पष्ट बताया।

"इस विषय में हमारे निर्णय को कौन मूल्य देगा? आपके कथन से इस बात की सूचना मिलती है कि वे पट्टमहादेवी के रनिवास से दूर रहें तो कुशल है। फिर भी, यह विषय बहुत पेचीदा है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"विषय पेचीदा है समझकर उदासीन हो जाएँ तो परिणाम भयंकर भी हो सकता है। मुझे लगता है कि महाराज को स्थानान्तरित करना उत्तम है। उनके मन को सान्त्वना दें और नसों को उद्दीप्त न होने दें, ऐसी परिस्थिति में उनका रहना तथा आवश्यक उपचार करना, उनके लिए आवश्यक है। महामातृश्री का प्रेमपूर्ण पालन ही उनके लिए पर्याप्त होगा। यह मेरी राय है। परन्तु रानियों से दूर रहने की बात कहनेवाला मैं कौन होता हूँ? यदि रानियाँ यों सवाल कर बैठें तो मैं क्या उत्तर दे सकूँगा? इसके लिए मेरे पास कोई जवाब नहीं। इतना कह सकता हूँ कि इसके सिवाय महाराज की रक्षा करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।" चारुकीर्ति पण्डित ने कहा।

सबसे अधिक मुख्य विषय महाराज का स्वास्थ्य है। इसलिए यह निर्णय किया गया कि केवल महाराज और महामातृश्री ही पण्डितजी के साथ वेलापुरी जाकर रहें।

इसकी पूर्व-तैयारियाँ होने लगीं। यह निर्णय भी किया गया कि वेलापुरी के लिए रवाना होने तक इस बात को गुप्त ही रखा जाये, केवल रवाना होते समय ही कहा जाए। इसलिए यह बात न महाराज को मालूम थी, न ही रानियों को। महामातृश्री ही उन लोगों से कहें, इसका भी निर्णय किया गया था। इसके अनुसार यात्रा पर निकलने के दिन दोपहर के भोजन के पश्चात्, महामातृश्री

एचलदेवी ने महाराज को और रानियों को अपने अन्तःपुर में बुला लिया। सबको बैठाकर बताया, "महाराज का स्वास्थ्य सर्वोपरि है। इस विषय पर पण्डितजी को बुलवाकर मैंने पूछताछ की है। उनकी राय में जलवायु बदलना महाराज के लिए इस वक़्त बहुत आवश्यक है। इसलिए मैं और अप्पाजी दोनों ने वेलापुरी जाने का निर्णय किया है। अप्पाजी, मैंने तुमसे इसपर विचार-विमर्श नहीं किया, इससे तुम हैरान न होओ, और तुम लोग भी परेशान न होओ।"

बल्लाल ने कुछ नहीं कहा।

वोप्पदेवी बोली, "सन्निधान की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए जो भी करना होगा सो सब करना ही उचित है। हमसे पूछा नहीं, इसलिए हम परेशान क्यों हों? जन्म देनेवाली माँ को सन्निधान के विषय में चिन्ता रखना सहज ही है।"

चामलदेवी ने कहा, "सन्निधान का स्वास्थ्य ही हमारे जीवन के लिए प्रकाश देनेवाला है। उनका स्वास्थ्य जिस तरह से हो सुधरना ही चाहिए। इसके लिए जो भी करना हो, करना ही होगा। पण्डितजी ने भी कहा है कि वातावरण और हवा बदलने से शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ होगा। इसके लिए यह प्रयत्न अच्छा ही है।"

पद्मलदेवी ने कहा, "अगर पण्डितजी ने यह कहा है तो वह करना ठीक है। चाहे कोई साथ जाये या न जाये मैं तो सन्निधान के साथ जाऊँगी ही।"

एचलदेवी ने प्रकारान्तर से कहा, "कोई साथ न रहें। उन्हें एकान्त की आवश्यकता है, यही पण्डितजी की राय है।"

"सन्निधान की देखरेख कौन करेगा? इस उम्र में यह सारा भार यदि आप पर लाद दें तो दुनियाँ क्या कहेगी? कल लोग हमारी निन्दा करेंगे। यह आरोप मुझपर लगायेंगे तो मैं शिकार बनने के लिए तैयार नहीं।" पद्मलदेवी ने कहा।

बल्लाल अभी तक सब सुनते हुए चुपचाप बैठे थे, एकाएक बोल उठे, "माँ, असाध्य को साधने का प्रयत्न कर रही हैं। हमारी स्वस्थ होने की उसे आवश्यकता नहीं। हमें निचोड़ चूसकर अपना अंग भर लेना ही उसकी इच्छा है। यदि वह वहाँ भी आती है तो जितने दिन जीवित रहना है उतने दिन यहीं रहकर गुज़ार देंगे। माँ, आपके दो और लड़के हैं। मैं आज आपका लड़का नहीं हूँ। उसका स्वत्व बनकर रह गया हूँ। जितनी जल्दी हो वह मुझे लूट ले। अब इस वेलापुरी की यात्रा की बात ही छोड़ देवें।" कहकर आगे बात करने के लिए अवकाश न देकर वहाँ से चले गये।

वह चामला के अन्तःपुर में न जाकर पट्टमहादेवी के अन्तपुर में गये और पलंग पर चित पड़कर लेट गये।

"होनेवाले अच्छे काम को न होने देकर अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली

इस हठवादिता से।" वोप्पदेवी ने कहा।

"मैंने कौन-सी गलती की ? पति के साथ रहने का अधिकार पत्नी को नहीं है क्या ? उनके स्वास्थ्य के विषय में माता को हमसे भी अधिक क्या आसक्ति है ? एक वेटा गया तो दो और वेटे हैं। पर हमारी क्या गति हो ? बच्चों पर माँ का प्रेम हो सकता है; यह मान्य है। वही प्रेम पत्नी को पति पर नहीं होना चाहिए ? कन्या का दान कर देने के बाद वह अपनी नहीं, वैसे ही विवाह के बाद लड़के पर पत्नी का अधिकार होता है इस बात की भी जानकारी होनी चाहिए। जब तुम दोनों ने यह कहा कि वे कहीं भी रहें, तभी मैं समझ गयी कि उनके प्रति तुम्हारी श्रद्धा कितनी है। अपने लिए उन्हें बचा लूंगी और उसका लाभ आप लोगों को भी हो तो मुझे कोई दुःख नहीं। पण्डितजी से बातचीत करते वक्त हमें भी बुला लेते तो क्या हो जाता ? कुल मिलाकर यही निष्कर्ष हुआ कि हम विश्वसनीय नहीं। जब हम पर विश्वास नहीं तो हम भी उनपर विश्वास क्यों करें ?" कहकर पद्मलदेवी वहाँ से सीधी चामला के अन्तःपुर में गयी। वहाँ पति को न पाकर नौकरानी से पूछा तो उसने बताया कि वे पट्टमहादेवी के अन्तःपुर में ही हैं।

"ऐसा हो तो सन्निधान में विवेक जगा है। इसीलिए व्यंग्य करते हुए अपनी माँ से कहा था कि तुम्हारे दो लड़के और हैं। मेरे पतिदेव बहुत ही अच्छे, यों कह उसने बड़ी खुशी से अपने अन्तःपुर में प्रवेश किया और पति के पास जा बैठी। उनका सिर सहलाती हुई बोली, "सन्निधान से बिना पूछे स्थानान्तरित करने का निर्णय करनेवाले वे कौन होते हैं ? इसलिए सन्निधान का यह कहना बहुत ठीक हुआ कि वेलापुरी जाने का कार्यक्रम रद्द कर दें।"

"हाँ, वेलापुरी में जाकर मरने से यहीं रहकर मरें, इसीलिए हमने यह बात कही।"

"तो वेलापुरी ले जाकर वहाँ समाप्त कर डालने का षड्यन्त्र किया था ? यह बात सन्निधान को मालूम हो गयी थी ?"

बल्लाल तनकर खड़ा हो गया और पूरी शक्ति लगाकर ज़ोर से उसके गाल पर थप्पड़ मारकर गरज उठा, "मुँह बन्द करोगी या नहीं !"

वह इस थप्पड़ के आघात को सह न सकी, 'हाय दैया' करती हुई पलंग पर से लुढ़ककर नीचे जा गिरी। गिरने से सिर पर घाव लग गया और ख़ून बहने लगा। नौकरानी भागी-भागी आयी। दूसरे ही क्षण यह ख़बर समूचे राजमहल में फैल गयी। सब उधर दौड़े आये। पण्डितजी को बुलाने के लिए लिए उनके पास ख़बर भेज दी गयी।

उसे उठा ले जाकर दूसरे स्थान पर लिटाया गया। पद्मलदेवी के माथे के एक छोर पर घाव लगा था और वहाँ से ख़ून निकल रहा था। उसके कपोल पर बल्लाल की उँगलियाँ उभर आयी थीं।

बल्लाल के बैठे रहने का रंग-ढंग देख, डर के मारे सब मूक बने खड़े थे। एचलदेवी बेटे के पास गयीं और कन्धा सहलाती हुई बोलीं, "अप्पाजी, अब सो जाओ।"

उन्होंने "आं!" कहकर चारों ओर नजर फेरी। माँ बोली, "अप्पाजी, तुम थक गये हो। सो जाओ बेटे! अभी तुम्हें आराम की जरूरत है।" कहकर जबरदस्ती उन्हें सुला दिया। "छोटे अप्पाजी, पण्डितजी के आने का वक़्त हो गया है न? यहाँ किसी को आने न दो; समझे?" बिट्टिदेव से बोलीं।

वहाँ जो लोग थे, सब बाहर आ गये। स्त्रियाँ अपने-अपने अन्तःपुर में चली गयीं। अकेले बिट्टिदेव राजमहल के द्वार पर पण्डितजी के आगमन की प्रतीक्षा में खड़े थे। उनके आते ही उन्होंने संक्षेप में सारी हालत बता दी। उनको भी साथ लेकर जहाँ बल्लाल थे वहाँ आये।

पण्डितजी को देखते ही बल्लाल ने कहा, "पण्डितजी, अब आपकी दवा का कोई प्रयोजन नहीं। हमारी सारी शक्ति का विनियोग अब तक हो चुका है। हमें मृत्यु से कोई भय नहीं। शायद यही हमारे लिए मुक्ति का मार्ग है।"

पण्डितजी ने नब्ज़ देखते हुए कहा, "सन्निधान ऐसी बातें करेंगे तो सब पर क्या बीतेगी?" फिर पलक खोलकर देखा, तलुए को खरोंच कर देखा। उँगलियों के जोड़ की हड्डी से घुटने पर मारकर देखा, पैरों पर की सूजन को देखा। फिर अपनी दवा की पेटी खोली। एक-दो गोलियाँ निकाल कर खिलायीं। एक बुकनी निकालकर उसे सूँघने को कहा, सुँघाया। बल्लाल ने किसी का विरोध नहीं किया। तात्कालिक चिकित्सा करने के बाद एक काढ़ा तैयार कर ले आने की बात कहकर पण्डितजी उठ खड़े हुए।

"पण्डितजी, आपके लिए यह वृथा श्रम है। दवा व्यर्थ है। आपका मन दुखे नहीं, इसलिए सब सह लेता हूँ। सबका सेवन कर लेता हूँ। मुझे ऐसे लग रहा है कि मेरा पैर सूजता जा रहा है। मुझे अपने पर छोड़ दीजिए, यही मेरी प्रार्थना है।" बल्लाल ने कहा।

"सन्निधान को अन्यथा नहीं सोचना चाहिए। चाहे किसी भी कारण से हो, चिकित्सा रोकनी नहीं पड़ती। रोक दें तो सीखी विद्या के प्रति द्रोह होता है।" पण्डितजी बोले।

"आपकी इच्छा। लेकिन मुझे निश्चित रूप से मालूम है कि क्या होगा। कुछ चिन्ता की बात नहीं।"

बिट्टिदेव पण्डितजी के साथ ही बाहर आये और उन्हें पद्मलदेवी के विश्रामागार में ले गये। उसके लिए आवश्यक चिकित्सा की गयी। और फिर पण्डितजी काढ़ा तैयार कर ले आने के लिए जल्दी-जल्दी घर दौड़े गये।

बिट्टिदेव फिर माँ के साथ आ गये। बल्लाल की आँखों से आश्रुधारा

वह रही थी। एचलदेवी अपने आँचल से उसे पोंछती हुई बोलीं, "बेटा, तुम्हें आँसू नहीं बहाना चाहिए। तुम मूर्धाभिषिक्त महाराज हो। सब ठीक हो जायेगा।"

"माँ, मेरे बदले छोटे अप्पाजी का जन्म पहले होता तो अच्छा होता। मैंने अपने समस्त जीवन को विचार करके देख लिया है। मेरी जल्दबाजी और अविवेक—ये दोनों मेरे जीवन को जलानेवाली आग बन गये हैं। फिर भी आप सब लोगों ने मुझे क्षमादान देकर मुझे सुखी बनाने के लिए पूरा सहयोग दिया। मुझसे इस राष्ट्र का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सका। छोटे अप्पाजी, राष्ट्र की ज़िम्मेदारी तुम पर है। भगवान् तुम्हें चिरायु बनावें। मेरी मृत्यु इतनी जल्दी आ जाएगी इसकी सम्भावना नहीं थी। मैं ही अपनी आयु कम करके, उसे मैं तुम्हें निर्मल मन से धैर्यपूर्वक दे रहा हूँ। मुझे दुनियाँ से उठा देने और स्वयं गद्दी पर बैठने के इरादे से षड्यन्त्र चलाने आदि नीच और हेय बातें कहनेवाला वह चाण्डाल मुँह फिर न खुले—इसलिए अपनी सारी शक्ति लगाकर उस मुँह के दाँत मैंने तोड़ दिये हैं। मेरे मन में कभी भी तुम्हारे बारे में ऐसे विचार तब नहीं आये। फिर भी जिससे मैंने प्रेम किया उसने यह बात कही है। उसकी तरफ से मैं क्षमा माँगता हूँ। वह एक दुष्ट स्त्री है। उसकी बातों की कोई कीमत नहीं। सचमुच बहुत दिन मैं जीवित नहीं रहूँगा। वास्तव में मुझे जीने की अभिलाषा भी नहीं है। इसलिए मैं, महाराज बनकर नहीं, भाई होकर बहुवचन का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ जो रूढ़िगत है। माँ, तुम इस अविवेकी बेटे को क्षमा कर देना।" कहते हुए बल्लाल ने अपना सिर माँ की गोद में रख दिया।

उनकी पीठ पर हाथ फेरती हुई माँ शून्य की ओर देखती रही, कुछ बोली नहीं।

पण्डितजी आये। काढ़ा दिया गया। बाद में बिट्टिदेव बाहर चले आये।

दो-तीन दिन की चिकित्सा के बाद पट्टमहादेवी पद्मलदेवी कुछ सुधर गयीं। झड़े दाँत तो फिर उग नहीं सकते थे। मगर माथे पर के घाव को भरना था।

बल्लाल की हालत दवा-दारू और चिकित्सा-उपचार आदि से भी सुधरी नहीं। वह बिगड़ती ही चली गयी। सूजन भी बढ़ती ही गयी। उदयादित्य और डाकरस के पास भी ख़बर भेज दी गयी थी सो सभी जन दोरसमुद्र आ गये थे।

इसके बाद बहुत समय तक बल्लाल ने पण्डितजी की दवाओं का ख़र्च नहीं किया। खर संवत्सर ही में बल्लाल ने अपने पार्थिव शरीर को त्यागकर जिस शान्ति को बहुत समय से चाहा था, उसे पा लिया।

राजधानी शोक-सागर में डूब गयी।

सारा राजमहल दुखी होकर रो उठा। महाराज बल्लाल के शव का दाह संस्कार राजोचित ढंग से किया गया।

पद्मलदेवी मौन हो आँसू बहाती रही। छाती पीट-पीटकर वह अपने दुर्भाग्य के कारण खुद को कोसती रही। उसका अन्तरंग यही कह रहा था कि उसके ही कारण यह सब हुआ। पैंतीस साल के जवान वल्लाल का कुछ ही वर्षों का राज्य काल इसी तरह समाप्त हो गया।

राजा बिट्टिदेव पट्टाभिषिक्त हुए। साथ ही शान्तलदेवी पट्टमहादेवी वनी। तब तक पट्टमहादेवी शान्तलदेवी के चौथे गर्भ के तीन महीने हो चुके थे।

इतनी अल्पायु में ही, महाराज वल्लाल का निधन हो जाने के कारण सम्पूर्ण पोय्सल राज्य शोक संतप्त हो गया। बुढ़ापे में मरियाने दण्डनायक इस आघात को सह नहीं सके। उनकी पत्नी और वे स्वयं, जब से भावी महाराज वल्लाल राजकुमार के साथ अपनी पुत्री का विवाह करा देने के बारे में विचार करने लगे थे, तबसे लेकर बल्लाल के इस अकाल मरण तक की सारी घटनाओं से वे पूर्णतया परिचित थे। यदि वे पद्मलदेवी के पिता न हुए होते तो पता नहीं क्या करते! अपनी तीनों बेटियों में से कोई भी अपने जन्ममुहूर्त या सुहाग के बल पर अपने पति को न बचा पायी। इसके माने यही हुआ कि उन्होंने तीन बेटियों को इसीलिए जन्म दिया जिससे वे पोय्सल महाराज की आहुति लें, इसका उन्हें गहरा दुःख हुआ; इसी चिन्ता में वे घुलने लगे। आज यह दशा देखने के लिए, इसका बीजारोपण करने वाली उनकी पत्नी न रही और उन्हें अकेले ही जीवित रहना पड़ा। वे बहुत शोकाकुल हो उठे: पट्टमहादेवी केलेयब्बरसी ने कितने प्रेम से मुझे भाई से बढ़कर माना और मुझे वड़ा वनाया। उनके इस उपकार के वदले मैंने उनके इस राजवंश को अकाल मृत्यु के लिए भेंट कर दिया। मैं किसी भी तरह की क्षमा का पात्र नहीं। पत्नी के स्वभाव से परिचित होकर भी मैंने यह विचार नहीं किया कि इन वेटियों का स्वभाव भी माँ की तरह हो तो इनसे विवाह करने वाले की दशा क्या होगी। बहुत जल्दबाज और बड़बड़ानेवालियों के साथ जीना बहुत कठिन होता है। यह हमारी पद्मी, हाँ अब तो वह केवल पद्मी ही है। मैंने कभी नहीं सोचा था कि उसकी जीभ इतनी पैनी हो जायेगी। बीच में दो-तीन बार मैंने उसे हितवचन भी कहे, उन बातों का भी मूल्य न रहा! इन हालत में उसके व्यवहार को समझते कुछ भी नहीं सूझा। अब माथा ठोकने या छाती मार-कर रोने से भी क्या फ़ायदा? उसने जो वर्ताव किया उसका फल इन दोनों को भी भोगना पड़ा। वेटियों का यह दुख देखते हुए अब क्या शान्ति से मर सकूंगा?

पतिविहीन ये बच्चियाँ अब यहाँ गौरव के साथ कैसे जी सकेंगी ? उस गौरव के योग्य हों तभी तो गौरव मिलेगा। अब भुगतें अपने भाग्य। मैं भला क्यों इस चिन्ता में पड़ूँ ? यों सोचकर उन्होंने तीनों को वहीं छोड़कर चल देने का निर्णय किया। चामलदेवी और बोप्पदेवी ने साथ ले चलने का आग्रह किया लेकिन व्यर्थ रहा। साथ न ले जाएँगे तो दोरय्य से बँधाये गये तालाब में कूदकर मरने की बात कहकर पद्मलदेवी जिद् कर बैठी। उस अकेली को ही क्यों, यों सोचकर वे तीनों को लेकर अपने सिन्दगेरे चले गये।

शान्तलदेवी और एचलदेवी दोनों ने बहुत समझाया और कहा कि यहीं रहीं आयें परन्तु यहाँ रहने पर पुरानी स्मृतियाँ बार-बार आती हैं जिसे सहना बहुत कष्टदायक होता है—यही बहाना बनाकर पद्मलदेवी पिता के साथ चली गयी। परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि वह यह सोचती रही हो—"पट्टरानी बनकर यह इठलाती रहे और मैं इसे देखने के लिए यहाँ बैठी रहूँ ?"

पण्डित चारुकीर्ति जी ने, क्षणिक स्वार्थ के लिए लोगों में जहर बाँटनेवालों के इस समाज को देखकर असह्य-भाव से, उदासीन हो ऐसे स्वार्थियों की शुश्रूषा से सार्थकता नहीं समझकर संसार को त्याग देने के विचार से संन्यास ग्रहण कर दोरसमुद्र को ही त्याग दिया।

चट्टला तो खुद मरकर भी सन्निधान को जीवित देखना चाहती थी; यों हालत के पलट जाने के कारण रात-दिन रोती बैठी रही। सन्निधान की प्राणरक्षा के लिए अपना शील तक लुटा देने वाली के आज प्राण नहीं निकल रहे हैं। पतिव्रता बनकर पति के ही प्राण हरण करनेवाली के जीवन से अपने जीवन को ही पुनीत कहकर वह आग-बबूला हो उठी थी।

किसी तरह की प्रतिक्रिया के वशीभूत न होकर, बल्लाल की मृत्यु को गम्भीर सागर की तरह सामना करनेवाली अकेली कोई थी तो वह महामातृश्री एचलदेवी थीं। उनके संयम ने सबको धीरज बँधाया।

बिट्टिदेव सिंहासनारूढ़ हुए परन्तु उन्हें महाराज बनने की कोई खुशी नहीं हुई। कभी स्वप्न में भी उन्होंने नहीं सोचा था कि सिंहासन उनका होगा। उनकी भाभी ने कहा था कि उन्हें सिंहासन का लालच है। उस मूर्ख स्त्री की बात की कोई कीमत न थी, इसलिए उस ओर उदासीन ही रहे। केवल राष्ट्र-हित साधने के कर्त्तव्य को अपना दायित्व मानकर बड़े गौरव और और आदर से उस सिंहासन पर आरूढ़ हुए थे। उन्होंने एक बार (भाई से) यह भी स्पष्ट कह दिया था, "मैं आपका गरूड़ बनकर आत्मार्पण करने तक के लिए तैयार हूँ।"

एक बार पद्मलदेवी का झूठा आरोप इस तरह सच हो जाएगा—इस बात की किसी को कल्पना भी नहीं थी। रेविमय्या को दुःख भी हुआ सन्तोष भी। माचिकब्बे इस दैवी लीला पर चकित थी। उन्होंने अपने पति मारसिंगय्या से

कहा, "कुछ का शाप वर वन जाता है—इसके लिए यह निदर्शन हो सकता है ?"

"दूसरों की वुराई न चाहनेवालों को ईश्वर किस तरह का वरदान देता है, इस वैचित्र्य की रीति को समझने के लिए यही प्रमाण है ।" मारसिंगय्या ने पत्नी की राय में अपनी राय मिलायी ।

छुटपन में वल्लाल का वरताव देख एक वार एचलदेवी ने मन-ही-मन कहा था कि विट्टिदेव ही पहले जन्मा होता तो अच्छा था । इसी वात को मरने से पहले वल्लाल के मुँह से कहलवाया मानो उसने मेरे मन की वात को पहले ही सुन लिया हो । उस भगवान की रीत ही निराली है । मैं माता, मेरे मन में ऐसी वात को क्यों उत्पन्न किया ? माँ वनकर मैंने वच्चों के साथ प्रेम करने में किसी तरह का भेद-भाव नहीं रखा । राष्ट्र-हित चाहने वाले मन को जो सूझा वह ईश्वर द्वारा पहले से ही नियोजित है या होना चाहिए, उसके निर्णय से भिन्न निर्णय करने वालों के लिए उत्तर यहाँ है । उसकी इच्छा हुई तो एक साधारण हेग्गड़े की वेटी न चाहते हुए भी रानी वन सकती है । दूसरी ओर रानी वनने की इच्छा लेकर, उसके लिए षड्यंत्र रचकर, रानी वनने पर भी उस पद का थोड़ा-सा भी सुखानुभव किये विना रह सकती है । उस भगवान ने जो अनुग्रह किया उसी को परमपवित्र मानकर विचलित हुए विना जीवन को विताना होगा । इस तत्त्व की जिज्ञासा एचलदेवी के मन में होने लगी ।

वल्लाल की मृत्यु पर सव ने शोक मनाया और फिर धीरज और संतोष के साथ सव ने विट्टिदेव के पट्टाभिषेक समारम्भ में भी भाग लिया ।

इसी वीच मन्त्री पोचिमय्या, सन्धिविग्रही नागिदेव दिवंगत हो गये थे । इनके वाद सुरिगे नागिदेवण्णा और पुनीसमय्या मन्त्री वना दिये गये थे । पट्टाभिषेक के कुछ दिन वाद मन्त्रणा करके विट्टिदेव ने यह निर्णय लिया कि राजधानी को दोरसमुद्र से वेलापुरी ले जाया जाए । उनका विचार था कि प्रभु और अण्णाजी दोनों के लिए दोरसमुद्र शुभकर नहीं हुआ । उन्हीं पुरानी वातों का स्मरण करके खिन्न होते रहना अच्छा नहीं । अलावा इसके, महाराज की मृत्यु का समाचार वाहर के लोगों को मालूम हो जाने पर पता नहीं कौन-कौन हम पर आक्रमण करने का उद्यम करने लगेंगे ! हमें अव अपनी सैनिक-शक्ति को वढ़ाना होगा, इसके लिए योजना वनानी होगी । राष्ट्र की सीमाओं का रक्षण ही नहीं, गुण्डागिरी को दवाकर वहाँ अपने शार्दूल लांछन को फहराना होगा । दोरसमुद्र में रहे तो न जाने क्या-क्या पूर्वस्मृतियाँ आती रहेंगी, उस हालत में हमारे इन विचारों में रुकावट भी आ सकती है । वेलापुरी को राजधानी वनाने पर नये वातावरण में नयी दृष्टि भी प्राप्त हो सकेगी । इसलिए राजधानी को स्थानान्तरित करने की वात निर्णीत हुई । निर्णय के तुरन्त वाद स्थानांतरित

करने का कार्य जल्दी ही शुरू हो गया। माचण दण्डनाथ दोरसमुद्र में ही ठहरे। डाकरस को वेलापुरी में, नागिदेवण्णा को यादवपुरी में रखने का भी निर्णय लिया गया। शेष सब को वेलापुरी चलने का निर्देश था।

राजधानी के परिवर्तन के बाद आगे के कार्यक्रमों के विषय में आमूलाग्र विचार-विनिमय किया गया। अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाना, जिधर से शत्रुओं के आक्रमण का डर है उधर रक्षण-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना आदि सभी बातों पर विचार हुआ।

महाराज बल्लाल को निगलनेवाला खर संवत्सर बीत गया और नन्दन संवत्सर का प्रवेश हुआ। पट्टमहादेवी शान्तलदेवी ने इसी नन्दन संवत्सर की वसन्त ऋतु में एक पुत्ररत्न को जन्म दिया।

एचलदेवी और माचिकब्बे दोनों वेलापुरी में ही रहीं, इसलिए शान्तलदेवी के पट्टमहादेवी बनने के बाद इस पुत्र-जन्म उत्सव को बड़े संभ्रम के साथ शास्त्रीय विधि-विधानों के अनुसार मनाया गया। उनका बड़ा बेटा कुमार बल्लाल, कुमारी हरियलदेवी, छोटे बिट्टिदेव अब पट्टमहादेवी के संजात कहलाये, लोगों की दृष्टि में।

नये महाराज के सिंहासनारूढ़ होने के वर्ष के अन्दर ही पुत्रोत्सव होने से ज्योतिषियों ने राष्ट्र-विस्तार के लिए इसे शुभसूचक सगुन और राष्ट्र-विस्तार की पूर्वसूचना बताया।

नामकरण संस्कार भी बड़े धूमधाम से मनाया गया। मरियाने दण्डनायक के पास आमन्त्रणपत्र भेजा गया था तो भी वे नहीं आये। पद्मलदेवी को इस उत्सव में भागी होने की इच्छा नहीं रही, न ही इसे ईर्ष्या के कारण सह सकी थी। चामलदेवी और बोप्पदेवी दीदी के कारण सिंदगेरे को न छोड़ सकी थीं। यों उनमें से कोई नहीं आया।

नामकरण क्या हो इस पर चर्चा हुई। मन्त्रिवृन्द की सलाह थी कि शिशु का नाम विनयादित्य रखा जाए। मारसिंगय्या और माचिकब्बे की यह सूचना रही कि अपने प्रिय प्रभु के नाम से ही अभिहित किया जाय। शान्तलदेवी ने कहा—

"सन्निधान के अग्रज वेलापुरी छोड़ दोरसमुद्र में रहने की इच्छा नहीं रखते थे। कारणवश वहाँ जाकर वहीं रहकर प्राण देने पर भी, उनका मन वेलापुरी से ही अधिक लगाव रख रहा था। अकाल मृत्यु के कारण वे हमसे बिछुड़ गये तो भी उनकी स्मृति हम सब के लिए हितकर है। वे अपने पुत्र को विनयादित्य के नाम से अभिहित करना चाह रहे थे, परन्तु सफल न हो सके। विनयादित्य कहकर अभिधान करने पर बुजुर्गों के नाम से अभिहित करने की उनकी इच्छा भी पूर्ण हो जाएगी। वही करेंगे।"

एचलदेवी ने कहा, "शान्तलदेवी की इच्छा उचित लगती है।"

एक शुभ मुहूर्त में शिशु नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ। शिशु का नाम विनयादित्य रखा गया।

इस नामकरण महोत्सव में उपस्थित सभी लोगों ने एक कण्ठ हो घोषित किया, "चिरमभिवर्धतां पोय्सलसन्तानश्रीः, माता-पित्रो शिशोश्च दीर्घायुरारोग्यप्राप्तिरस्तु, ऐश्वर्यप्राप्तिरस्तु, देशकोशमभिवृद्धिरस्तु।"

सन्तान किसे हो, किस तरह की हो, कब हो—इस स्वार्थ के कारण एक बहुत बड़ी घटना ही घट चुकी थी। अब राजमहल में किसी तरह के असमाधान के बिना, किसी तरह की दर्द भरी घटना के बिना, किसी तरह की व्यंग्योक्तियों के बिना, पुत्रोत्सव का यह समारम्भ प्रगति-सूचक रूप में सुसम्पन्न हुआ।

आस्थान-कवि अभिनव पम्प नागचन्द्र और आस्थान-कवयित्री कन्तिदेवी दोनों ही वेलापुरी आ गये थे। वास्तव में कन्तिदेवी निवृत्त होना चाहती थीं। लेकिन तुरन्त पूछने पर अन्यथा समझे जाने की आशंका के कारण वह वेलापुरी आ गयी थीं।

कन्तिदेवी बहुत अनमनी-सी हो गयी थीं। स्वयं अज्ञात होकर रहती थीं। परन्तु मुझे बहुत विषयों की जानकारी है यह मानकर दण्डनायक मरियाने ने मुझे अपनी बेटियों की शिक्षिका बनाकर रखा। मैंने अपने बारे में कुछ न कहा तो भी मुझको नियुक्त करते समय उन्होंने एक बात कही थी—"देखिये, मेरी इच्छा है कि मेरी बेटियाँ गुणवती बनें। वास्तव में मुझे यह नहीं लगता कि लड़कियों को विशेष शिक्षण की आवश्यकता है, यह मेरी व्यक्तिगत राय है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में पारिवारिक जीवन को छोड़कर किसी तरह के बाहरी व्यवहार के विषय में विचार-विनिमय स्त्री से पुरुष करें यह संभव नहीं। महर्षि मनु ने कभी कहा था कि 'कार्येषु मंत्री' इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि स्त्रियों से विचार-विनिमय किया जाता रहा है। वह हालत क्यों बदल गयी यह तो मुझे मालूम नहीं। जो भी हो, इस स्थिति में भी समाज चलता रहा है। इधर-उधर कुछ मन्द बुद्धिवाली नारियाँ टेढ़ीमेढ़ी राह पकड़कर अपने सुख-भोग की इच्छाओं को पूरा करती रही हैं और इस वजह वे पुरुषों के प्रति उदासीन रही आयीं, यह मुझे मालूम है। इनमें कौन सही, कौन गलत है—इस बात की विवेचना कर सकने की सामयिक प्रज्ञा मुझमें नहीं है। हमारे राजघराने के लोग

विद्या-प्रेमी, कला प्रेमी और अभिमान के धनी हैं। इन वातों के प्रति रुचि उत्पन्न होना हो तो एक विशेष प्रज्ञा की आवश्यकता है, यह सत्य है। इन सब वातों को लक्ष्य में रखकर ही राजकुमारों की शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। हमारा राज-परिवार के साथ निकट संवन्ध होने की संभावना है। हमारी वच्चियों को इस सम्वन्ध के योग्य वनाना होगा। ऐसा शिक्षण उनको मिलना चाहिए।"

जितना हो सकता है उतना शिक्षण देने का प्रयत्न करना कर्तव्य समझकर कन्तिदेवी ने स्वीकृति दी थी। शिक्षिका वनने के वाद, वड़े राजकुमार के साथ दण्डनायकजी की वड़ी लड़की के विवाह की वात चली। उस हालत में जिम्मेदारी कितनी वड़ी है, यह भी विदित हो गया। वास्तव में पद्मलदेवी को महारानी के पद के योग्य वनने के लिए किस तरह के शिक्षण की आवश्यकता है, इसे समझ-वूझकर उसके योग्य शिक्षण देने का भी विशेष ध्यान रखा गया। संयम, विवेचनाशक्ति, उदारता, पूर्वाग्रह-दोष-मुक्त-मनोवृत्ति, करुणा आदि का स्वरूप निरूपण करके उनसे प्राप्त होनेवाली फल-प्राप्ति आदि वातों का भी अच्छी तरह से मनन करवाया था। शान्तलदेवी के दोरसमुद्र में आने के वाद, इन शिक्षित मनोभावों का शिष्यों के मन में सुस्पष्ट रूप व्यक्त हुआ भी था। अपनी जिम्मेदारी को भलीभाँति निर्वहण करने के लिए उनके मन में दृढ़ संकल्प भी जागा था परन्तु वाद में घटी-घटनाओं की जानकारी होने पर उनके मन में एक तरह की परेशानी उत्पन्न हो गयी थी। उन्हें ऐसा लग रहा था कि सारा परिश्रम पानी में होम करने का-सा हुआ।

पहले कभी एक वार कवि नागचन्द्र और स्वयं कन्तिदेवी में किसी साहित्यिक विषय पर चर्चा हुई होगी, उस समय उन दोनों ने अपने-अपने शिष्यों के विषय में भी वात की थी। तव कन्तिदेवी ने स्वयं कहा था कि वे अपनी शिष्याओं को खरा सोना वना देंगी। उस समय राजमहल में घटित वल्लाल के असहनीय व्यवहार और वाद में हुए परिवर्तन आदि विषयों को वताते हुए कवि नागचन्द्र ने कहा था कि उनका शिष्य भी उनके शिक्षण और मार्ग दर्शन में महाराज वनने के योग्य व्यक्तित्व प्राप्त करने की ओर प्रगति कर रहा है। इस चर्चा के पश्चात्, दोनों कभी-कभी आपस में विचार-विनिमय करते समय कहा करते थे कि वे एक आदर्श राज-दम्पती वनाने में सफलता पाएंगे। ये सव वातें आज उन्हें अपनी आँखों के सामने स्पष्ट दिख रही थीं। अपनी असफलता की याद करके कन्तिदेवी ने निश्चय ही कर लिया कि वहाँ रहना उचित नहीं। वे तो कभी अपने जीवन में अपने लिए किसी तरह की कोई आकांक्षा ही नहीं रख रही थीं। दण्डनायक ने जो कार्य सौंपा था उसका शक्तिभर निर्वहण किया था। अव तो उनकी वेटियों को किसी तरह की शिक्षा की आवश्यकता भी नहीं थी। आस्थान-कवयित्री वनने की भी उन्हें चाह नहीं थी। ईर्ष्या-रहित एक कवि भाई के औदार्य ने वह पद और

विरुदावली आदि सम्मान प्राप्त कराया था। परन्तु उनका भी उन्हें कोई मूल्य नहीं दिखायी दिया। संन्यास ग्रहण करके भावी जीवन ध्यान कर्म में व्यतीत करने का निश्चय कर, यहाँ से मुक्त होने की अनुमति प्राप्त करने के विचार से वे पट्टमहादेवी शान्तलदेवी के पास गयीं।

शान्तलदेवी ने उनके इस प्रस्ताव को एकदम स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा, "ज्ञानदान से महान् कोई दूसरा दान नहीं। वह ध्यानस्थ होने से भी बढ़कर है। सन्निधान मेरी सलाह के अनुसार केवल लड़कियों के लिए अलग शिक्षण की व्यवस्था करना चाहते हैं। उसके निर्वहण-संचालन आदि पर आप की ही देखरेख हो, यही उनकी अभिलाषा है। इसलिए पोय्सल राज्य का एक बहुत बड़ा उपकार अभी आपसे होना है; ऐसी स्थिति में मुक्त होने के लिए अनुमति कैसे मिल सकेगी?"

"परन्तु योग्य शिक्षण देने में मैं असफल हुई हूँ। इसलिए, जिस महान् योजना को सन्निधान कार्यगत करना चाहते है, और जिसका करना आवश्यक है, उसके लिए मेरी योग्यता अपर्याप्त है। दोरसमुद्र में राजपरिवार और दण्डनायक परिवार—दोनों ने बहुत प्रेम के साथ मुझे आदर देकर गौरवान्वित किया है, मेरी इस अल्प विद्या को मान्यता देकर सम्मानित किया है। मैं इस ऋण से कभी मुक्त हो ही नहीं सकती। परन्तु, पूर्वस्थित महाराज का अवसान मेरी प्रिय शिष्या के ही बरताव के कारण हुआ; इसका स्मरण करते हुए मैं यहाँ शान्तिमय जीवन व्यतीत नहीं कर सकती। जब आयी थी तो मन से स्वीकार कर आयी थी। अब तक मन मानता रहा, यहाँ रही आयी। अब आगे इस तरह मन की शान्ति से रहना साध्य नहीं लगता। इसलिए मुझे मुक्त करके उपकृत करने का अनुग्रह करें।" विनीत भाव से कहते हुए हाथ जोड़ लिये कन्तिदेवी ने।

"जो काम मन को न जँचे उसे अधिकार बल से करा लेने की परिपाटी पोय्सल राजघराने की नहीं है। जब आप कहती है—मन नहीं मानता, तो अभी ऐसी कोई कार्रवाई राजमहल की ओर से हुई होगी जिससे आप परेशान है?"

"पट्टमहादेवी को ऐसा सोचना तक नहीं चाहिए। वास्तव में आपके और सन्निधान के राजत्व के इस पुनीत अवसर पर राष्ट्र की सेवा करना एक महान् पुण्य का कार्य है, यह मुझे मालूम है। राजघराने से कोई असंगत बात हुई और इससे परेशान होकर जाना चाहती हूँ—यों कदापि आप न मानें। यहाँ रहने के लिए मनोभाव न होने का कारण पूर्व-घटित वे अप्रिय घटनाएँ ही हैं। किसी ने कोई गलती की और उसके लिए आपको दुःख क्यों हो?—यह सवाल आप मुझसे कर सकती हैं। पटरानी जी, इसकी अनुभूति उसी को हो सकती है जिसने अपने कार्य वैफल्य का अनुभव किया है। जब मन में और कुछ भी चाह नहीं तब प्रेम-स्नेह भी असह्य हो जाता है। और ऐसा होना ठीक नहीं। इसलिए कृपा

करके मुझे मुक्त कर दीजिए।" कन्तिदेवी ने विनती की।

उन्हें कहाँ जाना चाहिए, उनके लिए क्या सहूलियतें अपेक्षित हैं; किस तरह की सुरक्षा-व्यवस्था हो, आदि की व्यवस्था करने का आदेश राजमहल की तरफ से दिया जा सकता था किन्तु उन्होंने यह सब नहीं चाहा।

"मुक्त होने के लिए ध्यान करने योग्य स्थान की खोज में जाने वाली मुझको यह बताना कठिन है कि मैं कहाँ जाऊँगी। जब स्वयं मैं ही नहीं जानती तो मैं बता कैसे सकती हूँ? सुरक्षा की व्यवस्था की क्या आवश्यकता है? दण्डनायकजी ने जो सम्मान के रूप में धन दिया है और राजमहल की तरफ से विद्वत्सम्मान का प्रतीक कंकण चूड़ा, दुशाल वगैरह प्राप्त हुआ है वह सब स्त्री-विद्याभ्यास के लिए दान के रूप में यहीं छोड़ जाती हूँ। यह इसलिए नहीं कि पोय्सल राज्य में धन का अभाव है बल्कि इसलिए छोड़ जाती हूँ कि मुझे इन सबकी आवश्यकता नहीं। इस कार्य के लिए विनियोग हो, इसी लक्ष्य से मैं यह सब दिये जा रही हूँ, इसे स्वीकार करें, यह मेरी विनती है।" कहते हुए शान्तलदेवी को वह सब सौंपकर, उन सबसे बिदा लेते हुए इस अभिनव वाग्देवी ने किसी अज्ञात स्थान की ओर प्रस्थान कर दिया।

निवृत्ति चाहनेवाली कन्तिदेवी को आसानी से अनुमति नहीं मिली। इस बात को जाननेवाले कवि नागचन्द्र को मालूम हो गया कि निवृत्त होना आसान बात नहीं। वास्तव में उन्हें पोय्सल राज्य को छोड़ जाने की आवश्यकता भी नहीं थी। मान-सम्मान जो भी उन्होंने चाहा था वह सब उन्हें प्राप्त था। बेरोक-टोक वे साहित्य साम्राज्य के चक्रवर्ती बनकर निश्चिन्त हो वहीं रह सकते थे। पता नहीं क्यों उनके मन में भी स्थान परिवर्तन की सनक चढ़ गयी। क्या करने से यह साध्य हो सकता है—इस बारे में बहुत सोच-विचार कर एक निर्णय पर पहुँचे, और फिर खूब सोच-समझकर उन्होंने तदनुसार कार्य-प्रवृत्त होने का निश्चय कर लिया। बिट्टिदेव के सिंहासनारोहण के वार्षिकोत्सव समारम्भ के अवसर पर, मध्याह्न के बाद, वे महाराज बिट्टिदेव और पट्टमहादेवी शान्तला से मिले। उन्हें हार्दिक बधाइयाँ दीं।

शान्तलदेवी ने कहा, "आप जैसे महानुभावों के हार्दिक आशीर्वाद के बल पर ही यह राज्य सुखी और सम्पन्न बनेगा।"

"आशीर्वाद मात्र से कुछ नहीं बनता। श्रेष्ठ काव्य लिखने के लिए आशीष देने मात्र से काव्य नहीं रच जाता है। सबके लिए प्रयत्न करना होता है। मनौतियाँ, सदाशय, प्रोत्साहन यह सब प्रयत्न को रूप देते हैं, उसे सफलता की ओर अग्रसर करते हैं। उसी तरह पोय्सल राष्ट्र को सुखी और सम्पन्न राष्ट्र बनाना हो तो उसके लिए और अधिक प्रयत्न होना चाहिए। शायद इस तरह का प्रशस्त समय पहले कभी नहीं आया होगा। आगे भी ऐसा उत्तम समय आएगा या नहीं,

मैं कह नहीं सकता।" कवि नागचन्द्र ने कहा।

"इस तरह का प्रशस्त समय—इसके क्या माने?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"एक राष्ट्र को प्रगति करना हो तो उस राष्ट्र के प्रतीक रूप महाराज और महारानी को उस उन्नत स्तर तक पहुँचने की क्षमता से युक्त होना चाहिए। मैं सन्निधान से और पट्टमहादेवी से बहुत अच्छी तरह परिचित हूँ, ऐसा मैं मानता हूँ। यह कार्य आपसे ही साध्य है। साधारण परिवारों में इस तरह का योग्य दाम्पत्य देखने को नहीं मिलता। ऐसी हालत में राष्ट्र के प्रतीक राजा-रानी का यह आदर्श दाम्पत्य हमारे इस राष्ट्र के लिए सिर-मौर है। राष्ट्र की प्रगति के लिए इससे बढ़कर प्रशस्त समय और कब मिलेगा?"

"शिष्य-प्रीति केवल प्रशंसा करने में ही समाप्त नहीं हो जाना चाहिए।" बिट्टिदेव ने कहा।

"सन्निधान ऐसा नहीं समझें कि यह मात्र प्रशंसा है। निश्चित ही इसे प्रेरक मान सकते हैं। पट्टमहादेवी के पिता श्री मारसिंगय्या जी जब बलिपुर के हेग्गड़े के पद पर रहे, तब चालुक्य और पोय्सलों में जैसा मधुर सम्बन्ध रहा, उसी तरह का मधुर बन्धुत्व अब फिर से विकसित हो। इसके लिए सन्निधान को प्रयत्न करना होगा, मेरी प्रेरणा का उद्देश्य यही है।" नागचन्द्र ने कहा।

"कवि जी, हमें चालुक्यों से विद्वेष नहीं था; उनके प्रति तो हमें अपरिमित गौरव था। अब भी हम उसी गौरवबुद्धि से उन्हें देखते हैं। हम चाहते तो इस बात की घोषणा करके कि हमारा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं, हम स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकते थे। उन्होंने बिना किसी कारण के प्रभु का अपमान किया। हम पर द्वेष क्यों हुआ और कैसे हुआ, इसका कारण क्या था—सो हमें कुछ भी मालूम नहीं। वे तो अब पोय्सलों की शक्ति को तोड़ने के षड़यन्त्र में सहायता भी कर रहे हैं। ऐसी हालत में हम क्या करें? राजनीति में प्रेम का बदला प्रेम है, त्याग के लिए त्याग है, परन्तु कोई तलवार तानकर खड़ा हो जाए तो उसके सामने सिर झुकाने की परिपाटी नहीं है। पोय्सलों ने इतना ही किया है कितनी तलवार का तलवार तानकर ही सामना किया। ऐसी हालत में वह पुरानी मधुर मैत्री कैसे हो सकती हैं?" बिट्टिदेव ने कहा।

"सीधे तलवार तानकर तो खड़े नहीं हुए न? यह बात निश्चित है कि दोनों में असमाधान है। इस बात की सूचना महाराज के विवाह समारम्भ के संदर्भ में पिरियरसी जी ने दी थी। किसी के छेड़ने से या अनुचित कल्पना से उद्भूत इस असमाधान को वार्ता द्वारा दूर किया जा सकता है। पिरियरसी जी की भी यही इच्छा रही है कि वह पुराना मधुर बान्धव्य ज्यों-का-त्यों बना रहे। उन्हें तो सन्निधान से तथा पट्टमहादेवी से अगाध प्रेम है, अटल विश्वास भी है। यदि वार्ता द्वारा इस मधुर बान्धव्य को बनाये रखने का मार्ग सुझा सकते हों तो उनका

सहयोग अवश्य मिलेगा। या वे ही सुझा सकेंगी तो उत्तम होगा।" कवि नागचन्द्र बोले।

"पिरियरसीजी में सद्भावना है, परन्तु चालुक्यों के राज्य में वे ही सर्वेसर्वा तो नहीं हैं। और फिर निश्छल पोय्सलों को ही इस दिशा में संधान करने की बात क्यों उठानी चाहिए? यदि हम स्वयं यह बात उठाएँगे तो वे यह सोचेंगे कि पोय्सलों में ही कुछ दोष है। आपके कहे अनुसार, एक भाषा-भाषी होने के नाते यदि हम दोनों में उस पहले की-सी समरसता हो सकती है तो कन्नड़ साहित्य, कन्नड़ भाषा और कर्नाटक की कला—इनकी दृष्टि से ऐसा होना बहुत ही उत्तम होगा। यदि वहाँ से कोई संकेत या प्रस्ताव मिलता है तो उस पर खुले मन से विचार किया जा सकता है। हम ही वह संधान कार्य शुरू करें यह हमें संभव नहीं, क्योंकि तब वह राष्ट्रगौरव का प्रश्न बन जाता है। वह स्वर्गस्थ प्रभु के अपमान करने का-सा होगा।" शान्तलदेवी ने कहा।

कवि नागचन्द्र चकित हुए। महाराज बिट्टिदेव अगर यही बात कहते तो शायद उन्हें आश्चर्य न हुआ होता। तुरन्त वह कुछ न बोल सके।

"क्यों कविजी, मेरी बात आपको ठीक नहीं लगी?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"राष्ट्र हित की बात का विचार करते समय आत्मगौरव जैसे वैयक्तिक विचार को महत्त्व देना क्या संगत है?" नागचन्द्र ने कहा।

"आत्म-गौरव रहित राष्ट्र, राष्ट्र बनकर नहीं रह सकता, कविवर्य।"

"बड़े लोगों से छोटे लोग पूछ लें तो इसमें कोई ग़लती नहीं दिखती।"

"बड़े कौन छोटे कौन? चालुक्य बड़े और पोय्सल छोटे—यही आपका विचार है?" शान्तलदेवी ने सवाल किया।

"राष्ट्र के विषय में मैंने नहीं कहा। जगदेकमल्ल हमारे महाराज से बड़े और हमारी पट्टमहादेवी से पिरियरसी जी बड़ी हैं—इस वैयक्तिक सम्बन्ध को लेकर मैंने कहा है।"

"व्यक्ति बनकर सामने खड़े हों तो हम दोनों उनके चरण भी छुएँगे। परन्तु पोय्सल राष्ट्र का सिर झुकने पर सन्निधान राजी नहीं होंगे।" शान्तलदेवी ने कहा।

"तो क्या मैं यही समझूँ कि दोनों राष्ट्रों में समरसता नहीं हो सकेगी?"

"हम कभी ऐसा नहीं कहेंगे। समरसता का होना तो बहुत ही अच्छी बात है। इस दिशा में हम खुले दिल से बरतेंगे।"

"हमारे ऐसे विचार है इस बात की जानकारी उनको होनी चाहिए न?"

"हमारे इन विचारों को जानना उनका काम है।"

"अनुमति दें तो मैं यह काम करूँ?"

"पोय्सलों के संधिविग्राहक बनकर जाना चाहेंगे?"

"वह बहुत बड़ी बात होगी। मैं केवल बुद्धिजीवी हूँ। महाकवि पम्प या रन्न की तरह तलवार हाथ में लेने की सामर्थ्य भी मुझमें नहीं है। इसलिए मैं एक सांस्कृतिक नियोगी मात्र बनकर, सामरस्य के लक्ष्य को साधने की दृष्टि से इस कार्य की साध्यता-असाध्यता को समझने की कोशिश करूँगा।"

"तो यह स्थान छोड़कर वहाँ जाने की इच्छा है?"

"इसके यह माने नहीं कि यहाँ से छोड़ जाऊँगा। यहाँ रहकर कार्य को साधा नहीं जा सकता इसलिए वहाँ जाना होगा।"

"पिरियरसीजी ने पहले ही कहा था न? तब आपने कहा था मेरा वचन द्रोणाचार्य के वचन के समान है जिसे उन्होंने भीष्माचार्य से कहा था 'मेरा कार्य समाप्त हुआ, अब मैं स्वतन्त्र हूँ।' शायद अभी उसका स्मरण हो आया हो और जाने की इच्छा हो गई हो?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"मुझे यह बात याद ही नहीं। पट्टमहादेवीजी को यह अभी तक याद रही आयी? सच है, तब मैंने यह बात कही थी। परन्तु अब वहाँ जाने की इच्छा..."

"यहाँ से भी बढ़कर स्थान पाने के लिए।" बिट्टिदेव बीच में ही कह उठे।

"न, न, मुझे ऐसी कोई आकांक्षा नहीं है। मुझे अपनी योग्यता से बढ़कर ऊँचा स्थान यहाँ मिला है। इससे बढ़कर ऊँचा स्थान मुझे कहीं नहीं मिलेगा। मैं सरस्वती का आराधक हूँ। एक भाषा-भाषी लोगों में अधिकार-क्षेत्र की सीमा-रेखा ने अलगाव की भावना उत्पन्न करके कर्नाटक सरस्वती को खण्डित किया है। मेरी आकांक्षा और कुछ नहीं, केवल उस पुरानी समरसता को फिर से प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करना मात्र है। उस छोर से ही प्रस्तावित कराने का यत्न करना, और पोय्सल राष्ट्र के आत्मगौरव को क्षति न पहुँचे इसका ध्यान रखना—यही मेरा उद्देश्य है। अनुमति देकर अनुग्रह करें।"

"आपकी भावना अच्छी है लेकिन वह किस तरह पुरस्कृत हो, कहा नहीं जा सकता।" कहती हुई शान्तलदेवी ने अपने स्वामी की ओर देखा।

"कन्तिदेवी की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कविजी यहीं रहें तो अच्छा, यह हमारी अभिलाषा है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"विद्याभ्यास कराने के लिए राष्ट्र-भर में अनेक योग्य ज्ञानी, विद्वान् पुरुष हैं। कवि बोकिमय्या को बेलुगोल से बुला सकते हैं। बड़े निष्णात कवि मौक्तिकजी भी यहीं हैं। सुमनोबाणजी भी हैं। और भी अनेक जन हैं। यों ही कुछ नाम जो सूझे, मैंने निवेदन किये।"

"तो मतलब यह कि कविजी ने पहले से निश्चित करके यह सलाह हमारे सामने पेश की है?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"सन्निधान के सामने केवल समय काटने के लिए बात करना संभव हो सकता है?"—नागचन्द्र ने कहा।

"पोय्सलों को यदि आपके मन की यह समरसता की भावना अवांछित हो तो ?" बिट्टिदेव ने फिर प्रश्न किया।

"यह तो सवाल करने के इरादे से किया हुआ सवाल मात्र है; यह अंतरंग से निकला विचार नहीं होगा। मेरी यह निश्चित धारणा है कि सन्निधान और पट्टमहादेवी के हाथ में जब तक राज्य-संचालन सूत्र हैं पोय्सल राष्ट्र में समरसता को न चाहने की बात उठ ही नहीं सकती।"

"राजनीति में धारणाएं कभी निश्चित रूप नहीं ले सकतीं, कविजी। राष्ट्रकूट कौन हैं? चालुक्य कौन हैं? दोनों कर्नाटक सरस्वती की ही सन्तान हैं न? उन्हें दबाकर वे ऊपर नहीं उठे? इसलिए पोय्सल भी चालुक्यों को दबाकर उपर उठना चाहते हैं शायद इस मनोभाव से प्रेरित होकर उन्होंने अपने विचारों में परिवर्तन किया है। हमपर जग्गदेव को हमला करने के लिए भेजकर हमारी शक्ति की परीक्षा भी उन्होंने ले ली। इसलिए यह संभव नहीं कि वे इस तरह के संधान के लिए तैयार हों। ऐसी स्थिति में दोनों राष्ट्रों में समरसता कैसे आ सकती है?" बिट्टिदेव ने कहा।

"कर्नाटक भाषा-भाषी जनता की संस्कृति इतनी उदात्त है कि उसने सदा ही समरसता चाही है। जब जनता समरसता चाहती है तब राज-काज संभालनेवाले राजवर्ग को वह स्वीकार करना होगा न? सन्निधान मुझे एक मौका दें। यदि अपने प्रयत्न में मैं असफल भी हो जाऊँ तो मैं दुखी न होऊँगा। इस बात की तृप्ति तो रहेगी कि मैंने एक उत्तम कार्य के लिए प्रयत्न किया।"

"ठीक है, आपके निर्णय में हम बाधक नहीं बनेंगे। आप स्वतन्त्र हैं। आपका संकल्प सफल होता है तो हमें भी सन्तोष होगा। किन्तु आप ऐसा कोई विचार न रखें कि अपनी संकल्प-सिद्धि के लिए जिस कार्यनीति का आप अनुसरण करेंगे उसके लिए आपको पोय्सल राज्य का प्रतिनिधित्व प्राप्त है। बल्कि आप ऐसा मान सकते हैं कि आप पर हमारा विश्वास होने से इस कार्य के प्रति हमारी सहानुभूति है।" कहकर बिट्टिदेव ने शान्तलदेवी की ओर देखा।

"कविजी का विश्वास है कि कांटा करवाल से भी अधिक बलवान् है। इसलिए वे जिस विचार को लेकर प्रयोग करने जा रहे, उसके लिए राजप्रतिनिधित्व कांटा ही बन सकता है—सन्निधान का सोचना ठीक है। कविजी, पोय्सल राज्य सुदृढ़ नींव पर स्थित होकर जनता के हित के लिए प्रगति करे—इसी ध्येय को लेकर आप राजगुरु बनकर अब तक दीक्षाबद्ध रहे। आपकी निर्दिष्ट नीति उस लक्ष्य तक पहुँचे—यही आशीर्वाद दें।"

"पट्टमहादेवीजी, मैं चाहे जहाँ भी रहूँ, जैसा चाहे रहूं, मेरी यही कामना रहेगी। मैं हमेशा चाहता रहूँगा कि पोय्सल कीर्तिवान् हो। मैं आज जो कुछ भी हूँ, वह इसी राष्ट्र के कारण हूँ। इसलिए यदि मैं इस बात को भूल जाऊँ तो निश्चित

ही कृतघ्न कहलाऊँगा। आज्ञा दें।" कहकर नागचन्द्र ने दोनों को हाथ जोड़े।

उन दोनों ने प्रतिनमस्कार किया और कहा, "अच्छा, कवि जी।"

कन्तिदेवी को उनके गन्तव्य स्थान की जानकारी के बिना ही विदा करना पड़ा। दरार को पाटने का ध्येय लेकर कवि नागचन्द्र चालुक्य राज्य की ओर प्रस्थान कर गये। कहाँ जाकर ठहरेंगे, इसकी जानकारी उन्हें भी नहीं थी।

सारस्वत लोक के दोनों चमकते सितारे राजधानी से दूर हो गये।

बिट्टिदेव और शान्तलदेवी दोनों इस तरह से अनिरीक्षित रूप से प्राप्त राज्य को शक्ति-सम्पन्न बनाने की ओर विशेष ध्यान देने लगे। तुरन्त किसी ओर से युद्ध छिड़ने की सम्भावना न दिखने पर भी, आगे चलकर यदि संग्राम छिड़ जाय तो ऐसी परिस्थिति के लिए सब तरह से सन्नद्ध रहने के बारे में मन्त्रिमण्डल में विचार-विनिमय करने के उपरान्त, सैनिक-शक्ति को बढ़ाने के लिए कार्यक्रम बनाया। राष्ट्ररक्षा एवं उसे विस्तृत करने की दृष्टि से भी यह बहुत जरूरी काम हो गया। माचण दण्डनाथ, डाकरस दण्डनाथ और सिंगिमय्या की पृथक्-पृथक् देखरेख में सैन्य-शिक्षण नियोजित रीति से व्यवस्थित हुआ। राष्ट्र के युवकों के अलग-अलग जत्थे बनाये गये और क्रमबद्ध शिक्षण दिया जाने लगा। प्रत्येक दण्डनाथ के अधीन कई गुल्मपति थे। कुछ प्रधान स्थानों के लिए, उन स्थानों की आवश्यकताओं के अनुसार कुछ सैनिकों को विशिष्ट शिक्षण देना आवश्यक था। आम तौर पर निष्ठावान् परिवारों से चुने हुए युवकों को ही विशिष्ट स्थान देने की परिपाटी रही आयी। प्रधान गंगराज के बेटे एचिराज, बोप्पदेव; डाकरस के बेटे मरियाने और भरत, चिण्णम दण्डनाथ का बेटा बिट्टिगा—इन लोगों को इस विशिष्ट वर्ग के लिए तैयार करने की व्यवस्था की गयी। सैनिक शिक्षण देने में डाकरस दण्डनाथ निष्णात थे। इसलिए इन पाँचों को शिक्षित करने का दायित्व उन्हीं को सौंपा गया। इनमें सबसे बड़ा एचिराज और सबसे छोटा बिट्टिगा ही रहे। उम्र में अन्तर रहने पर भी इनमें क्षात्रबुद्धि रक्तगत होकर रही और इनकी बुद्धिमत्ता तथा दक्षता को विकसित करने में यह सहायक रही। कहा जा सकता है कि इनमें बिट्टिगा का हस्तकौशल उम्र के ख्याल से बहुत बढ़ा-चढ़ा था।

कन्तिदेवी की इच्छा के अनुसार, स्त्री-शिक्षण की व्यवस्था भी छोटे प्रमाण में शुरू कर दी गयी थी। राजधानी में राजमहल के अहाते में ही एक वर्ग संगठित हुआ। इसमें राजमहल के निकटवर्ती परिवारों की बालाएँ ही थीं।

राजधानी के किसी भी परिवार की वालिकाओं के शिक्षण के लिए राजधानी के बीचों-बीच एक पृथक् वर्ग संगठित किया गया था। राजमहल के अहाते के अन्दर संगठित वर्ग की शिक्षिका स्वयं पट्टमहादेवी ही वनीं। उन्होंने जिन अलग-अलग विषयों में पाण्डित्य प्राप्त किया था, उनमें केवल शस्त्र-विद्या को छोड़कर, शेष सभी याने संगीत, नृत्य, साहित्य, इतिहास आदि को स्वयं पढ़ाने का दायित्व अपने ऊपर लिया। उच्च स्तर के लोग पढ़ावें तो उसका विशेष मूल्य होता है न ? स्वयं कन्तिदेवी ही पढ़ातीं तो उसका मूल्य क्या होता सो कहा नहीं जा सकता। अब जब पट्टमहादेवी ही शिक्षा दे रही हैं तो कहना ही क्या ? इस तरह स्त्री-विद्याभ्यास विशिष्ट और परिष्कृत रीति से आरम्भ हुआ।

परन्तु गत दो युद्धों के कारण राष्ट्र की अपार सम्पत्ति का अधिक व्यय हो गया था। जगदेव का खजाना हस्तगत हुआ था तो भी उसका बहुत बड़ा हिस्सा युद्ध में मृत लोगों के परिवारों में और अविस्मरणीय सेवा करनेवाले जीवित सैनिकों में बाँट दिया गया था। अर्थ-शक्ति के बिना आयोजित कोई योजना सफल नहीं हो सकेगी, यह बात राजकार्य-निर्वाहक विभाग को विदित ही थी।

इस विषय में विचार-विनिमय करने के लिए एक सभा आयोजित हुई। यह तो सभी को विदित ही था कि पट्टमहादेवी सभी बातों में निष्णात हैं। अतः एक नया कार्यक्रम शुरू हुआ। सभी मन्त्रालोचना सभाओं में वह उपस्थित रहा करती थीं। उपस्थित रहने पर भी वार्ता में विशेष भाग नहीं लेती थीं। बहुत आवश्यक प्रतीत होने पर अपनी राय बता देतीं। इस मन्त्रणा सभा में भी वे उपस्थित रहीं।

राज्य के खजाने को समृद्ध बनाने के विषय में सभी ने अपनी-अपनी सूझ-बूझ के अनुसार विचार व्यक्त किये। शान्तलदेवी ने सलाह दी, "कर वसूल करनेवाले बड़े अधिकारियों को चाहिए कि वे कार्यक्रम के अनुसार उगाही करें। कई-एक बार सुस्ती के कारण कर-संग्रह नहीं भी हुआ करता है। राष्ट्र की सम्पत्ति का संग्रह मूलतः दो तरह से किया जाता है। एक— धन के रूप में वसूला जानेवाला कर, फुटकर वसूल किये जानेवाले छोटे-मोटे कर तथा अन्य छुटपुट कर। दूसरा वह जो धान्य के रूप में उगाहा जाता है। धान्य के रूप में उगाहा जानेवाला कर उस उस प्रदेश या ग्राम में संगृहीत होकर राष्ट्र के भण्डारगृह में रक्षित रहता है। पटवारी और हेग्गड़े को तरीक़े से यथा समय संग्रह करना चाहिए। अभी जैसा है, धान्य जो कर के रूप में संग्रह किया जाता है वह आमतौर पर एक रूप है। सिंचाई की व्यवस्था से पैदा होनेवाली फसल और बारिश पर निर्भर होकर पैदा होनेवाली फसल—इन दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं किया जा रहा है। इन दोनों को पृथक् मानना हितकर है। मैं चाहती हूँ कि अधिक उत्पादन करनेवालों से ज्यादा वसूला जाय। हाँ, इस बात का ख्याल अवश्य रखा जाय कि उनकी आवश्यकताओं में कमी न पड़े और उनके आर्थिक जीवन में अस्त-व्यस्तता न

आने पावे। तरी फसल का एक तिहाई और अन्य फसलों में पाँचवाँ हिस्सा वसूला जा सकता है।"

सुरिगे नागिदेवण्णा ने कहा, "अन्य बड़े थोक व्यापार पर अधिक कर लगाना अच्छा होगा, क्योंकि अब राष्ट्र के खजाने में धन संग्रह होना ज़रूरी है।" इस समालोचना सभा में भाग लेने के लिए ही वह यादवपुर से आये थे।

बिट्टिदेव ने सूचित किया, "यह भी किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, कुछ उद्योग ऐसे भी हैं जिनपर कर नहीं लगा है। ऐसे उद्योग कौन-कौन हैं, उनसे उत्पन्न आय का परिमाण कितना है, कितना कर लगाया जा सकता है, आदि बातों पर भी विचार किया जा सकता है।"

शान्तलदेवी ने बताया, "हमारे समाज ने बहुपत्नी प्रथा को स्वीकार किया है। अगर मुझे स्वतन्त्रता मिले तो मैं इसे हटा देना चाहती हूँ, क्योंकि यह उन्नत संस्कृति का प्रतीक नहीं। यह एक सामाजिक कलंक है। वेश्यावृत्ति भी इसी तरह से एक सामाजिक कलंक है। बहुपत्नीत्व कलंक के साथ इस वेश्यावृत्ति के कलंक को भी समाज ने आत्मसात् कर लिया है। इन दोनों को मिटाने के लिए कुछ करना होगा। इस बहुपत्नीत्व और वेश्यावृत्ति पर अधिक रकम कर के रूप में लाद दें, तो डर के मारे लोग इनको छोड़ भी सकेंगे।"

"वेश्यावृत्ति पर कर लगावें, इसमें कोई एतराज़ नहीं। इसे अगले साल से ही कार्यान्वित कर सकते हैं। यह इस दिशा में पहला कदम होगा। कर लगाने पर इस बात का पता भी लग जाता है कि राष्ट्र में ऐसे कितने लोग हैं जिनकी वृत्ति वेश्यावृत्ति है। यह दूसरा कदम होगा और फिर इस संख्या को कम करने का प्रयत्न तीसरा कदम होगा।" बिट्टिदेव बोले।

पुनीसमय्या ने कहा, "कर लगाना दूसरी बात है। लेकिन कर-भार से वृत्ति रुक जाएगी इसमें मुझे विश्वास नहीं। अति कामी स्त्री-पुरुष जब तक रहेंगे तब तक यह वृत्ति रहेगी ही। किसी न किसी रूप में वह रहेगी। वह बुरी है अवश्य, फिर भी एक स्वस्थ समाज के लिए यह आवश्यक है। पारिवारिक जीवन के नीति-नियमों की सीमाओं में रहकर जो जीवन-यापन करना चाहेंगे, उनसे इसका सम्बन्ध नहीं होगा। इन लोगों की सन्तुष्टि के लिए ही यह वृत्ति है। हाँ, परस्त्री का शीलभंग करने वालों पर कठिन श्रम की शिक्षा और अधिकाधिक अर्थदण्ड भी दिया जा सकता है।"

डाकरस ने बताया, "पेड़-पौधे जिन पर किसी का स्वत्व नहीं, वे राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। उन्हें काट-कूटकर ईंधन के रूप में तथा अन्य तरह से बहुत उपयोग करते हुए देखा जाता है। उनके उपयोग पर आक्षेप नहीं, पर उस तरह के विशेष उपयोगों पर कर लगाना आवश्यक लगता है।

शान्तलदेवी ने कहा, "सेंदी-शराब पीकर समाज में ऊधम मचाने वाले भी

वेश्याओं की ही तरह समाज के लिए कलंक हैं। उन पर भी कर लगाना होगा। इन पियक्कड़ों की संख्या को भी घटाना चाहिए।"

चर्चित इन सभी करों के मुद्दों पर विचार करने के उपरान्त, इस वक़्त किस पर कितना कर है, उसे बढ़ाना हो तो किस प्रमाण में बढ़ाया जा सकता है और कौन-कौन से नये कर लगाने के हैं, आदि सभी के ब्योरे के साथ एक पूरी फेहरिश्त तैयार करने के लिए खजांची दासमय्या को आदेश दिया गया। गत वर्षों में कुल वसूली कितनी थी, और इन नये करों के लगाने पर सम्भावित अधिक धन कितना होगा—इन सभी का एक अनुमानित लेखा-जोखा तैयार करने के लिए भी उन्हें आदेश दिया गया।

"अभी तक अधिक मूल्यवाली मुहरों का ही उपयोग लेन-देन के व्यवहार में किया जाता रहा है। कम मूल्य के सिक्के तैयार करेंगे तो छोटे-छोटे लेन-देन के व्यवहारों में विशेष सुविधा रहेगी, इसलिए सरकारी टकसाल में इन सिक्कों को तैयार कराना ठीक होगा।" प्रधान गंगराज ने सुझाव दिया।

"हाँ, यह किया जा सकता है। परन्तु अन्य लोगों को इन्हें तैयार नहीं करना चाहिए। यदि कोई ऐसे सिक्के तैयार करते पाये जायेंगे तो उन्हें कठोर दण्ड दिया जाएगा—इस बात की घोषणा लोगों की जानकारी के लिए कर देनी होगी।" बिट्टिदेव ने समर्थन करते हुए कहा।

गंगराज ने कहा, "जो आज्ञा।" और बताया, "फसल की कटौती पर, उसका एक तिहाई राजादाय के रूप में लेने की बात घोषित करेंगे तो इसे प्रजा द्वारा स्वीकार कर पाना शायद कुछ क्लिष्टतर काम होगा।"

"राष्ट्रहित की बात समझा-बुझाकर देने के लिए कहना होगा। पैदा करने वाले की सम्पत्ति को हम छीन तो नहीं रहे हैं। अधिक हिस्सा उन्हीं के लिए छोड़ देते हैं। अब हम जो थोड़ा ज्यादा माँग रहे हैं, उसे व्यापार-व्यवहार में लगाने पर राष्ट्र की ही आय बढ़ेगी। इस व्यापार-व्यवहार से थोक व्यापारी लाभान्वित होंगे और बिक्री कर आदि से अधिक धन खजाने में जमा भी हो सकेगा। इसको सड़ने के लिए हम भरकर तो नहीं रखते हैं। और फिर, हम उसे लोगों को ही तो दे देते हैं। सम्पत्ति एक जगह जमा रहेगी तो वह सड़ने लगती है। उसका उपयोग एक हाथ से दूसरे हाथ में बदलते रहने में ही है। और इस तरह बदलते रहने से वह सब में बँट भी जाती है। इसी अर्थ में हम लक्ष्मी को चंचल कहते हैं। परन्तु हम इस तत्त्व से परिचित नहीं हो पाये। लक्ष्मी का एक ही जगह स्थायी रहना अच्छा नहीं। वह चंचल रहे तभी राष्ट्र को सम्पन्न बनने में सहायता मिलती है। हमें अब उसकी वही चंचलता चाहिए।" शान्तलदेवी ने कहा।

फेहरिश्त तैयार करने का आदेश खजांची को दिया गया और टकसाल के अधिकारी को बुलाकर भिन्न-भिन्न मूल्य के अलग-अलग तौल के सिक्के ढलवाने

का निर्णय भी किया गया।

माचण दण्डनाथ ने सलाह दी, "पोय्सलों के गज तथा अश्व बल को बढ़ाना चाहिए। हाथियों की कतार सामने रहती है तो पीछे रहने वाली धनुर्धारी सेना के लिए वह एक किला बन जाती है। ढाल-तलवार वाले सैनिकों के घेरे से यह व्यवस्था हमारी शक्ति को बढ़ाकर बलवान् बना देगी। अच्छे घोड़ों को अरब राष्ट्र से मँगवा लेंगे तो अच्छा होगा। वेग और शक्ति में हमारे स्थानीय घोड़ों से वे ज्यादा अच्छे होते हैं। उसकी संख्या को बढ़ा देने से हमारी भाले-बर्छीवाली सेना की भी शक्ति बढ़ जाएगी।

शान्तलदेवी ने सलाह दी, "घोड़ों को मँगवाने के लिए एक अलग व्यक्ति को नियुक्त करना ठीक होगा। घोड़ों की परीक्षा करके उत्तम घोड़ों को ही खरीदना अच्छा है। राष्ट्र के बाहर से खरीदना हो तो हमारी सम्पत्ति अन्य बाहरी देशों को चली जाएगी। इसलिए हमारा ध्यान इस बात की ओर भी रहना चाहिए कि हमारी प्रत्येक कौड़ी का सही ढंग से व्यय हो।"

रायण को इस कार्य पर नियोजित किया गया और उसे दण्डनाथ के पद पर रखकर तरक्की दी गयी।

जंगल से हाथियों को पकड़ने तथा उन्हें पालतू बनाकर काम में लाने योग्य तैयार करने के लिए महावतों का एक जत्था ही नियोजित हुआ।

"राज-परिवार और राष्ट्र-सेवक—इन दोनों में निकट सम्पर्क होने पर मिलने वाले फल का स्वरूप ही कुछ और है। अब तक हमारे राष्ट्र के बहुत-से हेग्गड़े और पटवारी आदि लोगों को महाराज का दर्शन ही न हुआ होगा। सम्भव है कि कइयों ने राजधानी तक को न देखा हो। इन लोगों को राजधानी में आने और सन्निधान को निकट से देखने के लिए मौक़ा मिले तो उनके मनों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ेगा। वे ही तो असल में राष्ट्र की शक्ति का मूलस्रोत हैं। उनकी निष्ठा ही राष्ट्र का प्रगति के लिए बुनियादी ताक़त है। इस बात को सन्निधान स्वयं उन्हें समझा दें तो उसका दस गुना प्रभाव उन पर पड़ेगा। साथ ही, गाँव-गाँव से ग्रामीण युवकों को चुनकर सैनिक शिक्षण के लिए भेजने का दायित्व भी सन्निधान स्वयं उन्हें समझा सकेंगे।" पट्टमहादेवी की इस सलाह के अनुसार, राष्ट्र के हेग्गड़े तथा पटवारी आदि सभी लोगों की एक सभा राजधानी में ही बुलवायी गयी। इस सभा में सभी विषयों के बारे में स्वयं सन्निधान ने विस्तार के साथ समझाया भी। देवादाय तथा अन्य सभी तरह के धान्य कर आदि को राजादाय के रूप में खजाने में जमा करने तथा उसके विनियोग के तौर-तरीक़े आदि सभी बातों को विस्तार से बतलाकर वर्तमान स्थिति में राष्ट्र की गति-विधि का परिचय भी कराया गया। राष्ट्र की प्रगति के लिए निस्पृह

एवं निष्ठावान् रहकर, राष्ट्र की प्रगति की साधना करने में उनकी कितनी बड़ी भूमिका है—यह भी सबको समझाया, और बताया कि वे ही राष्ट्र की रीढ़ हैं।

खजांची, दण्डनाथ, प्रधानजी, सन्निधान स्वयं, और पट्टमहादेवी—इन सबके भाषण सुनकर, उन्हें प्रत्यक्ष देखकर हेग्गड़े और पटवारी आदि सभी में एक नया उत्साह भर उठा। उनमें अनेक लोगों ने राजधानी को पहले देखा भी न होगा। राजमहल के कुछेक अधिकारियों ने ही सम्भवतः उनसे भेंट और बातचीत की होगी। परन्तु बहुत प्रमुख प्रधानजी, मन्त्रिगण, दण्डनाथ जैसे उच्च अधिकारी वर्ग को इन सभी ने देखा हो, यह कहा नहीं जा सकता। देखा भी हो, लेकिन उनके साथ बातें की हों यह भी नहीं कहा जा सकता। कभी किसी ने इशारा करके दिखाया हो कि ये ही प्रधान गंगराज हैं तो देख लिया हो। कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने निकट से देखा था और बात भी की थी। परन्तु बहुसंख्यक लोगों ने राजधानी को देखा ही नहीं था तो फिर इनसे भेंट ही कैसे की होगी?

इस सभा के कारण स्वयं महाराज और पट्टमहादेवी तथा अन्य उच्चस्तरीय अधिकारी वर्ग को समीप से देख और उनकी वाणी सुन पुलकित हो नूतन उत्साह से नवजीवन पाकर सब लोग अपने-अपने स्थानों को लौट गये। उस दिन उनकी निष्ठा एवं निस्पृहता को वास्तव में एक नयी चेतना मिली थी। इसका फल भी शीघ्र ही देखने को मिला।

समूचा राष्ट्र नये कार्योत्साह से स्पन्दित हो उठा। राष्ट्ररक्षा के लिए आवश्यक सैनिक शक्ति को बढ़ाने की तैयारियों के साथ, भण्डार की सम्पत्ति भी बढ़ने लगी। राष्ट्र की विरोधी शक्तियों को दबाने के लिए राष्ट्रबल को समृद्ध करने का कार्य आसान हो गया। यह सब काम नन्दन संवत्सर के उत्तरार्ध और विजय संवत्सर के पूर्वार्ध के बीच सम्पन्न हुआ।

इस विजय संवत्सर में और भी कुछ खास बातें हुईं। पट्टमहादेवी और महाराज बिट्टिदेव ने दो कार्यों को इस बीच और सम्पन्न कर डाला—पुत्र की तरह पले बिट्टिगा का उपनयन और राजकुमार उदयादित्य का विवाह। उपनयन और विवाह इन दोनों को सम्पन्न करने के लिए मुहूर्त कुछ दिनों के अन्तर पर निश्चित किये जाने के कारण मरियाने दण्डनायक, रानी पद्मलदेवी, चामलदेवी और बोप्पदेवी को भी आमन्त्रण भेजा गया था, लेकिन वे नहीं आये। इसका कारण पद्मलदेवी का हठ ही था। उसने सोच रखा था कि इन लोगों के बड़प्पन दिखावे को देखने क्यों जायें।"

उनकी अनुपस्थिति में ही उपनयन और विवाह कार्य सम्पन्न हुए। इस सन्दर्भ में भोजनकाल में स्वयं शान्तलदेवी प्रत्येक पत्तल के पास जा-जाकर उपचार करती हुई, परोसती हुई व्यस्त रहीं। इसे देखकर उपस्थित सभी जन अत्यन्त प्रभावित

ुए। अपनी पट्टमहादेवी के आत्मीय भाव को अपने हृदयों में उतारकर बड़े आनन्द और उत्साह से सभी अभ्यागत अपने-अपने स्थान को लौट गये।

चालुक्य विक्रमादित्य की रीति-नीतियों के कारण उनके माण्डलिकों में काफ़ी असमाधान फैला हुआ था। जहाँ तहाँ विरोध भाव भी उत्पन्न हो गया था। इसे उनका अविवेक ही कहें कि उन्होंने पोय्सलों को अपने से दूर ही नहीं कर लिया था, उनसे द्वेष भी करने लगे थे। फिर भी पोय्सलराज ने अपने वंश की उदार नीति के अनुरूप स्वयं ही चालुक्यों पर किसी तरह का विरोध प्रकट नहीं किया। पट्टिपोंबुच के जग्गदेव को उकसाकर उन्होंने पोय्सलों पर हमला करवाया। पोय्सलों ने जग्गदेव को दबाकर भगा दिया था। इस घटना के कारण तब चालुक्यों को पोय्सलों की शक्ति-सामर्थ्य का अच्छी तरह पता लग गया था।

जग्गदेव की इस पराजय ने विक्रमादित्य के क्रोध को बढ़ा दिया था। उनका यही विचार था कि किसी तरह से भी हो, पोय्सलों की शक्ति को बढ़ने नहीं देना है। एरेयंग प्रभु की मृत्यु उनको उत्तेजित कर रही थी। इसीलिए जग्गदेव को उकसाकर उन्होंने लड़कों पर हमला करवाया था। बालक होने पर भी ये अपने पिता की तरह समर्थ, बुद्धिमान, धीर हैं इस बात का पता उन्हें तभी लगा था। इस युद्ध की चर्चा कानों-कान फैल भी गयी थी। इससे कुछ लोगों में ईर्ष्या भी उत्पन्न हो गयी थी तो कुछेक इससे खुश भी थे।

कल्याणी के चालुक्यों से शिकस्त खाकर अपमानित होने वाले कुछ लोगों को लाचार होकर उनके अधीन सामन्त बनकर रहना पड़ रहा था। ऐसे लोगों के लिए यह समाचार विचार करने की बात बन गयी थी।

प्राण हथेली पर रखकर धारानगरी को पराजित कर, चालुक्यों की विजय-घोषणा करने वाले पोय्सलों का बल बढ़ जाय और अपने साम्राज्य के लिए वह काँटा बन जाय—इस इरादे से विक्रमादित्य द्वारा पोय्सलों के प्रति जो व्यवहार किया जाता रहा उससे दुनिया अपरिचित तो नहीं थी। खासकर कल्याणी के चालुक्यों से हार खाये हुए लोग कल्याणी के चालुक्यों और पोय्सलों की शक्ति-सामर्थ्य को तौलकर देख रहे थे। विक्रमादित्य की ऐंठ को ढीला करना हो तो वह केवल पोय्सलों से ही सम्भव हो सकता है—यह धारणा कुछ लोगों की बन गयी थी। इन दोनों में, चाहे कोई हारे या जीते, तब भी अपनी हालत में कोई परिवर्तन नहीं होगा—इस बात से परिचित होने पर कुछ मानसिक सन्तोष तो

होगा ही। ऐसे भी लोग थे जो यह चाहते थे कि जिन्होंने हमें पराजित किया है उनकी भी वही दशा हो। ऐसे डींग मारने वाले घमण्डियों के लिए यही उचित दण्ड है। भारत के दक्षिणी भूभाग में अनेक राज्यों ने जन्म लिया, विकसित हुए, फिर कुम्हलाकर झड़ गये। फिर भी इन राज्यों के वारिस कहलाने वाले परिवारों के लोग यत्र-तत्र जीवित रहे। वेंगिप्रदेश के पूर्वी चालुक्य, पल्लव, और पल्लवों को आत्मसात् करने वाले नोलम्ब—ये लोग तथा चोल राजाओं से हार खाकर कल्याणी के चालुक्यों के अधीन हो तकलीफ़ झेलते पड़े रहने वाले गंगवंशीय—इस तरह इन राजवंशों के उत्तराधिकारी दुर्बल होकर दक्षिण भारत में, खासकर कर्नाटक के मध्य भाग में, झुँझलाते हुए किसी तरह समय काट रहे थे। कुछेक पोय्सलों की बढ़ती हुई शक्ति की सराहना कर रहे थे। ये और इनसे मिले हुए राजा, सामन्तों ने पोय्सलों के साथ शामिल होना उचित समझा। इस सम्बन्ध में सन्धि-सन्धान करने की बात सोचने वालों में पूर्वी चालुक्य वंशी मंचिदण्डनाथ एक थे। उनके आश्रय में पल्लव राजवंशी पल्लव गोविन्द और चामुण्डव्वरसी की पुत्री बम्मलदेवी जीवन-यापन कर रही थी। मंचिदण्डनाथ की भांनजी राजलदेवी मातापितृ विहीन होने के कारण, उन्हीं के आश्रय में पलती रही। बम्मलदेवी राजलदेवी से उम्र में थोड़ी बड़ी थी। वास्तव में मंचिदण्डाधिप ने इन दोनों का अपनी बेटियों की तरह पालन किया था। पोय्सलराजः से बातचीत करने से पहले वह अपनी शक्ति को एक बार परख लेना चाहते थे। उन्होंने यह जानना चाहा कि उनके अधीन रहने वाली सेना उनके साथ है या कल्याणी के चालुक्यराज के साथ। वास्तव में उनके पास प्रधानतया अश्वसेना थी। पल्लव-राजवंशीया बम्मलदेवी अश्वपरीक्षा में निष्णात थी। इस वजह से उसका सभी घुड़सवार सेना-नायकों से अच्छा परिचय था। वह खुद भी अच्छी घुड़सवार थी। इसलिए मंचिदण्डनाथ ने पहले अपना यह विचार अपनी भानजी को बताकर, उससे बातचीत करने के बाद, बम्मलदेवी की मदद से सवारों के मनोभाव को जानने के लिए प्रयत्न करने का निर्णय किया। यह काम तो ऐसा है जिसे तुरन्त, मनमें आते ही, नहीं कर सकते। अतः किसी से कुछ कहे बिना, वे सैनिकों की मनोवृत्ति को, उनके झुकाव को परखकर लेना चाहते थे। इस कार्य में बड़ी सावधानी बरतनी होगी।

वे इन बातों पर विचार कर ही रहे थे कि इतने में खबर मिली कि पोय्सलों ने चेंगाल्वों को पराजित कर दिया है। इससे मंचिदण्डनाथ के विचारों को पुष्टि मिली। कल्याणी के चालुक्यों की ओर विशेष झुकाव रखने वाली अश्वसैन्य की टुकड़ी को अलग करके उन्होंने उसे कोवलालपुर की सीमा की ओर रवाना कर दिया। उस तरफ से चालुक्यों पर धावा करने के लिए चोलों का आना सम्भव है। कल्याण तथा हडगलि की ओर से दूसरी सेना भी उधर आ सकती है। 'दक्ष

और शक्तिशाली, चुने हुए सैन्य को ही उस तरफ भेजने का आदेश चक्रवर्ती ने दिया है'—यों कहकर सेना की उस टुकड़ी को उकसाकर उसे उधर भेज दिया था।

इसी बीच चालुक्य चक्रवर्ती को पोय्सल नरेश बल्लाल के निधन की खबर मिल चुकी थी। यह खबर कल्याणी भी पहुँची थी। मंचिदण्डनाथ को यह खबर दी गयी कि वे अपने अश्वदल को अरसीकेरे की ओर अग्रसर करें। शेष सेना बलिपुर की ओर से आकर सम्मिलित हो जाएगी। पोय्सलों को दबाकर झुकाने के लिए यह अच्छा मौक़ा है। चक्रवर्ती की इस तरह की चाल को देख मंचिदण्डनाथ के मन में उनके प्रति एक असह्य भाव उत्पन्न हो गया। बम्मलदेवी और राजलदेवी चक्रवर्ती को शाप देने लगीं। अपने गौरव से सम्राज्ञी का गौरव बड़ा है और अपने प्राणों से सम्राट् के प्राण अधिक मूल्यवान हैं—यही मानकर अपनी जान हथेली पर रखकर उनकी रक्षा के लिए प्राण तक होम देने के लिए जो सतत तैयार रहे, जिन्होंने शत्रुओं से लड़कर उन्हें विजय दिलायी, आज चालुक्य चक्रवर्ती उन्हीं पोय्सलों पर हमला करें? बिना किसी कारण के चक्रवर्ती ने जो यह कदम उठाया है उसका घोर विरोध करना ही होगा—अपने इस निर्णय की सूचना इन दोनों देवियों ने मंचिदण्डनाथ को दी।

यह सुनकर मंचिदण्डनाथ ने पूछा, "इसका यही मतलब हुआ न, कि सम्राट् की आज्ञा का पालन नहीं करेंगे। यह सूचित करना होगा?"

"इसके पहले यह जान लेना होगा कि इस विषय में पोय्सलों के क्या विचार हैं। अभी हम तटस्थ हैं। कहीं ऐसा न हो कि इधर अविनीत भाव सूचित कर, उधर से हमें स्वागत न मिले! तब हम न इधर के रहेंगे, न उधर के।" बम्मलदेवी ने कहा।

"तो फिर?"

"अब हमें दोनों तरह की बातों पर विचार करना होगा। एक, पोय्सलों को समझना है और दूसरी बात, वर्तमान स्थिति में कुछ कारण बताकर सेना को न भेज सकने की खबर चक्रवर्ती को देना है।"

"सो तो ठीक है। पर यह काम करे कौन?"

"मैं वेलापुरी जाऊँगी, सवार नायक साहणी अनन्तपाल के साथ। आप बलिपुर हो आइए। नहीं होगा?" बम्मलदेवी ने कहा।

"राजलदेवी को यहाँ अकेली छोड़कर चले जाएँ?"

"दीदी के साथ बहिन रहेगी। आप चिन्ता न करें।" बम्मलदेवी ने कहा।

तदनुसार यात्रा आरम्भ हुई। वे वेलापुरी पहुँचे ही थे तब तक उदयादित्य अपनी पत्नी के साथ यादवपुरी जाकर दक्षिण-पश्चिम की ओर की गतिविधियों का निरीक्षण करने लग गया था। हेग्गड़े सिंगिमय्या भी उसकी सहायता के लिए

भी न मिल सके—ऐसी हालत न हो। इसलिए चाहे समय कितना भी लगे, मैं प्रतीक्षा करूँगा। स्वीकृति देने का अनुग्रह करें।"

"पोय्सल राज्य में आश्रय पाने की इच्छा लेकर आनेवाले कभी निराश न होंगे। परन्तु पहले इस बात का निश्चय तो हो कि वे निष्ठावान् हैं। हम आश्वस्त तो हों कि इनसे पोय्सल राज्य की कोई हानि नहीं होगी।"

"हम सब तरह से वचनबद्ध होने के लिए प्रस्तुत हैं।"

"पहले भी जो-जो आये उन सबने यही कहा है। किन्तु उनमें कुछेक ठीक नहीं निकले। खैर, अभी यह सब छोड़िए। अब आप बिदा ले सकते हैं।" कहकर बिट्टिदेव मन्त्रणागार से चले गये।

सवारनायक अनन्तपाल अपने मुक़ाम की ओर चल दिये।

इसी बीच बम्मलदेवी और राजलदेवी दोनों हेग्गड़ती माचिकब्बे से मिलने उनके घर, वहीं राजमहल के अहाते में ही, गयी थीं।

हेग्गड़ती माचिकब्बे केवल इतना जानती थीं कि ये लोग उस सवारनायक की तरफ की हैं जो सन्निधान से मिलने आये हुए हैं। उन्हें किसी और बात को या मिलने के उद्देश्य आदि की कुछ भी जानकारी नहीं थी। हेग्गड़े के घर का दरवाज़ा तो अतिथियों के लिए सदा ही खुला रहता है न? आते ही उन्हें सन्तोष पूर्ण स्वागत मिला। आतिथ्य भी हुआ। बम्मलदेवी ने अभी सोचा न था कि बात शुरू कैसे करें। इस अतिथि-सत्कार ने उसे इस विषय में कुछ सोचने का समय दे दिया। साथ ही, माचिकब्बे की सरलता से भी परिचित करा दिया। प्रकारान्तर से पिरियरसी चन्दलदेवी के इन्हीं के यहाँ गुप्तवेष में रहने की बात से भी बम्मलदेवी परिचित थी। इसलिए पहले से इनके प्रति जो सद्भावना उसके मन में रही वह पुष्ट हो गयी।

बम्मलदेवी ने विनीत होकर कहा, "हम पोय्सल राज्य में आश्रय पाने के लिए आयी हैं। उसे प्राप्त करने में आपको हमारी मदद करनी होगी।"

"यह तो राजमहल से सम्बन्धित विषय···"

बीच ही में बम्मलदेवी ने कहा, "पोय्सल पट्टमहादेवी आपकी पुत्री हैं, इसलिए यदि आप चाहेंगी तो हमारा काम बन जाएगा।"

"आप लोग अन्यथा न समझें। जैसा आपने कहा पट्टमहादेवी मेरी पुत्री हैं अवश्य, परन्तु इसी को लेकर हम राजकीय विषयों में हस्तक्षेप नहीं करते, न ऐसा करना उचित ही है। वास्तव में सन्निधान स्वयं स्वतन्त्र रूप से कोई निर्णय नहीं लेते। राजमहल के सभी अधिकारियों से विचार-विनिमय कर, उनकी सम्मति लेकर ही वे कोई निर्णय किया करते हैं। ऐसी स्थिति में भला मैं तो क्या कर सकती हूँ?"

माचिकब्बे ने इस बार कुछ चकित होकर उनकी ओर देखा।

बम्मलदेवी ने बताया, "यह चालुक्य मंचिदण्डनाथ की भानजी राजलदेवी हैं।"

"ठीक, अब मालूम हो गया। आपके नायक अन्नतपाल ने सन्निधान के सामने सब निवेदन किया है। आपका काम आसान हो गया है।" मारसिंगय्या बोले।

"तो, सन्निधान ने हमारे प्रति उदारता दिखायी?" बम्मलदेवी ने पूछा।

"एक स्तर तक चर्चा हुई है, अभी किसी निर्णय तक नहीं पहुँचा जा सका है।"

"तो हम यह मानें कि हेग्गड़ेजी ने भी उस चर्चा में भाग लिया है?"

"सन्निधान के निर्णय को जब तक न जानेंगे तब तक इस संबन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।"

"पट्टमहादेवी को भी इन बातों की जानकारी हुई है?"

"शायद अभी तक नहीं।"

"तो उन्हें भी बताया जाएगा। यही न?"

"सभी खास बातें उन्हें मालूम होंगी ही।"

"हम एक बार उनसे मिल सकतीं तो शायद हम अधिक उपकृत हो सकती थीं।"

"क्यों? आपके नायक अनन्तपालजी सारी बातें नहीं कह सकेंगे?"

"पुरुषों के साथ पुरुषों के कहने में तथा स्त्रियों के स्त्रियों से कहने में अन्तर हो सकता है।"

"हम पुरुष जात इस बात को कैसे समझेंगे? अभी थोड़ी देर में पट्टमहादेवी यहीं पधारनेवाली हैं। परिचय करा दूंगा। आप को जो कहना हो उनसे एकान्त में ही कह सकती हैं।"

"आज अचानक पट्टमहादेवी क्यों आ रही हैं?" माचिकब्बे ने पूछा।

"आज हेग्गड़ती का जन्मदिवस है न? इसलिए मायके ही भोजन के लिए आएँगी—यों कहला भेजा। मुझे भी यह बात मालूम नहीं थी।"

"बच्चे भी आयेंगे?" माचिकब्बे ने प्रश्न किया।

"नहीं, पट्टमहादेवी अकेली ही आएँगी। साथ में शायद चट्टलदेवी भी आए।" मारसिंगय्या ने कहा।

"ख़ैर, अच्छा हुआ। बच्चे आते तो उन्हें मिठाई के बिना ही भोजन कराना पड़ता." माचिकब्बे ने कहा।

"क्यों, बनवायी नहीं?"

"नहीं।"

"नाती-नाते ही मीठा खाएँगे, पति नहीं खाएँगे—यही हेग्गड़ती का मतलब है?"

"अच्छा, जाने दीजिये, आप ऐसे ही तमाशा करते रहते हैं। मुझे स्मरण ही नहीं था कि आज मेरा जन्म दिन है।"

"अम्माजी ने पट्टमहादेवी होने पर भी इस बात को याद रखकर कहला भेजा है देखो। जल्दी कुछ मिठाई नहीं बन सकती? अभी राजमहल से आने में आधा प्रहर लगेगा। और फिर ये अतिथि भी तो हैं। आज तुम्हारे धन्य भाग हैं। तीन-तीन राजघराने के अतिथि होंगे तुम्हारे जन्मदिन के अवसर पर। इसीलिए इनका परिचय पाते ही मैंने कहा कि हमारा घर पुनीत हुआ। अच्छा, अब चलो, आप लोग मुझे क्षमा करें, इस लिबास में भोजन रुचता नहीं।" कुछ-कुछ प्रणाम करने के ढंग से झुककर मारसिंगय्या अन्दर चले गये। मानिकब्बे भी "क्षमा कीजिए अभी आयी" कहकर अन्दर चली गयी।

इन दोनों ने फिर एक बार एक दूसरे की ओर देखा।

कुछ देर तक यों ही बैठी रहीं। न हेग्गड़े ही आये, न हेग्गड़तीजी ही।

"लगता है कि नायकजी सन्निधान तक पहुँच गये हैं।" धीमे स्वर में राजल देवी ने कहा।

"कोई बात नहीं, पासा फेंका है, देखें क्या होता है। परन्तु हमारे बारे में क्यों कहना चाहिए था।"

"शायद कुछ संदिग्ध परिस्थिति में कहा होगा, क्योंकि यह निश्चय हुआ था न कि मौक़ा आने पर ही कहना होगा।"

"उन्हीं से पूछकर जान लेंगे। अब यह सब कुछ लोगों को तो मालूम हो ही गया है। हम जहाँ ठहरे हैं वहाँ यदि हमारा पता लग गया तो कुछ कठिनाई आ सकती है, इसलिए पट्टमहादेवी से विनती करेंगे कि इस बात का प्रचार न हो।"

"अब यहाँ भोजन के लिए फँस गयीं न?"

"कोई गलती नहीं हुई। प्राज्ञ लोगों ने कहा है कि अभ्यागत ईश्वर समान होता है।" कहते हुए मारसिंगय्या भस्म धारण किये तथा शुभ्र धुली धोती पहने उपरना ओढ़े आये।

चकित होकर दोनों ने उनकी ओर देखा।

"क्या बात है?" मारसिंगय्या ने प्रश्न किया।

"सन्निधान जैन धर्मावलम्बी हैं। लेकिन आपके माथे पर भस्म और गले में रुद्राक्ष!"

"इसमें आश्चर्य ही क्या है। मैं शिवभक्त, शैव हूँ।"

"तो जैनियों के साथ बेटी का···?"

मारसिंगय्या बीच ही में हँस उठे। बोले, "हमारी हेग्गड़ती भी जैन हैं। हम शैव। पट्टमहादेवी भी अपनी माँ की तरह जिन-भक्त हैं।"

"ऐसा भी हो सकता है, यह हमें पता न था!"

"मानव, मानव बनकर जीने का प्रयत्न करें तो ऐसा हो सकता है।"

"आप शैव हैं। हाँ, सन्निधान के जिन-भक्त होने के कारण पट्टमहादेवी जी को कोई परेशानी नहीं हुई होगी।"

"यदि पट्टमहादेवी शैव ही होतीं तब भी वे इसी तरह रहतीं। अगर आपके परिवार से कन्या लाने की बात होती तो भी वे इनकार नहीं करते। आप शैव हैं न?"

"हाँ। फिर भी पति एक और पत्नी दूसरे देव पर विश्वास रखकर पूजा-अर्चा करने लगें—यह संभव कैसे हो सकता है? यह तो हमारी समझ से परे की बात है।"

"इस विषय पर आप पट्टमहादेवी से चर्चा कीजिएगा। वे आपको अच्छी तरह समझा सकती हैं।"

इतने में बाहर से पालकी के उतरने की आवाज़ सुन पड़ी। "वह देखिये, वे आ गयीं।" कहते हुए मारसिंगय्या द्वार की तरफ बढ़े।

दोनों उठ खड़ी हुईं। माचिकब्बे भी आँचल से हाथ पोंछती हुई वहीं आ गयीं।

पट्टमहादेवी शान्तलदेवी अन्दर आयीं। उनके पीछे चट्टलदेवी हाथ में परात लिए वहाँ आयी। अन्दर आते ही माता-पिता के चरण छूकर पट्टमहादेवी ने प्रणाम किया और माँ से कहा, "माँ बैठिये। उन्हें एक गलीचे पर बैठाया और फिर चट्टला से कहा, "परात इधर लाओ।"

चट्टला ने परात को वहाँ रखकर उसपर ढके रेशम के वस्त्र को उघाड़ा। परात से सोने का कुंकुमदान लेकर, माँ को सिंदूर और मंगलद्रव्य देकर, पीताम्बर और कंचुक माँ के आँचल में भरकर पुनः प्रणाम किया। कहा, "माँ, आशीर्वाद दें कि आपकी यह बेटी मायके और ससुराल की लाज रख सके, दोनों घरों की कीर्ति को सँजोये रख सके। मैं जहाँ रहूँ वहाँ शान्ति बिराजे ऐसा बरतती रहूँ।"

माचिकब्बे ने बेटी के सिर पर दायाँ हाथ रखा और फिर पीठ सहलाकर कहा "उठो अम्माजी।"

शान्तलदेवी उठ खड़ी हुईं। अपने पिता को देखने के इरादे से बगल की ओर मुड़ीं।

वहाँ दो अपरिचित स्त्रियाँ दिखायी पड़ीं। दोनों ने देखते ही हाथ जोड़कर प्रणाम किया। शान्तलदेवी ने भी हाथ जोड़कर प्रत्यभिवादन किया और पूछा,

"पिताजी ! तो ये सवारनायक अनन्तपाल के साथ जो आयीं हैं वे ही···"

"हाँ, पट्टमहादेवी से मिलने की इच्छा से आयी हैं और इसके लिए मदद करने की माँग लेकर तुम्हारी माँ के पास आयी हैं।" मारसिगय्या बोले।

"मैं ख़ुद ही आ गयी, अब माँ का काम आसान हो गया न ?"

"मेरा काम आसान हो गया कहो। तुम्हारी माँ ने यह काम मुझे सौंप दिया था।"

"छोड़ो, अच्छा हुआ। सन्निधान की आज्ञा के अनुसार, इन्हें राजमहल में बुलवाकर बातचीत करनी पड़ती। अनायास यहीं मिलने से दोनों का कार्य बन गया। अच्छा माँ, यह बताया क्यों नहीं कि आज आपकी वर्षगाँठ है ?"

"ढलती उम्र में यह वर्षगाँठ ? वास्तव में उस तरफ़ मेरा ध्यान ही नहीं गया।"

"कोंगाल्व, चेर देश की तरफ से युद्धकी सूचना के आने से अभी एक पखवारे से वही काम चल पड़ा है। अन्य किसी ओर ध्यान ही नहीं रहा। बिट्टिगा की पीठ धोकर असीसने के लिए उसकी बड़ी दीदी शान्ति आयी थी।[1] इससे आपके जन्म दिन की याद आ गयी। अभी परसों दण्डनायिनी एचियक्का के साथ कुमार बल्लाल और हरियला दोरसमुद्र गये हैं। अभी लौटे नहीं। इससे आज नागपंचमी है इसका भी ध्यान न रहा। मुझे तो यह मालूम ही नहीं था। मामाजी यहाँ होते, या यहाँ पिरियरसीजी होतीं तो नागपंचमी की याद रहती। चलो, देर से सही, याद तो आ गई—यही क्या कम भाग्य की बात है।" शान्तलदेवी ने कहा।

"अम्माजी, कुमार बल्लाल और हरियला तो अभी छोटे हैं। उन बच्चों को ही भेज दिया और तुम साथ न गयीं ?" माचिकब्बे ने पूछा।

"उन बच्चों ने जिद् पकड़ ली, गाड़ी से उतरते ही नहीं थे।"

"बेचारे ! वहाँ तुम्हारी याद कर हठ करने लगे तो एचियक्का की क्या दशा होगी ?"

"कितनी दूर है माँ ? ऐसा हो तो लाकर छोड़ जाएँ। फिर इनके साथ रेविमय्या भी तो है।"

"तब तो ठीक है। छोटे अप्पाजी और विनय को साथ नहीं लायीं ?"

"बच्चे सो रहे थे। और फिर जब से यह युद्ध की बात चली तब से बच्चों के साथ लगाव कुछ कम ही करती आयी हूँ।

---

1. कर्नाटक में यह रीति परम्परा से चली आयी है कि नागपंचमी के दिन बहिनें भाईयों की शुभ कामना करती हुई दूध से उनकी पीठ धोती हैं और छोटों को असीसती और बड़ों को प्रणाम कर आशीष लेती हैं। यह सबकी सुख-शान्ति के लिए मंगलकामना का एक संकेत है।

"मतलब ?"

"यदि युद्ध छिड़ा तो अबकी बार मैंने सन्निधान के साथ युद्ध में जाने का निश्चय किया है।"

"क्या कहा ?" आश्चर्य से चकित हो माचिकव्वे ने पूछा ।

"सब बातें बाद में विस्तार से बताएँगे। अभी पहले भोजन का काम कर लें। अपनी बातों में हम अपने इन अतिथियों को भूल बैठे हैं।" कहकर मारसिंगय्या ने बात का रुख ही बदल दिया ।

इतने में दासव्वे ने आकर बताया, "भोजन तैयार है।"

माचिकव्वे ने कहा, "दासव्वे, इन्हें स्नानागार दिखाओ।"

दोनों अतिथि दासव्वे के साथ स्नानागार गयीं।

इसके बाद हेग्गड़े दम्पती और शान्तलदेवी रसोईगृह के सामनेवाले भोजनालय में आये । चट्टलदेवी परात लेकर अन्दर चली गयी।

चलते-चलते माचिकव्वे ने कहा, "अम्माजी, आजकल मालिक कुछ भी नहीं बताते। मुझे तो इस युद्ध के बारे में या बच्चों के दोरसमुद्र जाने के विषय में कुछ भी मालूम नहीं।"

"अप्पाजी और हरियला के दोरसमुद्र जाने की बात तो उनको भी मालूम नहीं। वास्तव में पिताजी अभी एक पखवारे से सौध या अन्तःपुर में आये ही नहीं। मेरी उनसे भेंट केवल मन्त्रणागार में, राजनीतिक विषयों के बारे में मन्त्रणा करते वक़्त होती है।"

"मुझे यह सब क्या मालूम ? उनकी व्यस्तता, अनियमित भोजन, आराम कम, इतना मात्र मुझे मालूम है। पूछने पर यही एक छोटा उत्तर—'बहुत कार्य है'।"

"उनकी रीति आप जानती हैं न ? जिसे कहना है उसे छिपाएँगे नहीं। जो नहीं कहना है उस सम्बन्ध में मुँह खोलेंगे नहीं।"

"सो तो ठीक है।"

भोजनालय में उनके पहुँचते-पहुँचते दासव्वे बम्मलदेवी और राजलदेवी को वहाँ ले आयी।

"मैं हाथ-पैर धोकर भगवान् को प्रणाम कर आती हूँ।" कहकर शान्तलदेवी वहाँ से चली गयीं। दासव्वे रसोईगृह में चली गयी।

बम्मलदेवी और राजलदेवी—दोनों को बिठाकर माचिकव्वे बेटी की प्रतीक्षा में खड़ी रहीं। सामने की कतार में एक केले का पत्ता लगा था, वहाँ हेग्गड़ेजी जा बैठे। शान्तलदेवी जल्दी ही लौट आयीं। इन अप्रत्याशित अतिथियों के आगमन से जन्म-दिन के इस शुभ अवसर पर सबको एक विशेष ही संतृप्ति हुई।

भोजन के बाद हेग्गड़े आराम करने के बहाने अपने कमरे में चले गये। माचिकव्वे पान-पट्टी लेकर चली गयीं। बाहर के आँगन में बिछे गलीचे पर

पट्टमहादेवी, बम्मलदेवी और राजलदेवी आकर बैठ गयीं।

चट्टला पान-पट्टी लेकर आयी और इनके सामने रख दिया। उस में तैयार पान थे।"

"लीजिये।" कहकर शान्तलदेवी ने ख़ुद एक पान लिया और मुँह में डालते हुए सामने खड़ी चट्टला से कहा, "तुम भी पहले भोजन कर लो और पालकी वालों को भी करा दो। मुझे राजमहल जल्दी लौटना है।"

चट्टला ने कहा, "मेरा भोजन हो गया, पालकी के कहार ले रहे हैं।"

बम्मलदेवी और राजलदेवी ने भी पान-वीड़ा लिया।

"आप के सवारनायक ने जो खुले दिल से सारी बातें सुनायी थीं, उन्हें सन्निधान ने मुझे बता दिया है। दो-तीन बातों पर हमें विशेष विचार करना है। पहली बात यह कि आप लोगों की पोय्सल राष्ट्र के प्रति निष्ठा स्थायी रहेगी या नहीं। दूसरी बात यह कि विगत में हमारे प्रभु के सिंहासनारोहण के अपने विषय को उन्हें न बताने का जो निश्चय किया गया था, इसी बात से चालुक्य चक्रवर्ती हम पर क्रुद्ध हुए। आपको आश्रय देने पर तो पता नहीं आगे चलकर उनके मन में क्या-क्या विचार पैदा होंगे और उनकी चाल कैसी हो सकती है। आपके नायक के कहे अनुसार, ऐसा लगता है कि वे अभी हमपर हमला करने की तैयारी में हैं। ऐसी हालत में अब हम यह काम करें तो उनसे सदा के लिए वैर मोल लेना होगा। वर्तमान स्थिति में हमें चेंगाल्वों और चेरों का सामना करना पड़ रहा है जिसके लिए तैयारियाँ ज़ारी हैं। सभी शक्तियों को केन्द्रित किया जा रहा है। इसी पृष्ठभूमि को लेकर हमें विचार करना होगा। वास्तव में, हम अभी तक जितनी अश्वसेना की आवश्यकता है उतनी जुटा नहीं पाये। आप जिस मौक़े पर आयीं वह उतना प्रशस्त नहीं। शान्तिपूर्वक विचार करने के लिए भी तो अवकाश नहीं है।" शान्तलदेवी ने कहा।

"पट्टमहादेवीजी, अविनय क्षमा हो; सन्निहित आवश्यकता की पूर्ति हमारे दण्डनाथ के अधीन रहनेवाली विश्वस्त अश्वसेना से की जा सकती है। हमारे विचारों से जो सहमत नहीं, ऐसे सैनिकों को पृथक् करके अन्यत्र भेज दिया गया है। हमें आश्रय दें तो हमारी शक्ति पोय्सलों की ही शक्ति बनेगी। इससे कल्याणी के चालुक्यों के तात्कालिक हमले का विचार भी स्थगित हो जायेगा, क्योंकि अपनी योजना की सफलता के लिए उन्हें हमारे दण्डनाथ से ही नेतृत्व की अपेक्षा होगी। जब ऐसा नहीं होगा तो आप स्वयं परिस्थिति को समझ सकती हैं। अब रही दुश्मनी की बात। बिना कारण द्वेष करनेवालों के विद्वेष का कोई मूल्य पोय्सल नहीं देंगे—यह पहले से ही जानी हुई बात है। आपके यहाँ आश्रय पाने के लिए हम आयीं—इसके लिए अन्य कोई कारण नहीं, सिवाय इसके कि उनके अन्यायों में हमारा सहयोग न रहे। स्नेह और निष्ठा को मान्यता देनेवाले पोय्सल

राज्य में हमारा जीवन सार्थक होगा—यह हमारा विश्वास है। अब रही यह बात कि हम अपने इस विश्वास का प्रदर्शन कैसे करें। सन्निधान के चरणों में अपना ख़ून समर्पित कर सकते हैं कि हम से द्रोह-चिन्तन न होगा।" बम्मलदेवी ने कहा।

"आपकी बातों में एक हार्दिक आवेग है। फिर भी निष्ठा के विषय में हमारा मन आश्वस्त हो—यह ज़रूरी है। फिर इन सभी बातों पर सन्निधान प्रधानजी, मन्त्रिगण और दण्डनाथ आदि से विचार-विनिमय कर निर्णय करेंगे। भावोद्वेग से आविष्ट होकर कोई निर्णय कर लिया जाय वह किसी के लिए अच्छा नहीं। अच्छा, अभी मुझे शीघ्र ही राजमहल पहुँचना है।" कहती हुई शान्तलदेवी उठ खड़ी हुई।

वे दोनों भी उठ खड़ी हुईं। बम्मलदेवी ने कहा, "जैसे हम अभी अज्ञात हैं, यह स्थिति ऐसी ही रहे, यही अच्छा है।"

"इस बारे में आपको चिन्तित होने की ज़रूरत नहीं। चट्टला, पालकी को तैयार रखने के लिए कह दो, मैं अभी आयी।" शान्तलदेवी बोलीं।

चट्टला उस कार्य के लिए चली गयी।

"हम इस आश्वासन के लिए कृतज्ञ हैं। फिर भी नौकर-चाकरों का···"

"आप लोगों को हमारी चट्टला के विषय में कुछ भी मालूम नहीं। आप चिन्ता न करें।" कहकर, "अप्पाजी, माँ, मुझे विदा दें।" कुछ ज़ोर से शान्तला बोलीं।

अन्दर से माँ-बाप आ गये। मंगलद्रव्य और फल-पान देकर शान्तलदेवी को विदा किया।

अतिथि भी हेग्गड़े दम्पती से आज्ञा लेकर फल-पान ले विदा होकर अपने मुक़ाम की ओर चल दीं।

सन्निधान आदि ने सभी बातों पर विचार कर यह निर्णय लिया: "आपत्ति न हो तो सवारनायक अनन्तपाल इन दोनों स्त्रियों को राजमहल के ही आश्रय में छोड़कर लौट जावें और फिर अपने दण्डनाथ के साथ आवें। उनकी बलिपुर की यात्रा का परिणाम उन्हीं से जानकर, अन्तिम रूप से निर्णय लेने में सुविधा होगी।"

यह बात अनन्तपाल को बता दी गयी। अनन्तपाल ने अपने साथियों से चर्चा की और फिर वे अपनी स्वीकारोक्ति के साथ बम्मलदेवी और राजलदेवी को

राजमहल में छोड़कर लौट गया।

मंचि दण्डनाथ का भाग्य अच्छा था। बलिपुर पहुँचते-पहुँचते उन्हें यह समाचार मिला—वहाँ के चालुक्य प्रतिनिधि कदम्ब तैलप को चालुक्य चक्रवर्ती की तरफ से कुछ दूसरे ही ढंग का आदेश मिला है कि फिलहाल पोय्सलों पर हमले के विचार को स्थगित रखा जाय। यह भी ज्ञात हुआ कि मालवों की तरफ से युद्ध की संभावना की सूचना मिलने के कारण वहाँ की सेना कल्याणी की ओर गयी है ; अतः वे अभी जैसे हैं वैसे ही वहाँ की निगरानी करते रहें यही पर्याप्त है। इस समाचार के कारण मंचि दण्डनाथ वहीं से कुछ मानसिक प्रसन्नता के साथ लौटे थे। कुछ बहाना करके वे उन से छूटना जो चाहते थे लेकिन अब उसकी जरूरत नहीं रही थी।

सवारनायक अनन्तपाल उनके लौटने की बाट जोह रहा था। उनके पहुँचते ही वेलापुरी की सारी बातें बतायी गयीं। सवारनायक और दोनों देवियों ने जो काम किया था उससे उन्हें तृप्ति भी मिली। अपनी सेना की एक छोटी टुकड़ी को वहाँ छोड़कर, शेष सेना को साथ लेकर वे वेलापुरी की ओर चल पड़े। जाते-जाते मंचि दण्डनाथ ने कहा, "सेना पीछे-पीछे धीरे से आवे, मैं आगे जाऊँगा और पोय्सल महाराज से मिलकर अपनी सेना पोय्सल राज में बेरोकटोक आगे बढ़ सके इसके लिए अनुमति लेकर सन्देश भेज दूँगा।"

तदनुसार वे कहीं बीच में ठहर कर, दो दिन के भीतर वेलापुरी पहुँच गये और नियोजित रीति से महाराज से मिले। सवारनायक अनन्तपाल को वेलापुरी छोड़े एक पखवारे से अधिक समय हो गया था। इस अर्से में बम्मलदेवी और शान्तलदेवी बीच युद्धक्षेत्र के विषय में कुछ बौद्धिक चर्चा भी हो चुकी थी। शान्तलदेवी को बम्मलदेवी के अश्वपरीक्षण एवं अश्वारोहण का परिचय भी मिल गया था। उधर चट्टलदेवी ने भी महारानी से आज्ञप्त हो इन दोनों स्त्रियों के बारे में अन्य सारी जानकारी जुटाना आरम्भ कर दिया था। इन सबके परिणाम स्वरूप, कहा जा सकता है कि मंचि दण्डनाथ के संधान कार्य के लिए योग्य वातावरण तैयार हो गया था।

इतने में पुनीसमय्या के नेतृत्व में कोंगाल्वों की तरफ से सम्भावित हमले का सामना करने हेतु नागिदेवण्णा की मदद के लिए पर्याप्त प्रमाण में सेना भेज दी गयी थी। महाराज ने खुद जाने के विषय में अभी कोई निश्चय नहीं किया था। कारण था मंचि दण्डनाथ के आने की प्रतीक्षा। वहाँ उदयादित्य राजप्रतिनिधि की हैसियत से कार्य-संचालक तो थे ही।

मंचि दण्डनाथ के आते ही महाराज बिट्टिदेव, पट्टमहादेवी शान्तलदेवी और बम्मलदेवी—इन तीनों ने उनसे मिलकर विचार-विमर्श किया। सब से पहले यह सवाल उठ खड़ा हुआ कि पोय्सलों पर के हमले को स्थगित करने का कारण क्या

हो सकता है ? मंचि दण्डनाथ को इसका कोई कारण नहीं समझ में आ रहा था। कदम्ब तैलप से भी उसके बारे में कुछ विशेष बात मालूम नहीं पड़ी। इस सिल-सिले में विचार करते हुए शान्तलदेवी को एक बात समझ में आयी तो उन्होंने उसे महाराज बिट्टिदेव के समक्ष रखा।

बिट्टिदेव ने उनकी ओर देखा। बोले, "तो महारानी की यह राय है कि कवि नागचन्द्रजी ने समरसता लाने का प्रयत्न किया है।"

"वे तो पोय्सल राज्य से जाते वक़्त इसी उद्देश्य को लेकर गये थे। इसलिए यह सोचना गलत न होगा कि वे कोशिश कर रहे हैं।" शान्तलदेवी ने कहा।

बिट्टिदेव हँस पड़े।

"क्यों, सन्निधान को यह बात जँची नहीं ?"

"पट्टमहादेवी के विचार पट्टमहादेवी की मानसिक भावनाओं के प्रतीक हैं। समरसता लाने की उनकी उत्कट इच्छा है। इस सामरस्य के सध जाने पर चालुक्य पिरियरसी चन्दलदेवी ने हमारे विवाह के समय जिस बात की सूचना दी थी वह भी सम्पन्न हो गयी—प्रेम का यह आकर्षण ही तो है। इसी दिशा में मन विचार करने लगता है।" बिट्टिदेव बोले।

बिट्टिदेव की यह बात शान्तलदेवी को ठीक नहीं लगी। उनका चेहरा कुछ मुरझा-सा गया। तुरन्त उन्होंने कुछ नहीं कहा।

बिट्टिदेव को भी एक तरह से कुछ उचित-सा नहीं लग रहा था। शान्तल-देवी के मुख के भाव इस तरह क्यों हुए—यह बात उनकी समझ में नहीं आयी। वे भी कुछ देर सोचते बैठे रहे। मौन छाया रहा।

बहुत ही मुख्य प्रश्न पर विचार करते वक़्त यों अचानक इस मौन से मंचि दण्डनाथ कुछ घबड़ा गये। राजनैतिक परिस्थितियाँ कब किस तरफ करवट ले लें कौन जाने ! इस समय इस मौन को तोड़ने की इच्छा से उसने कहा, "तो क्या चक्रवर्ती के मन में सन्निधान के विवाह के समय पहले जैसा मैत्री भाव आ गया था ? क्या उसके बाद ही किसी कारण से उनमें असन्तोष की भावना पैदा हुई ?" उनका प्रश्न था।

"नहीं, प्रभु के सिंहासनारोहण समारम्भ को सम्पन्न करने के लिए उनसे अनुमति नहीं ली गयी—इससे उनको असमाधान हो गया था। वही बढ़ते-बढ़ते इस स्तर तक आ पहुँचा है। जब कभी उस पुराने स्नेह की याद हो आती है। कितना स्नेह था ! काश···! वह वैसा ही बना रहा होता ! आदि आदि विचार मन में उठ आते हैं—सन्निधान के कहने का यही तात्पर्य है। उह, अब वह सब पुराना किस्सा हो गया। अब सोचने से क्या फायदा ? इसीलिए सन्निधान मेरी बात पर हँस पड़े।" शान्तलदेवी ने कहा।

"हमेशा अच्छाई ही की इच्छा रखनेवाली हमारी पट्टमहादेवी जैसा विशाल

मनोभाव विक्रमादित्य चक्रवर्ती में नहीं है यह स्पष्ट है; ऐसी हालत में एक कवि की बात को मान्यता मिलेगी ऐसा मानना व्यर्थ है। हमें लगा कि जो साधा नहीं जा सकता उसी को पट्टमहादेवी चाह रही हैं; इसे स्मित कहने के बदले, चालुक्य चक्रवर्ती के बारे में एक व्यंग्य ही समझें—यह मैं स्वयं कहता हूँ। यों कहते हुए हमें संकोच भी नहीं होता। अच्छा उस बात को जाने दीजिए। उससे अब हमारा कोई प्रयोजन नहीं। ऐसा उन्होंने क्यों किया है—इसकी ख़बर हमारे गुप्तचरों से मालूम ही हो जाएगी। उनसे ख़बर पाने से भी पहले हममें जानने की इच्छा उत्पन्न हुई—इस वजह से यह सवाल उठा। अब समझ लीजिए कि आप हममें मिल गये। कैसे, क्या और किधर आदि बातों पर बाद में विचार हो जाएगा। वह तो रहस्य बनकर रह नहीं सकता। अन्यथा यही होता कि हमने चालुक्य चक्रवर्ती के साथ के विद्वेष को स्थाई बना रखा है। है न?"

"सन्निधान हमें उकसाकर उधर से इधर ले लाये। यही न?" बम्मलदेवी ने कहा।

"देवीजी घोड़ी की परीक्षा में निष्णात हो सकती हैं, परन्तु मनुष्यों की रीत शायद उतनी अच्छी तरह मालूम न पड़ी होगी।" बिट्टिदेव बोले।

"मुझ से कोई ऐसा अविवेक बन पड़ा जिससे सन्निधान की ऐसी राय हुई?" कुछ कुतूहल से बम्मलदेवी ने पूछा।

"न, न, हमने एक सामान्य बात कही। पटभद्रों के अधिकृत हिताभिलाषी जनों की बात समझना कठिन है। इसी विचार से हमने ऐसा कहा। परमार भोज ने चालुक्यों पर हमला किया था, इसका कारण मालूम है आपको?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"वह शत्रुता तो मुंज के समय से ही बढ़ती आयी है।"

"लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए यही कहा जाता है। वास्तव में उसकी जड़ में कारण यह है कि चन्दलदेवी ने विक्रमादित्य से विवाह किया।"

"वहाँ असूया हो सकती है। लेकिन यहाँ तो ऐसा कुछ नहीं है न? चक्रवर्ती ने जिसे चाहा, ऐसी किसी कन्या ने सन्निधान के गले में माला पहना दी हो, ऐसा तो है नहीं।" बातचीत के उद्वेग से बम्मलदेवी ने संकोच तोड़कर ऐसा कुछ कह दिया और तुरन्त होंठ काटने लगी। न चाहते हुए भी उसकी दृष्टि शान्तला की ओर चली गयी।

केवल बम्मलदेवी की ही नहीं, मंचि दण्डनाथ और बिट्टिदेव की भी दृष्टि शान्तलदेवी की ओर चली गयी थी।

बम्मलदेवी ने जब वहाँ से ध्यान हटाकर सबकी ओर देखा तब उसे मालूम हुआ कि सबकी दृष्टि उस ओर लगी है। यह सब क्षणभर में हो गया।

मंचि दण्डनाथ ने बात बदलने के विचार से कहा, "अभी तो हम युद्ध के

बारे में चर्चा करने बैठे हैं। विवाह का विषय नहीं है।"

"दण्डनाथजी को तो सदा ही युद्ध की बात पहले। परन्तु, पल्लवकुमारी के हाथ माला लिये खोज कर रहे हैं कि उसे किस गले में पहनायें। यह उनकी आयु का परिणाम है। अंतरंग के भाव किसी समय इस तरह निकल ही पड़ते हैं। है न बम्मलदेवीजी ?" कहते हुए शान्तलदेवी ने उसकी ओर देखा।

उसने लज्जा के कारण आँखें नीचे झुका लीं। मौन रहने पर भी उसके मन का भाव चेहरे ने व्यक्त कर दिया। बिट्टिदेव ने भी उसकी ओर देखा।

पल्लवकुमारी का चेहरा रक्तिमा युक्त मन्दहास से विराज रहा था। शान्तलदेवी की ओर वह देखना चाहती थी। इस प्रयत्न में उनकी दृष्टि शान्तला के बदले बिट्टिदेव की ओर चली गयी। दोनों की आँखें जा मिलीं।

"अगर यह कार्य सम्पन्न हो जाय तो मैं अपने को धन्य मानूँगा, महारानीजी। इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है। बम्मलदेवी और राजलदेवी मेरी औरस पुत्रियाँ नहीं, अपने बच्चों की तरह मैंने उन्हें पाला-पोसा है। इनका विवाह हो जाय तो मैं धन्य हो जाऊँगा।" मंचि दण्डनाथ ने कहा।

"हमारी पट्टमहादेवी का आश्रय लीजिये। आपका काम आसानी से बन जाएगा।" बिट्टिदेव बोले।

"जब हम सबने एक साथ पोय्सल राज्य की सेवा में अपनी इच्छा से अपने को समर्पित करने के उद्देश्य से निर्णय किया, तभी से हम सन्निधान के आज्ञानुवर्ती हो गये न ! सन्निधान कहकर सम्बोधित करने में पट्टमहादेवी भी इसमें सम्मिलित हैं—यही हमारी भावना है। अभी इससे ज़्यादा प्रमुख हमारा जो उद्दिष्ट विषय है, जिसके लिए हम आये हैं सन्निधान के सम्मुख है।" मचिदण्डनाथ बोले।

"इस विषय में हम एक निर्णय पर पहुँचे हैं। हमारा विश्वास है कि इसपर हमारी पट्टमहादेवी भी सहमत हैं। इस बात को हम मन्त्रिमण्डल में रखकर, कल अन्तिम निर्णय से सूचित करेंगे। यदि उनमें से कोई आपसे विचार-विमर्श करना चाहेंगे तो आपको कहला भेजेंगे।" बिट्टिदेवने कहा।

मंचि दण्डनाथ प्रणाम कर चले गये।

बाद में बम्मलदेवी भी उठकर महाराज और पट्टमहादेवी को प्रणाम कर अन्तःपुरस्थ राजलदेवी के पास जाने को उद्यत हुई। उसे लगा कि देखें महाराज की दृष्टि कहाँ है, परन्तु साहस नहीं हुआ। पर हाँ, उसे एक तरह का हर्ष हुआ। वह पुलकित हो उठी थी। इस हर्ष-पुलक के साथ ही वह वहाँ से ज़ल्दी-ज़ल्दी चली गयी।

रह गये राज-दम्पती मात्र।

"सन्निधान का क्या निर्णय है ?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"निर्णय को रहने दें। अभी हमने अपने विवाह के समय चालुक्य पिरियरसी चन्दलदेवी की कही गयी बात का स्मरण किया तो पट्टमहादेवी को अजीब नहीं हुआ?"

"राजाओं का एक और शत्रु होता है उनका भुलक्कड़पन। विवाहोत्सव पर वहाँ जो आयी थीं, वह चालुक्य पिरियरसी नहीं, हेग्गड़े मारसिंगय्याजी के यहाँ ठहरीं श्रीदेवी थीं।"

"अरे हाँ, उस तरफ ध्यान ही नहीं गया! अब याद आ रहा है कि तब उन्होंने कहा था कि उनका आना चक्रवर्ती को भी मालूम नहीं।"

"समझ लीजिए, अगर हमने मंचि दण्डनाथ को आश्रय नहीं दिया, तो यह बात हमें पेचीदगी में डाल सकती है। सन्निधान को यह सोचना होगा न?"

"क्या होगा, वे अपने देश को लौट जाएंगे।"

"उन लोगों ने जो क़दम उठाया है, वह चालुक्य चक्रवर्ती को मालूम नहीं अभी तक। अगर हमने आश्रय नहीं दिया तो वे अपनी पहली जैसी स्थिति में आ सकते हैं। तब कभी प्रसंगवशात् पिरियरसीजी के हमारे विवाह में आने की बात मंचि दण्डनाथ के मुंह से निकल गयी तो पिरियरसीजी की क्या दशा होगी इस-पर सन्निधान ने सोचा है?"

"न, न, हमें यह बात नहीं कहनी थी। अब आगे भूलकर भी इस बात को मुंह से नहीं निकालूंगा। परन्तु अब तो यह बात उनके कान में पड़ ही गयी, इस-लिए उन्हें आश्रय देना जरूरी हो गया है।"

"तो सन्निधान उन्हें आश्रय देना नहीं चाहते थे?"

"नहीं चाहते, यह बात नहीं; हमने अभी निर्णय नहीं किया है।"

"तो सन्निधान को उनसे यों कहने की क्या वजह?"

"हमने यह अभी तो नहीं बताया कि क्या निर्णय किया। अब बतावें कि महादेवी की क्या राय है?"

"किसी तरह की जबरदस्ती में पड़कर नहीं, बल्कि मन में इस बात का एक बार निश्चय हो जाए कि इस काम के करने से राष्ट्र-हित सधेगा और ऐसा करने पर किसी तरह की अड़चन या रोक-रुकावट आयेगी तो उसका सामना करेंगे, उनको आश्रय दे सकते हैं। ठीक है न?"

"उनके बारे में पट्टमहादेवी का स्पष्ट मत क्या है?"

"इतना तो लगता है कि वे बात के पक्के हैं।"

"कौन?"

"दण्डनाथ और बम्मलदेवी। उनके बारे में सन्निधान की क्या राय है?"

"लगा कि दण्डनाथ जी खुले दिल के हैं।"

"बम्मलदेवी?"

"स्त्रियों के मन में स्त्री ही झाँक सकती हैं।"

"तो स्त्री को पसन्द करते वक़्त भी पुरुष को स्त्री की मदद ज़रूरी है?"

"किस प्रश्न का कौन-सा उत्तर!"

"ऐसा प्रश्न करने पर भी मन की बात खुली नहीं। स्त्री को स्त्री के देखने की दृष्टि अलग होती है। पुरुष की स्त्री को देखने की एक अलग ही दृष्टि होती है। ऐसे ही, स्त्री की पुरुष को देखने की भी एक अलग दृष्टि होती है।"

"अभी हम स्त्री की परख स्त्री को हो सकती है—यही दृष्टि व्यवहार्य मानते हैं। पट्टमहादेवी से परामर्श के बाद ही उनके बारे में हम अपनी राय बना सकेंगे कि वे किस तरह की हैं।"

"बम्मलदेवी वास्तव में दुखी हैं। वे हमें किसी तरह का धोखा नहीं देना चाहतीं। उपकार करने की ही अभिलाषा रखती हैं। आमूलाग्र बात को समझे बिना और पूर्णरूप से विश्वस्त हुए बिना किसी भी काम में यों ही प्रवृत हो जाना उनका स्वभाव नहीं है। बहुत आशावादी हैं वे। इसलिए वे मंचिदण्डनाथजी पर भरोसा रखकर उनके प्रति पितातुल्य भक्ति रखती हैं। अश्वपरीक्षा में निष्णात होने के साथ-साथ वे सहज आत्मीयता बढ़ानेवाला आकर्षक व्यक्तित्व रखती हैं।"

"मतलब यह कि पट्टमहादेवी की आत्मीया बन गयी हैं। यही न?"

"उन्हें अब प्रथमत: पोय्सल राष्ट्र की आत्मीयता चाहिए।"

"तो उनकी सभी मनोकामनाओं की सिद्धि के लिए आश्रय पहला क़दम है?"

"उनके पोय्सलों की उदारता के विषय में स्पष्ट विचार हैं। निष्ठा के साथ रहने पर सभी वांच्छाएँ पूरी हो सकती हैं—वे इस बात को समझती हैं, इसलिए उन्हें आश्रय आवश्यक है।"

"वे आश्रय की पात्र हैं?"

"यह मेरी अकेली की राय पर निर्भर नहीं है न?"

"कल मन्त्रिपरिषद् पट्टमहादेवी के वचन को स्वीकृति दे दे तो?"

"आश्रय देने के विचार से ही उन्हें राजमहल में छोड़ जाने की सलाह मैंने सवारनायक अनन्तपाल को दी थी।"

"ठीक है, हम भी यही चाहते थे।"

"यहाँ, इससे भी कुछ अधिक है।"

"मतलब?"

"इस सम्बन्ध में अभी नहीं, जब समय आएगा तब बताऊँगी। अब आज्ञा दें। बिट्टिगा की पढ़ाई समाप्त कर आने का समय हो गया है। बच्चों के उपाहार की व्यवस्था करनी है।"

"क्यों? नौकर नहीं हैं?"

"हैं क्यों नहीं? पर वे माँ तो नहीं बन सकते।" कहकर उत्तर की प्रतीक्षा

किये विना शान्तलदेवी चल पड़ीं।

बिट्टिदेव के मन में उस दिन सम्भावित कथित-अकथित सभी विचार उठ खड़े हुए। कई विचार जैसे मन में उठे वैसे ही विलीन हो गये। क्या पट्टमहादेवी का कथन सच है? उस दृष्टि से हम आकर्षित हुए? कैसी विडम्बना है! विचार विमर्श करते समय कभी दृष्टि उधर गयी तो उसका अन्यथा अर्थ लगाना ठीक है? पता नहीं क्यों, आज का यह चिन्तन ही कुछ-कुछ ठीक नहीं रहा। एक सहजता नहीं थी उसमें। सबकुछ अस्त-व्यस्त उड़ता-उड़ता-सा। देवी के उपस्थित रहते ऐसा क्यों हुआ? न, अकेले सोचते बैठूं तो दिमाग़ ख़राब हो जाएगा।

उन्होंने घण्टी वजायी। रेविमय्या परदा हटाकर अन्दर आया। "रेविमय्या! प्राधनजी, मन्त्रिगण और दण्डनाथ—इनसे कहो, वे मन्त्रणागृह में आवें। हम भी बच्चों के साथ उपाहार लेकर वहाँ पहुँच रहे हैं। बिट्टिगा आ गया?"

"हाँ।" कहकर रेविमय्या आदेश का पालन करने चला गया। बच्चों के साथ उपाहार लेने महाराज बिट्टिदेव अन्तःपुर की ओर चले दिये।

आश्रय की अपेक्षा से जो आये थे वे चालुक्य चक्रवर्ती के सामन्त थे, इसलिए मन्त्रणा-सभा में सभी पहलुओं पर आमूल-चूल विचार-विमर्श किया गया। पट्टमहादेवी भी इस सभा में उपस्थित रहीं। अन्त में मंचि दण्डनाथ, बम्मलदेवी, राजलदेवी—इन सब को भी बुला लिया गया। जिन-जिन के मन में जिन बातों को लेकर शंकाएँ उत्पन्न हुई थीं उन सभी के विषय में उन से उचित समाधान प्राप्त होने के बाद, उन्हें आत्मीय जन की तरह मानने का निर्णय लिया गया। गंगराज के बेटा दण्डनाथ बोप्पदेव स्वयं ही मंचि दण्डनाथ की अश्वसेना को राज्य के अन्दर स्वागत कर लाने गया। इससे पहले ही सवारनायक अनन्तपाल से उसका परिचय हो चुका था।

शीघ्र ही वह सेना बेलापुरी पहुँच गयी। दो दिन विश्राम करने के बाद, चेर-सीमा की पोय्सल सेना में इस सेना को सम्मिलित करने का निर्णय भी ले लिया गया। पूर्व-निश्चय के अनुसार, महाराज के साथ युद्ध में पट्टमहादेवी को भी जाना था। पुनीसमय्या के साथ यह अश्व-सेना और मंचि दण्डनाथ भी सम्मिलित हो गये थे, इसलिए यह निर्णय भी लिया गया कि युद्ध में सन्निधान का जाना अब आवश्यक नहीं है।

युद्ध में प्रथम बार सम्मिलित होने का जो मौक़ा मिल रहा था वह छूट गया

इससे शान्तलदेवी कुछ निराश-सी हो गयी थीं।

बम्मलदेवी की भी यही दशा थी। वह युद्ध में अपना कौशल एवं शक्ति-सामर्थ्य दिखाकर मन में अंकुरित आशा को उद्वेग देना चाहती थी। पर ऐसा नहीं हो सका। जब महाराज ही युद्ध में नहीं जाएँगे तो पट्टमहादेवी भी नहीं जाएँगी। ऐसी दशा में बम्मलदेवी को जाने का भला अवसर ही कहाँ?

इन सबसे ज़्यादा निराश हुई थी चट्टला। उसका पति रावत मायण पुनीसमय्या के साथ पहले ही चला गया था। मायण की उदारता के कारण उसका बिगड़ा हुआ पारिवारिक जीवन सुष्ठु और सुखकर बन गया था। परिवार के नये सिरे से बसाने पर उनके पीठ-पीछे लोग व्यंग्य करते, हँसी उड़ाते और उनको ओर दुर्भावना से देखते। परन्तु ये दोनों महामातृश्री से लेकर सम्पूर्ण राजपरिवार के विश्वासपात्र बन गये थे—इस वजह से धीरे-धीरे पीठ-पीछे बात करनेवालों के मुँह बन्द हो चले। चट्टला के मन में यह विश्वास घर कर चुका था कि यदि वह युद्ध में सक्रिय रहेगी तो राष्ट्र का हित ही होगा।

बेलापुरी आने पर शुरू-शुरू में बम्मलदेवी चट्टलदेवी को केवल नौकरानी ही समझती थी। पर बाद में वह उसके प्रति स्वयं महाराज और पट्टमहादेवी के के उदार व्यवहार को देखकर, तथा उससे सम्बधित अन्य घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर उसके जीवन के सभी पहलुओं से परिचित हो गयी थी। सामाजिक जीवन के लिए कुछ नीति-नियम का बन्धन आवश्यक है। सांसारिक जीवन सुखमय बनाना हो तो सत्य-निष्ठा के साथ उनका पालन करना होता है। जब कभी इन नीति-नियमों की सीमा के लांघ जाने की स्थिति आने पर भी समाज की उदारता के कारण दुखी जीवन भी सुखमय बन जाता है। इस दिशा में पोय्सल महाराजा और महारानी तथा अन्य लोगों ने भी योग्य मार्गदर्शन किया है। कहे बिना ही बरतकर उन्होंने आदर्श प्रस्तुत किया है। ऐसी हालत में मेरी अभिलाषा भी उनकी इस उदारता से सफल क्यों न हो सकेगी?—यही वह सोचती थी। जब यह बात उठी थी कि "हाथ किसी के गले में माला पहनाने के लिए तैयार हैं मगर दिल उस माला को पहनाने के योग्य कण्ठ की खोज कर रहा है" तब उसकी ओर बिट्टिदेव की दृष्टि ने, जो यद्यपि क्षणभर की ही रही लेकिन उसने ही में उसमें एक आत्मीय भाव पैदा कर दिया था। उसने क्या सोचा होगा? मुझ में इतनी आत्मीयता पैदा कर सकनेवाली वह दृष्टि मेरी अभिलाषा के अनुरूप दृष्टि ही है न? सच ही, मैं बिट्टिदेव के शौर्य, सौन्दर्य, सामर्थ्य, औदार्य, दया आदि गुणों के बारे में सुन चुकी हूँ। तभी तो मेरे मन में एक [illegible] गौरव के भाव उत्पन्न हुए थे। अभी जैसी भावना उत्पन्न हुई है वह उस प्रकार की नहीं थी। उनके उस प्रथम दर्शन के समय से माला पहनाने के लिए योग्य कण्ठ की खोज करने की बात के उठने तक भी मुझ में एक तीव्र [illegible] की भावना मात्र

थी। मेरा मन कृतज्ञता से भर उठा था। भँवर में फँसनेवाला जैसे कोई सुरक्षा का स्थान पा गया हो, ऐसी तृप्ति मुझे मिली थी। आश्रयदाता के प्रति निष्ठा एवं श्रद्धा रखकर अपनी योग्यता का परिचय करा देने की प्रबल इच्छा थी। परन्तु अब वे भावनाएं दूसरी ही प्रवृत्ति की ओर बढ़ रही हैं। इस प्रवृत्ति का पर्यवसान क्या होगा ? अलभ्य वस्तु को पाने की केवल इच्छा ही रह जाय तो ? सो कैसे होगा ? इस दृष्टि का क्या अर्थ है ? वह देखनेवाले ही बता सकेंगे। उससे अर्थ निकालना होगा। विवरण देखकर अर्थ भी बताया जा सकेगा। वह मेरे लिए अनुकूल भी हो सकता है। इस विषय में पट्टमहादेवी के क्या विचार होंगे ? तप करके उन्होंने उन्हें पाया है। उनका अटल विश्वास है कि उन पर उन्हीं का स्वामित्व है। उनके मन में यह भावना गहरी बैठ गयी है कि उनके स्वामी की दृष्टि अन्यत्र नहीं भटकेगी। ऐसी स्थिति में मेरी आशा जैसे मन में अंकुरित हुई, बढ़ी, वैसे ही वहीं अन्त होना ही अच्छा है। भँवर में फँसे हमको उबारकर, आश्रय देनेवालों को हमारे किसी भी व्यवहार से कष्ट नहीं होना चाहिए। इसलिए अब मुझे संयम से रहना होगा।—बम्मलदेवी के मन में इस तरह से न जाने कितने विचार आ-जा रहे थे। संयम से रहने का प्रयत्न करने पर भी बिट्टिदेव के सामने उस पहले की-सी सरलता बरती नहीं जा सकती थी इसकी जानकारी भी उसे थी। इसलिए उसे मन ही मन यह लग रहा था कि बिट्टिदेव के दर्शन पास से नहीं, दूर से ही करना उत्तम है।

राजलदेवी ने अपने मन में किसी आशा की कल्पना नहीं की। अनेक वर्षों से परिचित होने के कारण बम्मलदेवी को वह अच्छी तरह समझती थी। उसे लग रहा था कि उसके दिल में कुछ हलचल है। उसका आभास मिलते ही समय नष्ट किये बिना सीधे बम्मलदेवी से पूछ बैठी। उसने राजलदेवी से कभी किसी बात को छिपाये नहीं रखा था, इसलिए उसने दिल खोलकर कहा, "मेरी समझ में नहीं आता, बहिन। मुझे लग रहा है जैसे मेरा मन महाराज में लीन होता जा रहा है।"

"महाराज को पास से जो भी देखता है उसे ऐसा ही लगता है।" राजलदेवी बोली।

"तो क्या तुम्हें भी कुछ ऐसा ही लगा ?" बम्मलदेवी ने पूछा।

"तुम्हारी या मेरी ही तरह अनेकों को ऐसा ही लगता है, बहिन। उनका रूप ही ऐसा है।" मानो उसके अन्तरंग की बात ही बाहर व्यक्त हो गयी।

"परन्तु ऐसी अभिलाषा तो आकाश-कुसुम ही है न ? महाराज और पट्टमहादेवी का दाम्पत्य एक आदर्श दाम्पत्य है। उनके उस आदर्श जीवन में किसी का प्रवेश बाधक बन सकता है।"

"वे केवल पारिवारिक गृहस्थी चलानेवाले हों तो तुम्हारे कहे अनुसार हो

सकता है। मन्त्री और दण्डनायक जैसों के भी अनेक पत्नियाँ जब हो सकती हैं तो महाराज की अनेक पत्नियाँ हों इसमें ग़लती ही क्या है? उनके उस पद के लिए तो वह प्रतिष्ठा ही की बात होगी?" राजलदेवी ने प्रश्न किया।

"ये दूसरे राजाओं के जैसे नहीं। उनके जीवन की रीति-नीति रेविमय्या से सुन चुकने के बाद, और चट्टलदेवी से दिवंगत महाराज की रानियों द्वारा, एक माँ की पुत्रियाँ होकर भी, राजमहल को भयंकर झगड़ों और विद्वेष की भावनाओं से नरक बना देने की बात तथा शान्तलदेवी ने कैसे-कैसे प्रयत्न किये और समरसता लाने के लिए कितना श्रम किया आदि बातों को सुनने के बाद भी—कौन होगी कि उनके ऐसे आदर्श जीवन में बाधा डालना उचित समझेगी?"

"दीदी, आपकी बातों को सुनकर मुझे ऐसा लगता है कि आप अपने मन के विरुद्ध बातें कहकर स्वयं को वंचित कर रही हैं। उन दोनों का परस्पर प्रेम ऐसी कमज़ोर नींव पर स्थित है? ज्ञाननिधि पट्टमहादेवी इस बात को नहीं जानतीं कि 'राजानो बहुवल्लभाः'? आप ऐसी निराश होकर अपने व्यवहार में सशंक मत हों। आशावादी बनकर सरल सहज रीति से व्यवहार करती रहें। अवसर मिलने पर अन्तरंग की आकांक्षा प्रकट करना ठीक होगा।" यों कहकर राजलदेवी ने उसे प्रोत्साहन दिया। सच तो यह है कि राजलदेवी ने भी स्वयं ऐसा ही कुछ सोच रखा था।

बम्मलदेवी को ऐसा प्रोत्साहन आवश्यक भी था। राजलदेवी की इन बातों से धीरे-धीरे उसके मन की वह आशंका दूर होती गयी। अब तक के जीवन में उसे जिन उतार-चढ़ावों का अनुभव हुआ था, उनके कारण वह सब प्रकार से जीवन गुज़ारने की आदी बन गयी थी। अब उसे उसी सहजता से रहना कठिन नहीं था।

मंचि दण्डनाथ एवं अनन्तपाल युद्ध में गये थे, इसलिए बम्मलदेवी और राजलदेवी को राजमहल में ही रहना पड़ा। राजमहल के अहाते में पृथक् रहने की प्रार्थना करने पर तथा महाराज की सहमति मिलने पर भी ख़ुद शान्तलदेवी ने उनकी इस सलाह को माना नहीं।

महाराज और बम्मलदेवी की भेंट भोजन के वक़्त होती ही थी। बिट्टिगा, कुमार बल्लाल और हरियला साथ रहा करते थे, इसलिए उस समय आमतौर पर विशेष बातें नहीं हो पाती थीं। कभी-कभी कोई ख़बर युद्ध-क्षेत्र से मिल जाती और उसके बारे में बताना आवश्यक प्रतीत होता तो महाराज उसे बहुत संक्षेप में बता देते थे। बम्मलदेवी के मन में जिन भावों का प्रवाह चल रहा था वैसा ही कुछ उस दिन के बाद रह-रहकर बिट्टिदेव के भी मन में उठ रहा था। यह सब अनुचित समझकर वे इससे दूर ही रहने की कोशिश किया करते।

पोय्सलों की प्रगति सबकी आँखों का काँटा बन गयी थी। यह मालूम हो

जाने से बिट्टिदेव ने वेलापुरी और दोरसमुद्र को मज़बूत बनाने के लिए आवश्यक योजनाएँ रूपित की थीं, इसलिए उन्हें बार-बार दोरसमुद्र हो आना पड़ता था। उधर युद्ध भी चल रहा था। फिर भी वेलापुरी और दोरसमुद्र में सैनिक शिक्षण शिविर बराबर चलते रहे। बिट्टिदेव बड़े ध्यान से इनकी निगरानी कर रहे थे। एक साधारण योद्धा से भी वे सीधे परिचित होने का कार्य कर रहे थे। इसके लिए कभी-कभी शान्तलदेवी भी उनके साथ जाया करती थीं। वेलापुरी की स्त्री-शिक्षण-शाला की ज़िम्मेदारी तो उनपर ही थी।

राज-दम्पती के इस व्यस्त जीवन को देखकर बम्मलदेवी और राजलदेवी अप्रभावित कैसे रह सकतीं? वास्तव में उन्हें किसी बात की कमी नहीं थी। नये-नये आने के समय के कुछ दिन और दृष्टि मिलने के बाद के कुछ दिन संकोच-भाव में यों ही गुज़र जाने के बाद, जब सहज भावना से जीवन चलने लगा तो बम्मलदेवी को व्यर्थ ही बैठे-बैठे समय बिताना अच्छा नहीं लग रहा था। अब वह भी राज्य के कार्यों में भाग लेना चाहती थी। परन्तु राजलदेवी से विचार-विमर्श करने के बाद ही इस दिशा में वह आगे बढ़ पाती। राजलदेवी को भी बेकार बैठे रहना पसन्द नहीं था, इसलिए उसने भी बम्मलदेवी की इस सलाह पर अपनी सहमति प्रकट की।

एक दिन जब शान्तलदेवी अकेली थी, उपाहार के समय जब दोनों उनके साथ रहीं तब बम्मलदेवी ने ही बात छेड़ी, "सन्निधान एवं पट्टमहादेवीजी के इस व्यस्त जीवन को देखकर हमें बहुत तृप्ति मिलती है। आश्रय की खोज में आयीं, आश्रय मिला; फिर भी इस आश्रय से मनोरथ सिद्ध हो गया—ऐसा नहीं लगाता। आपके उदार आश्रय में हमें किसी बात की कमी नहीं। लेकिन हम राज्य के लिए उपयुक्त नहीं बन सकीं, इस बात का हमें रंज है; मन में एक तरह की कशम-कश चल रही है।"

"आपकी सम्पूर्ण अश्वसेना के साथ मंचिदण्डनाथ राष्ट्ररक्षा के लिए ही युद्ध करने गये हैं। इससे बढ़कर कुछ और इस राज्य ने अपेक्षा नहीं रखी।" शान्तल-देवी ने कहा

"वह तो उनकी बात हुई। हम स्त्रियाँ यों बैठे-बैठे खाती हुई निठल्ली बनी रहेंगी तो मस्तिष्क कुछ काम के बिना सड़ जाएगा। हमें भी कुछ काम दें।" बम्मलदेवी ने कहा।

"लड़कियों को पढ़ाएँगी?"

"मैं केवल अश्वचालन ही सिखा सकती हूँ। इसके सिवाय मैं और कुछ नहीं जानती।" बम्मलदेवी बोली।

"परन्तु अश्वचालन सीखनेवाली लड़कियाँ तो हैं नहीं?"

"तो लड़कों को ही सिखाऊँगी।"

"स्त्रियों से सीखने के लिए पुरुष माने तब न?"

"तो मतलब हुआ कि कोई काम नहीं।"

"यदि आप को ठीक लगे तो हमारी पाठशाला में आकर पढ़ सकती हैं।"

"यों ही बैठे-बैठे समय गँवाने से यही अच्छा है।"

"तो आप लोगों को सीखने की ख़ास इच्छा नहीं?"

"छोटों के साथ बैठकर सीखने में..."

"संकोच होता है, है न? परन्तु विद्या सीखनेवालों को किसी तरह का संकोच नहीं होना चाहिए। मुझे कोई आपत्ति नहीं। निर्णय आप स्वयं कर लें।"

"जैसी आपकी आज्ञा। परन्तु..."

"क्या?"

"आश्रय, निवास, खाना-पीना सभी पाते ही रहे हैं। अब तो पट्टमहादेवी से यह भी पायेंगे। हमें भी कुछ देने का मौक़ा मिल जाता तो अच्छा होता।"

"पोय्सल खुले दिल की देन को कभी अस्वीकार नहीं करते। वैसे ही दी जा सकनेवाली सहायता के बदले में कुछ चाहेंगे भी नहीं। यह लेन-देन का व्यापार नहीं। परिस्थितियों के अनुसार जब जो करना होगा और जो उचित होगा उसे ही हम करेंगे।"

"पट्टमहादेवी जी यदि उदारता दिखाएँ तो मेरी अभिलाषा को भी एक राह मिल जाएगी—ऐसा मुझे लगता है।"

"कहिए!"

"पट्टमहादेवी की देखरेख में पलनेवाला बिट्टिगा, कुमार बल्लालदेव—इन दोनों को अश्वचालन सिखाने की स्वीकृति मिल जाय तो बड़ा उपकार होगा।"

"सन्निधान से पूछकर बताऊँगी।"

"वहाँ तक स्वीकृति के लिए जाना पड़ेगा?"

"हाँ, बिट्टिगा को उनकी माँ महासाध्वी दण्डनाथिनी चन्दलदेवी ने हमारी गोद में डाल दिया था। वह जनमते ही अपनी माँ और उसी वक़्त युद्ध-क्षेत्र में अपने पिता—दोनों को एक साथ खो बैठा था। उससे सम्बन्धित किसी भी बात को सन्निधान की जानकारी के बिना सम्पादित नहीं किया जा सकता।"

"पट्टमहादेवी की जैसी इच्छा।"

फलस्वरूप बम्मलदेवी और राजलदेवी दोनों शान्तलदेवी की बालिकाओं की पाठशाला में जाने लगीं। बिट्टिगा तथा कुमार बल्लाल को अश्वचालन विद्या सिखाने की अनुमति भी बम्मलदेवी को मिल गयी।

युद्ध-क्षेत्र से अब तक कुछ ख़बरें मिल जाया करती थीं। युद्ध घोर [illegible] न था, केवल युद्ध के नाम से परेशान करने की एक तरह की युद्धनीति थी। नीच

भी न मरे और लाठी भी न टूटे वाली बात हो रही थी।

इधर बेलापुरी और दोरसमुद्र को सुन्दर बनाने के कार्य भी चल रहे थे।

बिट्टिगा का विद्याभ्यास विजय भट्टारक, अजितसेन, मलधारी गुरुपरम्परा के जगद्गुरु श्रीपाल वैद्य द्वारा चलता रहा। उन्होंने उसे तर्कशास्त्र, गद्य-पद्य आदि के साथ स्याद्वाद में भी शिक्षण दिया। सैनिक शिक्षण के लिए माचण दण्डनाथ तो थे ही, फिर भी स्वयं महाराज बिट्टिदेव ही उसकी सहायता करते, उसे मार्गदर्शन भी देते रहे। बैजरस वृद्ध होने पर भी शिक्षण देने में समर्थ थे, इसलिए तीरंदाजी में बिट्टिगा ने बहुत जल्दी निपुणता प्राप्त कर ली। उसने अपनी इस दक्षता से अपने गुरु को भी चकित कर दिया था। ऐसे ही अवसर पर अश्व-परीक्षण, अश्व-चालन आदि सिखाने के लिए बम्मलदेवी मिल गयी थीं। सम्पूर्ण राज-परिवार का प्रिय पात्र बनकर राजकुमार ही की तरह पोषित बिट्टिगा को शिक्षण देने का अवकाश मिलने से बम्मलदेवी को बहुत खुशी हुई थी। इस अपार कृपा के लिए वह ईश्वर को बार-बार धन्यवाद देती रही।

इधर अपनी आयु के अनुरूप कुमार बल्लाल भी साधना करता रहा।

बम्मलदेवी का रूप आकर्षक तो था ही, लेकिन बहुत दुखी जीवन से गुजरने के कारण कुछ-कुछ मुरझा-सा गया था। अब पोय्सल राजमहल के अनुकूल आदर से उसका मन तृप्त हो गया था, सन्तोष से भर उठा था। मुरझाया हुआ मुख एक बार फिर कान्ति से चमकने लगा था। अश्वचालन की शिक्षिका बनने से उसका शारीरिक व्यायाम भी हो जाता था। रक्त-शुद्धि के कारण उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग पुष्ट होकर चमक उठे थे। उसकी स्थिर दृष्टि सहज गाम्भीर्य से आकर्षक लगने लगी थी। देखते-ही-देखते यह बदलाव आ गया था। बिट्टिदेव ने भी बम्मलदेवी का यह उभरा सौन्दर्य देखा ही होगा। अश्वशिक्षण के काल में दिन-पर-दिन बिट्टिदेव से बम्मलदेवी का संपर्क भी बढ़ता जा रहा था। इस कारण बम्मलदेवी में भले ही किसी तरह के मनोभाव उत्पन्न हुए हों, आमने-सामने होने पर बिट्टिदेव का व्यवहार बिलकुल सहज ही रहा आया। उनमें किसी भी तरह का कोई मनोविकार नहीं दिख रहा था। बम्मलदेवी भी बहुत संयम से से बरतती रही। एक साधारण प्रजा जिस तरह भक्ति-गौरव के साथ अपने प्रभु को देखती है, उसी भक्ति-गौरव की भावना का उसने परिचय दिया।

पट्टमहादेवी की शिष्या बनने से बम्मलदेवी और राजलदेवी बहुत लाभान्वित हुईं। वास्तव में एक साधारण हेग्गड़े की पुत्री होकर भी वह राज-परिवार के आकर्षण का केन्द्र बनी है तो उसमें कुछ विशिष्टता तो होनी ही चाहिए—इतना ही वे अब तक समझती रहीं। शान्तलदेवी की वास्तविक शक्ति सामर्थ्य का उन्हें तब तक परिचय नहीं था। उनके उस उन्नत व्यक्तित्व की कल्पना भी वे नहीं कर सकी थीं। जब उन्हें संगीत, साहित्य, नृत्य शास्त्र, आयुर्वेद, इतिहास,-

पुराण, व्याकरण, अर्थशास्त्र आदि में उनके अपरिमित ज्ञान के सम्बन्ध में परिचय मिला तो दोनों भौंचक्की-सी रह गयीं।

उनके साथ अपनी तुलना करके देखतीं तो उन्हें लगता था : "हम कहाँ और वह कहाँ ! जन्मतः राजपरिवार की होने पर भी हममें ऐसी योग्यता कहाँ ?"

इसी बीच कुमार बल्लाल का जन्मदिन आ गया। इस अवसर पर महामातृश्री एचलदेवी ने कहा, "राजपरिवार की कुलदेवता वासंतिका माता की पूजा करने के लिए सोसेऊरु जाना होगा। उस देवी की सन्निधि में ही मैंने पहले-पहल शान्तला को देखा था, तभी मन में अभिलाषा हुई थी कि इसे अपनी बहू बना लूं। विवाह के बाद, चार कुलदीपक वंशांकुरों के होने पर भी, हमने उस देवी के पास जाकर आजतक अपनी भक्ति प्रदर्शित नहीं कर पायी। इसलिए वहीं उस देवी की ही सन्निधि में यह जन्म दिन मनाया जावे।"

पोय्सल रणश्री को जयमाला पहनने की शक्ति देवी प्रदान करें—यह प्रार्थना भी देवी के चरणारविन्दों में निवेदन करने का निश्चय हुआ। राजपरिवार, माचिकब्बे, मारसिंगय्या, बम्मलदेवी, राजलदेवी—सभी जन वहाँ चलेंगे ऐसा विचार हुआ। व्यवस्था के कार्य पर रेविमय्या को नियोजित किया गया।

पट्टाभिषिक्त होने के बाद, मात्र एक बार महाराज बल्लाल सोसेउरु गये थे। फिर दस-बारह साल तक राजघराने से कोई भी वहाँ नहीं गया था। इसलिए इस अवसर पर वहाँ का राजसौध नये सिरे से परिष्कृत किया गया। सारी नगरी आनन्दोत्साह से झूल उठी थी।

रेविमय्या की निगरानी में व्यवस्था होने कारण, सारा काम बहुत ही अच्छे ढंग से किया गया था। पुरानी अनेक स्मृतियाँ भी तब ताजी हो आयीं। एक दिन महामातृश्री ने अपने विश्रान्ति कक्ष में बम्मलदेवी और राजलदेवी को बिठाकर उन पुरानी बातों को विस्तार से बताया। अपनी प्यारी और वर्तमान पट्टमहादेवी बनी बहू उस समय अधिकार लालसा ग्रस्त लोगों की किस तरह असूया का कारण बनी, कैसे-कैसे उनकी भर्त्सना का पात्र बनी आदि सभी बातें उन्होंने विस्तार से बतायीं। जब वे इन सब पुरानी बातों को कह रही थीं उस समय उनके कथन में किसी प्रकार की कड़वाहट की गन्ध तक नहीं थी। अपने पारिवारिक जीवन में असन्तोष फैलानेवाली चामब्बे के विषय में भी कोई कड़वी बात उनके मुँह से नहीं निकली। "अनजान में किये पाप के लिए पछताती हुई वह बेचारी दण्डनायिकाजी कुछ साधे बिना ही सुरलोक सिधार गयीं। बच्चों के हित की आकांक्षा से उन्होंने जो कुछ किया वह इन बच्चों के ही जीवन के सर्वनाश का कारण जा बना। पूर्वजन्म के पापशेष के कारण हमें भी अपार दुःख झेलना पड़ा है। पाप से शायद पुण्य का अंश अधिक रहा, इसीलिए अब अर्हन् ने मन को शान्ति प्रदान की है। आज तक हमारी पट्टमहादेवी सबके लिए अम्माजी ही

रही। उसने अपने लिए कभी कुछ नहीं चाहा। उसके माँ-बाप ने भी कुछ नहीं चाहा। अच्छे मानव के अनुरूप एक आदर्श जीवन का उन्होंने निर्वाह किया है। आज भी वे उसी आदर्श पर चल रहे हैं। अपनी बेटी को भी उन्होंने अपने उसी सात्विक मार्ग में पाला, प्रवृद्ध किया। अम्माजी ने जिस योग्यता का अर्जन किया उसी के अनुरूप फल भी भगवान् की कृपा से उसे मिला। उसके उदार व्यवहार के ही कारण मेरे बड़े बेटे का जीवन सार्थक बन सका था। वह हमें छोड़कर जल्दी ही चल बसा, इस एक बात को छोड़ अन्य सभी बातों में वह माँ-बाप के लिए एक योग्य और आदर्श पुत्र बनकर ही रहा। ऐसी सात्विक देवी की मदद के होते हुए भी, उधर एक माँ की गर्भ-संजाता बहिनें अधिकार के मद में सौतों की तरह झगड़ती हुई अपना संपूर्ण जीवन ही बरबाद कर बैठीं। निष्कल्मष, उदार हृदय और सर्वदा परोपकार की अभिलाषा रखने वाली हमारी इस पट्टमहादेवी शान्तला का इस संसार में जो भी बुरा सोचेगा वह कभी सुखी नहीं होगा। यह बात मैं अपने अनुभव से कह रही हूँ। काश! आज हमारे प्रभु और मेरे ससुर महाराज विनयादित्य जीवित होते तो हम सबकी प्रियपात्र अम्माजी को देखकर कितने प्रसन्न होते! यह पुण्य उनके भाग्य में नहीं बदा था···पर अब इन सभी बातों को विस्तार के साथ बतलाने के लिए मैं खुद शीघ्र ही उनके पास जानेवाली हो हूँ न?···कहते-कहते उन्होंने होंठ दबाकर मौन धारण कर लिया। ऐसे मौक़े पर ऐसी बात मुँह से निकालना उचित नहीं था। अमंगल के निवारण के निमित्त उन्होंने एक बार अपना सिर भी हिलाया।

यह सब सुनकर किसी को कुछ नहीं सूझा कि क्या कहें।

एक क्षण बाद एचलदेवी ने फिर कहा, "उम्र के ढलने पर मन में जो विचार उठते हैं, उन्हें कहते-कहते कुछ बदल भी जाया करते हैं। मेरे लिए ही देखो. यों तो आजकल न ही अधिक बातें सुनती हूँ और न ही कहती हूँ। फिर भी आज पता नहीं, बेलगाम घोड़े की तरह यह जीभ क्यों सरपट चलने लगी है। हमें जिसे नहीं देखना चाहिए वह सब देखना जो पड़ा है। सच ही, वे भाग्यवान हैं जो इस सबको देखे बिना ही यहाँ से कूचकर गये। मानव जनमते ही मरण को साथ लेकर इस लोक में प्रवेश करता है। यह दूसरी बात है कि प्रमाद वश हमें ऐसा आभास नहीं हो पाता है। फिर यह भी तो है कि उस मरण की अनिवार्यता को भी, जब उसकी याद करते हैं तो हम डर जाते हैं। उसके सम्बन्ध में बात करना भी ग़लत मानते हैं। कभी-कभी उसके बारे में कहते भी हैं तो समय-कुसमय की कल्पना कर लेते हैं। इसलिए जो बात कह बैठते हैं वह हमारी अधिकार सीमा से बाहर की बन जाती है। इसी वजह से मैंने होंठ दबा लिया था। जब तक जाकर मैं खुद न बताऊँ, तब तक उस ऊर्ध्वलोक में वे कैसे जानेंगे—जब यह कल्पना आती है तभी न इस तरह की बातें निकलती हैं? ऊपर से ही देखकर वे सभी बातें हमसे

भी ज्यादा समझते होंगे। ऐसी स्थिति में कहने के लिए भला क्या बच रह जाता है? वास्तव में ऊपर से देख-देख कर उन्होंने इस दम्पती को आशीर्वाद दिया होगा। इसी से तो यह सब सुख-सन्तोष पूर्वक चलता रहा है। कुलदेवी वासन्तिका माता का तो अपार अनुग्रह इस पोय्सल वंश पर है। उन्हीं की देन है यह राज्य। उन्हीं माता के अनुग्रह से राज-संतति फल-फूल रही है। यह महा संतति ऐसे ही समृद्धि की ओर बढ़े और सदा लोकहित की साधना करती रहे—यही प्रार्थना तो हम करना चाहते हैं। यही हमारा आज का कार्य है। इनका दाम्पत्य एक आदर्श दाम्पत्य है। इसके फलस्वरूप वंशोद्धारक पुत्र-रत्नों को देकर देवी ने अपनी अपार दया दर्शायी है। साथ ही, कन्यादान की पुण्य-प्राप्ति के लिए एक पुत्री-रत्न देने की भी कृपा की है। और क्या चाहिए? इसलोक और परलोक दोनों को तृप्त करने योग्य इतना वरदान जब प्राप्त हो गया है तब और कौन-सी आकांक्षाएँ रह जाती हैं? इस राज-परिवार में जो शान्ति और तृप्ति आज विराजमान है वह सतत बनी रहे। कोई विघ्न-बाधा उत्पन्न न हो—यही देवी से बारम्बार प्रार्थना है।" कहते हुए एचलदेवी ने हाथ जोड़कर वन्दना की।

राजलदेवी ने कहा, "जिस किसी ने समीप से पट्टमहादेवी को और महामातृश्री को देखा है—ऐसा कोई भी उनके अनहित की बात सोच ही नहीं सकता।"

"तुम्हें मालूम नहीं बेटी, यह संसार बहुत बुरा भी है। जिस हाथ ने भोजन परोसा उसी हाथ को काटकर, उसके कंगन को बेचकर अपना स्वार्थ पूरा करने वाले भी हैं इस संसार में। दयाभाव से आश्रय देने पर अवसर पाते ही अपना ही अधिकार जमानेवाले भी हैं। आश्रयदाता को ही दूर भागने की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देते हैं।

"पट्टमहादेवी ने राज्यभर में जो प्रेम निर्झरिणी बहायी, वही उनका प्रबल रक्षण है। यह बिलकुल सम्भव ही नहीं कि कोई उनका अनहित सोच सके।" राजलदेवी ने कहा।

"ऐसी बातें पुस्तक में पढ़ते समय अच्छी लगती हैं। पट्टमहादेवी प्रेम निर्झरिणी बहानेवाली हैं—यह सच है। फिर भी वह अरिषड्वर्ग से आवृत मानवों के ही बीच में रह रही है न। एक वही है जो किसी भी तरह की संदिग्धावस्था में, संयम से रहकर, कड़वेपन से दूर अपने मन को शुद्ध और शान्त रख सकती है। पर अपने जीवन की अनुभूतियों को दृष्टि में रखकर हमें कहना पड़ता है कि ऐसे निरातंकित हो रहना भी अच्छा नहीं। इसीलिए मैंने देवी से विनती की।" एचलदेवी ने कहा।

"महामातृश्री के अनुभवों के सामने हम तो क्या चीज़ हैं? फिर भी संदिग्धता की सूचना मिले बिना, आमतौर पर व्यक्ति भगवान् की शरण में नहीं जाया करते। इसलिए यदि महामातृश्री के सामने ऐसी कोई, सन्देहभरी स्थिति उत्पन्न

हुई हो तो उसे जड़ से निवारण करने का प्रयत्न करना उचित है न ?" बम्मलदेवी ने बात जाननी चाही।

"हमें कुछ समझ में आये या नहीं, सकारण अन्तःकरण में कुछ शंका हो या न हो, उसका निवारण करने के लिए भगवान् की स्वीकृति और उसका सहकार आवश्यक होता है। उसके बिना मनुष्य को अपने प्रयत्न का कोई फल नहीं मिलता। इसलिए सब कुछ उस सर्वशक्तिमान परमात्मा पर ही छोड़ देना अच्छा है। उसकी प्रेरणा के बिना कोई कार्य नहीं होता। अब आप ही की बात लें। हमने तो आह्वान नहीं किया था कि आप लोग आवें और हममें इस भांति सम्मिलित हो जावें, और हम आश्रय दे देंगे। आपको लगा, आप आये। उसकी प्रेरणा से ही न! इसलिए सफलता भी मिली। अन्यथा आपका प्रयत्न व्यर्थ होता। लेकिन आपका प्रयत्न सफल हुआ। पोय्सलों की उदारता इसमें देखी गयी। यदि असफल हुए होते तो पोय्सलों के प्रति आप लोगों के मन में पता नहीं कौन-सी भावना होती—कह सकती हैं ?"

"नहीं।"

"इसलिए निर्णय करनेवाले स्थान पर जो बैठते हैं वे चाहे कितने ही औदार्य से बरतें या न्याय-निष्ठुर हो कर व्यवहार करें, उसमें कुछ-न-कुछ आशा-निराशा, तृप्ति-असमाधान, स्नेह-द्वेष आदि के लिए जगह रहती ही है। व्यक्त रूप में न सही, अव्यक्त रूप से ही, किसी-न-किसी रूप में विरोध रहता ही है। इसलिए भगवान् से हमारी यही विनती है—'हे भगवान्! ऐसे विरोध से हमारी रक्षा करो।" एचलदेवी ने कहा।

"हमारी राय में तो, स्वच्छ और निष्कपट हृदयवाले इन राजवंशियों के विषय में इस तरह के विरोध के उत्पन्न होने की संभावना ही नहीं। जब कभी ऐसे विरोध के उत्पन्न होने की संभावना हो तो उसे वहीं तत्काल पता लगाकर बता सकनेवाले दक्ष गुप्तचरों की पोय्सल राज्य में कमी नहीं। ऐसी दशा में विरोध कभी कहीं सिर भी उठा सकता है ?" बम्मलदेवी ने सम्मान भाव प्रदर्शित करते हुए कहा।

"यों समझकर धीरज के साथ चुप बैठे कैसे रह सकेंगे, बेटी। महादण्डनायक मरियाने ने अपने किसी एक रिश्तेदार को अपनी बेटी को ब्याह देने से इनकार कर दिया था तो उसने मेरे बेटे को ही मार डालने का षड्यन्त्र रच डाला था।" एचलदेवी ने कहा।

"चट्टलदेवी की होशियारी और सजगता से तब वे और ये—दोनों महाराजों के प्राण बच गये थे न ?" बम्मलदेवी ने कहा।

"ओह, तब तो ये सारी बातें आपको भी मालूम है! ठीक है। वह मानव की सजगता और होशियारी प्रतीत होने पर भी उसके पीछे भगवान् की इच्छा और

कृपा भी रही है। इसलिए मैं प्रार्थना को अधिक महत्त्व देती हूँ। सबसे बढ़कर मानसिक शान्ति प्रार्थना से ही मिलती है। भगवान् सुने न सुने, तब भी वह प्रार्थना हमारी मानसिक शान्ति के लिए सहायक बनती है।" एचलदेवी बोलीं।

"महामातृश्री की बात हमारी समझ में नहीं आती। इष्टार्थ-सिद्ध न होने पर निराशा के कारण क्रोध आएगा ही। ऐसी स्थिति में शान्ति मिले तो कैसे?"

"जिसे अनुभव नहीं है उसे निराशा के कारण गुस्सा आता है, बेटी। हमारी अस्थिरता का फल ही तो है यह निराशा। भगवान् भी हम मनुष्यों की तरह ग़लती करता है—ऐसी धारणा बनने का कारण है हमारे भीतर दृढ़-विश्वास की कमी। भगवान कभी कोई ग़लती नहीं करता—इस तरह का दृढ़ विश्वास मन में स्थिर होने पर, निराशा के लिए कोई कारण ही नहीं रह जाता। इच्छा करना मानव का स्वभाव है। उन-उन के लक्ष्यों के अनुरूप उसकी इच्छा जागृत होती है। उसकी उस इच्छा की सफलता भगवान् की कृपा होगी तो होगी, नहीं तो नहीं। सफलता न मिले तो यही समझना चाहिए कि इच्छा या तो असाधु थी या फिर समयोचित नहीं थी। ऐसा विचार आने पर निराशा के लिए गुंजायश ही कहाँ बेटी?" एचलदेवी ने कहा।

"तो क्या समर्थ आत्म-विश्लेषण ही विश्वास का दूसरा पहलू है?" बम्मलदेवी ने कहा।

"नहीं बेटी, वह विश्वास रूपी वृक्ष पर लगनेवाला कोंपल है। वहाँ निराशा के लिए स्थान नहीं। वह नूतन जीवन के लिए नान्दी है—नव-जीवन की ओर पहला क़दम। दृढ़ विश्वास रखनेवाला जीव उसकी जड़ है। पत्तों के झड़ जाने पर वृक्ष यह समझकर कि वह ठूंठ हो गया—दुःखी नहीं होता। नये कोंपलों से अपने अंग-अंग भरकर नयी शोभा से नवीन रूप धारण कर हरा-भरा बन जाता है। मानव का जीवन ऐसा ही होता है, और होना ही चाहिए।"

"तो महामातृश्री का यही भाव है कि अपनी सन्तान में अपने को ही देख पाना है, है न? इसीलिए उनकी भलाई के लिए विनती की, है न?"

"हाँ बेटी, स्त्री प्रकृति का प्रतीक है। अपनी सन्तान के श्रेय से बढ़कर उसके लिए दूसरी कोई चाह नहीं। तुम्हें भी ऐसी अनुभूति कर सकने का समय शीघ्र आवे, राजलदेवी को भी आवे। वासन्तिकादेवी आपकी अभिलाषाएँ पूरी करें।"

"अपनी अभिलाषाएँ प्रकट करने की स्वतन्त्रता हमें है ही कहाँ?"

"हाँ तो, मंचि दण्डनाय युद्ध में गये हैं। उनके लौटते ही मैं उनसे कहूँगी कि आपकी अभिलाषा पता लगाकर उसे पूर्ण करें।" एचलदेवी ने कहा।

"वे सुरक्षित लौट आएँ इसके लिए हमने भगवान् से प्रार्थना की है।" बम्मलदेवी ने कहा।

इतने में रेविमय्या अन्दर आया। झुककर प्रणाम कर बोला, "सन्निधान महामातृश्री से मिलना चाहते हैं।"

बम्मलदेवी और राजलदेवी ने भी उठकर प्रणाम किया और महामातृश्री से अनुमति लेकर अपने-अपने प्रकोष्ठ में चली गयीं। रेविमय्या भी स्वीकृति पाकर चला गया।

कुछ ही क्षणों में महाराज बिट्टिदेव महामातृश्री के पास पहुँचे। रेविमय्या, जो साथ ही आया था, महाराज के अन्दर जाने के बाद किवाड़ बन्दकर बाहर खड़ा रहा।

महाराज ने बताया, "रणक्षेत्र से बहुत ज़रूरी ख़बर आयी है। और हमें तुरन्त वहाँ जाना है, इसलिए रेविमय्या और पट्टमहादेवी तथा हम कुछ रक्षण-दल के साथ अभी तुरन्त बेलापुरी के लिए रवाना होंगे। शेष सब लोग कल बेलापुरी लौट जावेंगे।"

"तो तुमने और शान्तलदेवी ने विचार कर यह निर्णय किया है—यही समझ लेती हूँ।"

'हाँ।"

"शान्तलदेवी को भी तुरन्त तुम्हारे साथ रवाना होने से मैं समझती हूँ कि वहाँ मन्त्रिपरिषद् की बैठक भी होगी।"

"हाँ। अब और समय नहीं गंवाना चाहिए। नहीं तो आपके साथ देवी भी आ सकती थी।"

"तो वह तुम्हारे साथ युद्धक्षेत्र तो नहीं जायेगी न?"

"इस बारे में सोचा ही नहीं, माँ।"

"मेरे पीठ पीछे तुम लोग ऐसा कोई निर्णय न कर बैठना।"

"अच्छा माँ।" कह बिट्टिदेव ने घण्टी बजायी। रेविमय्या ने किवाड़ खोल दिया। बिट्टिदेव पट्टमहादेवी के प्रकोष्ठ की ओर जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाते चल दिये। रेविमय्या भी पीछे-पीछे चला गया।

महामातृश्री एचलदेवी, बम्मलदेवी, राजलदेवी, बिट्टिगा, राजकुमारी और कुमार के बेलापुरी पहुँचने तक मन्त्रिपरिषद् वर्तमान युद्ध-स्थिति के बारे में सभी पहलुओं से विचार-विनमय कर निर्णय ले चुकी थी। तदनुसार ख़ुद महाराज बिट्टिदेव के युद्ध में जाने की बात निश्चित हो गयी थी। तभी शान्तलादेवी ने भी

रणक्षेत्र में जाने की अपनी इच्छा प्रकट कर सबकी स्वीकृति पा ली थी।

वेलापुरी पहुँचते ही एचलदेवी को यह सब मालूम हुआ। वह किसी औपचारिक रीति-नीति की परवाह न कर सीधे शान्तलदेवी के अन्तःपुर में गयीं। और पूछा, "अम्माजी, सुनती हूँ आप दोनों ने युद्धभूमि में जाने का निश्चय कर लिया है, यह सच है?"

उन्होंने तुरन्त महामातृश्री के चरणों में झुककर प्रणाम किया और कहा, "आशीर्वाद दो माँ, मैं अपना मांगल्य सुरक्षित रख सकूँ।"

"तो क्या तुम छोटे अप्पाजी की अंगरक्षिका होकर जा रही हो?"

"सहधर्मिणी की हैसियत से जा रही हूँ। मुझे उनके सभी कार्यों में सहभागिनी बनना चाहिए न?"

"पुरुष जो सब करते हैं वह स्त्री को भी करना चाहिए—ऐसा तो नहीं, अम्माजी। यहीं रहकर उनके श्रेय के लिए, दीर्घायु के लिए भगवान् से प्रार्थना करती हुई पोय्सल वंशांकुरों को प्रवृद्ध कर पोषण करते रहना सहधर्मिणी का प्रधान कार्य है, अम्माजी। मातृत्व का भी यही कर्त्तव्य है न? हज़ारों सैनिक, दण्डनायक, सवार तथा दक्ष अंगरक्षक जब रणांगण में उपस्थित हैं तब वहाँ एक स्त्री का स्थान गौण है, अम्माजी। विवाह के बाद शुरू-शुरू में तुम्हारी ही तरह मुझे भी लगता था। मैं भी प्रभु के साथ रणभूमि में जाना चाहती थी। प्रभु का मुझ पर अपार प्रेम था। उन्होंने यह नहीं कहा कि मेरी इच्छा ग़लत है; फिर भी उन्होंने अच्छी तरह समझाकर कहा था कि रणक्षेत्र में जाने से भी बड़ा कर्त्तव्य बच्चों की देखभाल करना है। इसीलिए मैं कभी रणक्षेत्र में नहीं गयी। मैं यह जानती हूँ कि हम दोनों में फ़र्क है। मैं तलवार पकड़ना नहीं जानती। घोड़े पर सवारी करना नहीं जानती। तीर-कमान सम्हालना भी नहीं जानती। फिर भी एक भावना मात्र रही कि मैं रहूँ तभी अपने स्वामी की रक्षा साध्य है। यह सहज़ न होने पर भी असंभव नहीं। तुम तो सब तरह से दक्ष हो। फिर भी युद्धभूमि के ख़तरों में तुम्हारा फँसना मुझे ठीक नहीं जँचता। बड़े महाराज ने ऐसे ही एक मौक़े पर मुझे अपनी ऐसी इच्छा से विमुख कर दिया था—सो तो तुम जानती ही हो। तुम्हारे न जाने पर दो-तीन बातों में सुविधा ही रहेगी। एक, छोटे अप्पाजी का ध्यान युद्ध और विजय पर केन्द्रित रहा आएगा। सन्तान को इधर तुम्हारा स्नेह-दुलार भी तो चाहिए। तुम्हारा मार्गदर्शन भी जरूरी है—यह भी एक बात है। युद्धभूमि की अनिश्चित स्थिति से भी तुम बच सकती हो। यहाँ रहकर तुम अपने कर्त्तव्यों को बे-रोकटोक निभा भी सकती हो, साथ ही राज्य के भीतर और बाहर के कार्यों में तुम्हारे नेतृत्व से बल मिलेगा। पहले एक बार तुमने छोटे अप्पाजी के साथ स्पर्धा की थी। उस समय मैंने तुमसे एक प्रार्थना की थी जिसे तुमने मान लिया था। मेरा विश्वास है कि अब भी मान लोगी।"

यों भावुकता में तारतम्य रहित बातें करती रहीं महामातृश्री। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था कि तर्क से शान्तलदेवी को नहीं जीता जा सकता। उनका मंतव्य केवल इतना ही था कि वह युद्ध में न जाएँ।

शान्तलदेवी ने कुछ नहीं कहा। मौन ही मौनसी रहीं। उनकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में एचलदेवी भी मौन बैठी रहीं। घण्टी की आवाज सुनकर दोनों उठ खड़ी हुईं। रेविमय्या ने किवाड़ खोला और अन्दर आकर प्रणाम कर खबर दी कि सन्निधान पधार रहे हैं।

दोनों बाहर आयीं और बिट्टिदेव को अन्दर ले गयीं। तीनों बैठ गये। रेविमय्या जाने ही वाला था कि इतने में शान्तला ने कहा, "तुम यहीं रहो।"

"जो आज्ञा" कहकर भीतर से किवाड़ बन्द करके वह वहीं खड़ा रहा।

"मतलब यह कि पट्टमहादेवी को रेविमय्या की मदद की जरूरत है। माँ, उधर सास-बहू के बीच जो बातचीत हुई, उसका ब्योरा हमें मालूम नहीं। फिर भी हम समझते हैं कि हमारे साथ रणक्षेत्र में महारानी के जाने की ही बात हुई होगी। हमारी इच्छा नहीं थी कि देवी को साथ ले जावें। और फिर, आपके पीठ पीछे निर्णय न करने का भी वचन हमने दिया था—सो हमें याद है। परन्तु हमारे वचन देने की यह बात देवी को मालूम नहीं थी। उन्होंने जब हमारे साथ युद्धभूमि में जाने का प्रस्ताव रखा तो हम असमंजस में पड़ गये। हमने कहा भी कि इसकी जरूरत नहीं। हममें किसी को भी अपने पूर्व निर्णय की बात याद नहीं रही। इस युद्ध के आरम्भ होने के पूर्व हमारे ही जाने की बात का जब निर्णय हुआ था सब की राय थी कि पट्टमहादेवी भी साथ जाएँगी। जब यह बात हुई कि हमारे जाने की जरूरत नहीं, तभी यह कार्यक्रम स्थगित हुआ था। प्रकृत सन्दर्भ में हमारे जाने की बात निश्चित कर दी गयी, तो पट्टमहादेवी ने अपनी इच्छा प्रकट की। बहुतों ने यह राय प्रकट की कि इनका रणक्षेत्र में जाना उचित नहीं है। इस विषय पर सोच-विचारकर निर्णय करने के ख़्याल से उस दिन की सभा में तात्कालिक रूप से वह बात नहीं उठायी गयी। उसके बाद फिर सभा बैठी, उसमें इस ढंग से बातचीत चली कि इनका जाना सबको युक्तिसंगत लगा। पट्टमहादेवी की तरफ से रेविमय्या बोल रहा था। यहीं रहने के लिए जब उससे कहा गया तो यही समझा जा सकता है कि महामातृश्री को समझाने के लिए उसकी मदद लेने की स्थिति पैदा हो गयी है। इस चर्चा के उठने से पहले इस सम्बन्ध में सभी बातों को विस्तार के साथ बता कर आपकी सहमति लेने की बात सोची थी। हमने यह नहीं सोचा था कि इतनी जल्दी आप लोगों में यह बात छिड़ सकती है। यही बताने के ख़्याल से आपके प्रकोष्ठ में जाकर हम फिर इधर चले आये। माँ, देवी की इच्छा की साधुता ने सबको आकर्षित किया है। इसलिए आप सहर्ष स्वीकृति के साथ हमें आशीर्वाद देकर भेजिए। इसमें हम दोनों का सुख निहित है। देश की

भलाई के लिए और प्रजा में सक्रियता उत्पन्न करने के द्योतक रूप में भी यह बहुत आवश्यक है। सम्पूर्ण देश की प्रजा को अब इस बात के प्रति प्रोत्साहित करना भी ज़रूरी है कि राष्ट्रहित के लिए लिंग भेद के बिना सबको सब तरह से त्याग करना होगा। चारों दिशाओं में शत्रु पोय्सलों को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए तैयार खड़े हैं। इसलिए राष्ट्रप्रेम की प्रभावना का काम अब बहुत ज़रूरी हो गया है।" यों बिट्टिदेव ने परिस्थिति समझकर कहा।

शान्तलदेवी ने उठकर दोनों के पैर छूकर प्रणाम किया।

एचलदेवी का हाथ आप-से-आप शान्तलदेवी के मस्तक पर चला गया।

एक क्षण सब मौन रहे आये। फिर एचलदेवी उठ खड़ी हुईं। बिट्टिदेव और शान्तला भी उठ खड़े हुए। "देवी वासंतिका आप लोगों की रक्षा करें। मन की बात मन ही में रखकर घुलने के बदले, कहकर मन का भार उतार लेना अच्छा है। इसलिए जो कहना था कह दिया। अब निर्णय आप ही लोगों पर छोड़ देती हूँ।" कह एचलदेवी अपने प्रकोष्ठ की ओर क़दम बढ़ाने लगीं।

रेविमय्या ने किवाड़ खोला। ड्योढ़ी पर ठहर कर एचलदेवी ने कहा, "रेवि-मय्या, तुम्हें जब फुरसत हो तब थोड़ी देर के लिए आ जाना।" वह चली गयीं।

रेविमय्या ने राजदम्पती की ओर देखा।

शान्तलदेवी ने कहा, "अभी हो आओ, रेविमय्या।"

वह दरवाज़ा बन्द करके चला गया।

राजदम्पती बैठे रहे। बिट्टिदेव ने पूछा, "और क्या-क्या बातें होती रहीं?"

शान्तलदेवी ने सब बता दिया।

"तुरन्त उत्तर न देकर मौन क्यों रहीं?" बिट्टिदेव ने सवाल किया।

"महामातृश्री के लिए मेरा सम्पूर्ण जीवन धरोहर होना चाहिए। उनकी उदारता के लिए और क्या भेंट किया जा सकता है? वे वास्तव में बहुत सूक्ष्म-मति हैं। इससे भी बढ़कर वे बड़ी संयमी हैं। वे मुझसे जिस तरह के व्यवहार की अपेक्षा करती हैं तुरन्त मुझे वैसा ही बरतना चाहिए। यह मेरा कर्त्तव्य है। वे मुझे ऐसा करने की आज्ञा दे सकती थीं। आज्ञा न देकर बलिपुर की स्पर्धा की बात को सामने प्रस्तुत करके मेरे बर्ताव में औदार्य की अपेक्षा रखी। अभी हम उनके उस स्तर तक पहुँचे नहीं। इसीलिए सन्दिग्ध स्थिति में तथा स्वार्थ में पड़कर मैं कुछ बोलने में असमर्थ हो गयी।" शान्तलदेवी बोलीं।

"तो क्या देवी इस विषय पर पुनर्विचार करने की सोच रही हैं?"

"यह उचित मालूम पड़ता है। रेविमय्या को आने दीजिए। बाद में मैं अपनी राय बताऊँगी।"

"ठीक है। तब तक बाक़ी सब कार्य, अब जैसा निर्णय हुआ है, आगे बढ़ता रहेगा। इस बीच मंचि दण्डनाथ ने जैसी सलाह दी थी उसके अनुसार, हमारे

अश्व के लिए लोह-कवच, सिरस्त्राण आदि तैयार कराने का कार्य हुआ या नहीं ! इस कार्य के निरीक्षण एवं परीक्षण की सूचना बम्मलदेवी को दे दी गयी है न ?" बिट्टिदेव ने पूछा ।

"हाँ, वे तभी शस्त्रास्त्र-निर्माण केन्द्र की ओर चली गयी थीं । उनके लौटते ही मुझे बता देने की सूचना नौकर को दी जा चुकी है ।"

"मंचि मण्डनाथ से एक और सूचना मिली है..." बिट्टिदेव ने बात को वहीं रोक दी ।

"क्या है वह ?"

"उसके अनुसार ही हमें चलना होगा—सो तो नहीं, निर्णय तो हमें ही करना है ।"

"सन्निधान ने निर्णय ले लिया होगा ?"

"निर्णय ले लिया होता तो उसके बारे में देवी से पूछते ही क्यों ?"

"बात चल रही है, मगर अभी तक विषय गुप्त ही है !"

"न, न, इसमें गुप्त रखने की क्या बात ?"

"ऐसा है तो सीधा बताने में शंका किस बात की ?"

"शंका ? किस पर ?"

"मुझे क्या मालूम ? बात जानने पर ही तो कुछ कहा जा सकता है ।"

"बात की जानकारी न होने पर भी शंका की बात देवी के मुँह से निकलने के कारण मन में कुछ विचार तो उत्पन्न हुए ही होंगे न ?"

"हाँ, अनेक विचार उठ सकते हैं । मुझपर शंका हो सकती है, मंचि दण्डनाथ पर शंका हो सकती है, नहीं तो सन्निधान को अपने ही ऊपर शंका हो सकती है । सूचना किस बात से सम्बन्धित है; किस व्यक्ति से सम्बन्धित है यह मालूम होने पर ही अनुमान किया जा सकता है ।"

"कल्पना की व्याप्ति बहुत अधिक विस्तृत हो गयी !"

"बात का जब निश्चय नहीं होता तब ऐसा ही हुआ करता है ।"

"तो अब उसी बात की ओर चलें । अश्व-विद्या में बम्मलदेवी निष्णात हैं, इसलिए युद्ध शिविर में उनकी उपस्थिति लाभदायक होगी—यह सूचना मंचि दण्डनाथ की है ।"

"हाय, इस बात के लिए इतना घुमाना-फिराना क्या ज़रूरी था ? उनके चलने पर मेरे लिए भी एक साथी मिल जाएगी । उन्हें भी अकेलापन नहीं अखरेगा । तो वे जा सकती हैं यही सन्निधान का विचार है न ?"

"कोई आश्चर्य नहीं कि जाने के बारे में वे ही सूचित करें ।"

"सन्निधान के मन में ऐसा विचार उठने का कारण ?"

"लगता है, देवी की तरह उनमें भी क्षात्र भाव प्रबल है ।"

"तो सन्निधान का यही आशय है कि वे भी चलें !"

"पट्टमहादेवो को कोई अपत्ति न हो तो, हमें भी कोई आपत्ति नहीं।"

"अब तक सन्निधान को लगता रहा कि पटरानी रुकावट डाल सकती हैं। है न ?"

"हमने ऐसा तो कहा नहीं।"

"फिर भी मुझे लगा कि सन्निधान की बात में यह भाव द्योतक हो रहा है।"

तुरन्त बिट्टिदेव ने और कोई उत्तर नहीं दिया।

"तो मतलब यही कि सन्निधान के मन में शंका है। घुमा-फिराकर बात करने का यही ढंग ही इस बात की गवाही दे रहा है। पट्टमहादेवी इस बात की स्वीकृति देंगी या नहीं इस तरह की शंका यों शंका-सी नहीं लगती, फिर भी सच तो यह है कि पट्टमहादेवी पर शंकित होने का मतलब सन्निधान का ख़ुद पर ही अविश्वास करना होगा।"

"मतलब ?"

"मनुष्य का स्वभाव है कि जब वह किसी दुविधा में फँसता है तो वह द्वन्द्व कहाँ क्या है—यह न देख किसी तीसरे की संभावित कल्पना कर चिन्ता में पड़ जाता है।"

"अभी द्वन्द्व का कारण ही क्या है ?"

"कारण न होता तो मंचि दण्डनाथ की सूचना को सीधी कह सकते थे।"

इतने में नौकरानी बम्मला ने किवाड़ खोला। महाराज को देख कुछ लज्जित सी हो गयी।

"क्या है बम्मला, बम्मलदेवी आ गयीं ?"

"बाहर आदेश की प्रतीक्षा में खड़ी हैं। सन्निधान का यहाँ आना मालूम नहीं पड़ा। क्षमा करें।" बम्मला ने झुककर प्रणाम किया।

"उन्हें भेज दो।" बिट्टिदेव ने कहा।

नौकरानी बम्मला चली गयी। उसके जाते ही बम्मलदेवी ने प्रवेश किया। बम्मला किवाड़ बन्द कर बाहर रही।

प्रणाम करने को तैयार बम्मलदेवी बिट्टिदेव को वहाँ देख कुछ हिचकिचा गयी। उसे यह कल्पना नहीं थी कि वे वहाँ होंगे। वैसे वे उसके लिए नये तो नहीं। उस क्षणिक हिचकिचाहट को दूर कर उसने उन्हें प्रणाम किया।

शान्तलदेवी ने आसन दिखाते हुए कहा, "आइये बैठिये।"

बम्मलदेवी बैठ गयी, लेकिन उसकी दृष्टि बिट्टिदेव की ओर रही।

"देख आयीं सब ?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"हाँ।"

"काम सन्तोपजनक चल रहा है ?" शान्तलदेवी ने फिर प्रश्न किया।

"सन्निधान के घोड़े के लिए जैसा लोह-कवच और शिरस्त्राण वनाने के लिए सूचित किया गया था वह उतना सन्तोपजनक नहीं वना था, इसलिए उसमें आवश्यक परिवर्तन करने को वतला आयी।"

"सभी घोड़ों के लिए एक ही तरह के वनते, वही काफ़ी था। उनका उद्देश्य शस्त्राघात से घोड़ों को बचाना ही तो है। हमारा घोड़ा अलग, दूसरे का अलग इस तरह की विवेचना क्यों की गयी ?" विट्टिदेव ने पूछा।

"सन्निधान की प्राणरक्षा जितनी जरूरी है, उतनी ही जरूरी है उस घोड़े की रक्षा जिस पर सन्निधान सवार होते हैं। इसलिए आवश्यक लगा।" उत्साह से बम्मलदेवी ने कहा।

"अंगरक्षक हमेशा हमारी रक्षा में सन्नद्ध रहेंगे तव भला इस विशिष्टता की क्या आवश्यकता है ?" विट्टिदेव ने कहा।

"अंगरक्षक तलवार और मुगदरवाले सैनिकों से रक्षा कर सकते हैं, दूर से अचानक घुस आनेवाले तीरों से नहीं। इसके लिए उस अश्व की रक्षा सन्निधान के संरक्षण को दृढ़ता प्रदान करती है।" बम्मलदेवी ने कहा।

"वह कल तक तैयार हो जाएँगे क्या ?" विट्टिदेव ने सवाल किया।

"कल सन्निधान निश्चित मुहूर्त में यात्रा कर सकते हैं। उनके तैयार होते ही मैं उन्हें लेकर रवाना हो जाऊँगी, और जल्दी ही साथ आ मिलूँगी।" बम्मलदेवी ने कहा।

"यह नहीं हो सकता। आपको हमारे ही साथ यात्रा करनी होगी। उन्हें कोई और ले आयेंगे।" शान्तलदेवी ने कहा।

"तैयार होने पर एक वार उन्हें परख लेना अच्छा है। इसलिए…"

बम्मलदेवी की वात ख़तम होने से पहले ही शान्तलदेवी ने उसे रोककर कहा, "कारण कुछ भी रहे, आप हमारी रक्षा के अन्दर रह रहीं हैं, इस वजह से आपको अकेली यात्रा कराने के लिए सन्निधान नहीं मानेंगे।"

"अकेली कैसे ? अन्य घुड़-सवार, सैनिक सब साथ होंगे न ?" बम्मलदेवी ने कहा।

"कितने भी पुरुष साथ रहें, साथ में एक स्त्री के होने के बराबर नहीं होते।" शान्तलदेवी ने कहा।

"चट्टलदेवी साथ रहेंगी तो न बनेगा ?"

"कल के अन्दर तैयार न हो सकेगा ?"

"वही काम हो रहा है। ढालने का काम होता तो बन जाता। मगर ढालने पर वह बोझीला बन जाता है। उसे जितना हल्का बनाएँ उतना अच्छा, इसलिए लोहे के पतले परत से तैयार करना है। ऐसे काम में थोड़ा ज्यादा समय लग

जाता है।"

"तब तो सन्निधान निश्चित मुहूर्त पर यात्रा करें। हम आपके साथ चलेंगी।"

"राजदम्पती की सह यात्रा के लिए मुहूर्त ठहराया है, इसलिए दोनों सन्निधान एक साथ यात्रा करें। यही राष्ट्र के लिए शभकर और श्रेयकर है। मेरे विषय में आप आतंकित न हों।"

"ऐसा नहीं बम्मलदेवी जी, आपकी बात आपकी दृष्टि में ठीक होने पर भी, लौकिक रीति का उलंघन करना हमारे लिए उचित नहीं। अगर आप राजपरिवार के आश्रित न होतीं तो आपको अपनी इच्छा अनुसार करने के लिए छोड़ा जा सकता था। आपमें आत्म-विश्वास है। आप अकेली ही आवें तो भी कोई बाधा नहीं हो सकती। फिर भी आपको अकेली छोड़ नहीं सकतीं। चट्टलदेवी का साथ कर देना एक विकल्प है। लाचारी हुई तो वही करना पड़ेगा। किसी भी तरह से कल रवाना होने के समय तक उन्हें तैयार करवा देने की ही कोशिश करें।" शान्तलदेवी ने यह निर्णय सुना दिया।

बम्मलदेवी दोनों को प्रणाम कर वहाँ से चली गयी।

उसके चले जाने के बाद बिट्टिदेव ने कहा, "तो देवी ने जाने का निर्णय ले ही लिया है।"

"क्यों, सन्निधान को सन्देह था? या सोचा हो कि शान्तला न जाये तो ठीक रहे।" शान्तलदेवी ने प्रश्न किया।

"हमें दोनों स्वीकार। परन्तु पट्टमहादेवी ने कहा कि रेविमय्या महामातृश्री से बात कर आये, तब अन्तिम निर्णय करेंगे। इसलिए पूछा।" बिट्टिदेव बोले।

"मुझे रेविमय्या की रीति मालूम है। महामातृश्री के मन को भी जानती हूँ। इसलिए मैं समझती हूँ कि मेरी यात्रा के विषय में कोई रोक-रुकावट नहीं।" शान्तलदेवी बोलीं।

इतने में रेविमय्या आ गया। शान्तलदेवी ने पूछा, "रेविमय्या, महामातृश्री ने क्या कहा?"

"मुझसे पूछा तो नहीं, केवल इतना ही कहा कि सन्निधान और आपकी दोनों की सुरक्षा का सदा ख़्याल रखना।"

"यह तो कोई नयी बात नहीं।" बिट्टिदेव बोले।

"तो महामातृश्री का तुम्हें बुलाने में कोई ख़ास उद्देश्य नहीं रहा?" शान्तलदेवी ने पूछा।

"बिना किसी उद्देश्य के वे बुलानेवाली नहीं—यह तो सन्निधान को विदित ही है न?" रेविमय्या बोला।

"तो सुरक्षा के विषय में चौकन्ना रहने के लिए जो कहा वह साधारण बात

होने पर भी अब इस वचन की अर्थ-व्याप्ति कुछ विस्तृत है—यही समझा जाय।" यों कह शान्तलदेवी ने बात को कुछ व्यापक बनाया।

"यों सोचना भी ग़लत न होगा। क्योंकि संभाव्य की कल्पना करके पहले से सचेत रहने की प्रवृत्ति राजमहल की दृष्टि में बहुत ही युक्ति संगत है।" रेविमय्या बोला।

"महामातृश्री के मन का वह भय भी क्या है?"

"भय की बात तो नहीं कह सकते, एक साधारण शंका कह सकते हैं।"

"तब तो उनका आशय है कि असल बात फ़िलहाल हमारी जानकारी से दूर ही रहे?" शान्तलदेवी ने प्रश्न किया।

रेविमय्या मौन रहा।

"ठीक, इसीलिए तुम घुमा-फिराकर जवाब दे रहे हो।"

"उचित समय पर निवेदन करूँगा।" रेविमय्या ने कहा।

"ठीक है। सन्निधान के साथ मैं भी चल रही हूँ। बम्मलदेवी भी जाएँगी। इसलिए सुरक्षा का दायित्व अधिक है। योग्य व्यवस्था हो। तुम उस ओर ध्यान दो, अब जाओ।" शान्तलदेवी ने आदेश दिया।

"चट्टलदेवी को भी साथ चलने की व्यवस्था करनी होगी न?"

"वह क्यों?"

"सन्निधान जिस युद्धभूमि में होंगे, वहाँ रहने की उसकी प्रबल इच्छा है। महामातृश्री भी उसका रहना अच्छा समझती हैं। इस तरह की सूचना भी उन्होंने दी है।"

बम्मलदेवी कल ही हमारे साथ चलेंगी तो वह भी हमारे साथ चली चलेगी। कल ही हमारे साथ बम्मलदेवी न चल सकेंगी तो तुम्हें और चट्टला दोनों को उनके साथ आना पड़ेगा।" शान्तलदेवी ने कहा।

"जो आज्ञा" कह रेविमय्या प्रणाम कर चला गया।

बिट्टिदेव तब तक मौन बैठे रहे। अब उन्होंने शान्तलदेवी से पूछा, "माँ के मन में कौन-सी शंका उत्पन्न हुई होगी?"

"जब रेविमय्या ने उचित समय पर कहने की सूचना दी है तो अभी उसके बारे में दिमाग़ ख़राब करने की क्या ज़रूरत है?" शान्तला ने कहा।

इतने में नौकरानी सुग्गला ने आकर ख़बर दी कि उपाहार तैयार है, महामातृश्री आप दोनों की प्रतीक्षा कर रही हैं।"

उठकर दोनों उस ओर चले गये। उपाहार मौन में ही समाप्त हुआ।

युद्धयात्रा के लिए राजमहल में ज्योतिषी ने जो मुहूर्त ठहराया है उस बारे में महाराज बिट्टिदेव ने महामातृश्री से कहा। साथ ही तब तक प्राप्त युद्ध-सम्बन्धी अनेक ब्यौरे भी उन्होंने बताये। वहाँ केवल तीन ही जन थे। बच्चे उपाहार के

बाद चले गये थे। उपाहार के अनन्तर अधिक बातें बिट्टिदेव की ही हुईं। उन्होंने बताया कि युद्ध की तैयारियाँ सन्तोषजनक ढंग से हो रही हैं। इस सम्बन्ध में विवरण देते समय उन्होंने बम्मलदेवी की कार्यदक्षता और प्रशिक्षण आदि के बारे में कुछ विस्तार से कहा। बताते समय उनकी ध्वनि में कुछ उत्साह और विशेष दिलचस्पी भी स्पष्ट दिख रही थी।

महामातृश्री और शान्तलदेवी उनके उस उत्साह को समझ रही थीं। उन दोनों के मन में अकारण ही कई तरह के विचार उत्पन्न होने लगे परन्तु उन्होंने उन्हें अपने तक ही सीमित रखा।

× × ×

एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाकर लगातार काम करने से महाराज और पट्टमहादेवी के अश्वों के अंगत्राण और शिरस्त्राण, बम्मलदेवी की सलाह के अनुसार निश्चित मुहूर्त के पूर्व ही तैयार हो गये। इससे महाराज की युद्धयात्रा राजमहल के ज्योतिषियों द्वारा निश्चित मुहूर्त में ही आरम्भ हुई। महाराज बिट्टिदेव पट्टमहादेवी शान्तला, बम्मलदेवी, चट्टला और रेविमय्या—इन सबके साथ अश्वसेना का एक गुल्म दक्षिण-पश्चिम कोने के सैन्यशिविर की ओर चल पड़ा। मार्ग में दो दिन ज़्यादा ठहरकर यादवपुरी जाकर विश्राम किया। शान्तलदेवी ने कहा, "इस युद्ध की समाप्ति पर सन्निधान कुछ समय यादवपुरी ही में मुकाम करें तो अच्छा है। उदयादित्य दोरसमुद्र ही में रहे आयेंगे।"

"क्यों देवीजी को वेलापुरी और दोरसमुद्र जँचे नहीं?"

"ऐसा नहीं। जो हारेंगे वे फिर अपना बल बढ़ाकर हमले की तैयारी करने की कोशिश करेंगे। सन्निधान यहीं मुक़ाम करेंगे तो शत्रु के लिए डर बना रहेगा।"

"हाँ, हम यहाँ रहें और उधर चालुक्य दोरसमुद्र की ओर आ बढ़ें, तब?"

"अब आने पर जैसा होगा, तब भी वही होगा। हम उनकी रक्षा के विषय में उदासीन तो नहीं हैं न? राज्य की रक्षा के लिए, पोय्सलों के पूर्व प्रभाव से दक्ष दण्डनायक सभी तैयार हो रहे हैं। प्रधान गंगराज के पुत्र एचिराज और बोप्पदेव, अब तो उदयादित्य वहीं हैं—ये सब गंगराज, माचण, डाकरस, मामा सिंगिमय्या, पुनीसमय्या के स्तर को पा गये हैं। मंचि दण्डनाथ एक नयी शक्ति बनकर सम्मिलित हुए हैं। कुमार बिट्टियण्णा, डाकरस के बेटे मरियाने और भरत अपने बुजुर्गों से भी अधिक शक्ति-सामर्थ्य से सम्पन्न हो रहे हैं। कुमार बल्लाल भी शीघ्र ही एक निपुण योद्धा हो जाएगा। राष्ट्र रक्षा का कार्य योग्य एवं दक्ष हाथों में है। इसलिए सन्निधान प्रत्येक केन्द्र में भी यदि कुछ समय रहेंगे तो सम्पूर्ण राज्य में महाराज के सान्निध्य के प्रभाव से नवीन चेतना उत्पन्न होगी। इसी दृष्टि से इस युद्ध की समाप्ति के बाद कुछ समय तक सन्निधान यहीं मुकाम करें

—मेरी ऐसी अभिलाषा है।" शान्तलदेवी ने कहा।

"वही हो। तुम्हारी सलाह योग्य है। इस युद्ध के बाद सब एक बार बेलापुरी में मिलेंगे। आगे सुरक्षा-व्यवस्था के विषय में एक नयी योजना भी तो बनानी पड़ेगी। तब कहाँ कितने दिन रहना होगा—इस बात का भी निर्णय कर लेंगे।"

"वह सब निर्णय जो भी हो, सन्निधान को पहले यहाँ मुक़ाम करने पर सलाह देनी होगी।" शान्तलदेवी ने कहा।

"यादवपुरी पर देवी की इतनी ममता क्यों ?"

"हाँ प्रभु, मायका छोड़ने के बाद मेरा जीवन इसी स्थान पर विकसित हुआ, सन्निधान के सान्निध्य में और सहवास में रहकर महत्त्वाकांक्षा आसमान तक पहुँची यहीं पर, इसी यादवपुरी से लगी पर्वत-श्रेणी के शिखरों पर; मन में किसी भी तरह का ऊहापोह न रखकर, जीवन में किसी तरह के दायित्व के बोझ के बिना, आड़े-तिरछे विचारों से दूर, सुखी जीवन व्यतीत करने का स्थान मेरे लिए यहीं रहा है। इसलिए···"

"क्यों रुक गयीं देवी ?"

"इसे पूरा करनेवाले तो आप ही हैं न ?"

"वही हो, तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही हो !" बिट्टिदेव ने कहा।

आठ-दस साल पूर्व के नये जीवन की वे स्मृतियाँ साकार होने लगीं बिट्टिदेव को। उस दिन की वह संध्या, पहाड़ के बीच स्थित नरसिंह भगवान् का दर्शन, शत्रु के पेट को चीरनेवाली शक्ति प्रदान करने की वह प्रार्थना, संध्या राग में पहाड़ चढ़ना और वहाँ का वह प्रशान्त वातावरण—ऐसे प्राकृतिक सौन्दर्य के मध्य स्थित मण्डप में अपने को भूलकर सुखानुभव करने के दिन का स्मरण कर, उस मण्डप में बैठकर उस पहाड़ पर की पुरानी घटनाओं की याद करते हुए सन्तुष्ट होकर वे मुक़ाम पर लौटे।

दूसरे दिन वहाँ से यात्रा आगे बढ़ी।

आगे यह टोली उस जगह पहुँची जहाँ सबने सोमेश्वर का दर्शन कर वहाँ घटी उस दिन की घटना की याद की। यह वही जगह थी जहाँ चट्टला ने अप्पाजी और सन्निधान की प्राणरक्षा की थी। उस पूर्ण घटना का वर्णन बम्मलदेवी को सुनाते हुए वे आगे बढ़े। तब उतने साहस के साथ काम करनेवाली चट्टला आज इन सब बातों को सुन लजा रही थी। फिर भी राष्ट्र के महासन्निधान के मुँह से इन प्रशंसा भरी की बातों को सुनकर वह अपने को कृतार्थ मानती रही।

रास्ते में अधिक समय नष्ट न करके, शीघ्र ही यह टोली अपनी प्रधान सेना के साथ सम्मिलित हो गयी।

आगे के युद्धारम्भ के विषय में, सन्निधान के शिविर में ही, उसी रात विचार-विनिमय करने के लिए सभा बैठी। चर्चा के बाद यों निर्णय हुआ : "सेना को तीन टुकड़ियों में विभाजित किया जाय। अश्वदल की प्रधान टुकड़ी महाराज और पट्टमहादेवी के नेतृत्व में बीच में से आगे बढ़े, और शेष दोनों, अश्व की तेज गति के कारण, एक पुनीसमय्या के नेतृत्व में और दूसरी टुकड़ी सिंगिमय्या के नेतृत्व में दाएँ-बाएँ आगे बढ़ें; शत्रु-सेना की गति-विधि को समझकर, उसका ध्यान दोनों ओर बँट जाय—इस तरह दो टुकड़ियाँ हो जाएँ ताकि शत्रु-बल कुण्ठित हो। तब महाराज के नेतृत्व में जो अश्वदल है वह आगे बढ़ जाय और शत्रुओं की विभाजित सेना पर दोनों ओर से हमला कर दे। नागिदेव और उदयादित्य केन्द्र शिविर में रहें, आवश्यकता अनुसार शस्त्रास्त्र आदि भेजते रहने की व्यवस्था में लगे रहें। मंचि दण्डनाथ, अनन्तपाल और सवारनायक मायण महाराज के साथ रहें।"

निर्णय के अनुसार व्यूह के दायें-बायें पदाति सैनिक दूसरे दिन प्रातःकाल ही चल पड़े। पैदल सेना की संख्या अधिक थी, उसकी गति भी धीमी होने के कारण महाराज शिविर केन्द्र में ही अपने मुक़ाम पर रहे।

उधर राजेन्द्र प्रिथुवी कोंगाल्व की सेना को अच्छी तरह मालूम था कि पोय्सल सेना बहुत बड़ी है। इसलिए उन्होंने शीत-युद्ध करना शुरू कर दिया था। अपने गुप्तचरों से पोय्सलों की सेना की गतिविधि को जानने के बाद, वह अपनी सेना के दो भाग कर पूर्व और पश्चिम की ओर भेजकर, ख़ुद पर्वतश्रेणी के प्रदेशों में पहाड़ियों की आड़ में रहकर शत्रुसेना को जड़ से उखाड़ फेंकने की घात में रहा। पोय्सलों को उसकी यह नयी चाल मालूम नहीं थी। इसलिए उनकी सेना की दोनों टुकड़ियाँ दाएँ-बाएँ नियोजित रीति से आगे बढ़ती गयीं। शत्रु-सेना न मिलने पर वे कुछ निराश हुए। बड़ी सतर्कता से दाएँ-बाएँ चल रही ये दोनों टुकड़ियाँ आगे जाकर आपस में टकरा गयीं। शत्रु ने वही काम किया जो ये स्वयं करना चाहते थे। दोनों ओर से शत्रुसेना बढ़ आयी। सिंगिमय्या और पुनीसमय्या किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। फिर भी धीरज के साथ युद्ध किया। शत्रु के लिए बड़ी अच्छी जगह मिल गयी थी। इससे दोनों तरफ़ युद्ध करने की जरूरत आ पड़ने से पोय्सल सेना के लिए बड़ी कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। उन्होंने यह आशा की थी कि महाराज की अश्व-सेना आ जाय तो कुछ कर सकते मगर वे निराश हो गये। शत्रु ऊपर से तीरों की वर्षा कर रहे थे। अब तक कई पोय्सल वीर सैनिक इन तीरों के शिकार हो चुके थे। पोय्सल के तीरंदाजों ने भी तीर चलाये मगर इसमें उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली, क्योंकि वे पहाड़ियों पर बड़े-बड़े पत्थरों की आड़ लिए हुए थे।

पुनीसमय्या और सिंगिमय्या दोनों इस विश्वास से उत्साह के साथ युद्ध में उतर पड़े थे कि जीत हमारी होगी, मगर अब विजय पाने के बारे में उन्हें शंका होने

लगी। इतने में छलांग भरती हुई घुड़सेना की एक छोटी टुकड़ी आ गयी। उसका नायक था सवारनायक मायण। उन्होंने दोनों को महाराज का सन्देश पहुँचाया। सन्देश मिलते ही सारी सेना आठों दिशाओं में बँटकर तेज़ी से चल पड़ी।

यह देख कोंगाल्वों ने समझा कि पोय्सल सेना तितर-बितर हो गयी। इससे उन्हें बहुत ख़ुशी हुई, परन्तु उनकी यह ख़ुशी बहुत समय तक नहीं रही। देखते-ही-देखते उनकी दो टुकड़ियों के पीछे से पोय्सल सेना हमला करती हुई आगे जा बढ़ी। युद्ध की गति उल्टी-सीधी हो गयी। युद्ध की रीति के बदलने से कोंगाल्व हक्का-बक्का रह गये। हालत ऐसी हो गयी कि युद्ध इधर से शुरू करें या उधर से, यहाँ करें या वहाँ। वे दिङ्मूढ़ से हो गये। इस बार पोय्सलों का हौसला ऊँचा रहा, उनमें उत्साह की लहर दौड़ गयी। दो हिस्सों में बटी कोंगाल्वों की सेना पोय्सलों के घेरे में आ गयी।

लौहकवच और शिरस्त्राण से सजी पोय्सल अश्व-सेना को पीछे हटाना कोंगाल्व तीरंदाजों से न हो सका। उनके सारे तीर लौहकवच से लगते और टूटकर जमीन पर जा गिरते। पोय्सल अश्वसेना हावी हो गयी। कोंगाल्व सेना दिङ्मूढ़ हो गयी और पोय्सल अश्वसेना के पदाघात से रौंद दी गयी। राजेन्द्र प्रिथुवी ने अपनी सेना की हालत पहाड़पर से देखी। वहीं से उसने अपनी रक्षक सेना को पीछे हटने का आदेश दिया। अपने योद्धाओं को उत्साह से भरनेवाले कोंगाल्वों के युद्ध के नगाड़े शान्त हो गये। कोंगाल्व सैनिकों के दिल टूट गये। हार को निश्चित समझकर भी वीर गति के इच्छुक कोंगाल्व सैनिक लड़ते हुए शहीद हो गये। जिन्हें जीने की चाह थी वे लुक-छिपकर भाग गये।

बिट्टिदेव विजयी हुए। घोष के साथ बाजे बज उठे। उससे दसों दिशाएँ व्याप्त हो गयीं। युद्धभूमि में शार्दूलपताका फहराने लगी। पोय्सल सैनिक भी विजय घोष करने लगे। पुनीसमय्या, सिंगिमय्या, मंचि दण्डनाथ—ये सब सन्निधान के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए पहाड़ की ओर देख रहे थे। सन्निधान के बदले सवारनायक मायण पहुँचा। तीनों दण्डनायकों को कुछ दूर ले जाकर उनसे कहा, "सन्निधान केन्द्र शिविर में हैं। सैनिकों को धीरे-धीरे लौटने की आज्ञा देकर आप लोग मेरे साथ शीघ्र चलें।"

उसके कहने के ढंग से लगता था कि कुछ घबड़ाने जैसी बात हो गयी है।

मंचि दण्डनाथ ने धीरे से पूछा, "क्या बात है?"

मायण ने कहा, "भाग्य की बात है कि ऐसी कोई अनहोनी बात नहीं हुई। आज अगर बम्मलदेवी न होतीं तो पता नहीं क्या होता? अब चलिए, देर न करें। हमारी जीत की ख़बर सुनने के लिए सन्निधान और पट्टमहादेवी प्रतीक्षा में हैं।"

"हम सब स्वयं सन्निधान के आने की प्रतीक्षा में थे।"

"अब वे आने की दशा में नहीं हैं। चलिए। योद्धाओं को जल्दी सूचित कर दीजिए। मैं आपकी प्रतीक्षा किये बिना पहले ही चल रहा हूँ। सैनिकों में घबड़ाहट न आने पावे।"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना मायण ने अपने घोड़े पर सवार हो एड़ लगायी। घोड़ा आसमान से बातें करने लगा।

पुनीसमय्या ने सैनिकों से कहा, "सैनिको! आप सब ने अपने प्राणों की आशा छोड़कर जमकर युद्ध किया और राष्ट्र को विजय से विभूषित किया। महाप्रभु ने आप के इस साहसपूर्ण कार्य की हार्दिक प्रशंसा करते हुए यह सन्देश भेजा है कि अब आप लोग केन्द्र शिविर की ओर लौट पड़ें। वहाँ वे प्रत्यक्ष आप लोगों से मिलेंगे और स्वयं बधाइयाँ देंगे। जल्दी आने के लिए उन्होंने हमें आदेश भेजा है। अतः हमारे अश्वदल की प्रधान टुकड़ी यहाँ रहकर सतर्क हो निगरानी रखे। यह टुकड़ी पटवारी बोकण के अधीन रहेगी।" सैनिकों को यों आदेश देने के बाद पटवारी बोकण को जो बताना था उन्हें बताकर, सिंगिमय्या और मंचि दण्डनाथ के साथ पुनीसमय्या केन्द्र-शिविर की ओर चल पड़ा।

महाराज के डेरे के बाहर के घेरे में चारों ओर पहरेदार सशस्त्र पहरा दे रहे थे। एक सिपाही इन दण्डनायकों के आने की ख़बर लेकर अन्दर गया और समाचार सुनाकर अनुमति पाकर लौट आया। बाद में तीनों दण्डनाथ अन्दर गये। महाराज बिट्टिदेव पलंग पर लेटे थे। पटरानी शान्तलदेवी पलंग के नहागे एक दूसरे आसन पर बैठी थीं। बम्मलदेवी वहाँ से कुछ दूर पर एक दूसरे आसन पर बैठी थी। चट्टला तम्बू के ही अन्दर के दरवाज़े पर खड़ी थी। चारुकीर्ति पण्डित के वैद्यवृत्ति छोड़कर राज्य से चले जाने के बाद, जगदल सोमनाथ पण्डित राजमहल के वैद्य बन गये थे। वे युद्ध-शिविर ही में रहे, इसलिए महाराज को ठीक वक़्त पर आवश्यक चिकित्सा मिल गयी थी। वे भी वहीं एक दूसरे आसन पर विराज रहे थे।

डेरे के अन्दर प्रवेश करते ही तीनों ने झुककर प्रणाम किया। बिट्टिदेव ने प्रसन्न मुद्रा लाने का प्रयत्न कर उन्हें इशारे से बताया कि बैठें, और शान्तला की ओर देखा।

शान्तलदेवी ने कहा, "दण्डनाथ पुनीसमय्याजी, हमारी विजय का समाचार मायण से मिल गया है। पूर्व सूचना के अनुसार, सन्निधान को वहीं आप लोगों से मिलने के लिए पधारना चाहिए था, परन्तु अब आप लोगों को वह सन्तुष्टि नहीं दे सके। यदि यह पल्लव राजकुमारी बम्मलदेवी आज न होतीं तो हम सन्निधान के संदर्शन भाग्य को भी खो बैठते। पोय्सल पट्टमहादेवी के सुहाग सिन्दूर को आज उन्होंने बचा लिया। हम उनको अपनी कृतज्ञता किन शब्दों में और कैसे प्रकट करें, समझ में नहीं आता। आश्रय की खोज में यहाँ आयीं, आश्रय चाहा। उन्हें

आश्रय दिया —यह अहंकार हममें हुआ होगा, इसीलिए यह घटना ऐसी हुई। लगता है, भगवान् के द्वारा पूर्वनियोजित था कि हमारे सौमंगल्य को बचाने ही के लिए उन्हें यहाँ बुलवा दिया। आश्रय पाने के लिए यहाँ आना शायद एक बहाना है। साधारणत: मानव में उपकृति की याद बहुत समय तक टिक कर नहीं रहती। कृतज्ञता की भावना को स्थाई बनाये रखने की इच्छा हृदय में होने पर उसे एक स्पष्ट रूप देना चाहिए। इसलिए मैं सन्निधान के सम्मुख अपनी इच्छा प्रकट किये देती हूँ। बाद में राजधानी लौटने पर मन्त्रणा-सभा में उस पर विचार कर निर्णय कर लें। सन्निधान की रक्षा ही पोय्सल सिंहासन की रक्षा है। इस कर्त्तव्य को अपने प्राणों की परवाह न करके उन्होंने निभाया है। इसलिए आसन्दीनाडु पाँच-सौ परगना पल्लव राजकुमारी बम्मलदेवी को देकर पोय्सलों के आश्रय में वहाँ अधिकार निर्वहण करें—इसके लिए उन्हें योग्य आदेश दें। उन्होंने जो महान् कार्य किया है उस कार्य के अनुलक्ष्य में यह एक अल्प भेंट मात्र है।"

यह बात सुनते ही बम्मलदेवी के शरीर में बिजली-सी दौड़ गयी। उसका हृदय धड़क उठा। अपनी अन्तरंग की बात को खुलकर कह सकने की हालत में नहीं थी वह, इसलिए उसने मंचि दण्डनाथ की ओर देखा।

मंचि-दण्डनाथ बड़े इंगितज्ञ थे। राजलदेवी से बम्मलदेवी के अन्तरंग की बात उन्होंने जान ली थी। फिर भी इस तरह की बात कह सकें—इतनी मिलनसारी या ऐसा विश्वास उत्पन्न नहीं हुआ था। चूँकि वह बात को समझते थे, इसलिए उठ खड़े हुए; झुककर प्रणाम किया और बोले, "हम सन्निधान की उदारता के लिए कृतज्ञ हैं। राजकुमारीजी को इस तरह की कोई चाह नहीं है। आश्रय की आशा लेकर आये। हम पर विश्वास पाकर हमें आश्रय दिया गया। हम कृतार्थ हुए। हमें यह बहुत बड़ी भेंट है। अभी हम जैसे हैं वैसे ही रहने देने का आदेश सन्निधान दें। सन्निधान ऐसा न समझें कि हमने सन्निधान की उदारता को अस्वीकार किया है, धृष्टता की है। ये सब ऐसी बातें हैं जिनका विवेचन जल्दबाजी में नहीं कर सकते। राजकुमारी बम्मलदेवी सन्निधान की प्राणरक्षा में सहायक बन सकीं—इस तरह का अवसर प्राप्त होने पर वे अपने को बड़ी भाग्यशालिनी मानती हैं। वे समझती हैं कि इससे बढ़कर उनका और क्या भाग्य हो सकता है। मैं उन्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ। सन्निधान के समक्ष अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में भी इस उदारता के सामने संकोच का अनुभव कर रही हैं। कर्त्तव्य-पालन का महत्त्व उससे प्रतिफल प्राप्त करने में नहीं है। प्राप्त हो सकने-वाले प्रतिफल से दूर रहने में है। इसलिए अब यह बात यहीं समाप्त करना अच्छा है। परन्तु हम इस बात को जानने के लिए अतीव उत्सुक हैं कि ऐसी क्या बात हुई।"

मंचि दण्डनाथ की बातें सुनने के बाद शान्तलदेवी ने कहा, "उस सम्बन्ध

में उन्हीं से पूछकर जान लीजिये। हमारे सामने दिल खोलकर वे नहीं बता सकेंगी।" फिर बम्मलदेवी की ओर मुड़कर प्रश्न किया, "है न पल्लव-राजकुमारीजी ?"

सबकी दृष्टि बम्मलदेवी की ओर जा लगी।

बम्मलदेवी ने एक हल्की-सी मुस्कराहट के साथ सबकी ओर देखा। फिर पलंग पर लेटे बिट्टिदेव की ओर देखा। क्षणभर के लिए दोनों की नज़रें एक हो गयीं। उसने उनकी आँखों में कृतज्ञता के साथ, कुछ और भाव भी देखे। उसका सारा शरीर स्पन्दित हो उठा। वह धीरे से उठी और तम्बू के द्वार की ओर बढ़ गयी।

"चट्टला, इन्हें जहाँ ठहराया है वहाँ तक भेज आओ।" पट्टमहादेवी ने कहा।

बम्मलदेवी रुकी और मुड़कर बोली, "चट्टला, पट्टमहादेवी की आज्ञा का पालन हो। तुम सबको मेरे मुक़ाम पर बुला लाओ। मुझे जाकर सारी तैयारी करना है। उनके साथ तुम तो आयी ही थी, तुम सब बता दो। मुझसे अधिक अच्छा जानती हो। तुम ही ने तो पट्टमहादेवी जी को सब कुछ बताया है। थोड़ी देर के पश्चात् तुम इन्हें ले आओ।" कह बम्मलदेवी ने कुछ झुककर प्रणाम किया और अपने मुक़ाम की ओर चल दी।

दण्डनाथ पुनीसमय्या ने कहा, "मंचि दण्डनाथ की अश्वसेना की फुरती से हमारा नुकसान कम हुआ। अबकी विजय के लिए उनके योद्धाओं की मदद बहुत हद तक कारण है। उन्हीं में से कुछ योद्धाओं को बोकण की देखरेख में वहाँ तैनात कर आया हूँ। अब हम जहाँ के तहाँ न ठहर कर आगे बढ़ें और नीलगिरि को अधिकार में कर लें, यह उचित होगा। सन्निधान यदि मान लें तो मैं स्वयं इस विजय-यात्रा पर जाऊँगा।"

"इन सभी बातों पर यादवपुरी लौटने के बाद विचार कर निर्णय करेंगे। सैनिक उत्साह से भरे हैं, यह ठीक है। अभी उन्हें एक दूसरे युद्ध के लिए प्रोत्साहन देकर उकसाएँगे तो उनके मन में कुछ कड़आपन उत्पन्न हो जाएगा। वह अच्छा नहीं। अभी तो उन लोगों को यह आनन्द और उत्साह लेकर घर पहुँचकर पारिवारिक सुख अनुभव करने दें। भविष्य में यह आवश्यक अवसरों पर प्रोत्साहित करने में विशेष सहायक होगा। अभी फिर से युद्ध करने के लिए प्रेरित करने पर उनका उत्साह भंग हो जाएगा, एक कडुआपन आ जाएगा। शुरू-शुरू में कडुआपन न दिखने पर भी, अन्दर-ही-अन्दर वह बढ़नेवाली सौतेली मत्सरता-जैसा रूप धारण कर लेगा," शान्तलदेवी ने कहा।

"सौतेली मत्सरता की बात अब क्यों ?" किसी धुन में रहनेवाले बिट्टिदेव के मुँह से अचानक निकला।

"यह केवल तुलनामात्र है। मात्सर्य के लिए सौत को होना भी चाहिए न ?

मतलब यही हुआ कि पुनीसमय्याजी ने जो कहा वह सन्निधान के ध्यान में शायद नहीं आया, कुछ और बात का सन्निधान के दिमाग़ में मन्थन होता रहा होगा। सो भी विश्राम या बातचीत समाप्त करने की सूचना है। चट्टला ! आप सबको पल्लव राजकुमारी के मुक़ाम पर ले जाओ।" कहकर शान्तलदेवी ने वहीं उस बात को समाप्त कर दिया।

तीनों दण्डनाथ उठकर प्रणाम कर वहाँ से चट्टला के साथ चले गये।

वहीं एक सप्ताह तक विश्रान्ति में रहने के बाद, पहले यादवपुरी की ओर जाने की बात सोची गयी। और तब जगदल सोमनाथ पण्डित की राय लेकर तुरन्त यात्रा करने का निश्चय हुआ।

उदयादित्य और सिंगिमय्या दोनों पहले यादवपुरी जा पहुँचे और महाराज तथा पट्टमहादेवी के स्वागत के लिए आवश्यक व्यवस्था की। उसी दिन बेलापुरी और दोरसमुद्र में भी विजयोत्सव बड़े धूमधाम से मनाये जाने की व्यवस्था करने का निर्णय होने के कारण उन्होंने वहाँ के व्यवस्थापकों के पास ख़बर भेज दी थी। राज्य के प्रधान नगरों में भी विजयोत्सव समारम्भ की व्यवस्था की गयी थी।

योजना के अनुसार सब कार्य सम्पन्न हुए। पोय्सल राज्य की प्रजा आनन्द-विभोर थी। पोय्सल व्याघ्र-पताका नभोमण्डल की ओर उड़नेवाले गरुड़पक्षी के पंख की भाँति आसमान को छूती हुई फहर रही थी।

"पोय्सल सन्तानश्री चिरायु हों" की ध्वनि दिग्दिगन्त तक व्याप्त होकर प्रतिध्वनित हुई।

यादवपुरी की जनता महाराज और पट्टमहादेवी को प्रत्यक्ष पाकर विशेष रूप से आनन्दित थी।

विजयोत्सव मंच पर महाराज बिट्टिदेव और पट्टमहादेवी शान्तलदेवी ऊँचे सजे आसनों पर विराजमान थे। वेदी के बाएँ एक आसन पर अकेली बम्मलदेवी बैठी हुई थी। वेदिका के दूसरी ओर उदयादित्य विराजमान थे। वेदिका के निचले स्तर के आसनों पर दोनों तरफ दण्डनाथ बैठे हुए थे।

राजमहल के विस्तृत प्रांगण में निर्मित विशाल हरे-भरे मण्डप में केवल यादवपुरी के ही निवासी नहीं, इर्द-गिर्द के सभी ग्रामों के लोग अधिकाधिक संख्या में आये बैठे थे। उनके उस उत्साह का प्रतिफल राज-दम्पती का संदर्शन था।

अपने राजा और रानी को देखना सौभाग्य की बात समझनेवाले उन लोगों ने एक कण्ठ हो घोषित किया, "महाराज बिट्टिदेव चिरायु हों", "पट्टमहादेवी शान्तलदेवीजी चिरायु हों", "पोय्सल व्याघ्रध्वज आचन्द्रार्क इसी तरह सदा फहरता रहे"...

विजयोत्सव की विधियाँ समाप्त होते ही दण्डनाथ सिंगिमय्या अपने आसन से उठ खड़े हुए। सिंहासन को प्रणाम किया, और उपस्थित जनस्तोम को प्रणाम कर बोले, "पोय्सल राज्य के आदरणीय प्रजा-जनो! सन्निधान के आदेश के अनुसार, मैं अब आप महानुभावों के समक्ष कुछ बातें कहने के लिए खड़ा हुआ हूँ। इन बातों को स्वयं सन्निधान को ही कहना था। अब के युद्ध में जीत हमारी हुई। इसका मुख्य कारण हमारे सैनिकों की निष्ठा और हमारी पट्टमहादेवीजी का रणव्यापार में चातुर्ययुक्त योग्य दिशा-दर्शन है। उनके निर्देश के अनुसार ही हमारी सेना अगर नहीं चलती तो शत्रु-सेना को भेदकर आगे बढ़ना और विजय पाना असाध्य कार्य होता। यह बात कहते हुए मेरा हृदय आनन्द से फूल उठता है। पट्टमहादेवी मेरे रिश्ते की रक्त सम्बन्ध से भाँजी हैं, लेकिन इसका यह कारण नहीं। रिश्ते की होने पर भी, उम्र की दृष्टि से बहुत छोटी होने पर भी, युद्धनीति में अपने को निष्णात मानकर गर्व करनेवाले हम पुरुषों को भी उन्होंने स्त्री होकर भी मार्गदर्शन देकर एक आदर्श उपस्थित किया है। इस देश की पट्टमहादेवी के स्थान पर उनका विराजना तो इस देश के लिए महान् सौभाग्य की बात है और यह हमारा महाभाग्य है कि हम सब उनके साथ हैं। जैसे हमारे इस विजय के लिए पट्टमहादेवी कारण हैं वैसे ही हमारे महासन्निधान को बचाने के महान् भाग्य की प्राप्ति के लिए पल्लव राजकुमारी बम्मलदेवीजी कारण हैं। वे आप लोगों के लिए अपरिचित हैं। फिर भी इस युद्ध के वक्त वे अगर न होतीं तो क्या हालत हुई होती, कहा नहीं जा सकता। सन्निधान यहाँ हम सब के समक्ष बैठे हैं। फिर भी युद्ध के आघात से अभी पूर्ण स्वस्थ होना है। अपने प्राणों की आशा त्यागकर सन्निधान का घोड़ा जाँघ में ज़ख्मी होकर जब गिरने ही वाला था तो अपने घोड़े को सरपट दौड़ाकर वे सन्निधान के पास जा पहुँचीं और उन्हें अपने घोड़े पर सुरक्षित स्थान पर ले आयीं। यह आश्चर्य की बात भी है और प्रशंसनीय विषय भी। दो-चार क्षणों की देरी हो जाती तो नीचे गिरे सन्निधान शत्रुओं के तीरों के शिकार हो जाते। पल्लव राजकुमारीजी के बायीं बाँह पर तीर लगने पर भी अपने पाँवों को ढीला न छोड़कर सन्निधान की रक्षा का कार्य निबाहा है। वास्तव में यह एक अद्भुत करामात ही है। इस तरह इन शक्ति-द्वय ने विजय और संरक्षण का कार्य दक्षता के साथ निर्वहण करके पोय्सलों की कीर्ति को संजोये रखा है। ये दोनों महामानिनी पोय्सल देश के नारी-समूह के लिए आदर्श और चेतनास्वरूप हैं। उनकी ही तरह देश के स्त्री

और पुरुष देश के लिए मर मिटने को तैयार हो जायें तो हमारे इस राष्ट्र की ओर कोई आँख भी नहीं उठा सकेगा।"

"पल्लव राजकुमारीजी के इस महान् कार्य की साधना के उपलक्ष्य में सांकेतिक रूप से आसन्दी—पाँच सौ परगने के प्रदेश को भेंट में देने का निश्चय सन्निधान ने किया है। सन्निधान का यह कार्य प्रजा स्वीकार करेगी—यह विश्वास किया जाता है।" इतना कहकर हाथ जोड़कर सबको प्रणाम किया और साथ ही सन्निधान को भी प्रणाम किया।

लोगों ने आनन्दित हो करतल ध्वनि की। बम्मलदेवी चक्कर में पड़ गयी। वह उठ खड़ी हुई, कहना चाहती थी कि उसे यह सब कुछ नहीं चाहिए। किन्तु मुँह से शब्द भी नहीं निकला। वैसे ही सिर झुकाकर खड़ी रही।

"पल्लव राजकुमारी को सन्निधान का निर्णय शिरोधार्य होगा। विन माँगे जो मिला है उसे वर मानना चाहिए।" कहती हुई शान्तलदेवी उठ खड़ी हुईं। सुरिगेय नागिदेवण्णा और अन्य दण्डनायक भी उठ खड़े हुए। सोने का परात लिये हरकारे ने परात पर ढँका रेशम का वस्त्र हटाया। उसमें से माला लेकर शान्तलदेवी ने बम्मलदेवी को पहनायी। लोगों ने खुशी से तालियाँ बजायीं।

बम्मलदेवी कृतज्ञता वश पुलकित हो उठी। भावना के आवेग में बोली, "दीदी, यह मेरी योग्यता और क्षमता के लिए बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है," कहकर उसने शान्तलदेवी के पैर छूकर प्रणाम किया।

उन्हें उठाती हुई शान्तलदेवी ने कहा, "बहिन, सन्निधान की प्राण-रक्षा करनेवाले तुम्हारे ये बाहु वज्र के समान सबल हैं। इस बाहुबल के होते हुए तुम किसी भी तरह का दायित्व वहन कर सकती हो, इस बात को तुमने प्रमाणित कर दिखाया है। पोय्सल सिंहासन कृतज्ञ है।"

शान्तलदेवी ने परात में से शासन-पत्र निकालकर बम्मलदेवी को दिया और सन्निधान के पास जा बैठीं। हरकारा पीछे की ओर सरक गया। सुरिगेय नागिदेवण्णा वगैरह भी अपने-अपने स्थान पर जा बैठे।

बम्मलदेवी चित्रवत् शासनपत्र हाथ में लिये माला पहने खड़ी रही।

बिट्टिदेव ने मंचि दण्डनाथ की ओर देखा। दण्डनाथ अपने आसन से उठकर सन्निधान के पास आये। बिट्टिदेव ने कहा, "पल्लव राजकुमारीजी कुछ कहना चाहती हैं; लेकिन लगता है, संकोच के कारण कह नहीं पा रही हैं। निस्संकोच होकर दिल खोलकर कहें तो हमें भी सन्तोष होगा। मंचि अरसजी! उनसे कहिए कि संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं।"

उन्होंने कुछ झुककर प्रणाम कर बम्मलदेवी के समीप जाकर कान में धीरे से कहा, "संकोच की जरूरत नहीं। कह दीजिए।"

बम्मलदेवी ने वह शासनपत्र उनके हाथ में पकड़ाकर, राज-दम्पती को प्रणाम

किया, शेष सभासदों को भी प्रणाम कर, उपस्थित जन-समुदाय को सम्बोधित करती हुई बोली, "कृतज्ञता से मेरा हृदय भर उठा है। मुँह से बात ही नहीं निकल रही है। चट्टला पहले ही शत्रु-सेना का रहस्य न बतलाती तो आज मैं इस गौरव का पात्र नहीं बनती। सन्निधान को बचाने का सौभाग्य भगवान् ने मुझे दिया, इतने से मैं सन्तुष्ट हूँ। शायद यह किसी पूर्व जन्म का सम्बन्ध रहा हो। इससे मुझे कृतकृत्य होने की तृप्ति मिली है। इसमें वैयक्तिक श्रद्धा ने अपना कर्त्तव्य निभाया है। वह प्रकारान्तर से राष्ट्रनिष्ठा भी हो सकती है। इसे और अधिक कहना उचित नहीं है। हम आश्रय की माँग लेकर आये, हमें इस राज्य ने आश्रय दिया। हमें अपना बनाया। मेरा सम्पूर्ण जीवन सन्निधान की सेवा के लिए धरोहर है। मैं इस धरोहर को सन्निधान की सेवा में अर्पण कर सकूँ, भगवान् मुझ पर इतनी कृपा करें। मेरी भगवान् से यही प्रार्थना है। इन बातों के साथ सन्निधान और पट्टमहादेवी को कृतज्ञतापूर्ण प्रणाम समर्पित करती हूँ। यह आसंदी पाँच सौ परगना जो भेंट में प्राप्त है वह जैसा है वैसा ही रहेगा। निमित्तमात्र के लिए मेरा नाम जुड़ा होगा। मैं सन्निधान के साथ रह सकूँ, इतनी कृपा हो।" कहकर वह बैठ गयी।

इतने में एक हरकारे ने आकर उदयादित्य से इशारे से कुछ कहा। उदयादित्य ने भी इशारे से ही कहा, "ठीक है, तुम जाओ।" और उठ खड़ा हुआ, बोला, "हमने सोचा कि इस समारोह के अवसर पर कुछ मनोरंचन का भी कार्यक्रम हो तो अच्छा। इस यादवपुरी में कोई उन्नत शिक्षणप्राप्त नर्तकी नहीं मिल रही है; हम सोच ही रहे थे कि मनोरंजन का कार्यक्रम कैसे हो कि इतने में आलुप राज्य की तरफ से एक नर्तकी के यहाँ आने की खबर मिली। सुना कि वह नर्तकी सन्निधान के सामने अपनी नर्तनकला का प्रदर्शन करना चाहती है। उसने अपनी अभिलाषा प्रकट करते हुए इस आशय की प्रार्थना भी की, इसलिए उसके नृत्य-प्रदर्शन की व्यवस्था मैंने की है। उम्र अभी छोटी है। फिर भी सुनते हैं कि अच्छी शिक्षा पायी है। इसके लिए सन्निधान की अनुमति चाहता हूँ।"

अनुमति मिल गयी। नर्तकी अपने वाद्यवृन्द के साथ प्रस्तुत हुई। अपने नाट्य से उसने सभा-सदों को चकित कर दिया। शान्तलदेवी भी चकित होकर उस नाट्य को देखती रहीं। बीच में एक बार महाराज की तरफ झुककर बोलीं, "पता नहीं कहाँ, इस नर्तकी को देखा-सा जान पड़ता है।"

"मुझे भी यह चेहरा परिचित-सा लगता है। कौन है, कहाँ देखा, यह सूझ नहीं रहा है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"नृत्य की गति, पदचाप, मुद्रा की रीति, भंगिमा—यह सब बलिपुर के सम्प्रदाय की-सी ही लगती है। आलुप राज्य में यह बलिपुर का संप्रदाय कैसे

पहुँचा होगा ?" शान्तला ने जिज्ञासा की।

"बाद में बुलवाकर दर्याफ़्त करेंगे। वह जो भी हो, नृत्य हमें बहुत अच्छा लगा।"

"नृत्य अच्छा लगा या नर्तकी अच्छी लगी ?"

"पट्टमहादेवी को ईर्ष्या की बीमारी भी है यह हमें पता न था।"

"सन्निधान की दृष्टि आजकल अपनी स्थिरता खोती हुई मालूम पड़ रही है।"

"तुम्हारा मतलब ?"

"चलो छोड़ो इस बात को। वहाँ देखिए। रुक्मिणी और सत्यभामा की खींचा-तानी में कृष्ण की जो हालत बनी, नर्तकी उसे दिखा रही है।"

"दोनों की दृष्टि उधर गयी। कहीं से बात उठी, कहीं चली गयी। लेकिन अब वहीं वह बात स्थगित हो गयी।

नाट्य समाप्त हुआ। लोगों ने ताली बजाकर अपना सन्तोष अभिव्यक्त किया। नर्तकी सभामंच पर चढ़कर सन्निधान के निकट जाने लगी। शान्तलदेवी ने अपलक नर्तकी को देखा।

बिट्टिदेव ने कहा, "उदय ! इस नर्तकी को पुरस्कार देकर भेज दो। हमारे पास तक आने की जरूरत नहीं। ऐ नर्तकी, वहीं रहो।" उन्होंने शान्तला की ओर देखा।

नर्तकी सिर झुकाकर पल्लू मरोड़ती वहीं रुक गयी।

बिट्टिदेव ने पूछा, "तुम्हारा नर्तन बहुत अच्छा था, पट्टमहादेवी कह रही हैं कि यह बलिपुर का सम्प्रदाय है। क्या यह सच है ?"

नर्तकी ने "हाँ" का संकेत सिर हिलाकर दिया, बोली नहीं।

"तो यह बलिपुर का सम्प्रदाय आलुम राज्य में कैसे पहुँचा ?" बिट्टिदेव ने फिर से सवाल किया।

नर्तकी ने जवाब नहीं दिया।

"सन्निधान के सामने कहते हुए डर लग रहा होगा।" उदयादित्य ने सूचित किया।

"उसके पास जाकर तुम खुद पूछकर बताओ।" बिट्टिदेव ने कहा।

उदयादित्य नर्तकी के पास गया। उसने कान में कुछ कहा।

"बलिपुर के गंगाचारी के शिष्य से सीखा—यही बताती है।"

बिट्टिदेव ने शान्तला की ओर देखा। बोले, "तो मतलब यह कि पट्टमहादेवी के गुरु के शिष्य इस नर्तकी के गुरु हैं।"

शान्तलदेवी ने पूछा, "तुम्हारे गुरु का क्या नाम है ?"

उदयादित्य ने पूछकर बताया, "कहा है कि गुरु का नाम न बताने की आज्ञा

है।"

"ठीक।" कहकर अपने गले की सुवर्णमाला निकालकर, "पोय्सल सिंहासन को यह बहुत पसन्द आया। यह प्रतीक पुरस्कार लो।" कहकर शान्तलदेवी ने हार के साथ हाथ आगे बढ़ाया।

नर्तकी सर झुकाकर धीरे से पट्टमहादेवी के पास जाकर सामने खड़ी हो गयी। अपने हाथ से पट्टमहादेवी ने उसे हार पहना दिया। नर्तकी ने पैर छूकर प्रणाम किया।

तब बिट्टिदेव ने पूछा, "इस नर्तकी ने शायद गुरुदक्षिणा दी होगी न? पट्टमहादेवी की क्या राय है?"

"ओह, वह, वह बहुत पुरानी बात! युवरानीजी ने जो पुरस्कार दिया था उसे मैंने स्वीकर नहीं किया था, उसी पुरानी स्मृति के कारण यह प्रश्न किया, है न?" शान्तलदेवी ने पूछा।

इतने में नर्तकी उठकर दूर जाकर खड़ी हो गयी थी।

बिट्टिदेव ने उदयादित्य से कहा, "उदय! इस नर्तकी से पूछकर बताओ कि उसने गुरुदक्षिणा दी है या नहीं?"

उदयादित्य ने नर्तकी के पास जाकर पूछा और लौटकर कहा, "बताती है कि अभी गुरु दक्षिणा नहीं दी है।"

"तो इस नर्तकी ने अपने परम गुरु की उस परम्परा का पालन न करके सिंहासन के पुरस्कार को स्वीकार किया है। इसका मतलब हुआ कि पट्टमहादेवी की परम्परा का ही उलंघन किया। यह उचित नहीं होगा।" कहकर बिट्टिदेव ने व्याघ्रपदक से अलंकृत हार को उतार कर कहा, "अभी तुरन्त इस नर्तकी के गुरु को यहाँ बुलवाकर इस नर्तकी ही के हाथ से यह गुरुदक्षिणा दिलवायी जाय। ऐसा न होगा तो पट्टमहादेवी ने जो पुरस्कार दिया उसे स्वीकार करना ग़लत होगा।" हार के साथ बिट्टिदेव ने हाथ आगे बढ़ाया।

"यदि गुरु यहाँ उपस्थित न हों तो बेचारी क्या करे?" शान्तलदेवी ने कहा।

उदयादित्य ने नर्तकी की ओर सशंक दृष्टि से देखा।

फिर भी नर्तकी ने घुटने टेककर हाथ आगे बढ़ा दिये।

इस क्रिया का अर्थ समझकर, महाराज से उस हार को ले आकर उदयादित्य ने नर्तकी के हाथ में दिया। नर्तकी ने उस हार को वैसे ही हाथों में लेकर धीरे से पट्टमहादेवी के समक्ष जाकर हार को बढ़ाते हुए कहा, "गुरुवर्य इस शिष्य की दी हुई गुरुदक्षिणा स्वीकार कर अनुग्रह करें।"

नर्तकी की बात सुनकर वेदी पर के और आसपास के सभी जन चकित हो गये।

शान्तलदेवी ने भी चकित होकर देखा उस नर्तकी को। आश्चर्ययुक्त आनन्द

के साथ कहा, "ओह, तुम ? तुम ही; पता ही न लगा कि तुम हो। बात जात बता देती है। स्त्री होकर भी मैं ख़ुद समझती रही कि तुम लड़की ही हो।"

"मतलब क्या है ?" बिट्टिदेव ने आश्चर्य प्रकट किया।

"यह वही, हमारा कुमार बिट्टियण्णा। स्त्री के वेष में सुन्दर षोडशी जैसा लग रहा है। है न ?" शान्तलदेवी ने कहा।

"वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने चकित दृष्टि से नर्तकी के वेषधारी कुमार की ओर देखा। बिट्टियण्णा शरम के मारे जैसे जमीन में गड़ गया। उसके हाथ और वह व्याप्त पदकवाला हार—एक क्षण ज्यों-के-त्यों रहे आये।

"यह साधारण नहीं; बहुत बड़ी साधना की उपलब्धि है।" कहती हुई शान्तलदेवी ने उठकर उस हार को अपने हाथ में लेकर कहा, "कला में अपने शिष्य की इस महान् सिद्धि को देखकर गुरु यह उपहार शिष्य को दे रही हैं। लो, आगे बढ़ाओ अपनी ग्रीवा।"

बिट्टियण्णा ने दो क़दम पीछे हटकर कहा, "यह तो दत्तोपहार होगा। और फ़िर पोय्सल लांछन से युक्त यह कण्ठहार वीरों के गले में शोभा देगा। मुझ जैसे के गले में नहीं। अब की विजय, पट्टमहादेवी के युद्ध-तन्त्र की बुद्धिमत्ता से, और पल्लव राजकुमारी बम्मलदेवीजी के सन्निधान की प्राणरक्षा के साहसपूर्ण कार्य से, हुई है। शस्त्रास्त्र विद्या में वर्षों से शिक्षा देने पर भी हमें युद्धक्षेत्र में न ले जाकर, केवल विजयोत्सव में नृत्य के ही लिए जब सुरक्षित रखा है तब मेरी गुरुवर्या श्री श्री उभयक्रम नृत्य-प्रवीण-संगीत सरस्वती, रण-कार्य में निपुण पट्टमहादेवी जी को ही यह गुरुदक्षिणा स्वीकार्य होना चाहिए। यही न्यायसंगत है। यह सन्निधान की आज्ञा भी है। इस अवसर पर मेरी दो प्रार्थनाएँ हैं। उन्हें निवेदन करने के लिए मुझे अनुमति प्रदान करें।" कहकर बिट्टियण्णा ने झुककर प्रणाम किया।

बिट्टिदेव ने कहा, "पट्टमहादेवी जी कृपया बैठ जाएँ।"

आगे क्या होगा इसकी प्रतीक्षा सभासद कुतूहल से करने लगे।

शान्तलदेवी उस कण्ठमाला को हाथ में ही लिये बैठ गयीं।

बिट्टिदेव ने बिट्टियण्णा की ओर मुड़कर कहा, "हाँ, अब कहो।"

"इस तरह केवल नृत्य के लिए मुझे सुरक्षित न रखकर मेरे पिता चिण्णम दण्डनाथ की एवं मेरी जन्मदात्री माँ चन्दलदेवीजी की मृत्यु समय की इच्छा को पूरा करने एवं पोय्सल राज्य की रक्षा और उसकी प्रगति के ही लिए मैं अपना जीवन अर्पित कर सकूँ—यह अनुग्रह करें। स्वर्गवासी मेरे माता-पिता, अपना यह बेटा बाहु-विन्यास का उपयोग युद्धक्षेत्र में न कर नाट्य-मुद्रा प्रदर्शन में कर रहा है, यह समझकर दुखी न होवें। आप ही लोगों ने मेरे पूज्य पिता की निष्ठा और पराक्रम के विषय में घण्टों वर्णन करके मुझे प्रोत्साहित किया है। गत युद्ध

के समय ही मैं अपने कर्त्तव्य के पालन करने की उम्मीद रखता था। तब मुझे छोटा समझकर यहीं छोड़कर चले गये। मुझे या तो नाट्याचार्य या फिर कार्मुकाचार्य, इनमें से केवल एक बनना है। आज इस विजयोत्सव पर इस बारे में निर्णय हो जाय ऐसी मेरी अपनी विशेष इच्छा है।" इतना कह झुककर प्रणाम कर वह चुप हो गया।

बिट्टिदेव ने पूछा, "यह तो तुम्हारी एक बात हुई। दूसरी बात ?"

"इसका पहले निर्णय हो जाय, बाद में दूसरे के बारे में निवेदन करूँगा।" बिट्टियण्णा बोला।

बिट्टिदेव ने शान्तला की ओर देखा। उन्होंने समझ लिया। धीरे से उठकर सन्निधान के सामने सिर झुकाकर कहा, "कुमार बिट्टियण्णा ने जिन दो विद्याओं को सीखा है उनमें से सिर्फ़ एक का उपयोग करने के लिए आज्ञा चाहता है। उसकी इच्छा के अनुसार निर्णय करेंगे तो दो गुरुओं में किसी एक के प्रति अपचार होगा। यह सोचकर सन्निधान ने वह दायित्व मुझपर छोड़ रखा है। सच है, मैंने इसे नृत्य विद्या सिखायी इसलिए मैं इसकी गुरु हूँ। यह योग्य शिष्य भी सिद्ध हुआ। आप लोगों ने इस ही कला की विविधता को देखकर आनन्द का अनुभव किया है। ऐसी कला को छोड देने तथा भविष्य में उसका उपयोग न करने की अनुमति मैं कैसे दे सकती हूँ ? मानव के जीवन-संघर्ष में हार-जीत का जैसा अर्थ है वैसे ही कला द्वारा स्फुरित मानवीय मूल्यों की अत्यन्त आवश्यकता समाज के लिए है। दोनों ही त्याज्य नहीं। परन्तु अपने जीवन में कौन मुख्य है और कौन गौण—यह निर्णय स्वयं को ही कर लेना चाहिए। जो मुख्य होगा और महत्व का होगा वह प्रधान हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि शेष विद्याओं को छोड़ देना चाहिए। उनका भी उपयोग, गौण होने पर भी, होता रहना चाहिए। इसलिए इस सम्बन्ध में बिट्टियण्णा को ही अपनी इच्छा का निवेदन करना होगा।" कहकर शान्तलदेवी बैठ गयी।

बिट्टियण्णा ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने बाद बिट्टिदेव ने पूछा, "पट्टमहादेवी ने जो कहा उसे समझे ?"

"पहले एक बार मैंने राजमहल के ज्योतिषी से पूछा था कि मैं आगे चलकर क्या होऊँगा मेरी जन्मपत्री देखकर बताइये। उन्होंने बताया—उच्च कुज लग्न के केन्द्र में होने के कारण पंच महापुरुष योगों में से एक रुचिक योग तुम्हारे लिए है। तुम कुछ भी काम सीखो उसमें परिणत होओगे। बड़े होने पर तुम्हें ही सोचकर निर्णय कर लेना होगा। जैसे उन्होंने बताया वैसे ही मुझे सब विषयों में अभिरुचि है। इतना ही नहीं, मुझे किसी विद्या को सीखने में कोई कष्ट नहीं होता। तलवार चलाने में, धनुर्विद्या सीखने में, घोड़े को साधने में, चित्रकला में, नृत्य में—इनमें किसी को सीखते समय मुझे कोई कष्ट मालूम ही नहीं हुआ।

सब आसान ही लगे। ऐसे ही व्याकरण, छन्दशास्त्र भी मेरे लिए कभी सरदर्द नहीं बने। बल्कि इन सब में मुझे उत्साह ही बना रहा। उन्होंने जो कहा वह सत्य है। परन्तु मेरा अन्तरंग मेरे जन्मदाताओं की ही बात पर विचार करता रहता है। इसलिए मुझे युद्ध मुख्य मालूम पड़ता है। इसी का अनुग्रह करें।" बिट्टियण्णा ने स्पष्ट किया।

"पट्टमहादेवी जी की बात भूल गये? उसी का अनुग्रह करने का अर्थ होगा नृत्य को त्याग दो। क्या यही तुम्हारी इच्छा है?" बिट्टिदेव ने सवाल किया।

"मेरी कला की गुरुवर्या ने आदेश दिया है कि उसका भी पोषण होते रहना चाहिए। उनके आदेश को अस्वीकार नहीं कर सकता। मैं सन्निधान एवं उनकी गोद में पला हूँ। आप दोनों के आदर्श मुझमें समाये हुए हैं। आप ही के द्वारा चित्रित मेरे माता-पिता के चित्र मन पर अंकित हैं। मेरा लक्ष्य है कि मैं अपने पिताजी से बढ़कर प्रभु की सेवा कर, अपने पिता का योग्य पुत्र कहलाऊँ। इसके लिए आवश्यक सभी तरह का शिक्षण देकर उसका उपयोग करने के लिए मुझे मौक़ा न देकर मुझे दूर रखने के कारण मेरा मन बहुत दुःखी था। केवल आश्चर्य-चकित करने तथा मन बहलाने के उद्देश्य से मैं उदयादित्यरस के सामने गिड़-गिड़ाकर आज इस वेष में आया। अब मैं पछता रहा हूँ कि बाद की बातें प्रकृत प्रसंग के अनुकूल नहीं रहीं। सन्निधान इसके लिए मुझे क्षमा करें। पट्टमहादेवी जी की जन्मपत्री में भी यह रुचकयोग है—यही सुना है। इसीलिए वे इस युद्ध व्यापार में भी परिणत हैं। यह नृत्यकला मुख्य न होने पर भी, जैसे मेरे लिए इस ज्ञान का पोषण करना जरूरी है, वैसे ही उनके लिए युद्ध-व्यापार अप्रधान होने पर भी उसका पोषण करना ज़रूरी है। इसी के अनुरूप उन्होंने अपनी कार्य योजना को रूपित किया है। मैं उनका ही शिष्य हूँ। यहाँ प्रधान और अन्य विषय—इनमें एकरूपता हम दोनों में नहीं, इतना ही अन्तर है। हम सब के रहते हुए उन्हें आगे बढ़ाकर हम पीछे रह जाएँ तो यह हमारे पुरुषत्व के लिए ही गौरव हीनता की बात होगी। मेरी नृत्यकला मुझमें बच रहना हो तो उसे जिस प्रमाण में मुझमें होना चाहिए उसी प्रमाण में मेरी गुरुवर्या में रण-व्यापार बना रहना चाहिए। यह रण-व्यापार आज की तरह प्रधान न बने। यह हो तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। जनमते ही मैं माँ को खो बैठा। ऐसे मातृहीन मुझपर मातृ-वात्सल्य की विमलधारा ही बहा दी पट्टमहादेवी ने। उन्हें युद्धक्षेत्र की अनिश्चित परिस्थितियों का शिकार नहीं बनना चाहिए यही मेरी आकांक्षा है। ऋषियोंने बहुत पहले ही कह दिया था : मातृदेवो भव। इससे देवत्व, पूजा, सुख, सन्तोष सभी बातों में उन्हीं का अग्रस्थान है—यह बात सिद्ध हो जाती है। ऐसी हालत में उन्हें दुःख-दर्द से दूर रखना हम पुरुषों का कर्त्तव्य है। इस सम्पूर्ण पोय्सल राष्ट्र की माँ हैं वे। उनकी रणभूमि की स्फूर्ति और हस्त-कौशल आदि से हम परिचित

हैं। इस शुभ अवसर पर उन्हें 'रण-व्यापारनिपुण' कहकर घोषित करें। आगे से अपनी सारी शक्ति की वह धारा हममें प्रवाहित करने का अनुग्रह करें, और स्वयं मातृप्रेम को सारे संसार में बहाकर जगती-मानिनी माता मात्र बनकर रहें। मुझे यह वरदान देने की कृपा करें।" यह कहते हुए बिट्टियण्णा ने बिट्टिदेव-शान्तलदेवी के चरण छूकर प्रणाम किया।

दोनों ने झुककर उसके कन्धे और पीठ पर हाथ फेरा। वह उठ खड़ा हुआ। बोला, "नर्तन के लिए जो पुरस्कार दिया वह वैसा ही रहे। इसी स्त्री वेष में, माँ! मेरे इस वीरोचित निश्चय पर शक्ति का आवाहन कर एक तलवार देने का अनुग्रह करें।"

बिट्टिदेव ने उदयादित्य की ओर देखा। उन्होंने महाराज का आशय समझकर एक परात में सुन्दर तलवार मँगवायी। अभी नर्तकी के वेष में ही बिट्टियण्णा खड़ा था। शान्तलदेवी ने उसकी ओर मुड़कर कहा, "बेटा, तुम वीर बनो! तुमने जो नृत्य सीखा है, उसने तुम्हारे पैरों को योद्धा का भी बल दिया है। वह कैसी शक्ति है—इसे सन्निधान भी जानते हैं। इसलिए इस नृत्य का फल भी तुम्हें युद्धक्षेत्र में सहायक बनेगा। तुम्हारी आकांक्षाएँ बहुत ही युक्त और योग्य हैं। किसी को अपनी किसी भी शक्ति का अनुचित उपयोग नहीं करना चाहिए और उस शक्ति को जंग लगने देना भी नहीं चाहिए। औचित्य को समझकर उसके अनुसार चलना ही सूक्त मार्ग है। यहाँ सबको स्वातन्त्र्य प्राप्त है। इस स्वतन्त्रता से किसी को किसी तरह का दुख-दर्द नहीं हो। इसका दुरुपयोग हो तो वह त्याज्य है। स्वतन्त्रता का प्रधान ध्येय राष्ट्र की उन्नति है। वही प्रधान लक्ष्य है। राष्ट्रहित की बात जब कहते हैं तो उसमें सन्निधान, पट्टमहादेवी, दण्डनायक, सेनानी, प्रजा—इन सबका भेद नहीं होना चाहिए। उसमें सब समान रीति से भागीदार हों। तुम्हारा युद्धोत्साह तो सहज ही है। ऐसा समझकर मैं अथवा सन्निधान मनमाना व्यवहार करें, कैसे यह साध्य होगा? सब लोगों को सभी समयों में उपयोग करना साध्य नहीं। उपयोग न करने की अन्यार्थ कल्पना भी उचित नहीं। तुम्हारी आयु अभी छोटी है। फिर भी गरम खून से पुलकित होकर जो उत्साह छलक रहा है, उसमें तुम्हारी विचारशक्ति कुछ कुण्ठित-सी हुई है। अच्छा होगा यदि आगे जब तुम विचार करो तो तुम तुम न रहकर विचार किया करो। तुम्हारी तीव्र निराशा और अत्यन्त उत्साह ये दोनों पहलू आज यहाँ प्रकट हुए। तुम्हारे गुरु ने तुम्हें साहित्य को घोंटकर पिलाया है तो उसके बल पर तुम मुझे विरुदावलि देकर सम्मानित करने चल दिये! अब उस कर्त्तव्य पालन का बहुत प्रसार हो गया। इस प्रसार ने मुझे संकोच में डाल दिया। तुम्हारी आकांक्षा के अनुसार यह तलवार तुम्हारी वज्र-मुष्टि की शोभा बढ़ावे। राष्ट्र के लिए तुम्हारी सेवा किस प्रकार की हो—सन्निधान मन्त्रणा-सभा में उस पर विचार कर निर्णय करेंगे। ठीक है

न ?" कहकर शान्तलदेवी ने अपने हाथ से उस तलवार को एक बार चमकाया।

बिट्टियण्णा ने उसी स्त्री-वेष में ही वीरोचित ढंग से घुटने टेककर बहुत विनीत भाव से दोनों हाथों की अंजलि आगे बढ़ायी। शान्तलदेवी ने अपने हाथ से तलवार उसकी अंजलि में रखकर उसके सिर पर अपने दोनों हाथों से आशीर्वाद दिया, "बेटा ! तुम तेजस्वी होकर जीओ; राष्ट्र के कार्य में तुम्हारा जीवन उपयुक्त बना रहे। तुम्हारे माता-पिता तुम्हें राजमहल के वर्चस्व में छोड़कर चल बसे। उनकी आकांक्षाओं को सफल बनाने के लिए ही हमने अपनी शक्ति-भर योग्य शिक्षण दिया। वह शिक्षण तुममें अच्छी तरह पल्लवित होगा—इस का विश्वास हमें हो गया है। तिस पर तुम में अब आत्म-स्थैर्य का भी विकास हुआ है। इस वजह से हम अब यह समझ सकते हैं कि हमारी जिम्मेदारी एक सीमा तक बहुत कम हो गयी। यह प्रजा पोय्सल राष्ट्र की प्रतीक है। वह तुम से इस बात की अपेक्षा करती है कि तुमसे राष्ट्र को शाश्वत और कीर्तिदायक सेवा मिले।" इतना कह पट्टमहादेवी अपने आसन पर बैठ गयीं।

बिट्टियण्णा पट्टमहादेवी द्वारा दी गयी उसतलवार को ऊपर उठाकर, चमकाकर, भाल से लगा कर तथा एकबार अपना माथा महाराज की ओर और फिर पट्टमहादेवी की ओर झुकाकर प्रणाम करने के बाद उठ खड़ा हुआ और बोला, "आप के आशीर्वाद से मेरा जीवन सार्थक बने, मेरा जीवन पोय्सल राजवंश की सेवा के लिए ही धरोहर बने। मुझे अपने माता-पिता से भी बढ़कर प्रेम से पाल-पोसकर बड़ा बनानेवाले अपने इन राज-दम्पती की और इनकी सत्सन्तान की उन्नति के लिए मैं आजीवन परिश्रम करता रहूँगा—इस अवसर पर मैं यही प्रतिज्ञा करता हूँ। उपस्थित प्रजा-जन इसे मात्र एक बालक की बात न समझकर, अपना आशीर्वाद देते हुए मेरी इस प्रतिज्ञा को सफल बनाने की शक्ति प्रदान करें।" उसने सागरोपम जन-समुदाय को प्रणाम किया।

जन-समुदाय की तालियों की गड़गड़ाहट से सारा वातावरण झंकृत हो उठा। बिट्टियण्णा यह देख पुलकित हो उठा। उसने फिर राजदम्पती के पैर छूकर प्रणाम किया।

सभा समापन की घोषणा के साथ राजदम्पती सभा मंच से उठे और राजमहल की ओर बढ़ गये। सभा विसर्जित हो गयी।

□□